परित्याग कर देता है तो वह निन्द्य है इस प्रातिकूल्य का वर्जन, प्रपत्ति का द्वितीय अङ्ग है। "रक्षिष्यतीति विश्वासो" भगवान् मेरी रक्षा अवश्य करेंगे, यह विश्वास रखना प्रपत्ति का तृतीय अङ्ग है। अपनी रक्षा के लिये भगवान् से प्रार्थना करने को "गोप्तृत्व वर्णन" कहते हैं पञ्चरात्रे यथा – "दासोऽस्मि शेषभूतोऽमि तवैव शरणं गतः। पराधितोऽहं दीनोऽहं पाहि मां करुणाकर ॥ १ ॥ यह प्रपत्ति का चतुर्थ अङ्ग है। अनुष्ठित सभी उपाय सिद्ध नहीं हो सकते, तथा पाप में प्रवृत्ति स्वाभाविकी है अतः कर्तृत्व विषय में अभिमान का सर्वथा परित्याग कार्पण्य कहलाता है। अर्थात् "अपराधी मेरे द्वारा अनुष्ठित कुछ भी सिद्ध नहीं होगा, बल्कि विघ्न होंगे" इस अनुसन्धान के द्वारा जो मन में ग्लानी है इसे दैन्य (दीनता) कहते हैं यही कार्पण्य शब्द का अर्थ है। यह दैन्य गोप्तृत्व वर्णन का भी अङ्ग है, प्रपत्ति वाक्यों में दीन शब्द पूर्वक याचना की जाती है। वाल्मीकीये यथा-- बद्धाञ्जलिपुटं दीनं याचन्तं शरणागतम्"। "आत्मनिक्षेपः" आत्मनिक्षेप प्रपत्ति का अङ्गी है अर्थात् प्रपत्ति के अङ्गों में मुख्य है। मेरी रक्षा का भार मेरे ऊपर नहीं है श्रीसीताराम जी के ऊपर है और उसके फल के भोक्ता भी वही हैं अर्थात् मुझे रक्षित समझकर प्रसन्नता भी उन्हीं को होगी, यद्यपि रक्षित व्यक्ति भी प्रसन्न ही होगा तथापि मुख्य प्रसाद रक्षक को होता है। ये समस्त भार भगवान को अर्पण कर देना ही" आत्मनिक्षेप है। यथाः-

स्वामिन् ते शेषभूतोऽहं ते भोग्यो रक्ष्य एव च। अकिंचनोऽनन्योपायस्तव कैंकर्यैकभोग्यकः ॥१॥ अगतिश्चानु कूल्योहं प्रातिकूल्येन वर्जितः। रक्षिष्यतीति विश्वासो स्वरक्षा प्रार्थना युतः ॥२॥ कृपणोऽहं दयासिन्धो सर्वपापकर स्तथा। स्वंच स्वीयं च यत् किञ्चित्त्वयि न्यस्यामि स्वीकुरु ॥ ३ ॥ न्यस्याम्यकिञ्चनः श्रीमन्नात्म रक्षाभरंत्वयि। मे त्वत्प्राप्ते रूपायस्त्वं कृपया भवराधव ॥ ४ ॥ एतच्चराचरं सर्वं यच्च यावच्च श्रूयते। सर्वमस्ति त्वदीयं हि श्रुतिभिश्चावगम्यते ॥५॥ न तादृशं दृढं ज्ञानं मयि स्वामिन् प्रतिष्ठितम्। त्वन्तु सर्वं विजानासि सर्वं वस्तु ममेति च ॥ ६ ॥ संसार सागरे भ्रमन्तत्त्वद्वस्तु निमज्जितम्। पश्यसि त्वं समर्थः सन् कारणं किं वद प्रभो ॥७॥ चिदचिदात्मकं सर्वं मदीयं सत्यमस्ति वै। जीवोप्यसौ मदीयश्च ह्यभिमानान्निमज्जते ॥ ८ ॥ यावत्सत्वाभिमानोऽस्यं तावत्संसार सागरे। निमज्जतेऽभिमानात्ते ह्युद्धरिष्यामि चेद्वद ॥ ९ ॥ सत्यमहं मदीयं च सर्वमन्यत्तवास्ति वै। तथा तदभिमानो मे हेतु स्तव नियोजने ॥ १० ॥ अहं मदीयं चेत्येषयोऽभिमानो दुरत्ययः। त्वयि न्यस्यामि तं स्वामिन् त्वदीयं तं हि स्वीकुरु ॥ ११ ॥ निर्हेतुकृपया सर्वं स्वीकृत्य करुणानिधे। अहं ममाभिमानं मे निखिलं छिन्धिमूलतः ॥ १२ ॥ यदि नास्त्यानुकूल्यादिर्मयि स्वामिन्यथार्थतः। बद्धाञ्जलिपुटं दीनं रक्षमां शरणागतम् ॥१३॥ यथाहं च मदीयं च न मे रामस्य

तत्त्वतः। भातिमे हृदये सम्यक् तथा कुरु दयानिधे ॥ १४ ॥ त्वन्माययामलीमस हृदयं निर्मलं कुरु। येनाहं संविजानामि त्वां त्वदीयं च तत्त्वतः ॥१५॥ त्वत्कृपा-दृष्टिमात्रेण तद्धि सर्वं भविष्यति। न वै परिश्रमः कश्चित्तव तत्र दयानिधे ॥१६॥ प्रार्थयामि महादीनो दीनोद्धर कृपानिधे। एतद्देहावसाने मां स्वं प्रापय दयाकर ॥ १७॥ स्वदत्तज्ञानदीपेन नाशयाज्ञानजन्तमः। स्वतत्त्वज्ञानपूर्वं स्वार्थं स्वं प्रापय स्वयम् ॥१८॥ यानि सञ्चित् पापानि तानि नाशय मे प्रभो। अकृत्येषु प्रवृत्ति-र्मेवारय बुद्धि प्रेरक ॥ १९ ॥ यथा निर्मुच्य पापेभ्यस्त्वत्प्राप्ति योग्यता भवेत्। मयिस्वामिन् हरे राम तथा त्वं मां स्वयं कुरु ॥ २० ॥ न मे पापविनिर्मोके नापि-त्वत्प्राप्ति साधने। शक्तिस्तत्र समर्थस्त्वं स्वप्राप्ति साधनं भव ॥ २१ ॥ स्वाग्रे मां पतितं दृष्ट्वा श्रुत्वा च प्रार्थनामिमाम्। अङ्गीचकार श्रीराम तदप्यस्मीह निर्भरः॥२२

इन श्लोकों में जिस प्रकार का समर्पण है वह सब श्रीसीताराम जी को अर्पित करना ही "आत्मनिक्षेप नामक प्रपत्ति है ॥ ५१ ॥

वन्दामहे महेशानं चण्डकोदण्डखण्डनम्।
जानकी हृदयानन्दचन्दनं रघुनन्दनम् ॥ ५२ ॥

चण्डकोदण्डखण्डनम्=रुद्र के धनुष को तोड़ने वाले। महेशानम्=परात्पर-तर। जानकीहृदयानन्दचन्दनम्=श्रीसीताजी के हृदय को चन्दन के समान आनन्द प्रदान करने वाले। रघुनन्दनम्=रघुवंशियों को आनन्द देने वाले श्रीरामजी को। वन्दामहे= हम लोग नमस्कार करते हैं।

विशेष :-महेशानम्=महांश्चासावीशानश्च महेशानस्तम्। श्रुतौ यथा—तं देवतानां परमं च दैवतं तमीश्वराणां परमं महेश्वरम्। पतिं पतीनां परमं पुरस्ताद् विदामदेवं भुवनेशमीड्यम् ॥ महेशान में क्या कारण है—चण्डकोदण्डखण्डनम्=चण्डस्य रुद्रस्य कोदण्डं धनुः खण्डयतीतितम्। अर्थात् जगत् का प्रलय करने वाले शंकरजी के धनुष को भी जिन्होंने तोड़ दिया। अतः इस पद से श्रीरामजी का परमैश्वर्य व्यक्त किया। जो ईश्वराभिमानी रुद्र हैं उनका भी अतिक्रमण मनुष्य वेष में श्रीरामजी के द्वारा हुआ। तथा श्रीरामजी का परममाधुर्य भी द्योतित हुआ। श्रीजनक जी की प्रतिज्ञा का स्थापन, श्रीजानकीजी के दुःख को देखकर उसको असहमानत्व, श्रीरामजी के द्वारा आनन्द करत्वादि भी चडण्कोदण्डखण्डनम् से व्यक्त हुआ। जानकी हृदयानन्द चन्दनम् श्रीरामानुरागिणी श्रीजानकी जी के हृदय को चन्दन के समान शीतल करने वाले। रघुन-न्दनम=महारानी श्रीजानकीजी की प्राप्ति द्वारा माता पिता भ्राता आदि रघुवंशियों को आनन्द प्रदान करने वाले श्रीरामजी को। वन्दामहे=वयं वन्दामहे। वहुवचन ग्रन्थ के प्रवर्तक जो श्रीनारदादि हैं उनके तात्पर्य से है अथवा श्रीरामजी की उपासना में बहुमान प्रदर्शन है ॥ ५२ ॥

उत्फुल्लामल कोमलोत्पलदलश्यामाय रामायनः ।
कामाय प्रमदा मनोहर गुण ग्रामाय रामात्मने ॥
योगारूढ़मुनीन्द्र मानससरोहंसाय संसारविध्वंसाय ।
स्फुरदोजसे रघुकुलोत्तंसाय पुंसे नमः ॥ ५३ ॥

उत्फुल्ल = विकसित, अमल = उज्ज्वल, निर्मल, कोमल = मृदुल, उत्पलदल = श्याम कमल, श्यामाय = नीलकमल के सदृश । नः = हम लोगों का । रामाय = श्रीरामजी के लिये । कामाय = सर्वविध मनोरथ पूर्ण करने वाले, या अभिलाषा के विषय, या-अप्राकृत कामदेव के लिये । प्रमदा = युवतिजनों के लिये, मनोहर = मन को अपहरण करने वाले, गुणग्राम = गुण समूह है जिनमें । रामात्मने = श्रीजानकी जी में ही आत्मा-मन है जिनका एवं भूताय । योगारूढ़ = योग श्रीरामजी के भक्तियोग में आरूढ़ = विराजमान, मुनीन्द्र = सनत्कुमार नारदादि के, मानससरः = मन रूपी सरोवर (जलाशय) के, हंसाय = हंसरूप पक्षी के समान सर्वदा विहार करने वाले । संसारविध्वंसाय = प्राणियों के विषय वासना रूप संसरण अथवा जन्म मरण रूप संसार, विध्वंसाय = विशेषरूप से नाश करने वाले । स्फुरदोजसे = देदीप्यमान, बल या तेज है जिसका । रघुकुलोत्तंसाय = रघुकुल के भूषण (शिरोरत्न) पुंसे = पुरुष रूप में वर्तमान श्रीरामजी के लिये । नमः = नमस्कार है ।

विशेष :--श्रीरामजी को परमोपास्य, तथा मोक्षप्रद कहा जा रहा है यथा नमोऽस्तुरामदेवाय, जगदानन्दरूपिणे, अर्थात् स्वरूप तथा सौन्दर्यादि गुणों से जगत् को आनन्द देने वाले श्रीरामजी कैसे हैं, उत्फुल्ल = नवीन खिले हुये निर्मल कमलदल के समान श्यामवर्ण वाले अतएव कामाय मनो नेत्र वाणी आदि का विषय न होने पर भी केवल स्पृहणीय, सतत् अभिलषणीय । यथा— रूपौदार्यगुणैः पुंसां दृष्टिचित्तापहारकम् । अतः प्रमदा मनोहर गुण ग्रामाय । पुंसे = परमपुरुष के लिये । यथा—वेदवेद्ये परे पुंसि जाते दशरथात्मजे । वेदः प्राचेतसादासीत्साक्षात् रामायणात्मना ॥ ५३ ॥

भवोद्भवं वेदविदो वरिष्ठमादित्य चन्द्रानिल सुप्रभावम् ।
सर्वात्मकं सर्वगत स्वरूपं नमामि रामं तमसः परस्तात् ॥ ५४ ॥

भवोद्भवम् = भव = प्रधान उसके, उद्भव = कारण, अर्थात् उपादानकारण । वेदविदोवरिष्ठम् = वेदविद् = ब्रह्मा, उनसे वरिष्ठ = श्रेष्ठ, जगत् की सृष्टि करने वाले अर्थात् ब्रह्मा को जगत् की सृष्टि करने के उपयुक्त सामर्थ्य प्रदान करने वाले (श्रीरामजी) आदित्यचन्द्रानिलसुप्रभावम = आदित्य = सूर्य चन्द्रमा वायु में शोभनप्रभाव = शक्ति प्रदान करने वाले । सर्वात्मकम् = सबके आत्मा अर्थात कारणावस्था में सूक्ष्म चिदचिद् विशिष्ट कार्यावस्था में स्थूल चिदचिद् शरीर वाले, सर्वगतस्वरूपम = सर्वव्यापी स्वरूप है जिसका । तमसः = प्रकृति अर्थात् लीलाविभूति से परस्तात् = परे अर्थात् नित्यविभूति में विराजमान, रामं = श्रीरामजी को । नमामि = नमस्कार है ॥ ५४ ॥

विशेष :—भवोद्भवम् = भवति अस्माज्जगदिति भवः प्रधानम् उसका उद्भव अर्थात् उत्पत्ति स्थान । तमः शब्द वाच्य सूक्ष्म अचिद् शरीर वाले श्रीरामजी से प्रधान उत्पन्न हुआ, तथा प्रधान से निखिल प्रपञ्च की उत्पत्ति हुई । श्रुतौ यथा –

तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः, आकाशाद्वायुः, वायोस्तेजः, तेजस आपोऽद्भ्यः पृथिवी ।

तम शरीर वाले श्रीरामजी (आत्मा) से प्रधान, तथा प्रधान शरीर वाले श्रीराम जी से आकाशादि समस्त प्रपञ्च उत्पन्न हुआ । अन्यथा श्रीराम जी में विकारित्व की आपत्ति हो जायेगी । श्रुतौ यथा—तत्तेजोऽसृजद् । अर्थात् तमः शरीरक ब्रह्म द्वारा प्रधान, प्रधान शरीरक ब्रह्म द्वारा आकाश, वायु, तथा वायु से तेज की सृष्टि हुई । प्रदर्शित दोनों श्रुतियों में एक वाक्यता की उपपत्ति गुणोपसंहार न्यायेन करनी चाहिये । उपादान कारण कहकर निमित्त कारण को कह रहे हैं--वेदविदोवरिष्ठम्=श्रीरामजी की अनुग्रह से ही ब्रह्मा जगत् की सृष्टि में समर्थ हुये । आदित्यादि भी श्रीरामजी के प्रभाव से ही जगद् के अधिकारी हुये । सर्वात्मकम्=सबके अन्तर्यामी भगवान् श्रीरामजी ही हैं । श्रुतौ यथा-- य आत्मनितिष्ठन् आत्मान्तरोयमात्मा न वेद यस्यात्मा शरीरम् । अन्तर्यामी श्रुति तथा श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण द्वारा भी जगत् श्रीरामजी का ही शरीर कहा गया है । वा० रा० यथा--

जगत्सर्वं शरीरन्ते स्थैर्यं ते वसुधातलम् ।। सर्वगतस्वरूपम् = सर्वव्यापि स्वरूपं यस्यतम् । श्रुतौ यथा--यत् किञ्चिज्जगत्सर्वं दृश्यते श्रूयतेऽपि वा । अन्तर्बहिश्चतत्सर्वं व्याप्य नारायणः स्थितः।।१।। तमसः परस्तात् = प्रकृतेः परमित्यर्थः ।

विशेषण रूप प्रकृति के विशेष्य स्वरूप भूत होकर नित्यविभूति में विराजमान् । पंचरात्रे यथा- द्विहस्तमेक वक्त्रं च रूपमाद्यमिदं हरेः। परन्तद् द्विभुजं प्रोक्तमित्यादि। जो आदि रूप है उसीको श्रीरामतापनीय में इस प्रकार कहा गया है यथा--रमन्तेयोगिनोऽनन्ते सत्यानन्दे चिदात्मनि । इति रामपदेनासौ परब्रह्माभिधीयते । वेद में परब्रह्म पद से वेदान्त में अद्वितीय स्वसमाभ्यधिकरहितत्वादि पदों से जो कहे गये हैं वे ही नारायण मत्स्यकूर्मादि बहुत रूपों को उपासकों के कार्यार्थ धारण करते हैं, उन्हीं को "नारायणं जगन्नाथमित्यादि पदों से कहा गया है । वे ही निरञ्जन निराकार द्वैत तमः परादि विशेषणों से विशेषित 'परात्परतरन्तत्त्वं सत्यानन्दं चिदात्मकम् । तथा रघूत्तमत्वेनाविर्भूत हैं। उपसंहार में भी उसी तत्त्व की दिशा में ही निर्देश है। यथा--

त्वमक्षरं परं ज्योतिः त्वमेव पुरुषोत्तमः । त्वमेव तारकं ब्रह्म त्वत्तोऽन्यन्नैव किंचन ।।१।। परात्परं यत्परमं पवित्रं नमामि रामं महतो महान्तम् । राजीव लोचनं रामं प्रणमामि जगत्पतिम् ।।२।।

श्रीव्यास वाल्मीकि आदि के गुरू श्रीनारदजी द्वारा परतत्त्वादि पदों से विशेषित राजीवलोचन श्रीराम जी ही सर्ववाच्यवाचक रूप से प्रतिपादित हैं। समस्त नारायणादि शब्दों के वाच्य श्रीरामजी, उनका वाचक रामनाम या श्रीराममन्त्र है अतः वह भी उन्हीं के समान नाराणजगन्नाथादि पदों का विशेष्य भूत हुआ। स्मृतौ यथा-- विश्वरूपस्य ते राम विश्वे शब्दा हि वाचकाः। तथापि मूलमन्त्रस्ते सर्वेषां वीजमक्षयम् ॥१॥ न कहिये कि अंकुरोत्पत्ति में बीज का नाश हो जाता है उसी प्रकार मूलमन्त्र की भी आपत्ति होगी उसके लिये बीज का विशेषण अक्षय कहा गया, अर्थात् श्रीराम रूप को कहने वाले जो नारायणादि शब्द हैं उनका कारण षड़क्षर मन्त्र का एक देशभूत बीजमन्त्र या मूलमन्त्र ही है और वह कभी नाश न होने के कारण अक्षय कहलाता है।

श्रुति स्मृतियों ने श्रीराम शब्द को सब शब्दों का वाच्य कहा उसीको श्रीनारद जी ने भी नारायणादि पदों से विशेषित किया, तथा श्रीरामजी को सर्व शब्द वाच्यत्वेन एवं सर्वरूपी होने के कारण सबका कारण बतलाकर "निदानं प्रकृतेः परम्" 'अद्वैतं तमसः परम्" "नमामि रामं तमसः परस्तात्" इत्यादि पदों द्वारा श्रीराम जी को त्रिपाद् विभूति का स्वामी सिद्ध किया, और उन्हीं का आविर्भाव होता है यह भी स्पष्ट हो गया, यथा—परात्परतरं तत्त्वं सत्यानन्दं चिदात्मकम् ॥५४॥

निरञ्जनं निः प्रतिमं निरीहं निराश्रयं निष्कलमप्रपञ्चम् ।
नित्यं ध्रुवं निर्विषयस्वरूपं निरन्तरं राममहं भजामि ॥ ५५ ॥

निरञ्जनम्=अज्ञान रहित अर्थात् शुद्धिचिदेक रस। निःप्रतिमम्=प्रतिमा= रहित। निरीहम्=पुरुषार्थ प्राप्ति के लिये चेष्टा रहित। निराश्रयम्=आधाररहित अर्थात् अपनी महिमा के आधारभूत। निष्कलम्=कलामुहूर्त आदि कालावयव से परे अर्थात् काल की अधीनता से रहित स्वरूप वाले। अप्रपञ्चम्=प्रपञ्च=भृत्यादि द्वारा सेवा का विस्तार वह नहीं है जिसमें अर्थात् थोड़ी सेवा से ही सन्तुष्ट होने वाले। अथवा प्रपञ्च =संसार उसके धर्म से रहित। नित्यम्=तीनों काल में एक रस। ध्रुवम=अचल। निर्विषयस्वरूपम्=प्राकृत विषय से रहित है स्वरूप जिसका अर्थात् प्रकृतिलेप रहित। निरन्तरम=अन्तर रहित अर्थात् सतत्। रामम्=योगियों के चित्त में रमण करने वाले श्रीरामजी को। अहं भजामि=मैं भजन करता हूँ॥ ५५॥

विशेष :—श्रीरामजी के स्वरूपनिष्ठ स्वभाव को कहते हुये प्रणाम किया जा रहा है। निरञ्जनम् पद से श्रुत्युक्त सभी पदों का स्मरण है यथा-- निष्कलं निष्क्रियं शान्तं निरवद्यं निरञ्जनम।" निःप्रतिमम्=यथा न तस्य प्रतिमाऽस्ति यस्य नाम महद्यशः। अथवा श्रीरामजी का नाममन्त्र उपमा रहित है। यथा—

सर्वेषु मन्त्रवर्गेषु श्रेष्ठं वैष्णवमुच्यते। गाणपत्येषु शैवेषु शाक्त सौरेष्वभीष्टदम् ॥१॥ वैष्णवेष्वपि मन्त्रेषु राममन्त्राः फलाधिकाः। गाणपत्यादि

मन्त्रेषु कोटि कोटि गुणाधिकः ॥२॥ मन्त्रस्तेष्वप्यनायास फलदोऽयं षडक्षरः। षडक्षरसमो मन्त्रो जगत्स्वपि न विद्यते ॥३॥ जपतःसर्वं वेदांश्च सर्वं मन्त्रांश्च पार्वति। तस्मात्कोटि गुणं पुण्यं रामनाम्नैव लभ्यते ॥४॥

पुनः श्रीरामजी कैसे हैं निराश्रयम्=निराधार हैं अर्थात् उनका आधार उनकी महिमा ही है यथा—भगवो स कस्मिन प्रतिष्ठितः स्वमहिम्नीति। अप्रपञ्चम् अर्थात् स्वल्पीयसी सेवा से सन्तुष्ट होने वाले यथा—कथंचिदुपकारेण कृतैनैकेन तुष्यति। न स्मरत्यपकाराणां शतमप्यात्मवत्तया ॥१॥५५॥

भवाब्धि पोतं भरताग्रजन्तं भक्तप्रियं भानुकुल प्रदीपम्।
भूतत्रिनाथं भुवनाधि पत्यं भजामिरामं भवरोग वैद्यम् ॥ ५६ ॥

भवाब्धिपोतम्=संसार रूपी सागर से पार करने वाले (नौका)। भरताग्रजन्तम्=श्रीभरत जी के ज्येष्ठ भ्राता, अर्थात् श्रीभरत जी के द्वारा आराधनीय। भक्तप्रियम् भक्तियुक्त पुरुषों के प्रिय, अर्थात् भक्तों के अधीन। भानुकुलप्रदीपम्=सूर्य कुल के उत्कृष्ट प्रकाशक। भूतत्रिनाथम्=प्राणियों के तीनों काल में रक्षक, अर्थात् अभय प्रदान करने वाले। भुवनाधिपत्यम्=लोकों के अधिपति, अर्थात् सर्वेश्वर। भवरोग वैद्यम्=संसार (जन्ममरण) के रोग का नाश करने वाले। रामम=श्रीरामजी को। भजामि=भजता हूँ। अर्थात् जन्ममरणादि रूप संसार से पार करने की सामर्थ्य श्रीरामजी में ही है अतएव भजन करने के योग्य हैं।

विशेषः—भरताग्रजन्तम्=श्रीभरतलाल जी की भक्ति के विषय तो हैं ही, अन्य व्यक्ति भी यदि अपनी सेवा का विषय बनाना चाहें तो बना सकते हैं इसलिये कहा भक्तप्रियम्=भक्तों के प्रिय अर्थात् हृदय हैं अथवा भक्त ही हृदय हैं जिनके, अर्थात् भक्तों के हृदय में उपासना के अनुरूप मूर्तिमान होकर निवास करने वाले। सर्वत्र भगवान् व्यापकतया रहते हैं भक्त के हृदय में मूर्तिमान् होकर रहते हैं। यथा-ये भजन्ति मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्। गीता। अथवा श्रीमद्भागवते यथा—

अहं भक्तपराधीनो ह्यस्वतन्त्र इव द्विज। साधुभिर्ग्रस्तहृदयो भक्तैर्भक्तजन प्रियः ॥ १ ॥ साधवो हृदयं मह्यं साधूनां हृदयं त्वहम्। मदन्यत्ते न जानन्ति नाहं तेभ्यो मनागपि ॥२॥ मयि निर्बद्धहृदयाः साधवः समदर्शिनः। वशीकुर्वन्ति मां भक्त्या सत्स्त्रियः सत्पतिं यथा ॥३॥ नाहमात्मानमाशासे मद्भक्तैः साधुभिर्विना। श्रियं चात्यन्त की ब्रह्मन् येषां गतिरहं परा ॥४॥ येदारागार पुत्राप्तान् प्राणान् वित्तमिमं परम्। हित्वा मां शरणं याताः कथं तांस्त्यक्तु मुत्सहे ॥ ५ ॥ इमं लोकं तथैवामुमात्मानमुभयायिनम्। आत्मानमनुये चेह रायो वै पशवो गृहाः॥ ६॥ विसृज्य सर्वानन्यांश्च मामेव विश्वतोमुखम्। भजंत्यनन्या भक्त्या तान्मृत्यो-

रति पारये ॥ ७ ॥ मत्सेवया प्रतीतश्च सालोक्यादि चतुष्टयम् । नेच्छन्ति सेवया पूर्णाः किमन्यत्काल विप्लुतम् ॥ ८ ॥

श्रीरामजी का भजन करने वाले निकृष्ट कुल में ही क्यों न जन्म लिये हों वे उत्तम कुल के भक्त सदृश ही प्रिय हैं। यथा--सुरोऽसुरोवाप्यथ वानरो नरः सर्वात्मना यः सुकृतज्ञमीश्वरम् । भजेत रामं मनुजाकृतिं हरिं य उत्तराननयत्कोशलान् दिवम् ॥ १ ॥ न जन्मनूनं महतो न सौभगं न वाङ् न बुद्धिर्नाकृतिस्तोषहेतुः । तैर्यद्विसृष्टानपि नो वनौकसश्चकारसख्येवत लक्ष्मणाग्रजः ॥ २ ॥ भानुकुल प्रदीपम् श्रीरामजी शौर्यवीर्यादि द्वारा प्रकाशमान् सूर्य के वंश के भी प्रकाशक हैं अर्थात् जगत् को प्रकाश देने वाले हैं । श्री रा० च० मानसे यथा—जगतप्रकाश्य प्रकाशक रामू। माया धीश ज्ञान गुण धामू ॥ भुवनाधिपत्यम् से ब्रह्मादि के पति सूचित किया । श्रुतौ यथा—एष सर्वेश्वरः एष भूतपालः । श्रीरामजी को भवरोग के वैद्य कहकर भव (संसार) के रहने पर भी उसके रोग का नाश कहा गया है अर्थात् भक्तजन संसार में रहते हुये भी संसार की बाधाओं से विनिर्मुक्त हैं ॥५६

सर्वाधिपत्यं समरङ्गधीरं सत्यं चिदानन्दमयं स्वरूपम् ।
सत्यं शिवं शान्तिमयं शरण्यं सनातनं राममहं भजामि ॥ ५७ ॥

सर्वाधिपत्यम्=त्रिपाद् विभूति पर्यन्त, आधिपत्य अर्थात् स्वामित्व है जिसका, समरङ्गधीरम्=समरभूमि में गमन करने वाले व्यक्तियों में धीर अर्थात् निपुण (कौशलप्राप्त)। सत्यम्=अबाधित स्वरूप अर्थात् सदा एक रूप से विराजमान। अर्थात् कार्यावस्था में तथा कारणावस्था में एक तरह। चिदानन्दमयस्वरूपम्=दूसरे से अप्रकाशित अर्थात् अपने लिये स्वयमेव प्रकाशमान स्वरूप तथा आनन्द स्वरूप है जिसका । अर्थात् अन्य उपकरण से प्रकाशित नहीं होते, और न सुखी ही अन्य सामग्री से होते हैं। शिवम=कल्याण सम्पादक अथवा मङ्गल के स्थान। शान्तिमयम=क्षोभरहित, शरण्यम्=अपराधी शत्रु को भी अभय प्रदान करने वाले। सनातनम्=अनादि । रामम्=योगियों के चित्त में विश्राम करने वाले। (श्रीरामजी का) अहं भजामि=मैं भजन करता हूँ ॥५७॥

विशेष :—भुवन से बचे हुये भाग के भी श्रीरामजी स्वामी हैं यह कहने के लिये यह श्लोक प्रस्तुत है । सर्वाधिपत्यम=सर्वेषु त्रिपाद् विभूति पर्यन्तेषु आधिपत्यं स्वामित्वं यस्यतम । केवल ब्रह्मादि प्रभुत्व को कहा जा चुकाहै भुवनाधिपत्य से अतः त्रिपाद् विभूति के स्वामी हैं यह अर्थ ही सर्वाधिपत्य शब्द का होना चाहिये । शिवम=मङ्गल के भवन। यथा--यदा तमस्तन्न दिवान रात्रिर्न सन्नचासच्छिव एव केवलः इस श्वेताश्वेतरोपनिषद् में शिवादि शब्द वाच्यता परम कारण में ही कही गई है। उसी परम तत्त्व को "न तस्य प्रतिमाऽस्ति" द्वारा महद्यश सम्पन्न कहा गया है। परम कारणत्व दो में सम्भव नहीं अतः शिवादि शब्द वाच्यता श्रीरामजी में ही है। यथा - विश्वरूपस्य ते राम विश्वेशब्दा

ही वाचकाः। तथापि मूलमन्त्रस्ते विश्वेषां बीजमत्तायम्। शरण्यम्=शरणे रक्षणे साधु अर्थात् जो सतत् सबकी रक्षा कर सके, यथा श्रीमद् वा० रामायणे– आर्तो वा यदि वा दृप्तः परेषां शरणंगतः। अरिः प्राणान् परित्यज्य रक्षितव्यः कृतात्मना ॥ १ ॥ आनयैनं हरिश्रेष्ठदत्तमस्याभयं मया। विभीषणो वा सुग्रीवो वा यदि रावणः स्वयम ॥२॥ सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम।३। सनातनम्=अनादिकालसे प्रसिद्ध। रामम्=राम नाम। लीला विभूति में आविर्भाव के अन्तर रामनाम हुआ इसकी व्यावृत्ति सनातनम् पद से की जा रही है अर्थात् नित्यविभूति में विराजमान रहने पर भी राम ही नाम है। यथा श्रीराम ता० 'स्वभूज्ज्योतिर्मयोनन्त रूपी स्वेनैव भासते। रेफारूढ़ा मूर्तयः स्युः शक्तयस्तिस्र एव च ॥ अतः षडक्षर वाच्य वाचक श्रीरामनाम में भी स्वप्रकाश, ब्रह्मस्वरूपत्व, आदि होने के कारण अनादित्व सिद्ध हो गया ॥ ५७॥

कार्य क्रिया कारण मप्रमेयं कविं पुराणं कमलायताक्षम्।
कुमार वेद्यं करुणामयन्तं कल्पद्रुमं राममहं भजामि ॥ ५८ ॥

कार्यक्रियाकारणम्=कार्यरूप जगत् की क्रिया (निर्माण) उसके कारण। अप्रमेयम्=रूप गुण ज्ञान शक्त्यादि परिच्छेद रहित अर्थात् अपरिमित ज्ञान शक्त्यादि सम्पन्न। कविम्=सर्वज्ञ। पुराणम्= सनातन, अनादि। कमलायताक्षम्= कमलदल के सदृश उज्ज्वल प्रसन्न कर्णपर्यन्त विशाल नेत्र वाले। कुमारवेद्यम्=सनकादि द्वारा ध्यान के विषय। करुणामयम्=करुणरस प्राचुर्य अर्थात् निर्हेतु की दया दृष्टि सम्पन्न, अनवरत दया की वृष्टि करने वाले। कल्पद्रुमम्=कल्पवृक्ष अर्थात् उत्तम, मध्यम, कनिष्ठ, सभी प्रकार के भक्तों की कामनाओं को पूर्ण करने वाले। तं राममहं भजामि=एवं गुण विशिष्ट जगत्प्रसिद्ध श्रीरामजी का मैं भजन करता हूँ ॥ ५८ ॥

विशेष :– श्रीरामजी के अनादित्व का कारण प्रस्फुटित किया जा रहा है कार्यक्रियाकारणम्=कार्यस्य जगतः या क्रिया निर्मितिः तस्य कारणम् हेतुम्। यथा श्रुतौ—स तपोऽतप्यत स तपस्तप्त्वा इदं सर्वमसृजद्। यदिदं किञ्चन। जब जगत् अनादि है तो उसके कारण श्रीरामजी में सुतरां अनादित्व सिद्ध हो गया। अचिन्त्य जगत् के रचयिता की शक्ति अचिन्त्य प्रकाशन के लिये कहा, अप्रमेयम्=इयत्ता रहित अर्थात् अपरिच्छिन्न ज्ञान शक्त्यादि सम्पन्न ॥ ५८ ॥

त्रैलोक्यनाथं सरसीरुहाक्षं दयानिधिं द्वन्दविनाश हेतुम्।
महाबलं वेदनिधिं सुरेशं सनातनं राममहं भजामि ॥ ५९ ॥

त्रैलोक्यनाथम्=तीनों लोक के स्वामी। सरसीरुहाक्षम्=कमल के सदृश नेत्र वाले। दयानिधिम्=कृपा के समुद्र अर्थात् अकारण करुणावरुणालय। द्वन्दविनाशहेतुम्=सुख दुःख आदि संसार के धर्मों के विनाश करने वाले। महाबलम्=अपरिमित

पराक्रम, वेदनिधिम्=वेद के आधारभूत अथवा वेद की मर्यादा को पालने वाले। सुरेशम्=देवताओं के भी देव । सनातनं राममहं भजामि=सर्वदा विराजमान भगवान् श्रीरामजी का मैं भजन करता हूँ ॥ ५६ ॥

विशेष :-कमलायताक्षं सरसीरुहाक्षम् की पुनरुक्ति से श्रीरामजी की नयन-माधुरी की आराधना अपने में व्यक्त की। महाबलम्=अप्रमेय पराक्रम। विभीषण शरणागति के समय सुग्रीव को भगवान् ने अपने बल का कुछ परिचय दिया है। वा०रा० यथा—

सुदुष्टो वाप्यदुष्टो वा किमेष रजनीचरः । सूक्ष्ममप्यहितं कर्त्तु मशक्तः कथंचन ॥ १ ॥ पिशाचान् दानवान् यक्षान् पृथिव्यां ये च राक्षसाः। अंगुल्यग्रेण तान्हन्यामिच्छन्हरिगणेश्वर ॥ २ ॥

वेदनिधिम्=प्रलयकाल में वेद की रक्षा करके उसका ज्ञान ब्रह्मा को देते हैं। यथा—"यो वै वेदांश्च प्रहिणोति"। भूतत्रिनाथं सर्वाधिपत्यं त्रैलोक्यनाथमित्यादि पदों की दुरुक्ति से श्रीरामजी को विभूतिद्वय का स्वामी सिद्ध किया गया। सनातनं राममहं भजामि की दुरुक्ति से अपने इष्ट देवता रूप से श्रीरामजी का ही अंगीकरण द्योतित किया। करुणामयं दयानिधिम् की दुरुक्ति से अत्यन्त कारुणिक होने के कारण झटिति मनोरथ पूरकत्व श्रीरामजी में सूचित किया ॥ ५६ ॥

वेदान्तवेद्यं कविमीशितारमनादिमध्यान्तमचिन्त्यमाद्यम् ।
अगोचरं निर्मल मेकरूपं नमामि रामं तमसः परस्तात् ॥ ६० ॥

वेदान्तवेद्यम्=सब उपनिषदों के प्रतिपाद्य । कविम्=सर्वज्ञ । ईशितारम्=सबके नियन्ता। अनादिमध्यान्तम्=आदि मध्य अन्तरहित । अचिन्त्यम्=ध्यान का अविषय, अर्थात् गुरु द्वारा जानने के योग्य। आद्यम=सबके पूर्वसिद्ध अर्थात् परमकारण अगोचरम्=प्राकृत इन्द्रियों द्वारा अग्राह्य। निर्मलम्=प्रकृति के मल से रहित। एकरूपम्=सदा एकरस अर्थात् विकारशून्य। तमसः परस्तात्=तमः प्रधान प्रकृति से परे अर्थात् नित्यविभूति में वर्तमान। रामम्=नित्यमुक्त जीवों में रमण करने वाले श्रीराम जी को। नमामि=नमस्कार करता हूँ ।

विशेष :--श्रुतियों में जिसे औपनिषद् पुरुष कहते हैं यथा—"तं त्वौपनिषदं पुरुषं पृच्छामि" "नावेदविन्मनुते तं वृहन्तम्" आदि श्रुति समूह द्वारा जानने के योग्य भगवान् श्रीरामजी ही हैं, अतएव वेदान्तवेद्यम्=वेद के अन्त भाग (उपनिषद्) द्वारा ही जाने जाते हैं। अतएव सब उपनिषद् कारण वाक्य गत ब्रह्म, परब्रह्म, अक्षरपुरुष, विष्णु, महाविष्णु, नारायण, वासुदेव हरि, शिव, महेश्वर, रुद्र ईशान, निरञ्जन, निराकार, आदि शब्द वाच्यता श्री नारदजी द्वारा श्रीराम जी में ही कही गई है । यथा—"नारायणं जगन्नाथम्" इत्यादि । भगवान् वेदव्यास जी ने श्रीरामस्तवराज को

वेदों का सार कहकर श्रीनारदजी कथित अर्थ को दृढ़ किया है। उसमें हेतु है, ईशितारम् = सर्वनियन्ता सर्वेश्वर । सर्वनियन्तृत्व, सर्वेश्वरत्व, दो में नहीं हो सकता। अतः कारण वाक्यगत सर्ववाचक वाच्यत्व श्रीरामजी में ही उपपन्नतर है। अतः आह अनादिमध्यान्तम्=आदि मध्यावसान शून्य। स्वसदृश द्वितीय न रहने के कारण ही–अचिन्त्यम् = अर्थात् अत्यन्त विलक्षण रूप होने के कारण तर्कादि द्वारा सर्वथा अबाध्य हैं। यथा–"तर्काप्रतिष्ठानात्" वेदान्त सूत्र। किन्तु "आचार्यवान् पुरुषो वेद" इस श्रुति प्रमाण से गुरूपदेशगम्य है। श्रीरामजी का रूप ही आद्य रूप है यथा– द्विहस्तमेकवक्त्रञ्च रूपमाद्य मिदं हरेः" यह पंचरात्र वचन प्रमाण है। वह रूप अगोचर है अर्थात् मन वाणी का विषय नहीं है "यन्मनो न मनुते" "यतो वाचो निर्वतन्ते अप्राप्य मनसा सह" निर्मलम् = प्राकृत मल रहित है अतएव एक रूपम् = भक्त की इच्छा के अनुरूप ही सदा एक से रहते हैं। अथवा षोडशवर्ष की अवस्था में सर्वदा विद्यमान हैं, ध्यान मञ्जरी यथा– षोडश वर्ष किशोर राम नित सुन्दर राजें ॥ ६० ॥

अशेषवेदात्मकमादि सञ्ज्ञमजं हरिं विष्णु मनन्तमूर्तिम् ।
अपारसंवित्सुखमेकरूपं परात्परं राममहं भजामि ॥ ६१ ॥

अशेषवेदात्मकम् = सम्पूर्ण वेद ही आत्मा है जिसकी, अथवा सम्पूर्ण वेदों में आत्मा = स्वरूप प्रतिपादित है जिसका, अर्थात् सर्ववेदवेदनीय। आदि संज्ञकम = सब नामों से पूर्व सिद्ध (श्रीराम नाम)। अजम् = जन्म (शरीर संयोग) रहित। हरिम्=भक्त के दुःख हरण करने वाले। विष्णुम् = स्वरूप तथा गुण द्वारा सर्व व्यापक। अनन्तमूर्तिम = संख्या तीत मूर्ति हैं जिनकी, अथवा परिच्छेद रहित मूर्ति है जिसकी। अपार संवित्सुखम = पूर्ण ज्ञान आनन्द है जिसका, अर्थात पूर्णज्ञानानन्द धर्मक। एकरूपम् = प्रधान (श्रीराम) रूप ही है जिनका, अर्थात् अनेक अवतारों में श्रीराम ही प्रधान है । परात्परम = परब्रह्मादि से पर अर्थात् सर्वोत्कृष्ट, अथवा सबके कारण। राममहं भजामि = श्रीरामजी का भजन करता हूँ पूर्ववत् ॥ ६१ ॥

विशेष :—केवल उपनिषदों द्वारा ही वेदनीयता श्रीरामजी में नहीं है अपितु अशेषवेदात्मक हैं अर्थात सर्व वेद वेद्य हैं। अशेष वेदात्मकम = अशेषेषु सम्पूर्णेषु वेदेषु आत्मा प्रतिपाद्यतया स्वरूपं यस्यतम्। यथा—सर्वेवेदायत्पदमामनन्ति तत् विष्णोः परमं पदमिति श्रुति में विष्णुपद व्यापनीशील अर्थ वाला है, अर्थात् व्यापक श्रीरामजी का परम स्वरूप है। पद्यते गम्यते पद शब्द स्वरूपपरक है। आदि संज्ञकम् = प्रथमा संज्ञा यस्य, अर्थात् भगवन्नामों में रामाख्या सर्व प्रथम नाम है। विष्णु आदि नाम व्यापकादि गुण कर्म द्वारा परब्रह्म के वाचक हैं, श्रीराम नाम साक्षात् सच्चिदानन्दात्मक परब्रह्म का वाचक है। अतएव विष्ण्वादि सहस्रनाम तुल्य राम नाम को कहा गया है । अजम = जन्मरूप विकार से रहित हैं। यह अन्य षड्ऊर्मियों का उपलक्षण है अर्थात् "अस्ति, जायते, वर्द्धते,

विपरिणमते, अपक्षीयते, विनश्यति" ये छः प्रकार के विकार श्रीरामजी में नहीं हैं। श्री दशरथ जी से जन्म होना, आविर्भाव होना है, कर्मनिमित्तक गर्भवास नहीं होता। गीता में यथा—जन्म कर्म च मे दिव्यं यो मां वेत्ति तत्त्वतः। विष्णुम्=स्वरूप एवं गुण के द्वारा सर्व व्यापक, बाल्मी० यथा—ततः प्रतिष्ठितो विष्णुः स्वर्गे लोके यथा पुरा। येन व्याप्तमिदं सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥ १ ॥ अनन्तमूर्तिम्=अनेक मूर्ति हैं जिनकी। पञ्चरात्रे यथा—

रामस्यैव कलांशाद् वै ह्यवतारा भवन्तिहि। कोटि कोटिश्च कार्यार्थे सिंधौ वीचीव वै मुने ॥ १ ॥ वासुदेवादि मूर्तीनां चतुर्णां कारणं परम्। चतुर्विंशति मूर्तीनामाश्रयः शरणं मम ॥ २ ॥ सर्वावताररूपेण दर्शन स्पर्शनादिभिः। दीनानुद्धरतेयोऽसौ स रामः शरणं मम ॥ ३ ॥ ६१ ॥

तत्त्वस्वरूपं पुरुषं पुराणं स्वतेजसापूरित विश्वमेकम्।
राजाधिराजं रविमण्डलस्थं विश्वेश्वरं राममहं भजामि ॥६२॥

तत्त्वस्वरूपम्=परतत्त्व स्वरूप। पुरुषम्=सबके अन्तर्यामी। पुराणम्=सनातन। स्वतेजसापूरितविश्वम्=अपने प्रभाव से विश्व की जिसने रक्षा की है। (यह उत्पत्ति संहार का भी उपलक्षण है) एकम्=मुख्य। राजाधिराजम्=प्रकाश करने वाले सूर्यादि के भी प्रकाशक। रविमण्डलस्थम्=सूर्य मण्डल में स्थित। विश्वेश्वरम्=जगत् के ईश्वर। राममहं भजामि=श्रीरामजी का मैं भजन करता हूँ।

विशेष :—तत्त्वस्वरूपम् अर्थात् "यत्परं यद् गुणातीतं यज्ज्योतिरमलं शिवम्। तदेव परमं तत्त्वं कैवल्यपदकारणम्। इस श्रीरामस्तवराज श्लोक में कथित परमतत्त्व। पुरुषम्=सम्पूर्ण शरीरों में निवास करने वाले। यथा—"अंगुष्ठमात्रः पुरुषो मध्ये आत्मनि तिष्ठति। ईशानो भूतभव्यस्य न ततो विजुगुप्सते ॥ १ ॥ स्वतेजसापूरितविश्वमेकम्=रविमण्डल में स्थित होकर जिसने अपने प्रभाव से विश्व को पूरित अर्थात् प्रकाशित कर दिया है। यथा—सहस्रकोटिवह्नीन्दु लक्षकोट्यर्क सन्निभम्। मरीचिमण्डले संस्थं रूपमाद्यमिदं हरेः। न कहें कि सूर्यादि भी प्रकाशक हैं अतएव कहा, एकम्=मुख्य। "एकोऽन्यार्थे प्रधाने च" यहां एक प्रधान वाचक है अर्थात् सूर्यादि भी उनके दिये हुये प्रकाश से ही प्रकाशक कहलाते हैं। इसी अर्थ को दृढ़ कर रहे हैं। राजाधिराजम्=राजन्ते प्रकाशन्त इति राजानः सूर्यादयः तेषामधिराजम् अर्थात् प्रकाश प्रदातारम्। अतएव रवि मण्डलस्थम् कहा। "सूर्यमण्डलमध्यस्थं रामं सीतासमन्वितम्" अथवा पञ्चरात्र में कहा है। यथा—द्वि हस्तमेक वक्त्रञ्च लक्ष कोट्यर्क सन्निभम् मरीचि मण्डले संस्थं रूपमाद्यमिदं हरेः ॥ ६२ ॥

लोकाभिरामं रघुवंशनाथं हरिं चिदानन्दमयं मुकुन्दम्।
अशेष विद्याधिपतिं कवीन्द्रं नमामि रामं तमसः परस्तात् ॥ ६३ ॥

लोकाभिरामम् = अत्यन्त कमनीय विग्रह द्वारा लोकों को आनन्द प्रदान करने वाले। रघुवंशनाथम् = रघुवंश में श्रेष्ठ। गुण तथा रूप द्वारा दृष्टि एवं चित्त का अपहरण करने वाले। चिदानन्दमयम् = चित्स्वरूप वाले तथा आनन्द स्वरूप वाले। मुकुन्दम् = मुक्ति प्रदान करने वाले। अशेषविद्याधिपतिम् = सभी विद्या के प्रवर्तक, अर्थात् सम्पूर्ण विद्या (ज्ञान) के स्वामी। कवीन्द्रम् = सर्वज्ञ शिरोमणि। तमसः परस्तात् = तमोगुण प्रधान प्रकृति से परे नित्य विभूति में विराजमान। रामम् = श्रीरामजी को। नमामि = नमस्कार करता हूं॥ ६३॥

विशेष :—लोकाभिरामम् "नमोऽस्तु रामदेवाय जगदानन्द रूपिणे" श्लोक में कथित जगत् को आनन्द देने वाले रूप से सम्पन्न हैं॥ ६३॥

योगीन्द्र संघैः शतसेव्यमानं नारायणं निर्मलमादि देवम्।
नतोऽस्मि नित्यं जगदेकनाथमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्॥ ६४॥

योगीन्द्र संघैः = योगेश्वर समूह द्वारा। शतसेव्यमानम् अनेक प्रकार से आराधनीय, अर्थात् अपनी-अपनी परंपरा के अनुसार, तथा भावना के अनुसार भिन्न-भिन्न प्रकार से आराध्यमान। नारायणम् = महार्णव में शयन करने वाले। निर्मलम् = प्रकृति के हेय गुणों से रहित, अर्थात् प्रकृतिलेप रहित, अथवा भक्तजनों को मायामल दूर करने वाले। आदिदेवम् = सब देवताओं के प्रथम देव। जगदेकनाथम् = जगत् के मुख्य स्वामी। आदित्यवर्णम् = स्वप्रकाश स्वरूप। तमसः परस्तात् = तमः शब्द से कही जाने वाली सूक्ष्म प्रकृति से परे, अर्थात् प्रकृति मण्डल से परे (त्रिपाद विभूति में विराजमान) रामम् = श्रीरामजी को। नित्यम् सर्वदा नतोऽस्मि = नमस्कार करता हूँ॥६४

विशेषः—योगीन्द्रसंघैः = योगीन्द्राणां संघैः समुदायैः, शतसेव्यमानम् = अनेक विधियों से (अपनी अपनी रुचि तथा योग्यता के अनुसार) सेवा के विषयभूत। नारायणम् = नराज्जातानि तत्त्वानि नाराणीति विदुर्बुधाः। तस्य तान्ययनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः इस निरुक्ति के अनुसार सबके अन्तर्गत रहते हुये भी उपासकों के कार्यार्थ एक काल में अनेक स्थानों पर आविर्भूत। निर्मलम् = सर्वान्तर्गत होने पर भी उन सबके दोषों की छुवाछूत से रहित॥ ६४॥

विभूतिदं विश्वसृजं विराजं राजेन्द्रमीशं रघुवंशनाथम्।
अचिन्त्यमव्यक्तमनन्तमूर्तिं ज्योतिर्मयं राममहं भजामि॥६५॥

विभूतिदम् = उपासना के अनुसार ऐश्वर्य प्रदान करने वाले, अथवा कर्मानुरूप फल प्रदान करने वाले। विश्वसृजम् = जगत् की सृष्टि करने वाले, अर्थात् विश्व के निमित्त कारण। विराजम् = विराड् के अन्तर्यामी, चिद् अचिद् की अपेक्षा विशेषरूप से प्रकाशमान। राजेन्द्रम् = राजेश्वर। ईशम् = ब्रह्मादि के भी नियन्ता। रघुवंशनाथम् रघुवंश के पालक। अचिन्त्यम् = यह इस प्रकार है इत्यादि ज्ञान का अविषय। अव्यक्तम्

इयत्ता रहित मूर्ति स्वरूप है जिसका, अर्थात् विभिन्नदेश में अनेक ध्यान करने वालों के अन्तःकरण में विभिन्न रूप से एक काल में आविर्भूत। ज्योतिर्मयम् = स्वप्रकाश। रामम् = श्रीरामजी को। अहं भजामि = मैं भजता हूँ ॥६५॥

विशेष :—इस प्रकरण का उपक्रम "यत्परं यद्गुणातीतं यज्ज्योतिरमलं शिवम्। तदेव परमं तत्त्वं कैवल्य पद कारणम्" यहाँ हुआ था। ज्योतिर्मयं राममहं भजामि" यहां उपसंहार है। इसके बीच "राममहं भजामि" का बार-बार अभ्यास (कथन) है, अतः श्रीरामजी ही उपास्य हैं यह दृढ़ किया गया। श्रीरामजी गुणातीत, ज्योतिस्वरूप, परमतत्त्व कैवल्य प्रदान करने वाले हैं। मुक्त जीव भगवद्धाम नित्यविभूति को प्राप्त करके अपहत पाप्म-त्वादि गुणों को ग्रहणकर लेते हैं। उसमें केवल सृष्टिके उत्पत्ति, पालन, प्रलय की सामर्थ्य नहीं होती, परन्तु और समस्त भोग जात श्रीरामजी के ही समान कालादि से अनियन्त्रित प्राप्त हो जाते हैं। श्रुतौ यथा--"एष संप्रसादोऽस्माच्छरीरात्समुत्थाय परं ज्योतिरूपसंपद्य स्वेन रूपेणाभिनिष्पद्यते" ॥ ६५ ॥

अशेष संसार विकार हीनमादिस्तु संपूर्ण सुखाभिरामम्।
समस्तसाक्षी तमसः परस्तान्नारायणं विष्णुमहं भजामि ॥६६॥

अशेषसंसारबिकारहीनम = संसार के सम्पूर्ण विकारों से रहित, आदिः = सबके पूर्व, अर्थात् परम कारण। सम्पूर्ण सुखाभिरामम् = समग्र सुख में अभिरमण करने वाले, अर्थात् लौकिक सुख के उपकरणों द्वारा सुख की प्राप्ति नहीं है, दिव्य उपकरणों से सुख है, अर्थात् आत्मा राम हैं। समस्तसाक्षी = जड़ चेतन के साक्षात् देखने वाले। तमसः परस्तात् = तम शब्द वाच्य सूक्ष्म प्रकृति से परे, अर्थात् नित्य विभूति में विराजमान। नारायणम् = क्षीर समुद्र में शयन करते हुये जगत् की सृष्टि करने वाले। विष्णुम् = व्यापन शील अर्थात् सबमें व्यापक (श्रीरामजी को) अहं भजामि = मैं भजन करता हूँ ॥६६॥

विशेषः---अशेषसंसारबिकारहीनम् = संसार के (गर्भ, जन्म, बढ़ना, विपरिणाम होना, अपक्षय, मरण) इन सभी प्रकार के बिकारों से रहित। नारायणम् = भगवान् श्रीरामजी का प्रथम अवतार जगत् की सृष्टि करने के लिये नारायण रूप से हुआ है। भागवते यथा—

जगृहे पौरुषं रूपं भगवान् महदादिभिः। सम्भूत षोडश कलमादौ लोक सिसृक्षया ॥१॥ यस्याम्भसि शयानस्य योगनिद्रामुपेयुषः। नाभि ह्रदाम्बुजादासीद् ब्रह्मा लोक पितामहः ॥२॥

श्रीरामस्तवराज में "निदानं प्रकृतेः परम्" अद्वैतं तमसः परम्" "तमसा परस्तात्" आदि अनेक बार शब्दों की आवृति द्वारा नित्यविभूतिस्थ श्रीराम जी को सिद्ध किया गया। श्रीरामजी की उपासना में तीन मन्त्र हैं जिन्हें मन्त्रत्रय (रहस्यत्रय)

कहते हैं। "वीज मन्त्र पूर्वक रामाय नमः" षडक्षर, "श्रीरामः शरणं मम" अष्टाक्षर तथा "सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते। अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम" यह शरणागति मन्त्र है। पञ्चरात्र में कहा है यथा – "महिमामन्त्रराजस्य साक्षाद् गिरजापतिः। जानाति भगवाञ्छम्भुर्ज्वलत्पावक लोचनः ॥१॥६६॥

मुनीन्द्रगुह्यं परिपूर्णमेकं कलानिधिं कल्मषनाशहेतुम्।
परात्परं यत्परमं पवित्रं नमामि रामं महतो महान्तम् ॥६७॥

मुनीन्द्रगुह्यम=मुनीश्वरों से भी गोपनीय। परिपूर्णम्=स्वतः रक्षित, अथवा स्वेच्छयागृहीतविग्रह। एकम्=मुख्य, समानाधिक्य रहित। कलानिधिम=कलाओं के आश्रयभूत। कल्मषनाशहेतुम=जन्ममरण का वीज जो पाप उसके नाशक। परात्परम= परब्रह्मादि उनसे भी परे अर्थात् उनके उत्पन्न करने वाले, सर्वोत्कृष्ट। यत्परमंपवित्रम्= स्मरण मात्र से अविद्या पर्यन्त समस्त मल का निरास करने वाले अत्यन्त पावन। महतः =आकाश काल दिशाओं के परम महत् परिमाण से भी। महान्तम्=अत्यधिक परिमाण वाले, अर्थात् परम महत् परिमाण वाले पदार्थों के भीतर बाहर भी स्वसत्ता से विराजमान। रामम्=श्रीराम जी को। नमामि=नमस्कार करता हूँ।

विशेष :- समस्त मुनिजन श्रीरामतत्त्व को ही स्फुटतया परात्परत्वेन क्यों नहीं मानते। मुनीन्द्र गुह्यम="नैको मुनिर्यस्य वचः प्रमाणम्" एक भी मुनि ऐसे नहीं हैं जिनका बचन प्रमाण न हो, क्योंकि मुनि उपदेश आप्तबचन है। मुनिजन ही "रागाद् वशादपि नान्यथावादी" अर्थात् रागादि के कारण भी मिथ्या भाषण नहीं करते। आप्तबचन का प्रामाण्य आगमप्रमाण के अन्तर्गत है, अतः मुनि कथन में प्रमात्व सिद्ध है, तब जगत्कारणवाद के विचार में मुनियों का एकमत क्यों नहीं है। किसी ने मानमातृ मेय ईशितव्यादि भेद प्रपञ्च नानाशक्तिमती अविद्या के द्वारा रज्जु में सर्प के समान भासित, तथा समष्टि व्यष्टि का अधिष्ठानभूत कूटस्थ विज्ञानैकरस ब्रह्म है वही समष्ट्यवच्छिन्न ज्ञानैश्वर्यादि महिमतयाभासमान ईश्वर, हिरण्यगर्भ वैश्वानरादि संज्ञक होता है। व्यष्ट्यवच्छिन्न (प्राज्ञ, तैजस, विश्व संज्ञक होकर) देव, मनुष्य, तिर्यगादि देह में) ज्ञानादिमत्तया नानात्वेन भासमान होकर जीवजात होता है। दूसरे मुनि प्रकृष्टसत्वगुणोपादान निमित्तक स्वतन्त्र, तथा प्रधान परिणाम विशेष नियम निर्वाहार्थ, सर्वैश्वर्य मर्यादक रूप से आदर करते हैं। अपरमुनि स्वाधीन त्रिविध चेतनाचेतन स्वरूप स्वाभाविक निरवधिकातिशय ज्ञान वलैश्वर्य वीर्य शक्ति तेज प्रभृति सकल कल्याण गुणगण महार्णव पुरुष विशेष श्रीरामजी को ही जगत् का कारण मानते हैं। अतएव मुनीश्वरों से भी यह रहस्य गोपनीय है। इसलिये इस विषय में मतैक्य नहीं है। बाल्मीकीये यथा – त्वं हि लोक गतिर्वीर न त्वां जानन्ति केचन। ऋते मायां विशालाक्षीं तव पूर्व परिग्रहाम् ॥ श्रुति भी इसी अर्थ को दृढ़ करती है। यथा—

तद्वेदगुह्योपनिषद् सुगूढं तद्ब्रह्मा वेद ते ब्रह्मयोनिम्। ये पूर्वं देवा ऋषयश्च तद्विदुस्तेतन्मया अमृता वै बभूवुः ॥ कलानिधिम्----यथा---रामस्यैव कलांशाद्वै अवतारा भवन्ति हि। कोटि कोटिश्च कार्यार्थे सिन्धौ वीचीव वै मुने ॥६७॥

ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च देवेन्द्रो देवतास्तथा।
आदित्यादिग्रहाश्चैव त्वमेव रघुनन्दन ॥६८॥

हे रघुनन्द=रघुवंशियों को आनन्द देने वाले। ब्रह्मा=जगत् की सृष्टि करने वाले चतुर्मुख। विष्णुश्च=और क्षीर समुद्र के स्वामी, जगत् के पालन करने वाले। देवेन्द्रः=इन्द्र। तथा देवता=और वायु आदि देवता। च=और आदित्यादिग्रहाः= सूर्य, चन्द्र, मङ्गल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु, केतु, ये नवग्रह। त्वमेव=आप ही हैं॥ ६८॥

विशेष :— माधुर्य तथा ऐश्वर्य विशिष्ट श्रीरामजी की स्तुति करके, ब्रह्मादि को उनकी विभूति का निर्देश करते हुये, स्वेतर निखिल वैशिष्ट्य से श्रीरामजी में अद्वितीयत्व सिद्ध करते हुये स्तुति की जा रही है। अर्थात् श्रीरामजी जगत् के सृष्टि पालन प्रलय हेतु ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, रूप को धारण करते हैं। देवता, देवताओं के स्वामी सूर्यादि नवग्रह रूप को भी श्रीरामजी ही धारण किये हैं। जैसे दण्डवान् पुरुष का दण्ड से भेद नहीं है क्योंकि दण्डवान् में दण्ड भी प्रविष्ट है, यद्यपि दण्ड, पुरुष में स्वरूप एवं धर्मकृत भेद है पर विशेषण विशिष्ट होने से ऐक्य है। इसी प्रकार विशेषणभूत ब्रह्मादि का विशेष्यभूत श्रीरामजी के साथ अभेद है। अतः विशिष्टाद्वैत भी उपपन्न हो गया।

तापसा ऋषयः सिद्धाः साध्याश्च मरुतस्तथा।
विप्रा वेदास्तथा यज्ञाः पुराणं धर्मसंहिताः ॥६९॥

तापसाः=तपश्चर्या में तत्पर तपस्वीजन। ऋषयः=विश्वामित्रादि मन्त्र के साक्षात्कार करने वाले। सिद्धाः=श्रीकपिल मुनि आदि। साध्यः=साध्य संज्ञक देवयोनि विशेष। तथा मरुतः=पवन देवता जिनकी संख्या बनचास है। विप्रः=मनुष्यों में सतोगुण प्रधान, यज्ञ के अनुष्ठाता। वेदाः=ऋक्, यजुः साम, अथर्ववेद। तथा यज्ञाः=और ज्योतिष्टोमादि। पुराणम्=अष्टादश संख्या वाले पुराण। धर्मसंहिताः = धर्मशास्त्र, वशिष्ठ याज्ञवल्क्यपराशरादि स्मृति। इन सब पदोंका भी अन्वय "त्वमेव रघुपुङ्गव" इस अग्रिम श्लोक में है॥ ६९॥

विशेष :--पुराणम्=पुराणों में निम्नलिखित दश बातें होनी चाहिये :—

१--सर्ग (सृष्टि वर्णन), २--विसर्ग (विशेष सृष्टि), ३--स्थान (ब्रह्माण्ड वर्णन), ४--पोषण (जीवों के धर्म कर्म सदाचारादि), ५-- ऊति (जीवों की वासना),

६--मन्वन्तराधिपतियों के चरित्र तथा वंश विस्तार। ७--भगवान् के अवतार, चरित्र। ८-निरोध (शमदमादि योगमार्ग), ६--मुक्ति। १०--आश्रय (भगवान् का आश्रय) यथा-

अत्र सर्गो विसर्गश्च स्थानं पोषणमूतयः। मन्वन्तरेशानु कथा निरोधो मुक्तिराश्रयः॥१॥ दशमस्य विशुद्धयर्थं नवानामिह लक्षणम्। वर्णयन्ति महात्मानः श्रुतेनार्थेन चाञ्जसा ॥२॥ भाग० २।१०।१२।

पुराण सर्व सामान्य व्यक्तियों के लिये ही कहा गया है। जिन्हें वेदाध्ययन का अधिकार नहीं है वे वेदार्थ पुराण द्वारा जान लें। यथा नारदीये—वेदार्थादधिकं मन्ये पुराणार्थं वरानने। वेदाः प्रतिष्ठिताः सर्वे पुराणे नात्र संशयः॥१॥ पुराणमन्यथा कृत्वा तिर्यग्योनिमवाप्नुयात्। सुशान्तोऽपि सुदान्तो न गतिं क्वचिदाप्नुयात्॥२॥ इतिहास (महाभारत) पुराण के द्वारा वेद का ही उपबृंहण है। इतिहास पुराण के न जानने वाले से वेद भयभीत होता है। यथा-इतिहास पुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्। बिभेत्यल्पश्रुताद्वेदो मामयं प्रहरिष्यति॥१॥ धर्मशास्त्र तथा वेद में जो नहीं है वह पुराणों में वर्णित है साङ्गसशिरस्क वेद का अध्ययन करने वाला यदि पुराण नहीं जानता तो वह पण्डित नहीं है। स्कान्दे यथा—

यन्न दृष्टं हि वेदेषु तद्दृष्टं स्मृतिषु द्विजाः। उभयोर्यन्न दृष्टं हि तत् पुराणैः प्रगीयते॥१॥ यो वेद चतुरो वेदान् साङ्गो पनिषदो द्विजाः। पुराणं नैव जानाति न च स स्याद् विचक्षणः॥ प्र०ख० २।६२--६३॥

इन पुराणों की संख्या अठारह है :— १-ब्रह्मपुराण, २-पद्मपुराण, ३-विष्णुपुराण, ४-शिवपुराण, ५-श्रीमद्भागवत, ६-नारदीयपुराण, ७-मार्कण्डेयपुराण, ८-अग्निपुराण, ६--भविष्यपुराण, १०--ब्रह्मवैवर्तपुराण, ११--लिङ्गपुराण, १२-बाराह पुराण, १३--स्कन्द पुराण, १४-बामनपुराण, १५--कूर्मपुराण, १६--मत्स्यपुराण, १७--गरुडपुराण, १८--ब्रह्माण्ड पुराण। कल्पभेद से इनमें से कुछ पुराण तथा उपपुराण भी माने गये हैं। १--देवीभागवत २--वायुपुराण को भी यदि पुराणों में ले लिया जाय तो सत्ताईस उपपुराण रह जाते हैं जो पुराणों के समान ही प्रामाणिक हैं। इनके नाम ये हैं :— १--सनत्कुमार, २--नरसिंह, ३-बृहन्नारदीय, ४-शिवधर्मोत्तर, ५-दुर्वासस, ६-कापिल, ७-मानव ८-उशनस, ६-वारुण, १०--आदित्य, ११-कालिका, १२-साम्ब, १३-नन्दकेश्वर, १४--सौर, १५--पाराशर, १६--माहेश्वर, १७--वाशिष्ठ, १८--भार्गव, १६--आदि, २०--मुद्गल, २१--कल्कि, २२-देवी, २३--महाभागवत, २४-बृहद्धर्मोत्तर, २५--परानन्द, २६--पशुपति; २७--हरिवंश। इन पुराणों में भगवान् के अवतार तथा भगवद् विग्रह का विस्तृत वर्णन है अतः इन सब रूपों में भगवान् श्रीरामजी ही हैं॥ ६६

वर्णाश्रमास्तथा धर्मा वर्णधर्मास्तथैव च।
यक्षराक्षस गन्धर्वा दिक्पाला दिग्गजादिभिः॥७०॥

सनकादिमुनिश्रेष्ठास्त्वमेव रघुपुङ्गव ।
वसवोऽष्टौ त्रयः काला रूद्रा एकादश स्मृताः॥७१॥

वर्णाश्रमः=वर्ण (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र) आश्रमः=(ब्रह्मचर्य गृहस्थ, वानप्रस्थ, सन्यास) तथा धर्माः=आश्रमों के धर्म। तथैव वर्णधर्मा=ब्राह्मणधर्म, क्षत्रिय धर्म, वैश्यधर्म, शूद्रधर्म। यक्ष राक्षस गन्धर्वाः=यक्ष गन्धर्व (देवयोनि विशेष) राक्षस= देवताओं से विरोध करने वाले असुर। दिग्गजादिभिः=दिशाओं के हाथी, उनके साथ, दिक्पालाः=दशदिशाओं के पालक देवता, इन्द्र, वरुण, कुबेरादि॥ ७१॥ हे रघुपङ्गव= रघुकुल श्रेष्ठ। सनकादि मुनिश्रेष्ठाः=मुनियों में श्रेष्ठ (प्राचीन) सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार। त्वमेव=आप ही हैं। वसवो अष्टौ=आठ वसु-धर, ध्रुव, सोम, विष्णु, अनिल, अनल, प्रत्यूष, प्रभास। त्रयः कालाः=भूत, भविष्यद् वर्तमान। रुद्रा एकादशस्मृताः=ग्यारह रुद्र, अज, एकपाद्, अहिवध्न, पिनाकी अपराजित, त्र्यम्बक, महेश्वर, वृषाकपि, शम्भु, हरण, ईश्वर। इन सब रूपों में आप ही विराजमान हैं॥ ७१॥

विशेष :—वर्णधर्माः=जिनके अनुष्ठान से सामाजिक व्यवस्था सुचारु रूप से चलती है तथा भुक्ति मुक्ति एवं ऐहिक, आमुष्मिक समस्त वाञ्छित उपलब्धियां प्राप्त हो जाती हैं। यथा—

यजनं याजनं दानं ब्राह्मणस्य प्रतिग्रहः। अध्यापनं चाध्ययनं षट् कर्माणि द्विजोत्तमाः॥ १॥ दानमध्ययनं यज्ञो धर्मं क्षत्रियवैश्ययोः। दण्डं युद्धं क्षत्रियस्य कृषिर्वैश्यस्य शस्यते॥ २॥ शुश्रूषैव द्विजातीनां शूद्राणां वर्णसाधनम्। कारुकर्म तथा जीवः पाकयज्ञोऽपि धर्मतः॥३॥ क्षमा दमो दया दानमलोभस्त्याग एव च। आर्जवं चानुसूया च तीर्थानुसरणं तथा॥ ४॥ सत्यं सन्तोष आतिथ्यं श्रद्धाचेन्द्रिय निग्रहः देवताभ्यर्चनं पूजा ब्राह्मणानां विशेषतः॥५॥ अहिंसा प्रियवादित्वमपैशुन्यमकलङ्कता। सामासिकमिमंधर्मं चातुर्वर्ण्येऽब्रवीन्मुनिः॥ ६॥ कूर्म अ० ६॥

केवल ब्राह्मण के लिए विशेष अनुष्ठातव्य। यथा—

ब्राह्मण्यां ब्राह्मणेनैव उत्पन्नो ब्राह्मणः स्मृतः। तस्यधर्मं प्रवक्ष्यामि तं योग्यं देशमेव च॥ १॥ कृष्णसारो मृगोयत्र स्वभावात्तु प्रवर्तते। तस्मिन् देशे वसन् धर्मं कुरुते ब्राह्मणोत्तमः॥ २॥ अध्यापनं चाध्ययनं यजनं याजनं तथा दानं प्रतिग्रहश्चैव कर्मषट्कमिहोच्यते॥ ३॥ अध्यापनं त्रिविधं धर्मार्थं चात्मकारणम्। शुश्रूषाकारणञ्चेति त्रिविधं परिकीर्तितम्॥४॥ नैषामन्यतमो वापि दृश्यते यत्र मानवे। तत्र विद्या न दातव्या पुरुषेण हितैषिणा।५। योग्यानध्यापयेच्छिष्यान् यज्ञानपियोजयेत्। विदितान् प्रतिग्रहानिच्छेद् गृहधर्म प्रसिद्धये॥६॥ वेदमेवाभ्यसे

नित्यं शुचौ देशे समाहितः । यजेत् यज्ञं यथा शक्त्यादद्याद् वित्तानुसारतः ॥७॥ नित्यं नैमित्तकं धर्म कर्म कुर्यात् प्रयत्नतः । गुरुशुश्रूषणञ्चैव यथान्यायमतन्द्रितः ॥८॥ सायं प्रातरुपासीत विधिनाग्निं द्विजोत्तमः । कृतस्नानः प्रकुर्वीत वैश्वदेवं दिने दिने ॥ ९ ॥ अतिथिश्चागतं भक्त्या पूजयेच्छक्तितोगृही । अन्यानप्यागतान् विप्रान् पूजयेदविरोधतः ॥१०॥ स्वदारनिरतो नित्यं परदारविवर्जितः। सत्यवादी जितक्रोधः स्वधर्मे निरतोभवेत् ॥११॥ अकर्मणि च संप्राप्ते प्रमादे नैव रोचयत् । प्रियां हि तां वदेत् वाचं परलोकाविरोधिनीम् ॥ १२ ॥ एष धर्मः समुद्दिष्टो ब्राह्मणस्य समासतः । धर्ममेवन्तु यः कुर्यात्स याति ब्रह्मणः पदम् ॥ १३ ॥

क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र के लिये सेवनीय धर्म क्रम से कहे जा रहे हैं। यथा—

राजा च क्षत्रियश्चैव प्रजा धर्मेण पालयेत् । कुर्यादध्ययनं सम्यक् युग युक्तो यथा विधिः ॥१॥ दद्याद्दानं द्विजाग्रेभ्यो धर्म बुद्धिसमन्वितः । देव ब्राह्मण भक्तश्च पितृकार्य परस्तथा॥२॥ धर्मेण वै जयाकांक्षी अधर्मस्य विवर्जयेत् । उत्तमां गति मा प्रोति क्षत्रियो ह्येवमाचरन् ॥३॥ गोरक्ष्यं कृषि वाणिज्यं कुर्याद्वैश्यो यथा विधि । दान धर्म यथा शक्त्या द्विज शुश्रूषणन्तथा ॥४॥ लोभदम्भविनिर्मुक्तः सत्यवागनसूयकः । स्वदारनिरतो दान्तः परदार विवर्जितः ॥५॥ धनैर्विप्रान् समभ्यर्च्य यज्ञकाले त्वयाचितः । अप्रमत्तः स्वधर्मेषु वर्तेत देह पातनात् ॥६॥ यज्ञाध्ययन दानानि कुर्यान्नित्यमतन्द्रितः ।पितृकार्यञ्च तत्काले नारसिंहार्चनं तथा ॥७॥एतद्वैश्यस्य कर्मोक्तं स्वधर्ममनु तिष्ठतः ।एतदासेव्यमानस्तु मुक्तः स्यान्नात्र संशयः॥८॥ वर्णत्रयस्य शुश्रूषांकुर्याच्छूद्रःप्रयत्नतः ।दासवत् ब्राह्मणानान्तु विशेषेण समाचरेत् ॥९॥ अयाचितः प्रदातास्यात् कृषिं वृत्त्यर्थ माश्रयेत् । पाकयज्ञविधानेन यजेद्देवानतन्द्रितः ॥ १० ॥ शूद्राणां मासिकं कार्यं वपनं न्यायवर्तिनाम् । धारणं जीर्णवस्त्रस्य विप्रस्योच्छिष्टभोजनम् ॥११॥ स्वदारेषु रतिश्चैव परदार विवर्जितः । पुराण श्रवणं विप्रान्नारसिंहस्य पूजनम् ॥ १२ ॥ तथा विप्र नमस्कारस्तथा सत्रं दिने दिने । सत्यं सम्भाषणञ्चैव रागद्वेष विवर्जनम् ॥१३॥ इत्थं कुर्वंस्तथा शूद्रो मनो वाक्काय कर्मभिः । स्थानमैन्द्रमवाप्नोति त्यक्तपापः प्रपुण्यकृत् ॥१४॥

यक्षराक्षसगन्धर्वाः—यक्ष्यते पूज्यते यक्षः ब्रह्मवैवर्त में यक्षों के निम्नलिखित स्वरूप का वर्णन है। यथा—

आजग्मुर्यक्षनिकराः कुवेरवर किङ्कराः। शैलज प्रस्तरकराः व्यञ्जनाकारमूर्तयः ॥१॥ विकृताकार वदनाः पिङ्गलाक्षा महोदराः । स्फटिकारक्तवेशाश्च दीर्घस्कन्धाश्च केचन॥ २ ॥ यक्षगण के नाम निम्न हैं। यथा—प्रचेतसः सुतायक्षाः तेषां नामानि मेश्रृणु।

केवलो हरिकेशश्च कपिलः काञ्चनस्तथा ॥ १ ॥ मेघमाली च यक्षाणां गण एष उदाहृतः ॥ यक्षोपासना ऐहिक हित तो अवश्य करता है परन्तु इस उपासना से अधोगति भी ध्रुव है। बाराही तन्त्रे तथा—यक्षाणां यक्षीणाञ्च पैशाचीनाञ्च साधनम। भूतवेतालगान्धर्व मारणोच्चाटनानि च। अधोगमनमेतेषां साधने ऐहिकं हितम ॥ ७० ॥ ७१ ॥

तारका दश दिक् चैव त्वमेव रघुनन्दन ।
सप्तद्वीपाः समुद्राश्च नागा नद्यस्तथा द्रुमाः ॥७२॥

तारकाः--अश्विनी, भरणी आदि सत्ताईसों नक्षत्र । दशदिक् चैव=प्राची, प्रतीचो, उदीची, अवाची, ईशान, आग्नेय, नैर्ऋत्य, वायव्य, ऊर्ध्व, अधः। सप्तदीपाः= जम्बु, प्लक्ष, शाल्मली, कुश, क्रौञ्च, शाक, पुष्कर। समुद्राश्च=लवण, क्षीर, दधि, घृत, सागरादि। नागाः=अनन्त, वासुकि, कम्बल, कर्कोटक, आदि। नद्यः=भागीरथी, यमुना, सरयू, नारायणो आदि तथा द्रुमः= बृक्ष, तृण गुल्मलता वीरुध आदि भेद से नाना प्रकार के। रघुनन्दन=हे रघुवन्शियों को आनन्द देने वाले। त्वमेव=आप ही हैं ॥ ७२ ॥

विशेष : नागः के स्थान पर कहीं नगाः पाठ है। नगाः=सुमेरु, विन्ध्याचल आदि पर्वत ॥ ७२ ॥

स्थावरा जङ्गमाश्चैव त्वमेव रघुनायक ।
देवतिर्यग् मनुष्याणां दानवानां तथैव च ॥ ७३ ॥
माता पिता तथा भ्राता त्वमेव रघुवल्लभ ।
सर्वेषां त्वं परब्रह्म त्वन्मयं सर्वमेव हि ॥ ७४ ॥

स्थावराः=समस्त अचर प्राणी। जङ्गमा=चरप्राणी। रघुनायक=हे रघुनायक (रघु श्रेष्ठ) त्वमेव=आप ही हैं। देवतिर्यङ् मनुष्याणाम्=देवतः पशु, पक्षी मनुष्यों के। तथैव दानवानाम्=दनुपुत्र राक्षसों के शरीर रूप में तथा आत्मा रूप में भी आप ही विराजमान हैं। रघुवल्लभ=हे रघुवंशियों के प्रिय श्रीरामजी। माता=जननी। पिता= जनक (पालक)। तथा भ्राता=और भाई। त्वमेव=आप ही हैं। सर्वेषाम्=चराचर प्राणियों के। परब्रह्म=सृष्टि, पालन प्रलय, करने वाले। त्वम्=आप हैं। हि=इसलिये। सर्वम्=यह चराचर रूप जगत्। त्वन्मयम्=प्रधान (विशेष्य) जो आप हैं आपका ही शरीर है ॥ ७३ ॥ ७४ ॥

विशेष :— तिष्ठतीति स्थावराः अर्थात् चलने की सामर्थ्य से रहित, वृक्ष पर्वतादि। जङ्गमाः=गच्छतीति अर्थात् जो चलने की सामर्थ्य युक्त हैं मनुष्य पशु पक्षी आदि। त्वं परब्रह्म=कारणपद से सुने गये विष्णु, नारायण, हरि आदि विग्रह में आप ही पर सबसे उत्कृष्ट अर्थात् सबके कारण हैं ॥ ७३ । ७४ ॥

त्वमक्षरं परं ज्योतिस्त्वमेव पुरुषोत्तमः ।
त्वमेव तारकं ब्रह्म त्वत्तोऽन्यन्नैव किञ्चन ॥ ७५ ॥
शान्तं सर्वगतं सूक्ष्मं परब्रह्म सनातनम् ।
राजीवलोचनं रामं प्रणमामि जगत्पतिम् ॥ ७६ ॥

त्वमक्षरम=सबके आधार तथा नियन्ता होने के कारण, आपका क्षरण कभी नहीं होता अतः अक्षर (नाशविकार रहित) हैं। परंज्योतिः=उत्कृष्ट ज्योति स्वरूप अर्थात् मुक्त जीवों के प्राप्य। त्वमेव=आप ही। पुरुषोत्तमः=पुरुषों में उत्तम (श्रेष्ठ) हैं। त्वमेव=आप ही। तारकं ब्रह्म=संसार से पार करने वाले वृहत् गुणयुक्त (हैं)। त्वत्तः=आप से भिन्न। अन्यत्=कोई। किंचन=कहीं पर (अक्षर पर ज्योति पद वाच्य) नैव=नहीं है शान्तम्=वशीकृत अन्तःकरण। सर्वगतम्=सबमें गत प्राप्त अर्थात् अन्तर्यामी। सूक्ष्मम् =अणीयान्। परब्रह्म=कारण। सनातनम्=सदा वर्तमान। राजीवलोचनम्=कमलदल के सदृश नयन वाले। जगत्पतिम्=संसार के पालन करने वाले। रामम्=श्रीरामजी को। प्रणमामि=प्रणाम करता हूँ॥ ७६ ॥

विशेष :—अक्षर परज्योति पदवाच्य तारक संज्ञक राजीवलोचन श्रीरामजी ही हैं। श्रीरामजी से भिन्न कोई परज्योति पदवाच्य नहीं है इसको दिखाते हुये उपसंहार में श्रीरामजी को प्रणाम कर रहे हैं। अक्षरम्=न क्षीयते न क्षरतीति अक्षरस्तम्। जिनका कभी भी क्षरण (नाश) न हो। जिन्हें सदैव पूर्णत्व का प्रतिपादन श्रुतियाँ करतीं हैं। यथा

पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।

परंज्योतिः=मुक्त जीवों के एकमात्र प्राप्य। श्रुतौ यथा="न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्र तारकं नेमा विद्युतोभाति कुतोऽयमग्निः। तमेवानुभान्तमनुभाति सर्वं तस्य भाषा सर्वमिदं विभाति।" परब्रह्म पदवाच्य ही परंज्योतिः है उसीको प्राप्त करके मुक्त जीवों के अपहत पाप्मत्वादि गुणों का आविर्भाव हो जाता है। श्रुतौ यथा— "एष संप्रसादोऽस्माच्छरीरात्समुत्थाय परं ज्योतिरुपसंपद्यस्वेन रूपेणाभिनिष्पद्यते।" परब्रह्म--श्रीनारदजी ने श्रीरामजी को परात्परतर ब्रह्म कहा है श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण का भी यही सिद्धान्त होना चाहिये क्योंकि महर्षि वाल्मीकि श्रीनारदजी के ही शिष्य हैं। तात्पर्य निर्णय के लिये शास्त्रों में छः उपकरण हैं। यथा--उपक्रमोपसंहारावभ्यासोपूर्वता फलम्। अर्थवादोपपत्ती च लिङ्गं तात्पर्यनिर्णये ॥ १ ॥ श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण के उपक्रमोपसंहार के द्वारा भगवान् श्रीरामजी ही परब्रह्म माने गये हैं। यथा--तस्य भार्यासु तिसृषु ह्री श्री कीर्त्युपमासु च। विष्णोः पुत्रत्वमागच्छ कृत्वात्मानं चतुर्विधम ॥ १ ॥ एवं दत्त्वावरं देवो देवानां विष्णुरात्मवान। मानुषे चिन्तयामास जन्मभूमिमथात्मनः ॥ २ ॥ श्रीदशरथजी की श्री ह्री, कीर्ति के सदृश तीनों रानियों में भगवान विष्णु अपने को चार भागों में करके पुत्रत्व को प्राप्त हुये। देवताओं ने भगवान् की प्रार्थना की विष्णु भगवान

देवताओं को वरदान देकर मनुष्य रूप से अवतीर्ण होने के लिये अपनी जन्मभूमि के लिये चिन्ता (ध्यान) किया कि हमको कहाँ पर अवतीर्ण होना है। इन श्लोकों में विष्णु पद आया है विष्णु भगवान् की ही देवताओं ने प्रार्थना की उन्होंने ही वरदान दिया (अपने अवतीर्ण होने का आश्वासन दिया) और वे ही चक्रवर्त्ती महाराज की तीनों रानियों में अपने को विभक्त करके अवतीर्ण हुये। यह विचार करना है कि यह विष्णु पद भगवान् श्रीरामजी के लिये आया है या चतुर्भुज भगवान् विष्णु के लिये। यहाँ विष्णु भगवान् को आत्मवान् कहा है। आत्मा शब्द का "आत्मा देहे धृतौ जीवे स्वभावे च परमात्मनि" इस अनुशासन से देह परक अर्थ नहीं कह सकते, क्योंकि भगवान् विष्णु की प्रसिद्धि चार भुजाओं से है। युद्ध का प्रकरण न होने के कारण आत्मशब्द धृति अर्थ को भी नहीं कहेगा। भगवान् का सात्विक स्वभाव प्रसिद्ध है अतः स्वभाव परक भी आत्म शब्द नहीं है। अतः परिशेषात् परमात्मा अर्थ वाला ही आत्मशब्द प्रयुक्त है। विष्णु भगवान् की आत्मा अर्थात् अन्तर्यामी श्रीरामजी ही हैं। क्योंकि विष्णु, भगवान् हैं जीव नहीं है। इसलिये विष्णु भगवान् के कारण श्रीरामजी ही का वरदान देना और अवतीर्ण होना प्रतीत होता है। यद्यपि उपक्रम में विष्णु पद को देखकर सन्देह होना स्वाभाविक है तथापि उपसंहार से यह बिल्कुल निर्णीत हो जाता है कि उपक्रम का विष्णु शब्द भगवान् श्रीरामजी के स्वरूपपरक व्यापकता तथा गुणपरक व्यापकता को बतलाने के लिये ही प्रयुक्त है। श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण के उपसंहार में विष्णुकारणतावोधक ब्रह्माजी के वचन ही कारणत्व के रूप में उपपन्नतर हैं। यथा—

संक्षिप्य हि पुरालोकान् मायया स्वयमेव हि । महार्णवे शयानोऽप्सु मां त्वं पूर्वमजीजनः ॥ १ ॥ मायया जनयित्वा त्वं द्वौ च सत्वौ महाबलौ । मधुश्च कैटभं चैव यथोरस्थिचयैः कृताः ॥ २ ॥ इयं पर्वतसंबाधा मेदिनी चाभवत्तदा । पद्मे दिव्यार्क संकाशे नाभ्यामुत्पाद्य मामपि ॥ ३ ॥ प्राजापत्यं त्वया कर्म मयि सर्वं निवेदितम् । सोऽहं सन्यस्तभारोहि त्वामुपासे जगद्गुरुम् ॥ ४ ॥ रक्षां विध-त्स्वभूतेषु ममतेजस्करोभवान् । ततस्त्वमसिदुर्धर्षस्तस्माद्भावात्सनातनात् ॥ ५ ॥ रक्षां विधास्यन् भूतानां विष्णुत्वमुपजग्मिवान् । सत्व वित्रास्य मानासु प्रजासु जगतां-वर, रावणस्य वधाकांक्षी मानुषेषु मनोदधाः ॥ ६ ॥

अतः भगवान् श्रीरामजी ही क्षीरशायी नारायण तथा वैकुण्ठवासी विष्णुरूप को यथासमय धारण करते हैं। इसी प्रकार अन्य पुराणों में भी श्रीरामजी को परशुराम तथा विष्णु रूप धारण करना लिखा है। यथा—"मुख्यत्वाद् विश्वबीजत्वात्तारकत्वा-न्महेश्वरः। त्वदंशैः स्वीकृतं रामह्यस्याभिर्नामते त्रिभिः ॥ १ ॥

श्रीव्यासउवाच—ततः प्रसन्नः श्रीरामः प्रोवाच मुनिपुङ्गवम् ।
तुष्टोऽस्मि मुनिशार्दूल वृणीष्व वरमुत्तमम् ॥ ७७ ॥

श्रीव्यासजी ने कहा—ततः=श्रीनारदजी की प्रार्थना करने के बाद। मुनिपुङ्गवम् =मुनियों में श्रेष्ठ श्रीनारदजी को। प्रसन्नः श्रीरामः=प्रसन्न होकर श्रीरामजी ने। प्रोवाच =कहा। मुनिशार्दूल=हे मुनिश्रेष्ठ (श्रीरामजी के स्वरूप, गुण, विभूति के यथार्थ ज्ञाता होने के कारण) मुनियों में श्रेष्ठ हैं। वरम् = वाञ्छित वस्तु को। वृणीष्व = मांगिये ॥ ७७ ॥

विशेष—श्रीराम जी अपने भक्त को अर्थ धर्म काम मोक्ष भगवत् प्रेम आदि सब कुछ देते हैं। और उसका योग क्षेम भी स्वयं वहन करते हैं। अतः सम्पूर्ण कामनाओं से युक्त, या समस्त कामनाओं से रहित भक्त परब्रह्म की ही आराधना तीव्रभक्ति योग द्वारा करे भाग० यथा – अकामः सर्वकामो वा मोक्षकाम उदारधीः। तीव्रेण भक्तियोगेन यजेत् पुरुषं परम् ॥ १ ॥ भगवान् श्रीरामजी के प्रसन्न हो जाने पर उनके लिये जनको अदेय कुछ भी रहीं रहता। रा०च०मा० यथा—जन कहँ नहिं अदेय कछु मोरे। श्रीमद् भाग० यथा—तस्मिंस्तुष्टे किमप्राप्यं जगतामीश्वरेश्वरे। अर्थात् भगवद्भक्त को इच्छा ही करना है उसके लिये अप्राप्तव्य कुछ भी नहीं रहता। क्योंकि समस्त ऋद्धि सिद्धि वैभव के मूल भगच्चरणों को ही उसने स्वाधीन कर लिया है। भागवते यथा-- सर्वासामपि सिद्धीनाम् मूलं तच्चरणार्चनम् ॥ अतएव भगवान् ने कहा कि अपने उत्तम अभीष्ट (वरदान) को आप माँग लें ॥ ७७ ॥

श्रीनारद उवाच--यदि तुष्टोऽसि सर्वज्ञ श्रीराम करुणानिधे।
त्वन्मूर्ति दर्शनेनैव कृतार्थोहं ममेप्सितम् ॥ ७८ ॥

श्रीनारदजी ने कहा –

सर्वज्ञ=सब कुछ जानने वाले। करुणानिधे=हे करुणा के सागर। श्रीराम =हे श्रीरामजी। यदि तुष्टोऽसि =यदि आप मेरे ऊपर (अपनी करुणा के वशवर्त्ती होकर) प्रसन्न ही है। (मुझे वरदान भी देने की आप प्रतिज्ञा कर चुके हैं) त्वन्मूर्तिदर्शनेनैव= आपकी द्विभुज (नितान्त कमनीय) मूर्ति (नीलकमल दल के समान) के दर्शन से ही (नेत्रों को तृप्ति न होने वाले अवलोकन से ही) अहं कृतार्थः=मैं कृत कृत्य हो चुका हूँ। ममेप्सितम्=मुझे प्राप्त होने के लिये इष्ट (आपकी मूर्ति का दर्शन ही है अतः आपका सर्वदा साक्षात्कार हो यही वरदान दीजिये ॥ ७८ ॥

विशेष—बरदान देने की इच्छा व्यक्त करने वाले भगवान श्रीराम जी के प्रति नारद जी ने कहा। सर्वज्ञ=सर्वं जानाति (हे सर्वज्ञ) आप सब कुछ जानते हैं मुझे अणिमादि सिद्धियाँ नहीं चाहिये, जिससे मेरा सर्वत्र अव्याहत प्रवेश हो या सर्वत्र संचरण हो। करुणानिधे=आप अकारण करुणा के अपार समुद्र हैं अर्थात् मेरे अभीष्ट को पूर्ण करने वाले हैं। त्वन्मूर्तिदर्शनेनैव=आपकी मूर्ति के दर्शन से, यथा-"अणोरणीयं समनन्तवीर्य्यं प्राणेश्वरं राममसौ ददर्श" मैं कृतार्थ हो गया हूँ अर्थात् परमपुरुषार्थ को

प्राप्त कर चुका हूँ। "नारायणं जगन्नाथं" आरम्भ होने वाली स्तुति के अनन्तर "अन्तर्धानं जगामाथ पुरतस्तस्य राघवः" से रामजी का अन्तर्हित होना कहा गया है। नारद जी भगवान् श्रीरामजी का साक्षात्कार प्राप्त करने के ही लिये "रामं तुष्टाव" श्रीरामजी को प्रसन्न किया। भगवान् श्रीराम जी वरदान देने के लिये पुनः नारदजी के दृष्टिगोचर हुये, इस प्रकरण से ऐसा प्रतीत होता है॥ ७८॥

धन्योऽहं कृतकृत्योहं पुण्योहं पुरुषोत्तम।
अद्य मे सफलं जन्म जीवितं सफलं च मे॥७६॥

पुरुषोत्तम=हे पुरुषों में श्रेष्ठ (श्रीरामजी) अहम=मैं। अद्य=आज। धन्यः=धन्य अर्थात् प्रशंसा का पात्र हूँ। अहं कृतकृत्यः=(यज्ञ, तप, दान भगवन्नाम स्मरण आदि का फल प्राप्त करके) मैं अनुष्ठान करने योग्य कर्म को कर चुका। अहं पुण्यः=(आपका दर्शन रूप सुकृत फल प्राप्त करके) मैं सुकृती हो चुका। मे=मेरा। जन्म=शरीर धारण। अर्थात् उच्चतम ब्रह्म के पुत्र होने का कार्य। सफलम्=फल युक्त हो गया। अर्थात् साक्षात् भगवद्दर्शन रूप फल, फल गया। च=और। मे=मेरा। जीवितम्=प्राण धारण करना। (भी) सफलम्=सफल हो गया॥ ७६॥

विशेष :--भगवान श्रीरामजी के साक्षात् दर्शन रूप स्वाभीष्ट को प्राप्त करके नारदजी अपने को तथा अपने साधनों की प्रशंसा कर रहे हैं। पुरुषोत्तम्—यस्मात् क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः। तस्माल्लो के वेदे च प्रथितोऽहं पुरुषोत्तमः॥ आप माया, जीव से परे लोक वेद प्रसिद्ध पुरुषोत्तम हैं। मुमुक्षुजनों को आपके साक्षात्कार पर्यन्त अवश्य कर्तव्य जो तप, नामजप, स्तुति आदि हैं वे आज आपके दर्शन से सफल हैं। आपके दर्शन के बाद अब मेरे लिये कुछ भी शेष नहीं हैं। अतः मैं महान पुण्यशाली हूँ मन, वचन, कर्म द्वारा होने वाले समस्त साधन सिद्ध हो गये हैं॥ ७६॥

अद्य मे सफलं ज्ञानमद्य मे सफलं तपः।
अद्य मे सफलो यज्ञस्त्वत्पादाम्भोजदर्शनात्॥ ८०॥

अद्य=आज। मे=मेरा। ज्ञानम्=ज्ञान। सफलम्=सफल है। अद्य मे तपः=आज मेरी तपश्चर्या। सफलम=सफल है। अद्य मे=आज मेरा। यज्ञः=जपयज्ञ। सफलम्=सफल है॥ ८०॥

विशेष :-- पादौ, अम्भोज इव (अम्भसि=जले जातः) कमल इव पादाम्भोजः तस्य दर्शनात्। तव पादाम्भोजदर्शनात्=त्वत्पादाम्भोजदर्शनात्। ज्ञानादिक की सफलता में भगवच्चरणकमलदर्शन हेतु है। नारदजी अपने ज्ञान को सफल कह रहे हैं वह कौन सा ज्ञान है। गीता में उस ज्ञान का वर्णन इस प्रकार है। यथा--"भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनोबुद्धिरेव च। अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृति रष्टधा॥ १॥ अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्। जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत्॥२॥ एतद्योनीनि भूतानि

सर्वाणीत्युपधारय । अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा ॥ ३ ॥ मत्तः परतरं नान्यत् किञ्चिदस्ति धनंजय । मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव ॥४॥ जिस परमात्मा में यह दृश्यमान ब्रह्माण्ड सूत में मणिगण के समान गुंथा है जिसको श्रुतियाँ पृथ्वी अन्तरिक्षादि से भी बड़ा बतलाती हैं। श्रुतौ यथा—"ज्यायान् पृथिव्या ज्यायानन्तरिक्षाज्ज्यायान् दिवो ज्यायानेभ्यो लोकेभ्यः" उसी तत्त्व को उपासना के लिये अणुरूप भी कहा है। श्रुतौ यथा "एष म आत्माऽन्तर्हृदये" अणीयान् व्रीहेर्वा यवाद्वा" "सर्वगतं सुसूक्ष्मं तदव्ययं यद्भूतयोनिं परिपश्यन्ति धीराः" इत्यादि अनेक विशेषण विशिष्ट श्रीरामजी के पादकमल का दर्शन नारदजी को प्राप्त है, अब कोई प्राप्तव्य शेष नहीं है। भागवते यथा—तस्मिंस्तुष्टे किम प्राप्यं जगतामीश्वरे। इसलिये श्रीनारदजी अपने साधनों की सराहना कर रहे हैं। यद्यपि ये साधन तथा साधक, साध्य के ही अधीन हैं। भागवते यथा "यथा दारुमयी योषित् नृत्यते कुहकेच्छया। एवमीश्वरतन्त्रोऽयमीहते सुखदुःखयोः ॥१॥ तथापि आंशिक सफलता इन साधनों की भी है ॥ ८० ॥

अद्य मे सफलं सर्वं त्वन्नामस्मणं तथा।
त्वत्पादांभोरुहद्वन्दे सद्भक्तिं देहि राघव ॥ ८१ ॥

राघव=हे रामजी। अद्य=आज। मे=मेरा। सर्वम्=श्रद्धा, धर्मपालन, यम, नियम, गुरुजन सेवा, तीर्थाटन, आदि। सफलम्=सफल है। तथा=और। त्वन्नाम स्मरणम=आपके मङ्गलमय नाम का कीर्तन। सफल है। त्वत्पादाम्भोरुहद्वन्दे=अपने युगलपदारविन्द में। सद्भक्तिम्=अव्यभिचरित अनुराग को। देहि=दीजिये ॥ ८१ ॥

विशेष :--श्रीमद्भागवत में साधनों द्वारा भगवत् कथामृतपान की प्राप्ति कही गई है। उसका फल भगवच्चरणानुराग है। भगवदनुराग के अंतर ही भगवच्चरण-कमलदल दर्शन की पिपासा होती है, इसके अनन्तर ही भगवद्दर्शन सम्भव है। यही जीव मात्र का लक्ष्य है। यथा--

मा श्रद्धया भगवद्धर्मचर्यया जिज्ञासयाऽऽध्यात्मिक योगनिष्ठया। योगेश्वरोपासनया च नित्यं पुण्यश्रवः कथया पुण्यया च ॥१॥ अथेन्द्रियारामसगोष्ठतृष्णया तत्सम्मतानामपरिग्रहेण च। विविक्तरुच्या परितोष आत्मन् विना हरेर्गुण पीयूषपानात् ॥ २ ॥ अहिंसया पारमहंस्य चर्यया स्मृत्या मुकुन्दाचरिताग्र्यमीधुना। यमैरकामैर्नियमैश्चाप्यनिन्दया निरीहया द्वन्द्वतितिक्षया च ॥ ३ ॥ यदा रतिर्ब्रह्मणि नैष्ठिकी पुमानाचार्यवान् ज्ञानविज्ञानरंहसा। दहत्यवीर्यं हृदयं जीवकोशं पञ्चात्मकं योनिमिवोत्थितोऽग्निः ॥ ४ ॥

ब्रह्म में नैष्ठिक की बुद्धि होने पर ही यह जीव कृतार्थ होता है। यह नैष्ठिक ज्ञान भगवत्कैंकर्य परायणरूप है। अतः श्रीनारद जी ने "सद्भक्तिं देहि" की ही याचना की।

इस भक्ति के आठ अङ्ग श्रीमद्भागवत में कहे गये हैं। यथा--श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्। अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्म निवेदनम्॥ १॥ अर्चन पादसंवाहनादिरूप अव्यभिचरित नैसर्गिक भक्ति को श्रीनारद ने माँगा। भक्ति के स्वरूप तथा महिमा की एक झाँकी पुनः करें। श्रीमद्भागवते यथा—

भक्त्याहमेकयाग्राह्यः श्रद्धयात्माप्रियः सताम्। भक्तिः पुनाति मन्निष्ठा श्वपाकानपि सम्भवात्॥१॥ धर्मः सत्यादयोपेतो विद्या वा तपसान्विता। भक्त्यापेतमात्मानं न मम्यक् प्रपुनाति हि।२। कथंविना रोमहर्षं द्रवता चेतसा विना। विनानन्दाश्रुकलया शुद्ध्येद् भक्त्या विनाशयः।३। वाग् गद्गदा द्रवते यस्यचित्तं रुदत्यभीक्ष्णं हसति क्वचिच्च। विलज्ज उद्गायाति नृत्यते च मद् भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति॥४॥ ८१॥

ततः परमसंप्रीतो रामः प्राह स नारदम्॥ ८१½॥

ततः=इसके अनन्तर। परमसंप्रीतः=अत्यन्त प्रसन्न। स रामः=जगत्प्रसिद्ध श्रीरामजी। नारदम्=श्रीनारदजी को। प्राह=कहा।

विशेष--ततः=आपके दर्शन से मैं कृतार्थ हो गया। मेरा अभीष्ट यही है। इस प्रकार अन्य याचना न होने के कारण केवल स्वचरणारविन्द विषयक अनुराग की ही अभ्यर्थना से स्वयं अनुरागी तथा विज्ञ होने के कारण श्रीरामजी के अतीव हर्ष को कह रहे हैं। परमसंप्रीतः=अत्यन्त संतुष्ट होकर। नारदं प्राह=श्रीनारदजी से कहा॥८१½॥

श्रीरामचन्द्र उवाच---मुनिवर्य महाभागमुनेत्विष्टं ददामि ते।
यत्त्वया चेप्सितं सर्वं मनसा तद् भविष्यति॥८२॥

श्रीरामजी ने कहा--

मुनिवर्य महाभाग मुने=हे मुनिश्रेष्ठ, महान् (श्रेष्ठ, पूज्य) को प्राप्त करने वाले (महा भाग)। मुने=हे मननशील। ते=तुम्हारे लिये। तु=निश्चय। इष्टम्=अभिलाषा का विषय, कल्याण सम्पादक। ददामि=दे रहा हूँ। यत्=जो। त्वया=आपने (माँगा)। मनसा च=मन के द्वारा। (जिसे मुँह से नहीं माँगा)। ईप्सितम्=प्राप्त करने के लिये इष्ट (है)। मद्=वह। सर्वम्=सम्पूर्ण। भविष्यति=हो जायेगा॥ ८२॥

विशेष—मुनिवर्य आदि तीन सम्बोधनों के द्वारा श्रीरामजी की परमप्रसन्नता, तथा श्री नारदजी के प्रति अत्यादर, एवं अत्यधिक स्नेह सूचित हो रहा है। महाभाग =महान्तं श्रेष्ठं पूज्यम्, उत्कृटं वा भजति वृणोति इति महाभाग। मनसा च=केवल च शब्द से आपके सदृश अन्य अथवा आपसे सम्बन्धित जो कोई भी हों, उन जनों के भी मनके द्वारा अभीष्ट (वाञ्छित विषय) की पूर्ति हुआ करे। भविष्यत्कालिक प्रयोग से व्यक्त हुआ। जब मनसोद्दिष्ट की पूर्ति मेरे (श्रीरामज के) द्वारा होती है तब आपने

जिसकी याचना की है उसके लिये क्या कहना है अर्थात् वह सब हमने सौंप दिया। इस पदसमुदाय से श्रीरामजी को महादानी तथा श्रीराम स्तवराज के पाठकों को श्रीरामजी की प्रसन्नता द्वारा वाञ्छितार्थ की पूर्ति अभिव्यक्त की गई ॥ ८२॥

श्रीनारदउवाच---वरं न याचे रघुनाथ युष्मत्पादाब्जभक्तिः सततं ममास्तु।
इदं प्रियं नाथ वरं प्रयच्छ पुनः पुनस्त्वामिदमेव याचे ॥ ८३ ॥

श्रीनारदजी ने कहा--

रघुनाथ = हे रघुनाथ। वरम् = राज्य, ऐश्वर्य काम भोगादि रूप वरदान को। न याचे = मैं नहीं माँग रहा हूँ। युष्मत्पादाब्जभक्तिः = आपके चरणकमल की भक्ति (अनुरक्ति)। सततम् = सर्वदा (अविच्छिन्न) मम = मुझको। अस्तु = होवे। इदम् = यही (त्वच्चरणकमलानुरागरूप) प्रियम् = आह्लाद करने वाला। नाथ = हे स्वामिन। वरम् = वरदान को। प्रयच्छ = दीजिये। पुनः पुनः = बार बार। इदमेव = इसी को। याचे = माँगता हूँ ॥८३

विशेष :—श्रीनारदजी अन्य वरदान को भक्ति का विरोधी जानकर अन्य विषय में विराग प्रदर्शन करते हुये अपने अभीष्ट की ही याचना की। इसलिये कहा श्रीनारद उवाच। हे रघुनाथ = आप नाथ अर्थात् याञ्चापूरक हैं, मेरी याचना आपके द्वारा ही पूर्ण हो सकती है. जिस वस्तु का जो स्वामी है वही उसका यथेष्ट विनियोग कर सकता है अतः अर्चन, बन्दन, पादसंवाहनादि लक्षणा भक्ति अपने चरणकमलों में निरवच्छिन्न सर्वदा अनुवर्तनशील प्रदान करें। पुनः पुनः = अन्य वरदान देने के लिये नारदजी भगवान् को रोक रहे हैं। अतः, इदमेव याचे = यही (युष्मत्पादाब्जभक्तिः) मैं माँगता हूँ ॥८३॥

श्रीवेदव्यास उवाच---इत्येवमीडितो रामः प्रादात्तस्मै वरान्तरम्।
विरराम महातेजाः सच्चिदानन्द विग्रहः ॥ ८४॥

श्रीवेदव्यासजी ने कहा—

इत्येवम = इस प्रकार से। ईडितो रामः = प्रार्थित श्रीरामजी। तस्मै = नारदजी के लिये। वरान्तरम् = दूसरा वरदान। प्रादात् = दिये। महातेजाः = महान प्रभावसम्पन्न। सच्चिदानन्दविग्रहः = सत्यात्मक, चिदात्मक तथा आनन्द शरीर वाले (श्रीरामजी) विरराम = मौन हो गये। अर्थात् "अद्वैतममलं ज्ञानमादि" वरदान देकर अपने वक्तव्य से विरत हो गये ॥ ८४ ॥

विशेषः---इत्येवमीडितो रामः = उक्त प्रकारेण नारदेन प्रार्थितोरम रामः। पुनः की दृशः रामः महातेजा सच्चिदानन्दविग्रहः रामः "अद्वैतममलमित्यादि द्वितीयादि वरं प्रदाय विरराम इतिसमुदितोऽर्थः। अर्थात् यादृशविशेषणविशिष्टोरामः वरान्तरं प्रादात् स एव विरराम। सच्चिदानन्दविग्रहः = मनुष्य के आकार में सच्चिदानन्दरूप से प्रकाशमान्। महातेजाः = यज्ज्योतिरमलं शिवम्" "तदेनपरमं तत्त्वम्" "एवं सञ्चिन्तयेद

विष्णु यज्ज्योतिरमलं शिवम्" "ज्योतिर्मयं राममहं भजामि" इत्यादिस्थलों में कहे गये परमतत्त्व पदवाच्य भगवान् श्रीरामजी मौन हो गये ॥ ८४ ॥

अद्वैतममलं ज्ञानं त्वन्नामस्मरणन्तथा ।
अन्तर्धानं जगामाथ पुरतस्तस्यराघवः ॥ ८५॥

अद्वैतम्=श्रीरामजी की समानता तथा अधिकता का निवर्तक, श्रीरामजी के सदृश अन्य तत्त्व नहीं है इस प्रकार द्वैत रहित । अमलम्=मलरहित अथवा मलनाशक। ज्ञानम्=ज्ञान। तथा=और। त्वन्नामस्मरणम्=आपके नाम का स्मरण। अथ=वरदान देने के अनन्तर । तस्य=श्रीनारदजी के । पुरतः=सामने से । राघवः=श्रीरामजी । अन्तर्द्धानम्=अन्तर्हित (छिपना) जगाम=हो गये । अर्थात् श्रीनारदजी की उत्कण्ठा बढ़ाने के लिए कुछ क्षण के लिये अन्तर्धान हो गये ।

विशेषः—श्रीरामजी के द्वारा प्रदत्त अन्य वरदानों को कह रहे हैं । अद्वैतम् =अद्वैतज्ञान अर्थात् श्रीरामजी से भिन्न परतत्त्व अन्य कोई नहीं है, न तो इनके समान हो है न इनसे अधिक ही है । श्रुतौ यथा—

"न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते" न तस्य प्रतिमाऽस्ति यस्य नाम महद्यशः" चिन्मयस्याद्वितीयस्य ब्रह्मणो रूपकल्पना"

अमलंज्ञानम्=निर्मलज्ञान अर्थात् अपने भक्तोंके मायामल का निरास करने वाला ज्ञान। गीतायां यथा-"मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते" । तथा=दूसरा वरदान। त्वन्नामस्मरणम्=आपके नाम का सदा स्मरण होता रहे । अर्थात् आपके नाम को सदा जपता रहूँ । अङ्ग सहित बरदान को देकर भगवान् श्रीरामजी कुछ काल के लिए श्रीनारद जी की स्वदर्शन विषयक उत्कण्ठा को बढ़ाने के लिए अन्तर्द्धान हो गए । कुछ काल के लिए भगवान का अन्तर्हित होना इसलिए कहा जा रहा है कि नारदजी को वरदान मिला है कि "यत्त्वया चेप्सितं सर्वं मनसा तद् भविष्यति" श्रीनारद जी को श्रीराम रूप का दर्शन ही अभीष्ट है । श्रीरामजी का वरदान भी मिथ्या नहीं हो सकता । यथा-"रामो द्विर्नाभिभाषते" । अतः कुछ क्षण के लिए ही श्रीरामजी का श्रीनारदजी के नयन का विषय न होना । युक्तियुक्त तथा प्रकरण सङ्गत है ॥८५॥

इति श्रीरघुनाथस्य स्तवराजमनुत्तमम् ।
सर्व सौभाग्य सम्पत्ति दायकं मुक्तिदं शुभम् ॥८६॥

इति=श्रीरामस्तवराज की समाप्ति का परिचायक इति शब्द है । श्रीरघुनाथस्य =श्रीरामजी का । अनुत्तमम्=सबसे श्रेष्ठ । स्तवराजम्=श्रीरामजी की स्तुति का प्रकाशक । सर्व सौभाग्य सम्पत्तिदायकम्=सभी प्रकार के सौभाग्य अर्थात् राजादि सम्मान, ऐश्वर्य, विद्या, महत्त्व, सभी प्रकार की सम्पत्ति (श्री प्रदान करने वाला है । शुभम्=

कल्याण सम्पादक। मुक्तिदम्=अविद्यानिवर्तन पूर्वक श्रीरामजी की प्राप्ति होने वाले फल को कहा जा रहा है। अनुत्तमम्=उद्गच्छति तमो यस्मात्तदुत्तमम्। नास्त्युत्तमं यस्मात्त-दनुत्तमम्। अर्थात् तमोगुण का संस्पर्श जिसे न हो वह उत्तम हुआ, और यह उत्तमत्व अन्यत्र न हो वह अनुत्तम है। श्रीरघुनाथस्य स्तवराजम=श्रीरामजी की स्तुति का प्रकाशक अर्थात् श्रीरामजी के स्वरूप, नाम, गुण, विभूति, धाम आदि का यथावस्थित रूप प्रकाशित करने वाला है। इसलिये इसकी बराबरी का कोई अन्य ग्रंथ नहीं है। सर्व सौभाग्य सम्पत्तिदायकम्=से इस लोक के समस्त पदार्थों को सुलभ करना तथा अन्त में अपरावर्तन विषयक भगवद्धाम की प्राप्ति होना कहा गया है ॥८६॥

कथितं ब्रह्मपुत्रेण वेदानां सारमुत्तमम्।
गुह्याद् गुह्यतरं दिव्यं तवस्नेहात् प्रकीर्तितम् ॥८७॥

ब्रह्मपुत्रेण=ब्रह्माजी के पुत्र सनत्कुमार तथा नारदजी के द्वारा। वेदानाम्=ऋग् यजुः साम अथर्ववेद का। उत्तमम्=श्रेष्ठ। सारम्=तत्त्वभूत। कथितम्=अर्थ प्रकाशन किया गया है। गुह्याद्=गोपनीय से। गुह्यतरम्=अतिशय गोपनीय। दिव्यम्=लोक में अप्रसिद्ध अर्थात् सर्वसामान्यव्यक्तियों में अज्ञात (यह रहस्य)। तव=तुम्हारे। स्नेहात् =प्रेम से। प्रकीर्तितम्=मेरे (श्री वेदव्यास) द्वारा प्रकाशित किया गया है ॥ ८७॥

विशेष : ब्रह्मपुत्रेण=वेद का अध्यापन भगवान् ने स्वयं ब्रह्माजी को किया अतः वे वेद के तात्पर्य में संशय विपर्यय शून्य हैं। ब्रह्माजी के मानस पुत्र होने के नाते ब्रह्माजी का वेद सम्बन्धी ज्ञान याथातथ्य, अविच्छिन्न रूप से श्री सनत्कुमारादि में है। अतः श्रीसनत्कुमार तथा नारदजी वेद का तात्पर्य भली भाँति जानते हैं इसको अभिव्यक्त किया जा रहा है "वेदानां सारमुत्तमम्" इस कथन द्वारा। वेदानाम= सर्वेषां वेदानाम सारम् तात्त्विकरूपम। तथा उत्तमम्=परब्रह्म का स्वरूप क्या है। परब्रह्म शब्द द्वारा किस तत्त्व को कहते हैं, जो इस स्तवराज में साङ्गोपाङ्ग वर्णित है। यही वेद का उत्तम सार है। और इससे भिन्न जो लोग मानते हैं वह वेद सार नहीं है। अतएव वे वेद के तात्पर्य को नहीं जानते। इसलिये यह "गुह्याद् गुह्यतरं दिव्यम्=अत्यन्त अप्रकाशित दिव्य रहस्य है। श्रीयुधिष्ठिर जी की जिज्ञासा का विषय है 'किं तत्त्वं किं परं जाप्यं किं ध्यानं मुक्ति साधनम्" परतत्त्व विषयक स्वरूप, नाम, ध्यान का कथन है जिसमें इस प्रकार का श्रीराम स्तवराज। तव=युधिष्ठिर के। स्नेहात्=स्नेह से मेरे (श्रीवेदव्यासजी के) द्वारा कहा गया है ॥ ८७॥

यः पठेच्छृणुयाद्वापि त्रिसंध्यं श्रद्धयान्वितः॥८८॥
ब्रह्महत्यादि पापानि तत्समानि बहूनि च।
स्वर्णस्तेय सुरापान गुरुतल्पायुतानि च ॥८९॥

यः=जो कोई भी मनुष्य। श्रद्धयान्वितः=श्रद्धायुक्त होकर। त्रिसंध्यम्=प्रातः, मध्याह्न, तथा सायंकाल में। (इस श्रीरामस्तवराज को) पठेत्=पढ़े। वापि=अथवा। शृणुयात्=सुने। (वह) ब्रह्महत्यादि पापानि=ब्राह्मण का बध करना आदि में है जिसके इस प्रकार के अन्य जो महापाप हैं। च=तथा। तत्समानि बहूनि=इसके समान और भी बहुत से पाप। (ब्रह्महत्यादि के आदि पद से अन्य जो महापातक हैं उन्हें गिना रहे हैं) स्वर्णस्तेय सुरापान गुरुतल्पायुतानि=सोने की चोरी करना, मदिरा पीना, गुरु शय्या का सम्पर्क करनादि अनेक (सर्वैः पापैः प्रमुच्यते) इस अग्रिम श्लोक में अन्वय है॥ ८६॥

विशेष—श्रीरामस्तवराज पाठ तथा श्रवण के मुख्य फल को कहकर उसके गौण फल को कह रहे हैं। कोई भी व्यक्ति श्रद्धासम्पन्न तीनों सन्ध्याओं में इस स्तवराज को यदि पढ़ता है। (पाठ करे) यदि पाठ करने में समर्थ नहीं तो इसे सुने। तो पाठ करने के समान ही आनुषङ्गिकफल उसे प्राप्त होते हैं। यद्यपि "ब्रह्महा स्वर्णहारी च सुरापी गुरुतल्पगः। महापातकिनो ह्येते तत्संसर्गी च पञ्चमः॥ १॥ इस स्मृति प्रमाण के बल से स्वर्णस्तेयादि महापाप ब्रह्महत्यादि में ही आते हैं। तथापि यहाँ स्वर्णस्तेयादि को जो पृथक् कहा है। यह कथन श्रीरामतापनीयश्रुति के अनुसार ही है। यथा —स ब्रह्महत्यां तरति स वीरहत्यां तरति स भ्रूणहत्यां तरति स सर्वहत्यां तरति" अतः ब्रह्महत्यादिघटक आदि पद से इन सबका ग्रहण जानना चाहिये। तत्समानि=ब्रह्महत्या के सदृश। बहूनि च=बहुत प्रकार के। वे कौन हैं इस में कहा— स्वर्णस्तेयसुरापानगुरुतल्पायुतानि च" अर्थात् इनकी संख्या अयुत है। अयुत शब्द अनन्तवाचक है। स्मृति में "तत्संसर्गी च पञ्चमः" जिसने ब्रह्महत्यादि पाप नहीं किया है केवल ब्रह्महत्यादि पाप करने वाले का संसर्गी है वह पाँचवा भी महापापी है॥ ८६॥

गोवधाद्युपपापानि ह्यनृतात्सम्भवानि च।
सर्वैः प्रमुच्यते पापैः कल्पायुतशतोद्भवैः॥ ९०॥

गोवधाद्युपपापानि=गोवधादि उपपातक (कहे जाते हैं)। हि=निश्चय। च=और अनृतात् सम्भवानि=मिथ्याभाषण से उत्पन्न होने वाले पाप। कल्पायुतशतोद्भवैः=अयुत (दशसहस्र) शतकल्प में उत्पन्न होने वाले (अनन्त पाप) सर्वैः पापैः=अर्थात् अनन्त जन्म द्वारा उपार्जित समस्त सञ्चित पाप। प्रमुच्यते=छूट जाते हैं। अर्थात् श्रीरामस्तवराज के पाठ करने वाले को अत्यन्त छोड़ देते हैं॥९०॥

विशेषः—गोवधाद्युपपापानि=गोहनन मात्र ही गोवध नहीं कहलाता। किन्तु गोवधशब्द आतिदेशिक है भिन्न भिन्न प्रकार के पाप भी गोवध ही हैं यथा—

ग्रामाहारं प्रकुर्वन्तं पिबन्तं यो निवारयेत्। याति गोविप्रयोर्मध्ये गोहत्याञ्च लभेत्तु सः॥१॥ दण्डैर्गान्ताड़यन् मूढ़ो यो विप्रो वृषवाहकः। दिने-दिने

गवां हत्यां लभते नात्र संशयः॥२॥ ददाति गोभ्यः उच्छिष्ट भोजयेद् वृषवाहकम्। भोजयेद्वृषवाहान्नं स गोहत्यां लभेद् ध्रुवम् ॥३॥ वृषलीपतियाजयेद् यो भुंक्तेऽन्नं तस्ययोनरः। गोहत्याशतकं सोऽपि लभते नात्रसंशयः ॥४॥ पादं ददाति वह्नौयो गाञ्च पादेन ताड़येत्। गृहं विशेदधौतांघ्रिः स्नात्वा गोवधमालभेत् ॥ ५ ॥ यो भुंक्तेऽस्निग्धपादेन शेतेस्निग्धांघ्रिरेव च। सूर्योदये च। द्विर्भोजी स गोहत्यां लभेद् ध्रुवम् ॥ ६ ॥ अवीरान्नञ्च यो भुंक्ते योनि जीवी च ब्राह्मणः। यस्त्रिसन्ध्या विहीनञ्च स गोहत्यां लभेद्ध्रुवम् ॥७॥ पितृश्चपर्वकाले च तिथिकाले च देवता। न सेवितेऽतिथिं यो हि स गोहत्यां लभेद् ध्रुवम् ॥ ८ ॥ स्वभर्त्तरि च कृष्णे वा वेदबुद्धिं करोति या। कटूक्त्या ताड़येत् कान्तं सा गोहत्यां लभेद् ध्रुवम् ॥ ९ ॥ गोमार्ग खननं कृत्वा ददाति शस्यमेव च। तडागे च तदूर्ध्वं वा स गोहत्यां लभेद् ध्रुवम् ॥ १० ॥ प्रायश्चित्तं गोवधस्य यः करोति व्यतिक्रमम्। अर्थलाभादथाज्ञानात् स गोहत्यां लभेद ध्रुवम् ॥ ११ ॥ राजके दैवके यत्नात् गोस्वामी गां न पालयेत्। दुःखं ददाति यो मूढ़ो गोहत्यां लभते ध्रुवम् ॥१२॥ प्राणिन लङ्घयेद् योहि देवाचामनल जलम्। नवेद्यं पुष्पमन्नञ्च स गोहत्यां लभेद् ध्रुवम् ॥ १३ ॥ शश्वन्नास्तीति वादी यो मिथ्यावादी प्रतारकः। देवद्वेषी गुरुद्वेषी स गोहत्यां लभेद् ध्रुवम् ॥१४॥ देवताप्रतिमां दृष्ट्वा गुरुं वा ब्राह्मणं प्रति। न सम्भ्रमान्नमेत् योहि स गोहत्यां लभेद् ध्रुवम् ॥ १५ ॥ न ददात्याशिष्यं कोपात् प्रणताय च यो द्विजः। विद्यार्थिने च विद्याश्च स गोहत्यां लभेद् ध्रुवम् ॥१६॥ ब्रह्मवैवर्त प्रकृति खण्ड २७ अध्यायः ॥

अनृतात् = मिथ्याभाषण आदि से उत्पन्न होने वाली अनन्तपापराशि। पाँच स्थल पर झूँठ बोलने का पाप नहीं लगता। यथा--विवाह काले रति संप्रयोगे प्राणात्यये सर्वधनापहारे। विप्रस्य चार्थे ह्यनृतं ववेद पञ्चानृतान्याहुरपातकानि ॥१॥ अन्यत्र मिथ्या भाषण पाप साधक है अतः इनके द्वारा होने वाले पाप। कल्प = सतयुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग इन चारों युगों की एक चौकड़ी कहलाती है ऐसी एक हजार चतुर्युग परिमितकाल को कल्प (ब्राह्म दिन) कहते हैं। इतने लम्बे समय में कितने जन्म हो सकते हैं यह गणनातीत विषय है अतः अनेक जन्मार्जित पापराशि (संचित रूप) श्रीरामस्तवराज के पाठक को अपने आप छोड़ देती हैं ॥ ९० ॥

मानसं वाचिकं पापं कर्मणा समुपार्जितम्।
श्रीरामस्मरणेनैव तत्क्षणान्नश्यति ध्रुवम् ॥ ९१ ॥

मानसम् = मन के द्वारा। वाचिकम् = बचन के द्वारा। कर्मणा = शरीर के द्वारा। समुपार्जितम् = सम्यक किये गये। पापम् = पाप। (कल्मष) श्रीरामस्मरणेन =

श्रीराम नाम के स्मरण से । एव=अन्य सहयोगी के विना भी । तत्क्षणात्=श्रीराम नाम के उच्चारण या (स्मरण) क्षण में । ध्रुवम्=निश्चित रूप से । नश्यति=नाश हो जाते हैं ॥ ६१ ॥

विशेष :-- सञ्चित, क्रियमाण पाप, श्रीरामजी के एक बार स्मरण से तत्काल ही नष्ट हो जाते हैं। तब स्तवराज के पाठ करने वाले की बात ही क्या है। इसीको वर्तमान श्लोक से दिखाया जा रहा है।

मानसं वाचिकं कर्मणा समुपार्जितं पापम्=मन वचन शरीर से अर्जित जितने भी पाप हैं वे सब। श्रीरामस्मरणेनैव=केवल श्रीरामजी के मानसिक स्मरण मात्र से (नष्ट हो जाते हैं)। अर्थात् संचित क्रियमाण पाप स्मरण द्वारा नष्ट हो गये, प्रारब्ध भोग द्वारा नष्ट हो गये श्रीरामजी को प्राप्ति में कोई प्रतिवन्धक नहीं रहा। श्रुतौ यथा- इह पुण्य पापे विधूय निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति। तत्क्षणात् ध्रुवं नश्यति=स्मरण के क्षण में ही निश्चित नष्ट हो जाते हैं। श्रुतौ यथा-- "यथेषीकातूलमग्नौ प्रोतं प्रदूयेतैवं हास्य सर्वेपाप्मानः प्रादूयन्ते" मूञ्ज की रूई में आग लगे पर उसे जलने में देर नहीं लगती उसी प्रकार पाप के जलने में देर नहीं होती। जैसे वहाँ रूई शेष नहीं रहती यहाँ पाप शेष नहीं रहता। अतः "देहान्ते मुक्तिदं शुभम्" वर्तमान शरीरावसान में श्रीरामजी की प्राप्ति रूप मुक्ति स्तवराज के पाठकों को हो जाती है ॥ ६१ ॥

इदं सत्यमिदं सत्यं सत्यमेतदिहोच्यत ।
रामः सत्यं परब्रह्म रामात् किञ्चिन्न विद्यते ॥६२॥

इदं सत्यम्=श्रीरामजी का मन्त्र तारक संज्ञक परं जाप्य है यह सत्य है। इदं सत्यम=श्रीरामजी का नाम भुक्ति मुक्ति प्रदान करने वाला है यह सत्य है। एतत् सत्यम=भगवान् श्रीराम जी का ध्यान मुक्ति साधम है यह सत्य है। अथवा श्रीराम स्तवराज में कथित सभी विषय सत्य हैं इसमें कोई दो राय नहीं है। द्विर्वद्धं सुवद्धं भवति इस न्याय से उसी को तीन बार सत्य शब्द से कहा गया। इह=इस श्रीरामस्तवराज में। रामः=श्रीरामजी। परब्रह्म=परब्रह्म (हैं)। सत्यम=यह भी सत्य हैं (क्योंकि) रामात्=श्रीरामजी से (परे)। किंचिन्त्=कोई भी तत्त्व। न विद्यते=नहीं है ॥६२॥

विशेष :--श्रीरामजी सगुण ब्रह्म हैं उनका कार्यभूत निखिल जगत् है, यदि ये दोनों सत्य हों तो इसमें कथित सभी बातें घटें। श्रुतिगण—

'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' मन सैवेदमाप्तव्यम्' ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति' ब्रह्म सन् ब्रह्माप्नोति'।

से सजातीय विजातीय स्वगतभेद शून्य चिन्मात्र ब्रह्म का ही प्रतिपादन है। इत्यादि आशंका का समाधान प्रस्तुत पद्य द्वारा किया जाता है। इदं सत्यम् इस

स्तवराज में जो कहा गया है कि श्रीरामजी नारायणादि के कारण हैं सम्पूर्ण जगत् के कारण हैं सबके व्यापक है। निरञ्जनादि पद वाच्य हैं। परमतत्त्व हैं। उनका मन्त्र परम जाप्य है, संसार तारक है। श्रीरामनाम भुक्ति मुक्ति प्रदान करने वाला है। श्रीरामजी से भिन्न कोई अक्षरादि पदवाच्य नहीं हैं। एतत् सत्य-मिदं सत्यम्=यह सब सत्य है। तीन बार सत्य कहकर सभी सन्देह की व्यावृत्ति की गई। रामः सत्यं सत्यं परब्रह्म=श्रीरामजी परब्रह्म हैं यह सत्य है। श्रुतौ यथा–"सत्यं ज्ञान मनन्तं ब्रह्म" अर्थात् सर्वोत्कृष्ट, बृहद्गुणयोगी, निखिल हेय प्रत्यनीक, असंख्येय कल्याण गुणगण निलय, सच्चिदानन्द विग्रह श्रीरामजी ही हैं। श्रीरामपद का सच्चिदानन्द अर्थ है। श्रुतौ यथा—

रमन्ते योगिनोऽनन्ते सत्यानन्दे चिदात्मनि। इति रामपदेनासौ परब्रह्मा-भिधीयते ॥ १ ॥ अर्धमात्रात्मको रामो ब्रह्मानन्दैक विग्रहः। धृत्वा व्याख्यान निरतश्चिन्मयः परमेश्वरः ॥ २ ॥

श्रीरामजी से भिन्न परब्रह्म का निषेध किया जा रहा है। रामात्=श्रीराम जी से (भिन्न) किञ्चिन्न विद्यते=कोई भी वस्तु नहीं है। अथवा "रामः सत्यं परं ब्रह्म" से व्यापक जीव, प्रकृति के भी व्यापकत्व का निर्वचन है अर्थात श्रीरामजी परव्यापक है। श्रीरामजी से ही प्रकृति जीव समूह में व्यापकता है। अर्थात् ज्ञाननिष्ठ व्यापकता जीव की देह में स्वरूप निष्ठ व्यापकता प्रकृति में है अतः चिद चिद् शरीर वाले श्रीरामजी से भिन्न कोई तत्त्व, नहीं है और विशिष्टाद्वैत भी उपपन्न होगया ॥ ६२ ॥

तस्माद्रामस्य रूपोऽयं सत्यं सत्यमिदं जगत् ॥

तस्माद्रामस्यरूपोऽयम्=यहाँ अयम् शब्द का प्रयोग आर्ष है। श्रीरामजी का शरीर होने के कारण ही। इदं जगत्=यह संसार। सत्यं सत्यम्=सर्वथा सत्य है।

विशेष—इसी बात को स्पष्ट करते हुये जगत् के सत्यत्व को साध रहे हैं। श्रीरामजी जीव प्रकृति के बाहर भीतर व्याप्त हैं जैसे लोह खण्ड में अग्नि बाहर भीतर व्याप्त रहने के कारण वह लोह खण्ड अग्नि रूप ही हो जाता है इसी प्रकार यह जगत् रामरूप ही हो गया है। अतः "तस्माद्रामस्य रूपोऽयम" कहा गया। श्रीरामजी का रूप होने के कारण ही इदं जगत् सत्यम्=यह संसार सत्य है। यदि जगत् को मिथ्या प्रतीति मात्र माने तो व्याप्य जगत् के अभाव में व्यापक परब्रह्म वाधित हो जायगा। अर्थात् व्याप्याभाव प्रयुक्त परब्रह्मनिष्ठ व्यापकत्वाभाव सिद्ध होने पर सम्पूर्ण वेद वेदान्त स्मृति का व्याकोप हो जायेगा। अद्वैत सिद्धान्त सिद्ध ज्ञानादि उपाय व्यर्थ हो जायँगे। तथा जीव की संसार से विमुक्ति रूप ब्रह्म प्राप्ति नहीं हो सकेगी। अतः रामरूपत्वात् जगत् की सत्यता स्थिर की गई। जगत् सत्य है। श्रुतौ यथा— अजामेकां लोहित शुक्ल कृष्णां

बह्वीं प्रजां जनयन्ती सरूपाम् । अजोह्येको जुषमाणोऽनुशेते जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः॥ गीता में भी जगद् की नित्यता स्पष्ट है । यथा--प्रकृति पुरुषं चैव विद्ध्यनादी उभावपि ॥ अतः प्रकृति एवं जीव के अनादि तथा नित्य होने से सर्वथा इन दोनों तत्वों की स्थिति सिद्ध है । "आकाशवत सर्वगतश्च नित्यः" इस श्रुति द्वारा श्रीरामजी की व्यापकता में नित्यवत्व सिद्ध है।

श्रीसूतउवाच---श्रीरामचन्द्र रघुपुङ्गव राजवर्य राजेन्द्र राम रघुनायक राघवेश।
राजाधिराज रघुनन्दन रामभद्र दासोऽहमद्य भवतः शरणागतोऽस्मि।।६३

श्रीसूतजी ने कहा—

श्रीरामचन्द्र=हे श्रीरामजी आप चन्द्र के सदृश (सन्ताप विनाशक, आह्लादक तथा ज्ञान-भक्ति के प्रकाशक अर्थात् देने वाले) हैं। रघुपङ्गव=हे रघुवंशियों में श्रेष्ठ (दानी अपने आपको भी देने वाले) हैं। राजवर्य=हे राजाओं में श्रेष्ठ (पुत्र सदृश प्रजापालक)। राजेन्द्र=हे चक्रवर्ती महाराज । राम रघुनायक राघवेश=आप ही योगियों में रमण करने वाले, रघुवंशियों के नायक राघवेन्द्र हैं। राजाधिराज रघुनन्दन रामभद्र=आप राजाओं के भी राजा, रघुवंशियों को आनन्द देने वाले, श्रीरामभद्र नाम से व्यवहृत होते हैं। अद्य=आज से। दासोऽहम्=मैं सेवक के रूप से। भवतः=आपकी। शरणागतोऽस्मि=शरण में आया हूँ।

विशेष—श्रीव्यास युधिष्ठिर सम्वाद द्वारा श्रीरामस्तवराज को समाप्त करके श्रीरामजी के भक्त श्रीसूतजी भगवान् श्रीरामजी की शरण में जाकर उनके दर्शन, तथा नामस्मरण में प्रीत्त्यादिशयत्व को दिखला रहे हैं। श्रीरामचन्द्र रघुपङ्गवराजवर्य आदि बहुत नामों के कीर्तन से अपने को श्रीरामजीका ऐकान्तिक भक्त सूचित किये। श्रीव्यास जी द्वारा श्रीरामजी के गुण, स्वरूप, स्वभाव, नाममहिमादि को जानकर अन्य उपाय से भगवान की कृपा की अप्राप्ति समझकर केवल "भवतः शरणागतोऽस्मि" कहकर "सर्व धर्मान् परित्यज्यमामेकं शरणं व्रज" इस भगवदीय आज्ञा का पालन कर रहे हैं। श्रीपञ्चरात्र कथित छः प्रकार की शरणागति में "अनुकूल्यस्य संकल्पः" भगवान की अनुलता के लिये श्रीरामजी को ही एकमात्र उपाय तथा स्वीकार करना चाहिए। दासोऽहम इसका पाँचवें श्लोक के अन्तिम पाद "भवजलधिनिमग्नं मां रक्ष" में अन्वय है ॥ ६३॥

वैदेही सहितं सुरद्रुमतले हैमे महामण्डपे।
मध्ये पुष्पकमासने मणिमये वीरासने संस्थितम् ॥
अग्रे वाचयति प्रभञ्जन सुते तत्त्वं च सद्भिः परम् ।
व्याख्यातं भरतादिभिः परिवृतं रामं भजे श्यामलम् ॥६४

सुरद्रुमतले=कल्पवृक्ष के नीचे। हैमे महामण्डपे=स्वर्णनिमित विशाल मण्डप में। मध्ये=महामण्डप के मध्यभाग में। मणिमये=पद्मरागादि महामणियों से खचित।

पुष्पकम्=पुष्पक नाम के । अथवा महालक्ष्मी की कान्ति से शोभायमान । आसने=आसन पर । वीरासने=वीरासन से । (विवक्षातः तृतीयार्थे सप्तमी) संस्थितम्=सम्यक् विराजमान । वैदेहीसहितं रामम्=श्रीजानकीजी के सहित श्रीरामजी । श्यामलम्=नील-मणि की कान्ति के समान (श्रीरामजी) । अग्रे=आगे । प्रभञ्जन सुते=वायु के पुत्र श्रीहनुमान् जी । सद्भिः=सज्जनों द्वारा । व्याख्यातम्=कहा गया । परंतत्त्वम्=उत्कृष्ट तत्त्व अर्थात् सर्वकारणकारणत्व । वाचयति=(श्रीभरतादि के द्वारा प्रेरित होने पर) श्रीहनुमानजी के द्वारा कहा जा रहा है । भरतादिभिः परिवृत्तम्=श्रीभरत लक्ष्मण शत्रुघ्नादि के द्वारा घिरे हुये । (श्रीरामजी को) भजे=भजता हूँ अर्थात् सेवा में प्रस्तुत हूँ ॥ ६४ ॥

विशेष – लंका से विजय करके श्रीअयोध्या में आये हुये भगवान् श्रीसीता-रामजीकी झाँकी का ध्यान किया जा रहा है । वैदेही सहितम् रामंभजे कीदृशं रामं श्यामलं भरतादिभिः परिवृतञ्च रामम् । पुनः कथं भूतं रामम् । सुरद्रुमतले हैमेमहामण्डपे मध्ये मणिमये पुष्पक (नामक) मासने वीरासने (न) संस्थितम । पुनः कीदृशं रामम । सद्भिः व्याख्यातं परं तत्त्वम् अग्रे प्रभञ्जनसुते । वाचयतिसति । श्रीभरतादि के पूँछने पर मुनियों द्वारा कथित परत्त्व श्रीहनुमान् जी कह रहे हैं । वह परतत्त्व क्या है "यत्परंयद् गुणातीतं यज्ज्योतिरमलं शिवम् । तदेव परमं तत्त्वं कैवल्य पद कारणम् ॥ १ ॥ श्लोक कथित परतत्व श्रीरामजी ही हैं यह व्यासजी के द्वारा कहा गया है । श्रीनारदजी के द्वारा कहा गया श्रीरामजी के विषय में करुणा, दया, भक्तवत्सलता, परविभूति स्वामी आदि । यथा—

प्रात्परतरं तत्त्वं सत्यानन्दं चिदात्मकम् । मनसा शिरसा नित्यं प्रणमामि रघूत्तमम् ॥ १ ॥ सर्वेषां त्वं परंब्रह्म त्वन्मयं सर्वमेव हि । त्वमक्षरं परं ज्योतिस्त्वमेव पुरुषोत्तमः ॥२॥ त्वमेव तारकं ब्रह्म त्वत्तोऽन्यन्नैव किञ्चन । शान्तं सर्वगतं सूक्ष्मं परंब्रह्म सनातनम् ॥३॥ राजीवलोचनं रामं प्रणमामि जगत्पतिम्॥

इस परतत्त्व में दृढ़विश्वास उत्पन्न करने के लिये श्रीहनुमानजी कह रहे हैं॥६४

रामं रत्न किरीट कुण्डलयुतं केयूर हारान्वितम् ।
सीतालंकृतवामभागममलं सिंहासनस्थं विभुम् ॥
सुग्रीवादि हरीश्वरैः सुरगणैः संसेव्यमानं सदा ।
विश्वामित्र पराशरादि मुनिभिः संसेव्यमानं प्रभुम्॥६५

रत्न किरीट कुण्डलयुतम्=रत्न निर्मित मुकुट तथा कुण्डल को धारण किये हुये । केयूरहारान्वितम्=बाजूबन्द तथा हार को धारण किये हुये । सीतालंकृतवामभागम =वामपार्श्व श्रीजानकीजी से सुशोभित । अमलम्=प्रकृति के मल से रहित, अथवा

आश्रित जनके मलको दूर करने वाले । सिंहासनस्थम्=सिंहासन में विराजमान। विभुम्=सर्वव्यापक। सुग्रीवादि हरीश्वरैः=सुग्रीव प्रभृति वानर राजाओं के द्वारा। सुरगणैः=इन्द्रादि देवताओं के द्वारा । सदा=सब काल में। संसेव्यमानम्=सम्यक् सेवित। विश्वामित्र पराशरादि मुनिभिः=विश्वामित्र वशिष्ठ पुत्र पराशर आदि मुनिजनों से। संसेव्यमानम=सम्यक् (अहर्निश) स्तूयमान । प्रभुम्=ऐश्वर्य सम्पन्न। रामम्= श्रीरामजी को। (भजे) इस पूर्व श्लोक में अन्वित है।

विशेष—श्रीजानकीजी के सहित सिंहासन में विराजमान यथायथ विविध विभूषणों से विभूषित भगवान् श्रीरामजी का ध्यान बताया जा रहा है। श्री अयोध्या के राजसिंहासन में स्थित रहने पर भी विभु अर्थात सर्व व्यापक हैं अतएव विश्वामित्र पराशरादि मुनियों द्वारा सार्वकालिक स्तुति सम्पन्न होती है तथा देवताओं के द्वारा कृत सेवा को ग्रहण करते हैं। प्रभु हैं इसीलिये वानर प्रभृति राजाओं के द्वारा सर्वदा सेव्य हैं। विश्वामित्र पराशरादि के आदि पद से जिन ऋषियों के गोत्र चलते हैं वे सभी ऋषि जन संगृहीत हैं। जब ऋषियों द्वारा सेव्य हैं तो उन ऋषियों के अनुयायी तत्तद् गोत्र वाले मनुष्यों द्वारा अवश्य सेव्य होना चाहिए। यदि वे मनुष्य श्रीरामजी की सेवा से पराङ्मुख हैं तो वे उन ऋषियों के गोत्रीय तथा अनुयायी नहीं हैं। यह भाव इस श्लोक के द्वारा सूचित किया गया ॥ ६५ ॥

सकलगुणनिधानं योगिभिः स्तूयमानम् ।
भुजविजितविमानं राक्षसेन्द्रातिमानम् ॥
महितवृषभयानं सीतया शोभमानम् ।
स्मृतहृदयविमानं ब्रह्मरामाभिधानम् ॥ ९६ ॥

सकलगुणनिधानम्=सम्पूर्ण दया दाक्षिण्यादि गुणों के आलय। योगिभिः= श्रीसनत्कुमार नारदादि योगियों द्वारा। स्तूयमानम्=प्रार्थित। भुजविजितविमानम्=हाथ के बल से जीत लिये हैं विमान पुष्पक नामक) को जिन्होंने। राक्षसेन्द्रातिमानम्=रावण को नाश करने वाली समुन्नति है जिसकी। महितवृषभयानम्=पूजित है सर्वोत्कृष्ट पुष्पक विमान जिनका। सीतयाशोभमानम्=श्रीजानकीजी के द्वारा शोभायमान। स्मृत हृदय विमानम्=विगतमान हृदय वाले भक्तों का स्मरण है जिन्हें। ब्रह्म=बृहत्गुणयोगी। रामाभिधानम्=राम नाम है जिनका। (इस प्रकार के विशेषण विशिष्ट श्रीरामजी को मैं भजता हूँ, पूर्व में अन्वित है) ॥ ९६ ॥

विशेष :–ब्रह्म शब्द द्वारा श्रीरामजी को ही कहा जाता है। इसीको दिखला रहे हैं। सकलगुणनिधानम्=निखिल दिव्यगुणगणनिलय। महर्षि बाल्मीकि सम्पूर्ण दिव्य गुणों की सूची बनाकर श्रीनारदजी से पूछा। यथा—

कोन्वस्मिन् सांप्रतं लोके गुणवान् कश्च वीर्यवान् । धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च सत्यवाक्यो दृढ़व्रतः ॥ १ ॥ चारित्रेण च को युक्तः सर्वभूतेषु को हितः । विद्वान् कः समर्थश्च कश्चैक प्रियदर्शनः ॥ २ ॥ आत्मवान् को जितक्रोधो द्युतिमान् कोऽनुसूयकः । कस्य बिभ्यति देवाश्च जातरोषस्य संयुगे ॥ ३ ॥ वा० १।२ ॥

इन सम्पूर्ण गुणों की खानि चरित्रवान् व्यक्ति पर ही निर्धारित है । सच्चरित्र से देवताओं को भी भय होता है । "चारित्रेण च को युक्तः" तथा "प्रिय दर्शनः से श्रीराम जी का परममाधुर्य तथा "कस्य बिभ्यति देवाश्च" से ऐश्वर्य व्यक्त किया । "कश्चैक प्रियदर्शनः" से मनोनयनानन्द दाता, "जितक्रोधः" से आश्रित जनरक्षण में सतत् प्रयत्नशील सूचित हुआ । श्रीनारदजी ने कहा कि जिन गुणों को आपने कहा है उन गुणों से युक्त पुरुष अत्यन्त दुर्लभ है त्रैलोक्य में मेरा अव्याहत संचरण होता है मेरी दृष्टि में इन समस्त गुणों से युक्त एक ही पुरुष है । यथा – इक्ष्वाकुवंश प्रभवो रामो नाम जनैः श्रुतः । ये समस्त गुण (जिन्हें आपने कहा भी नहीं) उन्हीं श्रीरामजी में मैंने सुना तथा देखा है। "स च सर्वगुणोपेतः कौसल्यानन्दन वर्धनः" तथा 'तमेवं गुणसम्पन्नं रामं सत्यपराक्रमम्' आदि । भगवान् श्रीरामजी के उन दिव्यगुण की एक झलक श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण के अयोध्या कांडस्थ प्रथम सर्ग में है । यथा—

स हि वीर्योपपन्नश्च रूपवाननसूयकः । भूमावनुपमः सूनुर्गुणैर्दशरथोपमः ॥ १ ॥ स तु नित्यं प्रशान्तात्मा मृदुपूर्वञ्च भाषते । उच्यमानोऽपि परुषं नोत्तरं प्रतिपद्यते ॥२॥ कथंचिदुपकारेण कृतेनैकेन तुष्यति । न स्मरत्यपकाराणां शतमप्यात्मवत्तया ॥ ३ ॥ शीलवृद्धैर्ज्ञान वृद्धैर्वयो वृद्धैश्च सज्जनैः । कथ यन्नास्त वैनित्यमस्त्रयोग्यान्तरेष्वपि ॥४॥ बुद्धिमान् मधुरभाषी पूर्वभाषी प्रियंवदः । वीर्यवान्न च वीर्येण महता स्वेन विस्मितः ॥ ५ ॥ न चानृतकथोविद्वान् वृद्धानां प्रतिपूजकः । अनुरक्तः प्रजाभिश्च प्रजाश्चाप्यनुरज्यते ॥६॥ सानुक्रोशो जितक्रोधो ब्राह्मण प्रतिपूजकः । दीनानुकम्पी धर्मज्ञो नित्यं प्रग्रह वाञ्छुचिः ॥ ७ ॥ कुलोचितमतिः क्षात्रं धर्मं स्वं वहुमन्यते । मन्यते परया कीर्त्या महत्स्वर्गफलं ततः ॥८॥ नाश्रेयसि रतो यश्च न विरूद्धकथारूचिः । उत्तरोत्तरयुक्तीनां वक्ता वाचस्पतिर्यथा ।९॥ अरोगस्तरूणो वाग्मी वपुष्मान् देशकालवित् । लोके पुरुषसारज्ञः साधुरेको विनिर्मितः॥१०॥ स तु श्रेष्ठ गुणैर्युक्तः प्रजानां पार्थिवात्मजः । वहिश्चरइव प्राणो वभूव गुण तः प्रियः॥११॥

श्रीरामजी के गुणोंका किञ्चिदंश ही उद्धृत किया गया है । स्मृतहृदयविमानम् =हृदयविमानं मान रहित हृदयो येषान्ते हृदयविमानाः प्रपन्नाः भक्तास्ते स्मृता येन तमित्यर्थः । अर्थात् भगवान के स्मरण से ही भक्तजनों का योग क्षेम होता रहता है ।

यथा—दर्शन ध्यान संस्पर्शैः मत्स्यकूर्मविहङ्गमाः । स्वापत्यानि पुष्णन्ति तथाऽहमपि पद्मज ॥ १ ॥ ब्रह्मरामाभिधान=ब्रह्म शब्द सामान्य वाचितया समस्त भगवद् विग्रह का बोधक होने के कारण तदव्यवहित राम शब्द का प्रयोग किया गया। रामअभिधान अर्थात् नाम (संज्ञा) है जिसकी, इस प्रकार विशेषण विशिष्ट श्रीरामजी को भजता हूँ। ब्रह्म शब्द परब्रह्म का बोधक है अतः परब्रह्माभिन्न रामजी भजन के विषय हैं।

रघुवर तव मूर्तिर्मामके मानसाब्जे । नरकगति हरन्ते नामधेयं मुखेमे ॥
अनिश मतुलभक्त्या मस्तके त्वत्पदाब्जे ।
भवजलधिनिमग्नं रक्षमामार्त्त वन्धो ॥६७॥

रघुबर=हे रघुवंशियों में श्रेष्ठ (श्रीरामजी)। मामके=मेरे। मानसाब्जे=हृदयकमल में। अनिशम्=सतत्। तव मूर्तिः=आपकी नितान्त कमनीय नीलमणि के समान मूर्ति (का साक्षात्कार हुआ करे) नरकगति हरम्=सभी प्रकार के तापोंका नाशक। ते=आपका। नामधेयम्=नाम (श्रीराम) मे=मेरे। मुखे=मुख में। अतुलभक्त्या= अतुलित अनुराग से। (अनिशम् वर्तमान रहे) त्वत्पदाब्जे=आपके चरणारविन्द युगल (अतुलित अनुराग से सर्वदा मेरे मस्तक में विराजमान रहें)। आर्तवन्धो=हे दुःखियों के दुःख को देखकर स्वयं दुःख का अनुभव करने वाले। जलधि निमग्म्=जन्ममरणरूप संसार सागर में डूबता हुआ। माम्=मुझको। रक्ष=रक्षा करें, अर्थात् जन्म मरण से वचायें ॥ ६७ ॥

विशेषः---श्रीराम नाम तथा स्वरूप सर्वदा परमानुराग से मुझे प्राप्त होता रहे यह प्रार्थित है। नरकगतिहरम्=श्रीराम नाम का जापक नरक नहीं जाता। स्वर्गीय सुखों को भी वह विघ्न समझता है। ब्रह्मा का वैभव भी उसकी दृष्टि में अल्प है। परम निर्मल अन्तःकरण वाले भक्तों को ही भगवान् मुक्ति (भगवत्प्राप्ति) प्रदान करते हैं। तब उनके कीर्तन से पाप नाश हो गया इसमें क्या आश्चर्य है। यथा—

यस्मिन्न्यस्तमतिर्न याति नरकं स्वर्गोऽपि यच्चिन्तने । विघ्नो यत्र निवेशितात्ममनसो ब्राह्मोऽपि लोकोऽल्पकः । मुक्तिं चेतसि यः स्थितोऽमलधियां पुंसांददात्यव्ययः। किं चित्रंयदघं प्रयाति विलयं तत्राच्युते कीर्तिते ॥१॥

विवश होकर भी भगन्नाम कीर्तन से नरक पहुँचाने वाले समस्त पातक सिंह से डरे मृग के समान पुरुष को छोड़ देते हैं। भक्ति पूर्वक यदि नाम जपा गया तो उससे श्रेष्ठ अन्य कोई साधन नहीं है। जैसे अग्नि के संयोग से सभी धातु भस्म हो जाते हैं उसी प्रकार सम्पूर्ण पाप दग्ध हो जाते हैं। यथा—अवशेनाऽपि यन्नाम्नि कीर्तिते सर्व पातकैः । पुमान विमुच्यते सद्यः सिंहत्रस्तैर्मृगैरिव ॥ १ ॥ यन्नामकीर्तनं भक्त्या विलापन-मनुत्तमम्। मैत्रेयाशेष पापानां धातूनामिव पावकः ॥ २ ॥ एक बार भी यदि भगवान का

नाम उच्चरित हो जाता है तो वह मोक्ष के लिये बद्ध परिकर हो जाता है। यथा—सकृदुच्चरितं येन हरिरित्यक्षरद्वयम्। बद्धं परिकरस्तेन मोक्षाय गमनं प्रति ॥१॥ भगवान के नाम कीर्तन से बड़े उग्र पाप नष्ट होते हैं सद्यः नष्ट होते हैं उसमें आवृत्ति की आवश्यकता नहीं है। यथा हत्यायुतं पानसहस्रमुग्रं गुर्वङ्गनाकोटिनिषेवणञ्च। स्तेयान्यसंख्यानि हरेः प्रियेण गोविन्दनाम्ना निहतानि सद्यः ॥ १ ॥ इसलिये श्रीप्रहलाद जी ने भगवत्प्रीति को ही माँगा है। यथा—नाथयोनि सहस्रेषुयेषु येषु व्रजाम्यहम्। तेषुष्वच्युताभक्तिरच्युतास्तु सदा त्वयि ॥ १ ॥ या प्रीतिरविवेकानां विषयेष्वनपायिनी। त्वामनुस्मृतः सामे हृदयान्मापसर्पतु ॥ ६७ ॥

रामरत्नमहं वन्दे चित्रकूटपतिं हरिम्।
कौशल्याशुक्ति सम्भूतं जानकीकण्ठ भूषणम् ॥६८॥

चित्रकूटपतिम्=श्रीचित्रकूट नामक स्थल विशेष के पति। हरिम्=दुःख के हरण करने वाले। कौशल्याशुक्तिसम्भूतम=कौशल्या रूप शुक्ति (सूती) में आविर्भूत। जानकीकण्ठभूषणम्=श्रीजानकी जी के कण्ठ के आभरण। रामत्नम=श्रीराम रूप में विराजमान रत्न को। अहं वन्दे=में प्रणाम करता हूँ ॥ ६८ ॥

विशेष :—भगवान् श्रीरामजी का विहारस्थल चित्रकूट का स्मरण करके चित्रकूटपति श्रीरामजी की बन्दना की जाती है। चित्रकूट पतिम् चित्राणि=मणिमाणिक्य स्वर्ण रत्नादि के विचित्र कूट (पर्वत शृङ्ग) हैं जहाँ उस चित्रकूट के स्वामी। श्रीरामजी श्रीजानकी जी तथा लक्ष्मणजी से परम पुण्यारण्य चित्रकूट का वर्णन करके अपने निवास की इच्छा व्यक्त की है। यथा—

आदीप्तानिव वैदेहि सर्वतः पुष्पितान्नगान्। स्वैः पुष्पैः किंशुकान् पश्य मालिनः शिशिरात्यये ॥ १ ॥ पश्य भल्लातकान् बिल्वान् वानरैरुपसेवितान्। फलपुष्पैरवनतान्नूनं शक्ष्याम जीवितुम् ॥२॥ पश्य द्रोण प्रमाणानि लम्बमानानि लक्ष्मण। मधूनि मधुकारीभिः संभृतानि नगे नगे ॥ ३ ॥ एषक्रोशति दात्यूहस्तं शिखी प्रतिकूजति। रमणीये वनोद्देशे पुष्प संस्तर संकटे। ४। मातङ्गयूथानुसृतं पक्षिसंघानुनादितम्। चिचकूटमिमं पश्य प्रवृद्ध शिखरं गिरिम् ॥ ५ ॥ समभूमितले रम्ये द्रुमैर्बहुभिरावृते। पुण्ये रंस्याम हे तात चित्रकूटस्य कानने ॥६॥ वा०रा०अ० ५६।६-११ ॥

सुरम्य चित्रकूट तथा परमपावनी मन्दाकिनी को प्राप्त करके श्रीअयोध्या विरह जन्य दुःख की निवृत्ति होने पर भगवान् श्रीरामजी परम प्रसन्न हुये। यथा—

सुरम्यमासाद्य स तु चित्रकूटं नदीं च तां माल्यवतीं सुतीर्थाम्।
ननन्दरामो मृगपक्षि जुष्टां जहौ च दुःखं पुरविप्रवासात् ॥ वा०अ० ५६॥
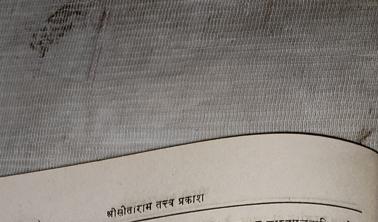
चित्रकूट में कामदानाथ पर्वत के समीप पर्णकुटी बनाकर वास्तुपूजनादि करके भगवान् श्रीरामजी बारह वर्ष पर्यन्त निवास किये। आगे की लीलायें भगवान् की इच्छा मात्र से सम्पन्न हुईं यह भी एक प्रबल मत है। चित्रकूट से गये नहीं। रत्नरूप श्रीरामजी की वन्दना की जा रही है जो श्री जानकी जी के कण्ठ के भूषणभूत हैं। इस रत्न का आविर्भाव कोशलदेश के राजा की पुत्री कौशल्या रूपी शुक्ति से है। इस रत्न के मूल्य का परीक्षण श्रीजानकी के द्वारा हुआ, अतएव उन्होंने ही इसे अपने कण्ठ में धारण किया।

अतएव श्रीराम मन्त्र की प्रचारिका श्रीजानकी जी मानी गई हैं। इनके द्वारा ही तारक मन्त्र प्रचलित हुआ है। वर्णाश्रम के धर्म के अनुष्ठान से अन्तःकरण पवित्र होता है। उस पवित्र अन्तःकरण में भक्तियोग का अभ्यास करने पर ही श्रीभगवान् में प्रेम उत्पन्न हो जाता है जो अत्यन्त अनुकूल और प्रिय होता है। प्रेम मिश्रित ध्यान परभक्ति है भगवत्प्राप्ति का प्रथम सोपान है। भगवद् विषयक प्रीति ज्ञान का ही एक आकार है इस भक्ति रूपी ज्ञान को ही शास्त्रों में मोक्ष का साधन माना गया है। ब्रह्म को प्राप्त करके ही जीव सुखी होता है। लौकिक पदार्थ भोग्य एवं जड़ हैं भोक्ता के लिये अनुकूल लगते हैं सुख बन जाते हैं जड़ होने के कारण अपने लिये अनुकूल नहीं लगते। भगवान् इससे विलक्षण हैं अपने लिये भी अनुकूल लगते हैं। परब्रह्म सदा सुखीबनकर रहता है। और भक्तों को साक्षात्कार करा के उन्हें भी सुखी बना देता है। परब्रह्म ही श्रेष्ठ तत्त्व है लीलाविभूति तथा त्रिपाद्विभूति का स्वामी है। भक्तों की सुलभता के लिये ही सौशील्य, सौन्दर्य, वात्सल्य आदि गुणों की खानि हैं। चेतना चेतन के स्वामी हैं। जब साधक यह जान लेता है कि श्रीरामजी का मैं दास हूँ सेवक हूँ श्र सीतारामजी मेरे स्वामी हैं तब उसे अपार प्रीति होती है। जीव अपने को भगवान् के परतन्त्र जानता है, भगवान् को स्वतन्त्र कर्त्तुम कर्त्तुमन्यथा कर्त्तुं समर्थ जानकर, और उनका अविच्छेद्य सम्बन्ध जानकर इसके हर्ष का ठिकाना नहीं रहता। अतः इसके द्वारा जो भी कार्य होता है वह भगत्सेवा के ही अन्तर्गत है। कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग के अनुष्ठान से परम प्रसन्न श्रीसीताराम जी साधक को संसार छुड़ाकर ततत् अपनी सेवा का स्थान परमपद देकर सर्वदा के लिये सुखीकर देते हैं। जीव और भगवान् के मध्य में श्रीजानकी जी ही साक्षात्साधनरूप होकर भगवान् की प्राप्ति का श्रेय प्रदान करती हैं ॥६८॥

॥ हर्याचार्यकृत श्रीरामस्तवराज की तात्पर्यबोधिका हिन्दी टीका समाप्त ॥

॥ समाप्तश्चायं ग्रन्थः ॥

जगद्गुरु श्रीमदनन्तानन्दाचार्यप्रणीतं ।

❀ श्रीयतीन्द्राष्टकम् ❀

नमो भगवते श्रीमत्सुशीलानन्ददायिने । राघवानन्दशिष्याय यतीन्द्राय नमो नमः ॥१
नमो भगवते श्रीमत्सूनवे पुण्यसद्मनः । आचार्य सार्वभौमाय यतीन्द्राय नमो नमः ॥२
नमो भगवते श्रीमद्रामानन्दाय धीमते । आनन्दभाष्यकाराय यतीन्द्राय नमोनमः॥३
नमो भगवते श्रीमद्वैष्णवधर्मरक्षिणे । विजेत्रेऽनन्तसिद्धानां यतीन्द्राय नमोनमः ॥४
नमो भगवते श्रीमद्रामभक्ति प्रचारिणे।सम्प्रदायाब्धिचन्द्राय यतीन्द्राय नमोनमः॥५
नमो भगवते श्रीमद्विशिष्टाद्वैतवादिने । वादिवारणसिंहाय यतीन्द्राय नमो नमः॥६
नमो भगवते श्रीमद्रामाय गुणसिन्धवे । तीर्थराजेऽवतीर्णाय यतीन्द्राय नमोनमः॥७
नमो भगवते श्रीमद्वेदतत्त्वार्थभाषिणे । निगमागमरक्षित्रे यतीन्द्राय नमो नमः ॥८

❀ श्रीरामाष्टकम् ❀

अगाधसद्गुणाम्बुधिं समस्तविश्वकारणम्। समस्तलोकनायकं प्रणौमि राममीश्वरम्॥१
स्वभक्तभीतिभञ्जनं दिनेशवंशमण्डनम् । क्षितीशनाथनन्दनं प्रणौमि राममीश्वरम्॥२
ऋषीन्द्रयज्ञरक्षकं मुनीन्द्रदारतारकम् । प्रकृष्टशक्तिदर्शकं प्रणौमि राममीश्वरम् ॥३
उमेशचापभञ्जकं दयाब्धिमैथिलीधवम् । कुठारपाणिसंस्तुतं प्रणौमि राममीश्वरम् ॥४
स्वतातसत्यपालकं वनाधिवासशालिनम्। मुनीन्द्रवृन्दपूजितं प्रणौमि राममीश्वरम् ॥५
कुरङ्गराक्षसापहं सुकण्ठमित्रतावहम् । सुबद्धदृप्तसागरं प्रणौमि राममीश्वरम् ॥६
दशास्यसंविनाशकं विभीषणस्य राजदम् । अजादिदेववन्दितं प्रणौमि राममीश्वरम्॥७
अविघ्नराज्यकारक हनूमदादिसेवितम्। सुभुक्तिमुक्तिदायकं प्रणौमि राममीश्वरम्॥८
वैष्णवभाष्यकारश्रीवैष्णवाचार्यनिर्मितम् । रामाष्टमिदं भूयादखिलश्रेयसे सताम् ॥९

❀ वायुनन्दनाष्टकम् ❀

सुरेश्वरादिपूजितं मुनीन्द्रवृन्दवन्दितम् । खरारिहस्तलालितं नमामि वायुनन्दनम् ॥१
खगेशदर्पभञ्जनं स्वभक्तवृन्दरञ्जनम् । कुभाग्यचक्रगञ्जनं नमामि वायुनन्दनम् ॥२
स्वनाथदामरक्षकं श्रुते रहस्यशिक्षकम्। कपीशमत्तघातकं नमामि वायुनन्दनम् ॥३
अजेयपौरुषान्वितं दयाब्धिलङ्घिताम्बुधिम् ।दास्यपूर्विदाहकं नमामि वायुनन्दनम्॥४
ज्वलत्सुवर्णवर्णवद्वगंजनेयवर्णिनम् । मनोजवं गुणार्णवं नमामि वायुनंदनम् ॥५
पिशाचभूततर्जकं कुमंत्रतंत्रनाशनम् । बलिष्ठवज्रदेहिनं नमामि वायुनन्दनम् ॥६
महागदाऽद्रिधारिणं त्रितापनाशकारिणम् ।सुकण्ठभीतिहारिणं नमामि वायुनन्दन्॥७
परेशरामसेवकं विदेहजाशुचोहरम् । समस्तविघ्ननाशकं नमामि वायुनन्दनम् ॥८
वैष्णवभाष्यकारश्रीवैष्णवाचार्यनिर्मितम् । सम्भूयाष्टकं चेदं वायुनन्दनतोषकम् ॥९

❀ श्रीहनुमतेनमः ❀

भूमिका

आत्मपरमात्म निरुपण करनेवाले दर्शनोंमें वेदान्तदर्शन ही दर्शन शिरोमणिरुपसे प्रसिद्ध है। वेदान्तके अद्वैत द्वैत द्वैताद्वैत आदि सिद्धान्तोंमें परमवैदिक युक्तियुक्त तथा ब्रह्मसूत्रकार भगवान श्रीवेदव्यासजी बोधायनवृत्तिकार जगद्गुरु श्रीपुरुषोत्तमाचार्यजी बोधायन और प्रस्थानत्रय (उपनिषद् गीता तथा ब्रह्मसूत्र) के आनन्दभाष्यकार जगद्गुरु श्री रामानन्दाचार्यजी यतीन्द्र द्वारा संरक्षित श्रीरामानन्दवेदान्तका विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त ही मुक्ति का यथार्थ पथप्रदर्शक है। विशिष्टाद्वैतसिद्धान्तकी प्रक्रियाके प्रकाशक ग्रन्थ तत्त्वत्रयबोध श्रौतसिद्धान्तबिन्दु चिदात्मप्रबोध प्रबोधकलानिधि वेदन्तचिन्तामणि तथा प्रमेयपरिशोधिनी इत्यादि संस्कृतभाषा में और शिक्षासुधा विशिष्टाद्वैतसिद्धान्तसार त्रिरत्नी तत्त्वत्रयनिरुपण तत्त्वत्रयदर्पण तत्त्वालोक तथा श्रीरामानन्दसिद्धान्तसार आदि राष्ट्रभाषा हिन्दी में हैं। तोभी मैने कोमलबुद्धि वेदान्ततत्त्वजिज्ञासुओंकेलिये पद्यमें अति सूक्ष्म तथा अत्यन्त सुगम यह "श्रौतसिद्धान्त चालीसा" अथवा "वेदन्तसिद्धान्तसार" नामक निबन्ध रचा है। यह ग्रंथ श्रीरामानन्दवेदान्त की बालपोथी है। समस्त श्रीरामानन्दीय विरक्त सन्तों महन्तों विद्वानों छात्रों श्रीरामायणी महानुभावों तथा सद्गृहस्थ बन्धुओं से नम्र निवेदन है कि आप सर्व महानुभाव इस छोटे से ग्रन्थ के प्रचार द्वारा श्रीरामानन्द वेदान्त के विशाल प्रचार में सहायक बनकर मेरे प्रयास को सफल बनाने की कृपा करें।

❀ एक आवश्यक वक्तव्य ❀

श्रीरामानन्द सम्प्रदाय के सत्य इतिहास को न जानने वाले कुछ लेखकों के लेख के आधार पर "जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यजी जगद्गुरु श्रीरामानुजाचार्यजीकी परम्परा के आचार्य हैं" इस प्रकार जो कहा जाता है, वह अप्रमाणिक और असत्य हैं। क्योंकि गीता के आनन्दभाष्य के मंगलाचरण में जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यजीने अपनी परम्परा स्वयं ही लिखी है। यह परम्परा जगद्गुरु श्रीरामानुजाचार्य जी की परम्परा से अत्यन्त भिन्न है। यथा--

श्रीरामं जनकात्जामनिलजं वेधोवशिष्टावृषी, योगीशं च पराशरं श्रुतिविदं व्यासं जिताक्षं शुकम् श्रीमन्तं पुरुषोत्तमं गुणनिधिं गङ्गाधराद्यन् यतीन् श्रीमद्राघवदेशिकं च वरदं स्वाचार्यवर्यं श्रये ॥ २ ॥

अर्थ—श्रीरामजी श्रीजानकीजी श्रीहनुमान्जी ब्रह्मा वशिष्ट ऋषि योगीश्वर पराशर वेदवित् श्रीव्यासजी जितेन्द्रिय शुकदेवजी गुणनिधि श्रीमान् पुरुषोत्ताचार्य तथा गंगाधराचार्य इत्यादि यतिराजों और आचार्यवर्य श्रीमद् राघवानन्दजी का मैं आश्रय (अवलम्बन) करता हूँ। ता०-११-७-१९७५ ई०

उपनिषद्भाष्यकार:—
स्वामी श्रीवैष्णवाचार्य वेदान्ततीर्थ

❀ सीतारामभ्यां नमः ❀

❀ आनन्दभाष्यकार जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्याय नमः ❀

❀ जगद्गुरु श्रीटीलाचार्याय नमः ❀ जगद्गुरु श्रीमंगलाचार्याय नमः ❀

उपनिषद्भाष्यकार स्वामी श्रीवैष्णवाचार्य वेदान्ततीर्थविरचित

श्रौतसिद्धान्त चालीसा अथवा वेदान्तसिद्धान्तसार
अर्थ प्रबोधिनी सहित

मुक्तिमार्गज्ञापक रचौं वन्दि अखिलपति राम ।
सरल श्रौतसिद्धान्त का चालीसा अभिराम ॥१॥

अर्थप्रबोधनी

वन्दि रामपद पद्मयुग भवसागर दृढ़सेतु ।
विरचौं अर्थप्रबोधिनी अर्थप्रबोधन हेतु ॥

मैं (स्वामी वैष्णवाचार्य वेदान्तीर्थ) सर्वेश्वर भगवान् श्रीरामजी का वन्दन करके मुक्तिमार्ग (भक्ति) का ज्ञापक सरल और सुन्दर श्रौतसिद्धान्त चालीसा (वेदान्त सिद्धान्तसार) रचता हूँ ॥ १ ॥

भाष्यकार नमि जगद्गुरु रामानन्दाचार्य ।
वन्दौं टीलाचार्यवर तथा मंगलाचार्य ॥२॥

आनन्दभाष्यकार अनन्त श्रीजगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यजी को नमस्कार करके अनन्त श्रीजगद्गुरु श्रीटीलाचार्यजी तथा श्रीअनन्त जगद्गुरु श्रीमंगलाचार्यजीको नमस्कार करता हूँ ॥ २ ॥

राम भजे नाशत सब खेदा । ब्रह्म राम प्रतिपादत वेदा ॥
श्रुति सिद्धान्त विशिष्टाद्वैता । नहिं श्रुति युक्ति रहित अद्वैतः ॥१॥

श्रीरामजी को भजने से सब शोक नष्ट हो जाते हैं । वेद परब्रह्म भगवान् श्री रामजीका प्रतिपादन करते हैं । श्रुतियोंका सिद्धान्त विशिष्टाद्वैत है । श्रुतियों से रहित अद्वैतमत श्रुतिसिद्धान्त नहीं है ॥१॥

आनन्दभाष्यकार अनन्त श्रीजगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यजीने भी कहा है कि—
"एवञ्चाखिल श्रुतिस्मृतीतिहासपुराण सामाञ्जस्यादुपपत्तिबलाच्च विशिष्टाद्वैतमेवास्य मीमांसाशास्त्रस्य विषयो न केवलाद्वैतम् ।„ (आनन्दभाष्य) अर्थ-इस प्रकार से सम्पूर्ण श्रुति इतिहास तथा पुराणोंके सामंजस्य (संगति) होनेसे और युक्ति (तर्क) बल से विशिष्टाद्वैत ही इस ब्रह्ममीमांसाशास्त्रका विषय है केवलाद्वैत नहीं । अनन्त श्री

जगद्गुरु श्रीटीलाचार्यजीने भी कहा है कि—"कोउ द्वैत अद्वैत कोउ कोउ कह द्वैताद्वैत। युक्तियुक्त टीला कहत श्रौत विशिष्टाद्वैत ॥" अनन्त श्री जगद्गुरु श्रीमंगलाचार्यजी ने भी कहा है कि "वैदिक मत विशिष्टाद्वैत"।

औपनिषद मत अर्थ विवेका। कारण कार्य ब्रह्म दोउ एक ॥
ब्रह्म प्रलय में कारण रूपा। कार्य ब्रह्म सोई जगरूपा ॥२॥

उपनिषदों के मत विशिष्टाद्वैत) का अर्थ है—कारण ब्रह्म और कार्यब्रह्म की एकता। ब्रह्म प्रलयदशा में कारणरूप और सृष्टि अवस्था में कार्यरूप (जगत्‌रूप) होता है ॥ २ ॥

चित् औ अचित् विशिष्टहि रामा। ब्रह्म दिव्यतनु शुभगुण धामा।
दोष रहित सच्चित् सुख रूपा। जेहि अनन्त गुण देह स्वरूपा ॥३॥

परब्रह्म श्रीरामजी सदा चित् (चेतन) और अचित् (अचेतन) तत्त्वों से विशिष्ट ही (युक्त ही) रहते हैं। श्रीरामजी दिव्य (अप्राकृत) देह वाले तथा शुभ सत् चित और आनन्द रूप हैं। जिन श्रीरामजी के देह गुण और स्वरूप अनन्त (अन्तरहित) हैं ॥ ३ ॥

अद्वितीय स्वामी भगवन्ता। वेदवद्य सर्वज्ञ नियन्ता ॥
सर्वेश्वर विभु सब जगकारी। सकल विश्व पालक संहारी ॥४॥

श्रीरामजी अद्वितीय (अनुपम) स्वामी भगवान् (ज्ञान बल वीर्य ऐश्वर्य शक्ति और तेज इन छः गुणों वाले) वेदों से जानने योग्य सर्वज्ञ सर्वनियन्ता सर्वेश्वर विभु (व्यापक) तथा सर्व जगत् के सृष्टि पालन और संहारकर्त्ता हैं ॥ ४ ॥

विश्वमूल ब्रह्मादि विधाता। सर्वाराध्य सकलफलदाता ॥
उभय विभूति राम-परतंत्रा। राम स्वतंत्र भक्त-परतंत्रा ॥५॥

श्रीरामजी जगत् के मूल (उपादानकरण) हैं। ब्रह्मा इत्यादि देवों के उत्पादक हैं। सर्व के आराध्य अथवा सर्व कर्मों से आराध्य हैं और सर्वफलों के देने वाले हैं। लीलाविभूति (प्राकृतलोक) और नित्यविभूति (अप्राकृतलोक=भगवद्धाम) दोनों ही श्रीराम जी के आधीन हैं। श्रीरामजी परम स्वतन्त्र होने पर भी भक्ताधीन रहते हैं ॥५॥

सुमिरत कबहुँ न निजजन-दोषा। करत अल्प सुकृतहुसे तोषा।
निराधार हरि निखिलाधारा। धारत करत स्व इच्छा द्वारा ॥६॥

श्रीरामजी कभी भी अपने भक्तों के दोषों का स्मरण नहीं करते । थोड़े से ही सत्कर्म से सन्तुष्ट हो जाते हैं । पापों के हरण करने वाले हैं। स्वयं आधार रहित हैं परन्तु सर्व के आधार हैं। श्रीरामजी सर्व का धारण तथा सर्व की सृष्टि अपनी इच्छा से करते हैं ॥ ६ ॥

प्रलय माहिं रघुवर तनु रूपा। सूक्ष्म अचित् चित् नाम न रूपा।
जगत् सृष्टि जब राम विचारैं। नाम रूप तब दोउ तनु धारैं ॥७

प्रलयदशा में श्रीरामजी के देहरूप चित् और अचित् दोनों सूक्ष्म होते हैं। इस कालमें उक्त दोनों तत्त्व नाम और रूप से विहीन होते हैं। जब श्री रामजी जगत्की सृष्टि करनेका विचार करते हैं तब श्रीरामजीके उक्त दोनों (चित् और अचित्) शरीर नाम और रूपको धारण करते हैं ॥ ७ ॥

श्रीगीतापति–इच्छा द्वारा। जीव प्रकृति दोउ लहैं विकारा॥
जीव-स्वरूप नित्य अविकारी। जीव स्वभावहिं होत विकारी॥८

श्रीरामजी की इच्छा से जीव और प्रकृति दोनों तत्त्व विकार को प्राप्त होते हैं। जीव का स्वरूप तो सदैव विकार रहित होता है। जीव का स्वभाव (ज्ञान) ही विकार को प्राप्त होता है ॥ ८

मति विकास संकोच विकारा। जीवहिं होत प्रकृति तनुद्वारा।
ज्ञाता ज्ञान अजड सब जीवा। अणुस्वरूप विभु नाहिं असींवा॥९॥

प्राकृत शरीर द्वारा जीव को ज्ञान संकोच विकास रूप विकार प्राप्त होता है। सभी जीव धर्मभूत ज्ञान (बुद्धि) के आश्रय (ज्ञाता) ज्ञानरूप अजड़ (स्वयं प्रकाश) और अणुस्वरूप हैं। कोई भी जीव सीमारहित विभुपरिमाण वाला (व्यापक) नहीं होता है ॥९

करण कलेवर नहिं नहिं प्राना। स्वकृत कर्मफल भोगत नाना॥
ईश्वर अंश नित्य सुखरूपा। कर्माधीन रंक कोउ भूपा॥१०॥

जीवात्मा इन्द्रिय देह और प्राण से भिन्न है। ईश्वर के अंश (ईश्वर देह) उत्पत्ति विनाश शून्य (नित्य) और सुखरूप है। नाना प्रकार के निजकृत कर्मों के फलों को भोगते हैं। कर्माधीन होने से ही कोई राजा और रंक (धनहीन) होता है॥ १०॥

जीव नियाम्य नियामक रामा। रामभक्ति विन नहिं विश्रामा।
भक्ति रामसुमिरन इकतारा। यथा अटूट तेल की धारा॥११॥

जीव नियाम्य और श्रीरामजी नियामक हैं। श्रीराम भक्ति बिना जीव को विश्राम नहीं मिलता है। अटूट तेल की धारा के समान श्रीरामजी का सतत स्मरण ही भक्ति है॥ ११॥

कर्म ज्ञान अंगिनि भव-सेतू। सप्त विवेकादिक तेहि हेतू।
अणुहुँ जीवका व्यापक ज्ञाना। तेहिंसे सब तनु सुख दुख जाना॥१२

कर्म और ज्ञान रूप अंगों वाली भक्ति भव सागर का सेतु (पुल) है। भक्ति के सात हेतु हैं—"१-विवेक" जाति आश्रय और निमित्त दोषों से दुष्ट अन्नको न खाकर काया को शुद्ध रखना। जाति दुष्ट अन्न लशुन प्याज आदि। आश्रय दुष्ट अन्न पतित चोर आदि का अन्न। निमित्त दुष्ट अन्न उच्छिष्ट (जूठा) बासी तथा केश कृमि और विषमिश्रित अन्न आदि। "२-विमोक" शब्द स्पर्श आदि पंच विषयों का अनादर। "३-अभ्यास" फलेच्छा रहित भगवान् के विग्रहका चिन्तन करना। "४-क्रिया" पंच

महायज्ञ तथा अन्य आश्रयधर्म। ५-कल्याण"-अहिंसा सत्य दया दान सरलता तथा चोरी न करने का संकल्प। "६-अनवसाद" शोक और भय से होने वाली दीनता का अभाव। "७-अनुद्धर्ष" मनको शिथिल करने वाले अति सन्तोष का अभाव। जीव अणु है परन्तु उसका ज्ञान व्यापक है। उसी ज्ञान से हृदयस्थ जीव सर्व शरीर के सुख दुख को जानता है॥ १२॥

जीव भिन्न प्रत्येक शरीरा। सो न ब्रह्म परब्रह्म शरीरा॥
सकल जीव जो होवैं एका। सुखी दुखी का कथ विवेका॥१३॥

प्रत्येक शरीर के जीव भिन्न भिन्न हैं अर्थात् सर्व शरीरों के जीव एक नहीं हैं। जीव ब्रह्म नहीं है किन्तु ब्रह्मका शरीर। सब जीव यदि एक ही हों तो कोई जीव सुखी है और कोई जीव दुखी है यह भेद कैसे हो ?॥ १३॥

अन्तःकरण-भेद से भेदा। सौभरितनु क्यों नहिं सो भेदा॥
जीव ब्रह्म तो क्यों दुखभोगा। पावत विविध जातिके रोगा॥१४॥

जो ऐसा कहो कि-"अन्तःकरण के भेद से सुखीदुखीपने का भेद है।" तो मैं पूछता हूँ कि—सौभरि ऋषिके अनेक शरीर होने पर भी सुखीदुखीपने का भेद क्यों नहीं हुआ ? इसी प्रकार यदि जीव ही ब्रह्म है तो वह (जीव) दुखी क्यों होता है ? नाना प्रकार के रोगों को क्यों पाता है ?॥ १४॥

ब्रह्महिं कथं अविद्या लागै ? जहँ प्रकाश तहँ से तम भागै॥
ब्रह्म अरूप आदि यदि तैसे। जीव ब्रह्म-प्रतिबिंबहु कैसे ?॥१५॥

जो लोग ऐसा कहते हैं कि-"अविद्या लगने से ब्रह्म ही जीव हो जाता है।' उनसे पूछना चाहिये कि प्रकाशरूप ब्रह्म को अंधकार रूप अविद्या लग ही कैसे सकता है ? क्योंकि जहाँ पर प्रकाश होता है वहाँ से अंधकार दूर भागता है। अतः ब्रह्म ही जीव नहीं होता है। अद्वैती महानुभाव कहते हैं कि--"अविद्या में पड़ा हुआ ब्रह्म का प्रतिबिम्ब ही जीव है।" उनसे मैं कहता हूँ कि आपके मत में ब्रह्म निर्विशेष है अर्थात् रूप और आकार आदि विशेषणों से रहित है। तो फिर उस रूप और आकार से रहित ब्रह्म का प्रतिबिम्ब कैसे पड़ सकता है ? क्योंकि रूप और आकार वाले चन्द्र आदि पदार्थों का ही प्रतिबिम्ब पड़ता है। रूप रहित वायु का प्रतिबिम्ब कहीं भी दिखाई नहीं देता है। अतः जीव ब्रह्म का प्रतिबिम्ब नहीं है॥ १५॥

तत् पद अर्थ ब्रह्म सियस्वामी। त्वं पद अर्थ तवान्तर्यामी॥
कहै 'तत्त्वमसि' सो दोउ एका। जीव ब्रह्म दोउ कबहुँ न एका॥ १६

"तत्त्वमसि" यह वेदवाक्य ही जीव ब्रह्मकी एकता को कहता है। ऐसा कुछ लोग कहते हैं। उनके समाधान के लिये मैं तत्त्वमसि वाक्य का यथार्थ अर्थ कहता हूँ— "तत्त्वमसि" वाक्यों में तत् पद का अर्थ है परात्परब्रह्म श्रीरामजी और त्वं पद का अर्थ

है तुम्हारे अन्तर्यामी श्रीरामजी इसलिये तत्त्वमसि वाक्य परात्परब्रह्म श्रीरामजी और अन्तर्यामी श्रीरामजी की एकता को ही कहता है। जीव और ब्रह्म की एकता को नहीं कहता है। अतः जीव और ब्रह्म दोनों भिन्न-भिन्न तत्त्व हैं एक नहीं ॥ १६ ॥

बद्ध मुक्त दुइ जीव विभेदा। संसारी जन पावहिं खेदा ॥
वैष्णव बनि करिके गुरुदेवा। रामशरण गहिकरि गुरुसेवा ॥१७

जीवों के दो भेद हैं बद्धजीव और मुक्त जीव। कर्माधीन होकर जन्म-मरण रूप भवसागर में पड़े हुये जीव बद्धजीव हैं वे संसारी जीव-नाना दुख पाते हैं। अब यह कहा जाता कि-जीव किस प्रकार मुक्त होता है। जीव को चाहिये गुरुदेव की शरण में जाकर पञ्च संस्कारों से संस्कृत होकर श्रीवैष्णव बने। भगवान् श्रीरामजीकी शरण ग्रहण करे और श्रीगुरुदेव की सेवा करे ॥ १७ ॥

बोलै सत्य करै उपकारा। तजै काम क्रोधादि विकारा ॥
सन्तचरण सेवै अभिरामा। निशिदिन रटै सुनै सियरामा ॥१८

सत्य बोले, परोपकार करे, तथा काम क्रोधादि विकारों को छोड़ दे। सुन्दर सन्तअचरणों का सेवन करे तथा रात दिन श्रीसीतारामजी का रटन और श्रवण करे॥१८

पूजै राम छोड़ि सब आशा। मन्त्र जपै करि ध्यानाभ्यासा ॥
तज़ि तनु पावै रघुपति धामा। अर्चिरादि पथसे सुखधामा॥१६।

सब आशाओं को छोड़कर श्रीरामजी का पूजन करे ध्यानाभ्यास करके श्री-राममन्त्र का जप करे। इस प्रकार जीवन पर्यन्त करता हुआ अन्त में देह त्यागकर परम सुखधाम श्री रामजीके धाम (साकेत धाम) को पाता है ॥ १६ ॥

स्वयंप्रकाश सकल सुखदायक। सुख से सेवै सियरघुनायक ॥
मृत्यु आदि दुखमूल नशाहीं। तारतम्य का भय तहँ नाहीं ॥२०॥

वह साकेत लोक (मुक्तिधाम) स्वयंप्रकाश और सर्वसुखदाता है। मुक्तजीव वहाँ पर सुख से स्वयंप्रकाश और सर्वसुखदायक श्रीसीतारामजी की सेवा करते हैं। वहाँ मृत्यु आदि दुःखों के मूलकारण कर्म नष्ट हो जाते हैं। वहाँ तारतम्य (उत्कर्षापकर्ष) का भय नहीं है ॥ २० ॥

लहि सायुज्य सर्वगति पावै। अविनाशी पर सुख मिलि जावै॥
नित्यमुक्त नित सेवा लीना। कबहुँ न होत कर्म अधीना ॥ २१ ॥
प्रकृति अचित् जड त्रिगुणाधारा। तहँ सतरज तमसम निर्धारा॥
रघुवर सिरजन इच्छा द्वारा। महत् विषमगुण प्रकृति विकारा ॥२२॥
सात्विक राजस तामसरूपा। अहंकार हो महत् अनूपा ॥
ग्यारह इन्द्रिय प्रथम विकारा। षट् ज्ञानेन्द्रिय तहँ निर्धारा ॥२३॥

रस ले रसन चक्षु पुनि देखै । त्वक् परसै रव श्रोत्रहि लेखै॥
सुमिरै मन सूँघै पुनि नासा । षट् से होय विषय अवभासा ॥२४॥

सायुज्यमुक्ति पाने पर सर्वलोकगति तथा सर्वोत्तम और अविनाशी सुख मिल जाता है । श्रीहनुमानजी आदि नित्यमुक्त जीव तो श्रीरामजी का नित्य कैंकर्य करते हैं । वे कभी कर्माधीन नहीं होते हैं ॥२१॥ अब प्रकृति तत्त्व का वर्णन किया जाता है । प्रकृति अचित् (अचेतन-ज्ञानशून्य) है । जड़ है अर्थात् परप्रकाश है स्वयं प्रकाश नहीं है । तथा सत्व रज और तम तीनों गुणोंका आधार है । प्रकृति अवस्थामें तीनों गुणसम रहते हैं । जब श्रीरामजी सृष्टिकररने की इच्छा करते हैं तो गुणों में विषमता होती है । तब महत्तत्व (महान्) नामवाला प्रकृतिका प्रथम विकार होता है ॥२२ ॥ महत्तत्वका विकार अहंकार है । इसके तीन भेद हैं सात्विक राजस और तामस । सात्विकाहंकार से ग्यारह इन्द्रियाँ उत्पन्न होती हैं । उनमें छः ज्ञानेन्द्रिय हैं ॥ २३ ॥ रसन इन्द्रिय से रसका चक्षु से रूप का त्वक् से स्पर्श का श्रोत्रसे शब्द का तथा घ्राण (नासिका) से गन्धका आभास होता है । मनसे स्मरण तथा संकल्प विकल्प आदि होते हैं । उक्त रस रूप आदि इन्द्रियों के छः विषय कहे जाते हैं ॥ २४ ॥

पञ्च कर्म इन्द्रिय निर्धारा । पदसे चलै करै करहारा ॥
वर्ण वाक्से बोलन लागै । मूत्र उपस्थ गुदा मल त्यागै ॥२५॥
तामस से तन्मात्रा द्वारा । पाँचहु महाभूत सुविकारा ॥
तन्मात्रा शब्दादिक पाँचा । पंचीकृत भूतन जगरांचा ॥२६॥
क्षिति जल पावक पवनाकाशा । पंच भूत गुण पंच प्रकाशा ॥
शब्द स्पर्श रूप रस गन्धा । पंच विषय मारहिं करि अन्धा ॥२७॥
पंचेन्द्रिय से पाँचहु भोगा । भोगत लागत मृत्यु कुरोगा ॥
तेहिकी औषधि विषय विरागा । श्रीसीतारघुबर अनुरागा ॥२८॥

पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं । पदसे चलते हैं । कर (हाथ) से कार्य करते हैं और वाक् से अक्षर बोलते हैं । उपस्थ (लिंग) से मूत्र का और गुदासे मलका त्याग करते हैं ॥ २५ ॥ तामस अहंकार से तन्मात्राओं द्वारा पंचमहाभूत नामक विकार हैं । तन्मात्रा पाँच हैं । शब्द स्पर्श रूप रस और गन्ध । महाभूतों के पंचीकरण होने के पश्चात् पंचीकृत महाभूतों से जगत् बनता है । पंच महाभूतों का पंचीकरण इस प्रकार से होता है—भगवान् प्रत्येक भूतके दो समान भाग करते हैं । आधा वैसे ही रखते हैं और आधे के चार समान भाग कर अवशिष्ट भूतों के रक्षित अर्ध भागों में मिला देते हैं । इस प्रकार पाँचो महाभूतों में पाँचो महाभूत मिल जाते हैं । परन्तु जिसका भाग अधिक (आधा) होता हैउसी नाम से वह महाभूत कथित होता है ॥२६॥ महाभूत पाँच हैं- आकाश, वायु, तेज, जल तथा पृथ्वी । तामस अहंकार से शब्दतन्मात्रा उत्पन्न होती है । उससे आकाश उत्पन्न होता है। आकाश से स्पर्श तन्मात्रा उससे वायु, वायु से रूपतन्मात्रा उससे तेज, तेज से रस तन्मात्रा उससे जल जलसे गन्ध तन्मात्रा उससे पृथिवी उत्पन्न होती है । पाँच भूतोंके पाँच गुण हैं । कारण के गुण कार्य के गुणों को उत्पन्न करते हैं । आकाश में शब्द, वायु में शब्द और स्पर्श, तेज में शब्द स्पर्श और रूप, जल में शब्द स्पर्श रूप और रस, पृथिवी में शब्द

स्पर्श रूप रस और गन्ध गुण होते हैं। उक्त पाँचो गुण द्रव्यरूप शब्द स्पर्श आदि तन्मात्राओं से भिन्न हैं। उक्त पाँचों विषय (इन्द्रियों के विषय रूप पाँचो गुण) प्राणी को अन्धा (विषयान्ध) बना कर मार डालते हैं ॥ २७ ॥ पंच इन्द्रियों से पंच भोगों को भोगने से प्राणी को मृत्युरूपी कुरोग लगता है। उसकी औषधि है विषयों से वैराग्य और श्री-सीताराम जी का अनुराग (भक्ति) ॥ २८ ॥

राजत करत उभय सहकारा। सहकृत ह्वै दोउ लहैं विकारा ॥
जड़ विभु अचित् गुणत्रय हीना। काल सकल जग कालाधीना ॥२९॥
सत्य जगत् रघुपति परिणामा। नहिं विवर्त्तका श्रुति में नामा ॥
यथा जाल मकड़ी तन द्वारा। तिमि हरि तन से जगत् पसारा ॥३०॥
सीप रजत-अंशन से राँचा। तेहि से सीपरजत है साँचा ॥
स्वल्पअंशबश नहिं व्यवहारा। तेहि कारण भ्रमरूप प्रचारा ॥३१॥
व्यूह विभव पर अन्तर्यामी। पञ्चम अर्चातन सियस्वामी ॥
राम परेश सकल सुखहेतू। जासु रटन सुमिरन भवसेतू ॥३२॥

राजसाहंकार सात्विक और तामस अहंकारों का सहकारी है। राजसाहंकार सहकार सहायता) को पाकर ही शेष दोनों अहंकार विकार को प्राप्त होते हैं। अब काल तत्त्व कहा जाता है—कालतत्त्व जड़ विभुपरिमाण वाला (व्यापक) अचेतन (ज्ञानशून्य) तथा सत्वादि तीनों गुणों से रहित होता है। सम्पूर्ण प्राकृत जगत् कालाधीन (अनित्य) है ॥ २९ ॥ जगत् अनित्य होने पर भी सत्य है। क्योंकि वह श्रीरामजी के शरीर का परिणाम (विकार) है। जगत् के विवर्त्त (मिथ्याविकार) होने का उल्लेख वेदों में कहीं भी नहीं है। जैसे जाल मकड़ी के शरीर द्वारा होता है वैसे ही भगवान् के चित् और अचित् शरीर द्वारा जगत् का विस्तार हुआ है। इसलिये श्रीरामानन्दवेदान्ती महानुभाव जगत्को श्रीरामजी का सद्वारक परिणाम मानते हैं। स्वरूप परिणाम नहीं मानते हैं ॥३० जो महाशय कहते हैं—'जगत्शुक्तिरजत के सदृश मिथ्या है।' उनके प्रति कहा जाता है कि रजत (चांदी) तैजस पदार्थ है। इसलिये पंचीकरण प्रक्रिया द्वारा शुक्त्यंशों के समान ही रजतांशों से भी शुक्ति नामक पार्थिव बनाता है। अत्यन्त चमक के कारण से शुक्ति रजत स्थल में रजतांशमात्र दिखाई देता है। इसलिये शुक्तिरजत सत्य है मिथ्या नहीं। रजतांश की न्यूनता और शुक्त्यंश की अधिकता के हेतु से शुक्ति (सीप) को रजत न कहकर शुक्ति ही कहते हैं। इसीलिये शुक्तिरजत-स्थल में 'यह रजत है' यह ज्ञान 'यह रजत नहीं है" इस प्रकार से वाधित होकर भ्रम कहा जाता है। इसलिये जगत् के मिथ्या होने में सत्य शुक्ति रजत का दृष्टान्त असंगत है। इसलिए जगत् सत्य है मिथ्या नहीं है ॥३१॥ भगवान् श्रीरामजी की स्थिति पाँच प्रकार की है। पर व्यूह विभव अन्तर्यामी और अर्चावतार भेद से। प्रथम श्रीरामजी के परस्वरूपका वर्णन किया जाता है। श्रीरामजी ही परेश और सर्वसुख हेतु (कारण) हैं। जिनका रटन और स्मरण भवसागर के सेतु हैं ॥ ३२ ॥

अशरण शरण दीनजन बन्धू। स्वाभाविक शक्तयादिक सिन्धू।
स्वजन मुक्तिकर सुलभ सुशीला। जासु सृष्टि पालन लय लीला ॥३३॥

सबसे भिन्न सकल जगरूपा। अगुण सगुण जेहि वेदनिरूपा ॥
सगुण राम नित सद्गुणधारैं ॥ श्रुति प्राकृत गुणरहित प्रचारैं ॥ ३४
ब्रह्म परात्पर सीतानाथा। नित्य मुक्त नितनावहिं माथा ॥
दिव्य बसन भूषण तनश्यामा। दिव्यायुध परिकर अभिरामा ॥३५॥
दिव्यासन राजैं अवतारी। दिव्यधाम साकेतविहारी ॥
वामभाग सीताम्बा सोहैं। परमरम्य निरखत मन मोहैं ॥३६॥

श्रीरामजी शरणरहितों के शरण (रक्षक) हैं। दीनजनों के बन्धु हैं मायाकृत नहीं किन्तु स्वाभाविक तथा सर्वोत्कृष्ट शक्ति ज्ञान बलादि दिव्य गुणों के सिन्धु हैं। निजभक्तोंके मुक्तिदाता सुलभ और सुशील हैं। जगत् के सृष्टि पालन और लय जिनकी लीला हैं ॥३३॥ श्रीरामजी स्वरूप से सब विलक्षण हैं और चिदचिद्विशिष्ट रूप से सर्व जगत् रूप (सर्वात्मा) हैं। वेद उनका निर्गुण और सगुण रूप से निरूपण करते हैं। श्रीरामजी नित्य वात्सल्य आदि सद्गुणों को धारण करते हैं इस लिये सगुण हैं। वे निर्गुण इस लिये हैं कि श्रुतियां उनका प्राकृत सत्वादि गुणोंसे रहित रूपसे प्रचार करती हैं ॥३४॥ श्रीजानकीनाथ भगवान् श्रीरामजी परात्पर ब्रह्म हैं। नित्य जीव और मुक्तजीव उन्हें सदा प्रणाम करते हैं। श्रीरामजी के वस्त्र भूषण श्यामशरीर आयुध और परिजन (पार्षद) सब दिव्य (अप्राकृत) हैं ॥३५॥ श्रीरामजी दिव्यधाम श्री-साकेत में विहार करने वाले तथा अवतारी (सर्व अवतारों के कारण) हैं दिव्य सिंहासन पर विराजमान रहते हैं। बाम भाग में जगज्जननी श्रीजानकी विराजमान् रहती हैं। वे परमरम्य हैं। देखते ही सबके मनको मुग्ध कर देती हैं ॥ ३६ ॥

दयासिन्धु सब जाननहारी। निग्रहरहित अनुग्रहकारी ॥
दिव्य गुणाकर रामाभिन्ना। भप्रा प्रभाकर यथा न भिन्ना ॥ ३७॥
सर्ववन्द्य सबसिरजनहारी। विभु सर्वेश्वरि पालनकारी ॥
चारि बासुदेवादिक व्यूहा। विभव मत्स्यकूर्मादि समूहा ॥ ३८ ॥
हिय बसि सब प्रेरक सियस्वामी। भोग्य कर्म बिन अन्तर्यामी ॥
निखिल लोकपति राम स्वतंत्रा। अर्चातन अर्चक परतंत्रा ॥ ३९ ॥
तहाँ दिव्य तन सियसहरामा। है प्रसन्न देवैं निज धामा ॥
जो जन अर्चै नमैं निहारैं। स्वयं तरैं औ निजकुल तारैं ॥ ४० ॥

वे श्रीजानकीजी दयासिन्धु और सर्वज्ञ हैं। कभी भी किसी का निग्रह (दण्ड) नहीं करती हैं। वे सदैव कृपा ही करती हैं। दिव्य गुणों की खानि हैं। सूर्य और सूर्य की प्रभा के समान सदैव श्रीरामजी से अभिन्न रहती हैं ॥३७॥ वे श्रीजानकीजी सर्ववन्द्य और पालन करने वाली हैं। विभुपरिमाण वाली (व्यापक) और सर्वेश्वरी हैं। उपासना के लिये और जगत्की सृष्ट्यादि के लिये श्रीरामजीही व्यूहरूप से स्थित होते हैं। व्यूह चार हैं—बासुदेव संकर्षण प्रद्युम्न और अनिरुद्ध। बासुदेव में ज्ञानबलादि छै गुण, संकर्षण में ज्ञान और बल, प्रद्युम्न में ऐश्वर्य और वीर्य तथा अनिरुद्ध में शक्ति और तेज गुण रहते

हैं। इन्हीं चारों व्यूहों से केशवादि द्वादश व्यूह होते हैं द्वादश ऊर्ध्वपुण्ड्रों में उन्हींके स्थान साधुजनसंरक्षण के मत्स्य कूर्म इत्यादि अवतार सर्वावतारी भगवान् श्रीरामजीके विभव अवतार हैं। पद्मनाभ इत्यादि भी विभव अवतार हैं ॥३८॥ जीवों के हृदय में रहकर प्रेरणा करने वाले भगवान् श्रीरामजी अन्तर्यामी हैं। वे भोग्य कर्मों से रहित हैं। अतएव उन्हें जीवों के समान कर्मों के फल रूप सुख दुख नहीं प्राप्त होते हैं। उनका प्रत्यक्ष दर्शन भक्ति मात्र से ही होता है। भगवान श्रीरामजी सर्वलोकों के स्वामी हैं और परम स्वतन्त्र हैं परन्तु अर्चावतार (मूर्ति) में अर्चक (पुजारी) के परतन्त्र होकर रहते हैं ॥ ३६ ॥ अर्चावतार (मूर्ति) में भगवान् श्रीरामजी जगज्जननी श्रीसीताजी के साथ दिव्य शरीर से रहते हैं। पूजा से प्रसन्न होकर अपना दिव्यधाम साकेतलोक देते हैं। जो लोग श्रीसीतारामजी की मूर्ति का पूजन नमन (दण्डवत्) और दर्शन करते हैं। वे स्वयं तरते हैं और अपने कुलको तारते हैं।

वेद अन्त सिद्धान्त का सार कहा समुझाय ।
स्वामि वैष्णवाचार्य कृति पढ़े सुने भ्रम जाय ॥

इस प्रकार वेदान्त के सिद्धान्त का सार कहा गया। स्वामि श्रीवैष्णवाचार्य वेदान्ततीर्थ के इस ग्रन्थ को पढ़ने और सुनने से संशय दूर हो जाता है।

॥ इति स्वामी श्रीवैष्णवाचार्य कृता अर्थबोधिनी ॥

❀ श्रीहनुमान मधुर चालीसा ❀

दोहा – जय जय जय अंजनि सुवन, भक्तन जीवन प्रान।
पवन तनय करुणा निधे, रसिया रसिक सुजान ॥

चौ०--जय जय अंजनि दृगन सितारे । अमित तेज बल बुद्धि उजारे ॥ १ ॥
जय मारुत सुत कृपा निधाना । राम भक्त जन जीवन प्राना ॥ २ ॥
जय सियाराम चरण अनुरागी । नहिं जग कोइ तुम सम बड़भागी ॥ ३ ॥
जयति दयानिधि श्रीहनुमाना । सिय रघुवर सेवक जगजाना ॥ ४ ॥
ऐसी करी चरण सेवकाई । निज बश किये सिया रघुराई ॥ ५ ॥
जय सिय रघुवर प्रेम प्रदायक । अति उदार भक्तन सुखदायक ॥ ६ ॥
जय सौमित्रि प्राण के दाता । पाहिमाम् आरत जन त्राता ॥ ७ ॥
जय सिय रघुवर के प्रिय दासा । रहत सदा पद-पंकज पासा ॥ ८ ॥
आप कृपा करि हेरत जेही । सच होइ सिय राम सनेही ॥ ९ ॥
तेहि उर बसत सदा सियरामा । भक्त बछल प्रभु सब सुखधामा ॥ १० ॥
गुन अवगुन देखत नहिं ताके । निवसत आप हृदय में जाके ॥ ११ ॥
प्रभु तेहि प्राणहुँ ते प्रिय जानत । भली भाँति ताको सनमानत ॥ १२ ॥

निज कर करत सदा रखवारी। जाके ऊपर कृपा तिहारी ॥ १३॥
नाथ कृपा अब मोहिं पर करहू। अवगुन मोर न हिय में धरहू ॥ १४॥
यद्यपि हौं अति अधम अयानी। तदपि नाथ चरणन रति मानी ॥ १५॥
मोपर कृपा करहु अब. स्वामी। अशरण शरण नमामि नमामी ॥ १६॥
सौम्य मनोहर रूप सम्हारी। दै दर्शन मोहिं करिअ सुखारी ॥ १७॥
देखि न सकत भयावन रूपा। दिखलाइअ निज रूप अनूपा ॥ १८॥
ललित बदन अति सौम्य स्वरूपा। हियबिच हुलसत रघुकुल भूपा ॥ १९॥
नखसिख ललित शृँगार सजाये। सीतापति को हृदय बसाये ॥ २०॥
यहि विधि दर्शन दीजिय स्वामी। दीनबन्धु प्रभु अन्तरयामी ॥ २१॥
हौं मन मोहन रूप निहारी। लपटि रहौं चरणन शिरधारी ॥ २२॥
नाथ स्वकर गहि मोहिं उठाइअ। हिय लगाय दुखदूर बहाइअ ॥ २३॥
मृदु कर कंज शीश मम धारी। पूछिअ कुशल सप्रेम सुखारी ॥ २४॥
मैं बोलौं अति हिय सकुचाई। कुशल नाथ पद दर्शन पाई ॥ २५॥
सीताराम मनोहर जोरी। दृग भरि लखौं विनय यह मोरी ॥ २६॥
त्रिभुवन सम्पति त्रणसम त्यागौं। सिय रघुवीर चरणरति मागौं ॥ २७॥
सपनेहुँ होइ न विषय विकारा। करिअ कृपा अस पवन कुमारा ॥ २८॥
नित नव सिय रघुवर पद प्रीती। बढ़े सदा पावौं रस रीती ॥ २९॥
नाम रूप लीला अनुरागी। रहइ सदा मम मति रस पागी ॥ ३०॥
कीजिअ ऐसी कृपा महाना। हे समर्थ सर्वज्ञ सुजाना ॥ ३१॥
तव ऐश्वर्य महान अपारा। सुर मुनि कोउ न जानन हारा ॥ ३२॥
ब्रह्म रुद्र श्रीपति भगवाना। तव प्रभाव त्रय देव न जाना ॥ ३३॥
जानि सकहिं का मनुज विचारे। विषय बिबश नित रहत दुखारे ॥ ३४॥
हे सिय रघुवर चरण पुजारी। बेगि लीजिये खबरि हमारी ॥ ३५॥
हौं अबोध जड़मति अज्ञानी। कीजिअ कृपा दास निज जानी ॥ ३६॥
शिशुपन ते हौं शरण तिहारी। कहौं काहि निज विपति पुकारी ॥ ३७॥
दृगभरि निरखौं सीता रामहिं। सुषमाशील रूप गुण धामहि ॥ ३८॥
हौं पद कंज गहौं अकुलाई। स्वकर उठावहिं सिय रघुराई ॥ ३९॥
मिलहिं मोहिं आपन जन जानी। बिहँसि कृपा करुणा गुन खानी ॥ ४०॥

दोहा—बचन सुधा ते सींचि मोहिं, कर सरोज शिर धार।
पूछहिं दोउ हँसि कुशल मम, जीवनधन सरकार ॥
भक्तन जीवन प्राण धन, जय जय पवन कुमार।
सीताशरण सदा रहौं, चरणन पर बलिहार ॥

------

* विनय पत्रिका के पद *

श्री जानकीजीवनकी वलिजैहौं । चितकहै रामसियापद परिहरि, अबनकहूँ चलि जैहौं ॥ उपजीउरप्रतीति सपनेहुँसुख, प्रभुपदबिमुखनपैहौं । मनसमेत या तनकेबाखिन, यही सिखावन देहौं ॥ श्रवणनि और कथा नहिं सुनिहौं, रसना और न गैहौं । रोकिहौंनयन बिलोकतऔरहिं, शीशईशहीनैहौं ॥ नातोनेहनाथसोंकरि सबनातोनेहबहैहौं । यहछरभारताहि तुलसीजग, जाकोदास कहैहौं ॥ १०४ ॥ अबलौंनशानी अबनानशैहौं । रामकृपा भवनिशा सिरानी, जागेअबनडसैहौं ॥ पायेउँ नामचारुचिन्तामनि, उरकरतेनखसैहौं । श्यामरूप शुचिरुचिरकसौटी, चितकंचनहिं कसैहौं ॥ परवशजानि हँस्यो इनइन्द्रिन, निजवश होन हँसैहौं । मनमधुकर पनकैतुलसी, रघुपतिपदकमल बसैहौं ॥ १०५ ॥ सुनुमनमूढ़ सिखावन मेरो । हरिपदबिमुख लह्यो न काहुसुख, सठयेसमुझसबेरो ॥ बिछुरेशशिरबि मननयननिते, पावतदुखवहुतेरो । भ्रमतश्रमित निशिदिवस गगनमहँ, तहँरिपुराहुबड़ेरो ॥ यद्यपि अति पुनीत सुरसरिता, तिहुँपुर सुयश घनेरो । तजेचरण अजहूँनमिटति नित, बहिबो ताहूकेरो ॥ छुटैनबिपति भजेबिनरघुपति, श्रुतिसंदेहनिबेरो । तुलसिदास सबआश छांड़िकरि, होहुराम कोचेरो ॥ ८७ ॥

काहेतेहरिमोहिंबिसारो । जानतनिजमहिमा मेरेअघ, तदपि न नाथसँभारो ॥ पतितपुनीत दीनहित अशरणशरणकहत श्रुतिचारो । हौंनहिं अधमसभीत दीनकिधौं, वेद नमृषापुकारो ॥ गजगनिका खगब्याध पाँति, जहँ तहँहौंहूँबैठारो । अबकेहिलाज कृपा निधान, परसतपनबारोफारो ॥ जोकलिकालप्रबलअतिहोतो, तुवनिदेशते न्यारो । तौहरि रोषभरोस दोषगुन, तेहिभजतोतजिगारो ॥ मसक बिरंचि बिरंचिमसकसम, करहुप्रभाव तुम्हारो । यहसामर्थअछतमोहिंत्यागहु, नाथतहाँ कछु चारो ॥ नाहिन नरकपरतमोकहँडर, यद्यपि सबविधिहारो । यहबड़ित्रास दासतुलसी प्रभु, नामहुँ पापनजारो ॥ ६४ ॥ असहरि करतदासपरप्रीति । निजप्रभुता बिसारि जनकेवश, होतसदायह रीति ॥ जिनबांधे सुर-असुरनागनर, प्रबलकर्म की डोरी । सोइअविछिन्न ब्रह्म जसुमति हठिबाँध्यो सकत न छोरी ॥ जाकीमायावश बिरंचिशिव, नाचतपारनपायो । करतलतालबजाय ग्वालजुवतिन तेहिनाच नचायो ॥ विश्वंभर श्रीपति त्रिभुवनपति, विश्वविदित जगलीक । बलि सों कछुनचली प्रभुता बरु ह्वै द्विज माँगीभीख ॥ जाकोनामलिये छूटतभव, जनममरन दुखभार । अंबरीस हितलागि दयानिधि सोइजन्मेउ दशबार ॥ जोगविरागध्यान जपतपकरि, जेहिखोजत मुनि ज्ञानी बानरभालु चपलपाँमरपशु, नाथतहाँरतिमानी ॥ लोकपाल, जम, काल, पवन, रबि, शशि आज्ञाकारी । तुलसिदास प्रभु उग्रसेनके, द्वारवेतकरधारी ॥ ६८ ॥

बिरदगरीबनिबाजरामको । गावतवेदपुराण शंभुशुक, प्रगटप्रभाव नामको । ध्रुव-प्रहलाद, बिभीषण, कपिपति, जड़, पतंग, पांडव, सुदामको । लोकसुजस परलोक

सुगति, इनमेंकोहै रामकामको ॥ गणिकाकोलकिरात आदिकवि, इनते अधिक बामको। बाजिमेध कबकियोअजामिल, गजगायो कबसाम को ॥ छलीमलीनहीनसबहीअँग, तुलसी सोछीनछामको। नाम नरेश प्रताप प्रबलजग, जुगजुग चलतचामको ॥६६॥ जाउँकहाँ तजि चरणतुम्हारे। काकोनामपतितपावन जग, केहिअति दीनपियारे ॥ कौनदेव बरियाय बिरद हित, हठिहठि अधमउधारे। खग, मृग, व्याध, पषान, बिटप, जड़, यवनकवनसुरतारे॥ देव, दनुज, मुनि, नाग, मनुज, सब, मायाविबशबिचारे। तिनकेहाथदासतुलसीप्रभु, कहा अपनपौ हारे ॥ १००॥ हरितुम बहुतअनुग्रहकीन्हों। साधनधाम बिबुधदुर्लभतन, मोहिकृपा करिदीन्हों ॥ कोटिनमुख कहिआत न प्रभुके, एकएक उपकार। तदपिनाथ कछुऔरमागिहौं दीजै परमउदार ॥ विषयबारि मनमीन भिन्ननहिं,होत कबहुँ पलएक। ताते सहौं विपति अतिदारुण, जन्मत योनि अनेक ॥ कृपाडोरि बंशी पदअंकुश, परमप्रेम मृदुचारो। एहि विधिबेधि हरहुमेरोदुख, कौतुकरामतिहारो ॥ हैं श्रुतिविदित उपाय सकलसुर, केहिकेहिदीन निहोरे। तुलसिदास यहजीव मोहरजु, जोइ बाँधे सोइछोरे ॥१०१॥

कबहुँ सोकरसरोजरघुनायक! धरिहौनाथ शीश मेरे। जेहिकरअभय किये जन आरत, बारक बिबशनामटेरे ॥ जेहिकरकमल कठोरशंभुधनु, भंजि जनकशंसयमेट्यो। जेहिकरकमल उठायबन्धुज्यों, परमप्रीति केवटभेंट्यो ॥ जेहि करकमल कृपालुगीधकहँ, पिण्डदेइ निजधामदियो। जेहिकरकमल बिदारि दासहित, कपिकुल-पतिसुग्रीव कियो॥ आयोशरणसभीतबिभीषण, जेहिकरकमल तिलककीन्हों। जेहिकरगहि शरचाप असुरहति, अभयदान देवनदीन्हों ॥ शीतलसुखदछाहँ जेहिकरकी, मेटतिपापतापमाया। निशिबासर तेहिकरसरोजकी, चाहत तुलसिदास छाया ॥ १३८ ॥ मैं हरि पतितपावन सुने। मैंपतित तुमपतितपावन, दोउबानक बने ॥ व्याधगणिकागजअजामिल, साखि निगमनिभने। औरै अधम अनेकतारे, जातकापैगनै ॥ जानिनाम अजानिलीन्हें नरकजमपुरमने। दासतुलसी शरण आयो, राखियेआपने ॥ १६० ॥ मनपछितैहै अवसरबीते। दुर्लभदेहपाय हरिपदभजु, करमवचन अरुहीते ॥ सहसबाहु दशबदनआदिनृप, बचे न कालबलीते। हमहमकरि धन धामसँवारे, अन्तचले उठिरीते ॥ सुनि बनितादि जानिस्वारथरत, नकरुनेह सबहीते। अंतहुं तोहि तजैंगे पामर, तूनतजैअबहींते ॥ अब नाथहिं अनुराग जागजड़। त्यागु दुराशाजीते। बुझै न कामअग्नि तुलसीकहुँ, विषयभोग बहुघीते ॥ १६८ ॥

ऐसेहिं जनमसमूहखिराने। प्राणनाथरघुनाथ से प्रभुतजि, सेवतचरणविराने॥ जे जड़जीव, कुटिलकायरखल, केवलकलिमलसाने। सूखतबदन प्रशंसततिनकहँ, हरिते अधिककरिमाने ॥ सुखहित कोटिउपाय निरन्तर, करतनपायँपिराने। सदामलीन पंथकेजल ज्यों, कबहुँनहृदयथिराने ॥ यहदीनता दूरकरिबेको, बिबिधजतन उरआने। तुलसी चित चिंता न मिटै, विन चिंतामणिपहिचाने ॥ २३५ ॥ जो पै जिय जानकीनाथनजाने। तौ सबकरमधरमश्रमदायक,ऐसेहिं कहतसयाने ॥ जे सुरसिद्धमुनीश जोगविंद, वेदपुराणबखाने।

पूजालेत देतपलटेसुख, हानिलाश अनुमाने । काकोनाम धोखेहू सुमिरत, पातकपुंज पराने । विप्रबधिक, गज, गीध कोटिखल, कौनकेपेटसमाने ॥ मेरुसेदोष दूरिकरिजनके, रेणुसेगुण उरआने । तुलसिदास तेहि सकलआशतजि, भजहिं न अजहुँसयाने ॥ २३६ ॥ जाकेगतिहैहनुमानकी । ताकीपैज पूजिआई, यह रेखाकुलिशपषानकी ॥ अघटित घटन सुघट बिघटन, ऐसीबिरदावलि नहिं आनकी । सुमिरत संकटसोचबिमोचन, मूरतिमोद निधानकी । तापर सानुकूलगिरजाहर, लखनरामअरुजानकी । तुलसीकपिकी कृपाविलोकनि, खानि सकलकल्यानकी ॥ ३० ॥

रघुपतिभगतिकरतकठिनाई । कहतसुगम करनीअपार, जानैसोइजेहिबनिआई ॥ जोजेहिकलाकुशल ताकहँ सोइ, सुलभसदासुखकारी । सफरीसनमुख जलप्रवाह, सुरसरी बहैगजभारी ॥ ज्योंशर्करामिलै सिकतामहँ, वलते नकोउविलगावै । अतिरसज्ञ सूक्ष्मपिपीलिका, बिनप्रयासही पावै ॥ सकलदृश्यनिजउदर मेलि, सोवै निद्रातजि जोगी । सोइहरि पदअनुभवैपरमसुख, अतिसयद्वैत वियोगी ॥ शोकमोहभयहरष दिवसनिशि, देशकालतहँ नाहीं । तुलसिदास येहिदशाहीन संशय निर्मूलनजाहीं ॥१६७॥ जानत प्रीतिरीति रघुराई । नातेसब हातेकरि राखत, रामसनेहसगाई ॥ नेहनिबाहि देहतजिदशरथ, कीरतिअचल चलाई । ऐसेहुपितुते अधिकगीधपर, ममतागुनगरुआई ॥ तियबिरही सुग्रीवसखालखि, प्राण प्रिया बिसराई । रणपरयोबन्धुबिभीषणहीको, सोचहृदय अधिकाई ॥ घर गुरुगृह प्रियसदन सासुरे, भइ जबजहँपहुनाई । तबतहँकहि शबरीकेफलनिकी, रुचिमधुरीनपाई ॥ सहजस रूप कथामुनिबरणत, रहतसकुचिसिरनाई । केवटमीत कहेसुखमानत, वानरबन्धु बड़ाई ॥ प्रेमकनौड़ो रामसोप्रभु, त्रिभुवन तिहुँकालनभाई । तेरोरिणीहौं कह्योकपिसो, ऐसी मानेकोसेवकाई ॥ तुलसीरामसनेहशीललखि,जोनभगतिउरआई । तौतोहि जनमिजायजननी जड़, तनतरुनता गँवाई ॥ १६४ ॥

रघुवररावरि इहैबड़ाई । निदरिगनी आदर गरीब पर., करतकृपा अधिकाई ॥ थकेदेव साधन करिसब, सपने हुँ नहिं देतदिखाई । केवट कुटिलभालु कपि कौनप. कियो सकलसँगभाई ॥ मिलि मुनिवृन्द फिरत दण्डकबन, सो चरचौनचलाई । बारहिंबार गीध शवरीकी, बरणत प्रीतिसोहाई ॥ स्वानकहेते कियोपुरबाहर, यती गयन्दचढ़ाई । तियनिन्दक मतिमन्दप्रजारज, निजनयनगर बसाई ॥ यहिदरबार दीनकोआदर, रीतिसदाचलि आई । दीनदयालदीनतुलसी की, काहुन सुरतिकराई ॥ १६५ ॥ ऐसेराम दीनहितकारी । अतिकोमल करुणानिधान, बिनस्वारथ परउपकारी ॥ साधनहीन दीननिज अघवश, शिला भई मुनिनारी । गृहतेगवनि परसिपदपावन, घोरश्रापतेतारी ॥ हिंसारतनिषाद तामसबपु, पशुसमान बनचारी । भेंटेउहृदयलगाय प्रेमवश, नहिंकुलरीतिबिचारी ॥ यद्यपि द्रोहकियो सुरपतिसुत, शरणगये भयहारी ॥ बिहँगजोनि आमिषअहारपर, गीधकौन व्रतधारी । जनकसमान क्रियाताकी निजकर सबभाँति सँवारी ॥ अधमजाति शबरीजोषितजड़, लोक

वेदतेन्यारी। जानिप्रीति दैदर्श कृपानिधि, सोउ रघुनाथ उधारी॥ कपिसुग्रीवबन्धुभय व्याकुल, आयोशरणपुकारी। सहिनसके दारुणदुखजनके, हत्योबालिसहिगारी। रिपुको अनुज विभीषणनिशिचर, कौन भजनअधिकारी। शरणगये आगेह्वै लीन्हों, भेंटयोभुजा पसारी॥ अशुभहोइ जिनकेसुमिरनते, वानररीछबिकारी। वेदविदित पावनकिये तेसब, महिमानाथ तुम्हारी॥ कहँलगिकहौं दीनअगणित, जिनकीतुम विपतिनिवारी। कलिमल ग्रसित दासतुलसीपर, काहे कृपा बिसारी॥ १६६॥ तूदयाल, दीनहौं, तूदानि हौंभिखारी। हौंप्रसिद्धपातकी, तुपापपुञ्जहारी॥ नाथ तूअनाथको, अनाथ कौनमोसो। मोसमानआरत नहिं, आरतिहरतोसो। ब्रह्मतू हौंजीव, तूठाकुर हौंचेरो। तातमात गुरुसखा, तु सबविधि हितुमेरो॥ तोहिमोहिं नातेअनेक, मानिये जोभावै। ज्योंत्यों तुलसीकृपालु, चरणशरण पावै॥ ७६॥

और कहिमांगिये, कोमागिबोनिबारै। अभिमंतदातारकौन, दुखदरिद्र दारै॥ धरमधाम रामकाम, कोटि रूपरूरो। साहब सबविधिसुजान, दान खडगसूरो॥ सुखमय दिनद्वैनिशान, सबकेद्वार बाजै। कुसमय दशरथकेदानि, तैं गरीबनिवाजै॥ सेवाबिन गुन बिहीन, दीनतासुनाये। जे जे तैं निहालकिये, फूलेफिरतपाये॥ तुलसिदास जाचकरुचि, जानिदानदीजै। रामचन्द्रचन्द्रतू, चकोरमोहिंकीजै॥ ८०॥ सुनि सीतापति शीलस्वभाउ। मोदनमनतनपुलक नयनजल,सोनर खेहरखाउ॥ शिशुपनते पितुम तु बन्धुगुरु, सेवक सचिव सखाउ। कहतरामबिधुबदनरिसौहैं सपनेहुँलख्योनकाउ॥ खेलतसंग अनुजबालकनित, अनट अपाउ। जीतिहारि चुचुकारि दुलारत, देतदिवावतदाउ॥ शिलासाप सन्तापविगतभइ, परसतपावनपाउ। दईसुगति सो नहेरिहरषहिय, चरणछुयेको पछिताउ॥ भवधनुभजि निदरि भूपति, भृगुनाथ खाइ गे ताउ। छमि अपराध छमायपायँपरि, इतो न अनतसमाउ॥ कह्योराज बनदियोनारिबश, गरिगलानिकोराउ। ताकुमातुकोमनजोगवत ज्यों, निजतन मर्मकुघाउ॥ कपिसेवावशभयेकनौड़े, कह्योपवनसुतआउ। देवेकोनकछू रिणियाँहौं, धनिकतु पत्रलिखाउ॥ अपनायेसुग्रीव बिभीषण, तिननतजे छलछाउ। भरतसभासनमानिसराहत, होतनहृदयअघाउ॥ निजकरुणा करतूति भगतपर, चपत चलतचरचाउ। सकृतप्रणामप्रणत यशबरणत, सुनत कहतफिरिगाउ॥ सुमिरिसुमिर गुणग्रामरामके, उरअनुरागबढ़ाउ। तुलसिदास अनयास रामपद, पाइहै प्रेम उसाउ॥ १००॥

दीनकोदयालुदानि दूसरोनकोऊ। जाहिदीनतासुनावौं, देखौंदीनसोऊ॥ सुरनर मुनिअसुरनाग, साहिब तो घनेरे। (पै) तौलौं जौलौं कृपालुरावरे, न नेकुनयनफेरे॥ त्रिभुवन तिहुँकालविदित, वेदवदतचारी। आदि-अन्त-मध्यराम, साहिबीतिहारी॥ तोहिमागि मागनो न, मागनो कहायो। सुनिस्वभावशीलसुयश, जाचनजनआयो॥ पाहन, पशु, विटप, विहंग, अपनेकरिलीन्हें। महाराजदशरथके! रंक रायकीन्हें॥ तू गरीबकोनिवाज, हौंगरीबतेरो। बारककहियेकृपालु! तुलसिदासमेरो॥ ७८॥

रामरामरम रामरामरट, रामराम जपजीहा। रामनाम-नवनेह-मेहको, मन हठि होइपपीहा॥ सबसाधनफल कूपसरितसर, सागर सलिलनिराशा। रामनाम-रतिस्वातिसुधासुभ, सीकरप्रेमपियासा॥ गरजितरजि पाषानबरषि, पबि, प्रीतिपरखि जियजानै। अधिकअधिकअनुराग उमगिउर, पर परमितिपहिचानै॥ रामनामगतिराम नाममति राम नामअनुरागी। ह्वैगये, हैं, जेहोहिहैं आगे, तेइ त्रिभुवनबड़भागी॥ एकअंग मगअगमगवन कर, बिलम न छिनछिनछाहैं। तुलसीहितअपनो अपनीदिशि, निरुवधिनेम निबाहैं॥ ६५॥ कबहुँ अम्ब अवसरपाय। मेरिऔसुधिद्याइबी, कछु करुणाकथाचलाय॥ दीन सबअङ्गहीन, छीन, मलीनअघीअघाय। नामलैभरैउदर एक, प्रभुदासिदासकहाय॥ बूझिहैंसोहैकौन कहिबी, नामदशाजनाय। सुनतरामकृपालुके मेरी, बिगरिऔबनिजाय॥ जानकी जगजननि जनकी, कियेबचनसहाय। तरै तुलसीदास भव, तव, नाथ गुणगणगाय॥ मारुति मन रुचि भरत की, लखि लखण कही है। कलि कालहु नाथ! नामसों परतीति-प्रीति, एक किंकर की निबहीहै॥ सकल सभा सुनि लै उठी, जानी प्रीति रही है। कृपा गरीबनिवाज की, देखत गरीब को साहिब बाँह गही है। बिहँसि राम कह्यो 'सत्य है, सुधि मैं हूँ लही है। मुदित माथ नावत, बनी तुलसी अनाथ की, परी रघुनाथ हाथ सही है॥ २७६॥

यहविनती रघुबीरगोसाईं। औरआशविश्वास भरोसो, हरोजीवजड़ताई॥ चहौंनसुगति सुमति संपतिकछु, रिधसिध बिपुलबड़ाई। हेतुरहित अनुरागरामपद, बढ़ै अनुदिनअधिकाई॥ कुटिलकर्म लैजाहिंमोहि, जहँजहँ अपनी बरिआई। तहँतहँ जनिछिनि छोहछाड़िये, कमठअण्डकीनाईं॥ याजगमें जहँलगि यातनकी, प्रीतिप्रतीतिसगाई। तेसब तुलसिदासप्रभुहीसों, होहिंसिमिटिइकठाईं॥ १०३॥ ऐसोकोउदार जगमाहीं। बिनसेवा जोद्रवैदीनपर, रामसरिस कोउनाहीं॥ जोगति जोगबिराग जतनकरि नहिंपावत मुनिज्ञानी। सोगतिदेत गीधसबरीकहँ, प्रभुनअधिक जियजानी॥ जोसंपतिदशशीश अर्पिकर, रावणशिवसोंलीन्हीं। सोइसंपदा बिभीषणजनको, सकुचसहितहरिदीन्हीं॥ तुलसिदास सब भाँति सकलसुख, जोचाहसि मनमेरो। तो भजुराम कामसबपूरण करैंकृपानिधितेरो॥१६२॥

एकै दानिशिरोमणि साँचो। जोइजाच्यो सोइजाचकताबश, फिरिबहुनाच न नाचो॥ सबस्वारथी असुरसुर नरमुनि, कोउनदेत बिनपाये। कोशल पालकृपाल कलपतरु, द्रवतसकृतशिरनाये॥ हरिहुँऔर अवतारआपने राखीवेदबड़ाई। लेचिउरानिधि दईसुदामहिं, यद्यपिबालमिताई॥ कपि, सबरी, सुग्रीव, बिभीषण, कोनहिंकियोअयाची। अबतुलसिहि दुखदेत दयानिधि दारुणआशपिशाची॥ १६३॥ जोमोहिंराम लागतेमीठे। तोनवरस-षटरस-रसअनरस, ह्वै जाते सबसीठे॥ बंचकविषयाविविधतनधरि, अनुभवे सुने अरुदीठे। यह जानतहौं हृदयआपने, सपनेनअघायउबीठे॥ तुलसिदासप्रभु सों एकैबल, बचनकहत अति ढीठे। नामकोलाज रामकरुणाकर, केहिनदिये करचीठे॥ १६६॥ कबहुँक हौं यहिरहनि रहौंगो। श्रीरघुनाथ कृपालकृपाते, संतस्वभावगहौंगो॥ जथालाभ संतोषसदा, काहूसोंकछु

नचहौंगो । परहितनिरतनिरंतरमनक्रम, वचननेमनिबहौंगो ।। परुषबचत अतिदुसहश्रवण सुनि, तेहिपावकनदहौंगो । बिगतमान समशीतलमनपर, गुननहिं दोषकहौंगो ।। परिहरिदेह जनित चिंतादुख, सुखसमबुद्धिसहौंगो । तुलसिदास प्रभुयहिपथ रहि, अबिचल हरिभगति लहौंगो ।। १७२ ।। जाकेप्रियनरामवैदेही । तजियेताहि कोटिबैरीसम, यद्यपिपरमसनेही ।। तज्योपिताप्रहलाद बिभीषण, बन्धु भरतमहतारी । बलिगुरुतज्यो कंतब्रजबनितन, भयेमुद मंगलकारी ।। नातेनेह रामके मनियत, सुहृद सुसेब्यजहाँ लौं । अंजन कहा आँख जेहिफूटै, बहुतककहौं कहाँलौं ।। तुलसीसोसबभाँति परमहित, पूज्यप्राणतेप्यारो जासोंहोय सनेह रामपद एतोमतोहमारो ।। १७४ ।।

चहियतकृपा ललीसीताकी । नवधाभगति ज्ञानकाकरना, रहीनशंक वेदगीताकी।। वेदपुराण कहाव्रतषटमत, करतबादनर बपुबीताकी । झगरकरत अरूझोनहिंसुरझो मिटीन एक द्वैतभयताकी ।। जाकीओर तनकहँसिहेरत, करतसहाय रामजनताकी । "श्रीअग्रअली" भजु जनकनन्दिनी पापभण्डार तापरीता की ।।१।। हौंतोतिहारीसियाजू चाहै देखो न देखो मोको । आचारज बाँहहभारी, गहिशरण तिहारीडारी, दैबास तिहारेलोको ।। चाहैदेखो०।। श्रृङ्गारहमारो कीन्हों, हियभाव तिहारोदीन्हों, सुपुरुतकीन्होंहैतोको ।। चाहैदेखो० ।। हौं पापन कीमैं रूपा, रह गिरनचहौं भवकूपा, अब बिरदआपनीरोको ।। चाहैदेखो० ।। क रहौ जोपैन सम्हारो, करिहौंमैंकाहतिहारो, सौन्दर्य विदित सबतोको ।। चाहैदेखो० ।।२।।

यों सुनिलीजै दीदी बिनतीमोरी ।। हौं तो तेरीचरणकीचेरी, शरणपरी हौंतोरी । नामधाम शुभठाम चरणतुव, और न आशामोरी ।। यों० ।। तुमहीं ने तो कीन्हकृपा, गुरुदेव मिलाये सोरी । तुमबिन परमकृपालु अहैतुक, औरअहै जगकोरी ।। यों० ।। लीन्ह बराह जन्मभगिसुमिरण, धर्मसकलमाधौरी । सकृतप्रमाण चहतप्रीतमतव, सोऊ बनतनथोरी ।। यों०।। चहौंनसुगति सुमतिसम्पतिकछु, लोकमानरिभबोरी । सौन्दर्य प्रेमप्रवाह चरणतव सुमिरणसोतबसोरी ।।यों०।।३।। प्रीतम श्यामसुजानसुनो, मनहूँमेंगुनोकछु स्तुतिमोरी । जीव-तुन्हारो तुम्हींरखवारो तुम्हरोहिशासनडोरी । प्रभाभानुजिमि अंशतुम्हारो, निजमायामें फँसाये । कृपाकीन्ह सबसुखसर्जनको, ज्ञानबिरोध जनाये ।। रूपरहितको रूपबनाये, वेद पुराणहुँगाये । पुनि करुणाकरि आपहुआये, निजमारग सिखलाये ।। योनिभ्रमत मानुषतन दीन्हों, कृपाकीन्हबहुतेरो । अबगुरुदेवकृपाकीमूरति, अपनायेजगफेरो ।। अबचाहतमन प्रभु से मिलिये, निजस्वरूप सुखपाऊँ । परप्रभु आप कृपाबिनमगपग, पलकहुँ आइनपाऊँ।। दैवशक्ति अद्भुतहैमाता, त्रयआवरणअनूपा । षटविकार जससर्पविलच्छण घोरमहाभव कूपा ।। तुमस्वतन्त्र सर्वज्ञकृपानिधि, सर्वशक्ति विस्तारा । भक्तउधारण व्रतअपनायो होय उधारहमारा ।। आखिर तो अपनावहुगेही, शरणागतनहिंत्यागा । ब्याकुलहौं सौन्दर्य मिलन को, पाक्योफल मनलागा ।। राजकुमार नाथतुमजानो, नीति अनेकप्रकारा । जामेमन मेरो अकुलायो, होवैबेगिसहारा ।।४।।

प्रीतमजू हौंबिनती केहिभाँतिकरौं। जड़ताजाड़ बिषमउरबैठी, बुद्धिभ्रमितसुख साधनपैठी। तत्त्वबिचार हृदयनहिंदीठी॥ प्रीतम जू०॥ सहजप्रकाश कृपाकोपाऊँ, तबमल नाथ स्वरूप समाऊँ। दिब्यधाम लीलागुणगाऊँ॥ प्रीतम जू०॥ केवलआश शरणहौंचेरी, साधनऔरन अवगुणढेरी। अब सौन्दर्य मनावनबेरी॥ प्रीतम जू०॥५॥ भजुमनसियानाम सुखदाई। सीतासीतामधुरमधुरजप, रामदरशशिवपाई॥ सूपनखासियनामनिदरिनिज, नाककानकटवाई। प्रथमहिंसीतासुमिरिबिभीषण, लंकाधिपकहवाई॥ सीसुखवर्धनताभव तारक, अमृतस्वादसोहाई। सीकहतहिंसियजनवशहोवहिं, तासुनिभानभुलाई॥ रामहिंसौंपि नामनिजजापक, अभयकरहिंचितचाई।। हर्षणनामसुधाअसपीपी, जियबजगतभलभाई॥ ११६॥ हमारीसियस्वामिनिसरकार, करुणामयीकृपाकीमूरति, कोमलचित्तउदार॥ बिना- हेतुजीवनप्रतिपालनि, लीन्हेसबछरभार। विधिहरिहरहुशक्तिसहजाकहँ, ध्यावततनमनवार॥ निरखतभौंहँकरैंजगकारज, गुनिसेवासुखसार। भलोचोपजसतसहौंसियको, परयोताहिके द्वार॥जगतआशरंचहुनहिंहियमहँ, सीतहिसकलसम्हार। हर्षणविषयविहीनप्रेमचह, सेवन सियसाकार॥ १४८॥ शरणतकिआयोराजकिशोरी। सपनेहुँअन्यद्वारनहिंदेखेव, अब्रनजाउँ कहुँभोरी॥ तुम्हरोभेजोभोजनपइहौं, रूखोसरोनकोरी। नीचऊँचसेवासब करिहौं, तवप्रसन्न हितजोरी॥ श्रीपदूकमलदरशनितलहिहौं, द्वारपरेसुखसोरी। ब्रह्मानन्दसुखहुबिसरइहौं, परमानन्दहिलोरी॥ रावरिकृपादृष्टिरसबरसनि, पाइरहौंरसघोरी। हर्षणविनयधरौहिय स्वामिनि, लहौंगुलामीतोरी॥ १३५॥

महिमाअपरम्पारसियाकी। सुमिरिसुमिरसुखसानहुमनुआँ, चरितचन्द्रिकाराम प्रियाकी। बालमीकबरशोउरामायण, कहेउसत्यशुचिबातहियाकी। यहिमहँमहतकथासर्वत्रहिं- केवलजनकरायबिटियाकी॥ जोकछुभयोजोहोइहैजगमहँ, सोहैप्रभुताजीवजियाकी। निर्मल सरससबहिसुखदायक, सदाएकरसमधुरहियाकी॥ आनँनअमृतअकथअनूपम, चिन्मय- लीलाप्राणप्रियाकी। हर्षणसमुभिशरणगहुताकी, जेहितेरामसमर्थ धियाकी॥ १३०॥ रटोरे रामरामदिनराती। यथाजपतनितशम्भुशिवासह, रामरामरसमाती॥ नामअहारअहैतिन- केरो, तेहिबिनप्राणनछाती। नामप्रभावयथारथजानत, विषयसुधाकरिभाती॥ शतकरोर रामायणतेरे, रामनामलियराती। मुक्तिहेतुकाशीउपदेशत, जीवशरणसरसाती॥ काहूमुख श्रीनामश्रवणसुनि, नृत्यततनपुलकाती। हर्षसोखमानिशिवकेरी, जपहिरामलवलाती॥ १८॥ रामनामकलिकामदभाई। सुरसुरभीसुरतरुसमसोहै, भक्तजननसुखदाई॥ प्रीतिप्रतीतिसुरो तिहिंसेवत, अभिमतआशपुराई। विरतिविवेकभगतियज्ञयोगहु, तीर्थदानजपताई॥ जहँलगि साधनवेदसुवर्णित, कलिमहँश्रमफलदाई। कलियुगकेवलनामअधारहिं, भुक्तिमुक्तिसबपाई॥ चारहुँयुगपरतापनामको, त्रिजगत्रिकालमहाई। हर्षत्रिसत्यनामतजिकलियुग, अन्यगतीनहिं नाई॥ १६२॥ पतितउधारनअवधकिशोर। सन्तशास्त्रगुरुकहेउबुझाई, रक्षकरामनओर॥ गौतमतियगतिसुखहिंप्रदायक, पापप्रनाशिअथोर। केवटगीधनिशाचरजेते, जीवनहतेकरोर॥

आमिषभोजीभयेसुपावन, जिन्हसुमिरतदुखछोर । जानहुरामकृपातेकेवल, भयेसबहिंशिर
मौर ॥ पतितनपावनकरतनामनिज, शरणराखिरसबोर । हर्षणअजहुँशरणगहुप्रभुकी, नहि
तोहिदूसरठौर ॥ २२० ॥ काहभयोपीछेपछताये । समयचुकेकछुहाथनआवे, रोरोदिवस
गमाये । चिड़ियाँ चुनिगइखेतमिलैका, अहनिशिबैठिबिताये । मृतकहिंयथाऔषधीसेवन,
एकहुकामनआये ॥ जन्ममरणदुखसहैनित्यनित, कठिनकर्मफलपाये । कर्मबिपाकसमयशिर
धुनिधुनि, काहभयोचिल्लाये ॥ बनरोदनसमसुनैनकोऊ, तलफितलफिदुखताये । हर्षण सुमि-
रिअवैरघुनाथहिं, जियकीजरनिजुड़ाये ॥ २२१ ॥ हाप्रभुकबहुँप्रेमपथपइहौं । यज्ञकुण्डनिज
हियहिंविरचिबड़, विरहबन्हिभरिदइहौं ॥ अहममअरुआशक्तिदुराशा, समिधासविधि
जलइहौं । सहजसनेहसुघृतदैआहुति, आत्मरमणअपनइहौं ॥ श्रीसियरामनामशुचिस्वाहा,
अविरतयागअघइहौं । प्रेमवारितर्पणकरिअहनिशि, यग-भुक्भलेरिझैइहौं ॥ इन्द्रियधेनुज्ञान
रज्ञेशहिं, देसबस्वत्वमिटइहौं । महाभावअभिभृतस्नानी, रससमयहर्षणसोहइहौं ॥ ३०४ ॥

भयभरिआयोशरणतिहारे । श्रवणसुन्योशरणागतवत्सल, रामप्रणतरखवारे ॥
तेहितेतक्योदौरिप्रभुपौरहिं, त्राहित्राहिसुखसारे । जहाँजाउँतहँजाउँडेराई, कोउनहिंमोहिं
सम्हारे ॥ जेहिचितवौंतेहिभयपाऊँ, कातेकहौंपुकारे । भयमेंरहहुँभयहिंमेंबिहरहुँ भयमयभोग
हमारे ॥ तनमनबुद्धिभयहिंतेभरिगे, कम्पतआत्मअपारे । अभयदानिरघुनन्दनहर्षण, राखु
अबहिंपचिहारे ॥ ३७२ ॥ मधुमयमुखमुसुकतमनहारी । कबहुँदिखायरामरघुनन्दन, हरिहौ
विषयविकारी ॥ कृपादृष्टिकरुणाअवलोकनि, सुधासरिससुखकारी । मोहिंनहवायपियाय
प्रेमपय, पोषहौंअमियअहारी ॥ मृदुवतरानिकहहुगेआपन, नितसम्बन्धविचारी । भ्रमभय
संशयग्रन्थिहृदयपुनि, नशिहौंकर्मअपारी ॥ मुखोल्लासलखिलखितवरसमय, होइहौंहृदय
सुखारी हर्षणउरअभिलाषपूरकरि, हरहुतापधनुधारी ॥ ६१६ ॥ हरिकोह्वैरहिबोजगसाँच ।
वनिसंसारीजियवकल्पलौं, जानहुसबविधिकाँच ॥ रघुपतिकोकिंकरकहवाई, दिवसआठअरु
पाँच । छनहूँजियैगुनैभलमनुआ, लगैनयमकोआँच ॥ तैसेहिंप्रभुबिनगिनहुमोक्षपद, सेवक
सेव्यनराँच । रामदासह्वैनरकहुँसेवत, सुखकरगुनोत्रिवाच ॥ असविचारिगहिशरणरामकी,
त्राहित्राहिमुखयाच । हर्षणहर्षसमैहैसतसत, आनँदआनँदमाच । ३४४॥ कबमोहिंवरणकरहिं
गेराम । समयसोहावनसोकबअइहैं, निजजनकहिहैंमाम ॥ विषयविकारविहायविविधविधि,
दइहैंनिर्मलनाम । प्रीतिपुनीतसुभगसरिधारी, कबउमगीउरग्राम ॥ निजपदपाँवरिकिंगनिसेवा,
विस्तरिबसइहैंधाम । नामरूपलीलारतप्रभुके रसिकनसंगललाम ॥ तवसुखी नितह्वै रहिहौं,
रूपनिरखि अठयाम । कृपापंथ चितवतनिशिवासर, हर्षणजियतगुलाम ॥३७८॥

हेसिय हेसमर्थरघुबीर । बन्दिचरणकटुककर्कशवाणी, विनवततुमहिं अधीर ॥
कृपालाभहितयदपियोग्यता, नहिं किंचितममतीर ॥ महाकृपालुमौलितुमतद्यपि, करहुकृपा
निरखेनिजनयनन, तुमजगपतिद्वौमीर ॥ करुणाहितलवलेशभक्तिको, भाषहुनहिंहियहीर ।
कौतुकपनतेप्रभुप्रसन्न ह्वै, हरुहर्षणभवभीर ॥३६६॥ जयजयजानकिजीवनराम । विरदगरीब

है, हरुहर्षणभवभीर ॥ ३९६ ॥ जयजयजानकिजीवनराम । विरदगरीबनिवाजवदत सब, अधमउधारननाम । दीनबन्धुदुखदारिदशोषण, प्रणतहिंपालनकाम । पतित अनेकउबारदयानिधि, दीन्हेंबहुविश्राम ॥ शास्त्रसन्तश्रुतिसाखिदेतसत, एकस्वललितललाम । करिविश्वासआसअतिमनमें, लैजइहोनिजधाम ॥ प्रीतिपुनीतस्वसेवसौंपिसब, एकान्तिक अठयाम । हर्षणजियकीजरनिजुड़इहौं, सियाकृपासबठाम ॥४०४॥ ऐसोकबकरिहौरघुनन्दन रामरामसियारामरटौंगो, करिकरिकरुणाक्रन्दन ॥ विरहवन्हिंजियजरतरहौंगो, फसेप्रेमके फन्दन । मैंअरुगोरत्यागिसबइच्छा, मनहिंबाँधिरसबन्धन ॥ योगक्षेमविनुद्वारहिंप्रभुके, रहबपरेनृपनन्दन । साधुस्वभावसरससतवानी, परहितरततजिद्वन्दन ॥ रागद्वेषकहुँभूलि नअइहैं, शान्तहृदयजसचन्दन । शीलतोषसमदमधरिहर्षण, प्रेममतेजगवन्दन ॥४११॥ दिन प्रतिआयूजातचली । गईबहुतअबकिंचितबाकी, करीनरघुपतिभगतिभली ॥ कालकरालसबहिं धरिखायो, रहिगयमीजतहाथबली । जेहितेकटैमहाभवबन्धन, करुउपायनृपलाललली ॥ साधनहीनशरणतकिआयो, चहतकृपाकेकोरपली । सीतारामनामनिसिवासर, नाचैमोरी जीभथली ॥ प्रेमापराभक्तिभलपाऊँ, बिहरतनवनवनेहगली । सर्वलोकशारण्यसुहृदवर, रखहुहर्षणदोषदली ॥ ४१६ ॥ जोप्रभुकृपाकबहुँलखिपावौं । तौमैंसत्यकहौंरघुनायक, जियकी जरनि जड़ावौं । तवपदप्रेमभीखभलमाँगी, विषयविकारबहावौं । निजसम्बन्धअचलकरि तुमते, जगसम्बन्धजरावौं ॥ सबप्रकारसबसमयसुसेवा, पाइप्रहर्षथिरावौं । मुखोल्लासलखि रावरेकेरो, सुखसनिसदासुहावौं ॥ सन्तनसंगसनेहशुचिसुखमय, हरियशसुनौंसुनावौं ॥ हर्षण हियअभिलाषअतिहियह, सीतारमणपुजावौं ॥ ४१६ ॥

प्रभुजीकिमिनहिंआयबचाओ । कृपासिन्धुकोसुधासीकरनि, मोहिंनहिंमरत पियाओ । पापतापत्रणराशिअमितजो, क्योंनहिंनाथजराओ । निजपदप्रेमअन्नदैस्वामी, काहेनभूखभगाओ ॥ रावररूपदरशकेप्यासे,अबतोआयपिलाओ । दीनबन्धुशरणागतवत्सल, अघनाशनकहवाओ ॥ पतितउधारनपतितउधारो, अबनहिंवेरलगाओ । हर्षगरीबगोहारसुनहु प्रभु, दौरिबेगइतआओ ॥४२७॥ कबमोहिंमिलिहौप्रीतप्यारे । लखिपदकमलसुधिहिबिसराई, गिरिहौंआत्मअधारे ॥ निजकरकंजपरसिशिरपुनिपुनि, लइहौ ललकिहियारे । मुखमुसकाय कृपाकीचितवनि, देखिहौंदासदुलारे ॥ आपनभोगबनायभलीविधि, भोगिहोनाथहमारे । सहजस्वामिकैंकर्यसुखदलहि, रहिहैंहमहुँसुखारे ॥ सह्योकठिनजोक्लेशअबहिंलौं, भुलिहौं सबहिं सहारे । हर्षणकीवरविनयश्रवणसुनि, करहुदयासुखसारे ॥ ४३० ॥ लई है रामनाम कीओट । जासुसकृतउच्चारणतेरे, परैनयमकीचोट ॥ पापपरायणअधमशिरोमणि, यद्यपि सबविधिखोट । तदपिअगतिगुनिनामउदारा, करिहैंकृपाकिकोट ॥ गणिकायवनअजामिल तरिगे, नामसुमिरिइकहोंठ । प्रीतिप्रतीतिसुरीतबिनाकहि, दुर्बलभेबहुमोट ॥ शास्त्रपुराणसन्त श्रुतिवरणत, महिमामहाअजोट । हर्षणशरणशरणहैताकी, जेहिवशहरिहियलोट ॥ ४३३ ॥ चारहुसांचचदूआनन्दठामा । परब्रह्मरघुनायककेरे, नाम, रूप, लीला, अरु धामा ॥ प्रणत

पालकरुणावरुणालय, भक्तकल्पतरुललितललामा। भक्तिज्ञानवैराग्ययोगप्रद, सद्गुणसिन्धु सुखद अभिरामा॥ भुक्तिमुक्तिप्रभुप्रेमप्रदायक, जनहिं बनावतपूरणकामा। जोजोशरणगहे इनकेरी, सोसोसबहिलहेविश्रामा॥ मोरेऔरउपायनएकहुँ, कहौंप्रतीतियथाअठयामा। हर्षण हहरि हृदयअकुलायो, चारहुप्रीतिचहतगुणग्रामा॥ ४३७॥

सुनुकृपालुरघुबीरउदार। जोनिजचरणकमलमेंआश्रय, नहिंदेवहुसुखसार॥ तौकतपुत्रकलत्रछुड़ायो, गृहसम्पतिनवनार॥ रम्योरहततहँसबदुखसुखसहि, जिमिउलूकअँधियार। जोकरकमलअभयकरमोरे, शिरनहिंधरहुदुलार॥ तौकतअन्यालम्बछुड़ायो, अन्य आशऔद्वार। जोमुखकमलदिखाउबदुर्घट, मदनविमोहनहार॥ तौकतप्रकृतिप्रभानीरसता, बोधकरायनिकार। प्रेमविलक्षणदेहुनमोकहँ, तौकतरागलिगार॥ असकठोरपनउचितन नाथहिं, जायसुयशउजियार। शरणपर्योहर्षणवद्वारे ठुकरावहिंयाप्यार॥४३६॥ रामसिया सुखसारहमारे। विनतीसुनहुनाथदोउयहिको, मोरेआत्मअधार॥ जोपैतजहुकाहवशमेरो, कितैजाउँकोतार। युगलचरणआश्रयगतियेकी, अशरणशरणसम्हार॥ तुमहिंककहुशिशुमातु छोरिकै, कहाँजायसरकार। रोषैजननिचहैतेहिऊपर, तउतेहिऔरनद्वार॥ यद्यपिअतिहि अयानअभागी, अधमअछमअघकार। तदपिताहिहर्षणहियहहरत, शरणहिंआयपुकार॥४४२ मैप्रभुविनतीकरैनजानी। महाराजकौशलकिशोरतव, सहजस्वांसश्रुतिबानी॥ हौंअल्पज्ञ मूढ़बिनविद्या, मूरखमतिहुँभुलानी। काहउचितकहिबोरघुबीरहिं, ज्ञाननहियमेंआनी॥ तेहि परकर्कशवानिभावविनु, सुनिकटुताबिल्लानी। प्रेमभक्तिभावितनहिंमनुआँ, विषयविकार विकानी। सत्यासत्यविवेकएकनहिं, मोहनिशासुखमानी। हर्षणहायनजान्योविनयहु, प्रभु प्रसन्नहितसानी॥४४३॥ जेहिविधिबनैबनावैमोरी। करिनिर्हेतुकृपाकरुणानिधि, पालुविसारि ममखोरी॥ अटपटबानिचाहनिजवरणेउ, यदपिअयानअथोरी। तदपिउदारशिरोमणिरघुवर, बिरदकृपालुबड़ोरी॥ सुनियतश्रीसियनिन्दकरजकहिं, दियस्वधामसुखबोरी। पायोधाम विभीषणअविचल, लंकनृपतिपदकोरी॥ श्रवणसुयशसुनिशरणहिंआयो, विषयबयारझकोरी। हर्षणअविनयछमियप्रेमदै, राखियनिजपदठौरी॥ ४४४॥

मोहिं चरण शरण अब तोर री सुन राजकिशोरी॥ केहि अघते पदपद्म छुड़ायो, मैं कछु समुझि न पाऊँ। निष्कासित ह्वै महाराज्य ते, विपिन बीच बिलखाऊँ॥ दीन मलीन छीन बल व्याकुल छुधित पिपासित आई। कारागार कठिन दुख झेलत लली! रावरी भाई॥ घेरे बृश्चिक व्याल चतुर्दिक अन्धकार घनघोरी री श्रीराज किशोरी॥ १॥ सुधि करि बाल माधुरी लाडिलि! हहरि हहरि रहि जाऊँ। को हौं कहाँ चल्यो का करिबो, आजु समुझि नहि पाऊँ॥ कै वह सत्य पकरि करि आँगुरि, जब वर बाग लखाऊँ। कै यह सत्य आज जब व्याकुल आकुल पेट खलाऊँ॥ कसाघात सहिजात न अब जो परत करोर करोर री, श्रीराजकिशोरी॥ २॥ सुधि आवति हरषाइ कबहुँ तुम सुमन माल पहिरायो। केश कलाप बीच कुसुमावलि निज कर कमल सजायो॥ करि अभिषेक आरती करि पुनि,

पायो संग पवायो। दै ताम्बूल संग संगहि तुम,अंगन गन्ध लगायो॥ क्षित दुरि गई किलोल माधुरी, हगको गयो अँजोर री॥ श्रीराजकिशोरी॥ ३॥ नवनिकुञ्ज झूलन की शोभा, आलिगन संग सोहाई। रक्षाबन्धन भ्रातृ द्वितीया दिन को दई बड़ाई॥ बनरी वेष ब्याह की बेला बाबा अर्पण शोभा। नवल लाल की नख-शिख सुखमा सुमिरत हूँ मन लोभा॥ युगल रूप की युगल छटा वह लखि लखि भयो विभोर री श्रीराजकिशोरी॥ ४॥ मान भ्रात को नात लाड़िली सब अपराध भुलाओ। निज विनियोग योग करि सीते! दीन जानि अपनाओ॥ मुख त्रण दावि शरण अब आयो रक्ष रक्ष गोहराऊँ। करहु कृपा कल्याणि किशोरी! चरणन की रज पाऊँ॥ दास किशोर विभोर पिओं रस, बनि मुख चन्द्र चकोर री श्रीराजकिशोरी॥ ५॥ १॥

लाड़िली! कब उर आश पुजइहौ। कर करवा कोपीनवन्त करि, कञ्चन विपिन बसइहौ। तन, धन, भवन, सुवन, की ममता, मनते दूर भगइहौ। रसिकन चरण शरण महँ करिके, लीला रसहिं पियइहौ॥ विरजातीर अधीर दीन के, मुख स्वनाम प्रगटइहौ। कोमल करन पोंछि अँसुअन कन, भइया कहि समुझइहौ॥ विमल बदन शत इन्दु लजावन, हाय कबहिं दिखरइहौ॥ २॥ कैसे उर की पीर सुनाऊँ। नवनागरि निमिवंश उजागिर गागर अघ की कहाँ दुराऊँ॥ जन्म जन्म अभ्यस्त वृत्तिबश पुनि पुनि तहँ चलि जाऊँ। जहँ दुगन्ध द्वन्द दुख दारुण, मलही मल लिपटाऊँ॥ अति अनाथ असमर्थ अलायक, कर्मन को फल पाऊँ। दीन मलीन मरत मोरी महँ, अकबकात बिललाऊँ॥ सद्गुरु कृपा प्रताप जूठ के, श्रीपद भूलि न पाऊँ। तदपि निहारि अगति अति आपनि, टेरत महँ सकुचाऊँ॥ ऐसो करहु कृपा करुणामयि, पदपंकज न भुलाऊँ। "दास किशोर" रूप रस मातो, सीते सीते गाऊँ॥ ३॥ सीते! अब कब वे दिन अइहैं। मिथिलाधाम प्रेम मन्दिर को, विमल बास जब पइहैं॥ करत कीर्तन रूप निहारत, सुधासमुद्र बिलइहैं। अइहैं मोर विभोर घेरिकै, सिय सिय कूक मचइहैं॥ होतप्रात निर्वाहि नित्य को, सिद्धि सदन कहँ जइहैं। भाभी भ्रात चरण रजकन लहि, परमानन्द समइहैं॥ बैठि प्रेमवट-निकट सखन महँ, प्रेमायन शुभ गइहैं। पाँवरि पूजि प्राणवल्लभ की, "शरण मन्त्र" रस छइहैं॥ सुमिरि सुमिरि तव चारु चरित्रन, लीला मोद बढ़इहैं। "दासकिशोर" पुकारत तुम कहँ, तन, मन भान भुलइहैं॥ ४॥

रघुबर विनय करत सकुचाऊँ। अति औदार्य विचारि रावरो, सोचि सोचि रहि जाऊँ॥ जेती कृपा करी करुणानिधि, पक्षपात उरधारी। तेती शक्ति न समुझन हूँ की, कैसे सकौं उचारी॥ मानवतन सर्वांग सुभगपन, अन्ध अपंग न कीन्ह्यों। विप्र वंश विद्या वैभवयुत, जनम पुण्य थल दीन्ह्यों॥ बालपने ते संत संग दै, सद्गुरु चरण मिलायो। दिव्य दिव्य लीला कलाप श्री,रामकथा रस पायो॥ शिश्नोदर के पूरणकारण क्रम-क्रम सबइ गँवायो। महाराज को राजकुँवर, गलिन गलिन बिलखायो। क्रूर कृतघ्न, कुटिल कुलघाती,

हौं भरि पेट नसाऊँ । "दासकिशोर" किशोर सँवारहु, द्वार परो गोहराऊँ ॥ ५ ॥ प्यारे अबहुँ लेहु अपनाय । जुग जुग ते बिछुरे पद पंकज, अब तो देहु दिखाय ॥ कहत जगत श्रीराम सखा मोहिं, रसिक रसिक गोहराय । हौं जस रसिक भक्त तुम जानहुँ, फटि न करे जो जाय ॥ नाम लजावत रस रसिकन को, पियत विषय विष धाय । तन भो छीन मलीन भयो मन, परयो पंथ कुम्हिलाय ॥ क्वासि क्वासि कौशल नृप नन्दन रघुनन्दन रस राय । प्राण सखे ! अब प्राण पुकारत, आरत अति अकुलाय ॥ सहज सुहृद सरकार साँवरे ! परयो शरण में आय । "दासकिशोर" किशोर जियावहु, रूप सुधा बरसाय ॥ ६ ॥ राघव ! केहि विधि विनय सुनाऊँ । समुझि समुझि करतूति आपनी, मन ही मन हहराऊँ । मज्जन असन शयन की शोभा, सुमिर सुमिर रहि जाऊँ । का ते का ह्वै गयो पलक महँ गुन धुन कछुक न पाऊँ ॥ कमला कूल उपबनन विहरन, भरि भुज कण्ठ लगाऊँ । श्यामल बदन सरोज विलोकत नयनन को पाऊँ ॥ विविध विनोद मोद रस छाऊँ । सो अब गयो नयो जग ह्वै गयो, गलिन गलिन विलखाऊँ ॥ राम सखा सम्बधी हूँ ह्वै, नैनन नीर बहाऊँ जूठन कन विषयन के बीनत कूकर सों धुकि धाऊँ ॥ जैसो कियो तैस ही पायो, तुमहिं न दोष लगाऊँ । "दासकिशोर" निहोर कबहुँ तो, चरणन की रज पाऊँ ॥ ७ ॥

रसिक वर करहु दिव्य रस दान । नित्य निकुंज मंजु मिथिलापुर, मध्य देहु शुभ थान ॥ बनरावेष मौर शिर धारे, सेहरे की झमकान । कज्जल रंजित नैन नुकीले, मन्द मन्द मुसुकान ॥ जावक जुत पद पंकज पावन, मनभावन गतिमान । भाँवरि भरत हरत मन बुधि चित, हियरो अति उमगान ॥ भरि भरि भुजन समाधि स्वाद को, अन्तःकरन लोभान । "दासकिशोर" विभोर बनावहु, ओ मेरे मेहमान ॥ ८ ॥ प्रीति प्रतीति प्रदायिनी सिय स्वामिनि मोरी । सतत प्रयास किशोरी करतीं, कुटिल जीव उद्धारन को, अर्ज करत नित ही प्रीतम सों, कृपा कटाक्ष पसारन को । देखि न सकत काहु कर जोरे, ऐसी मृदुल स्वभाविनी सिय स्वामिनि मोरी ॥प्री०॥ सहज सनेह सखिन सन करतीं, बिविध भाँति सन-मानतीं । लीला ललित करन हित नूतन, चूक न हियबिच जानतीं। कंचन विपिन रास रस वर्षत, सखियन को सुखदायिनी सिय स्वामिनि मोरी ॥प्रीति०॥ कृपा हेतु लीला बपु धरतीं, साधन सुलभ सुझाती हैं, शरणागत रिपु हू को प्यारी, प्राणन सम अपनाती हैं। ऐसी कृपालु दयालुमयी नहिं, आन कोई वरदायिनी सिय स्वामिनि मोरी ॥ प्रीति० ॥ सब साधन अवलम्ब हीनहौं, कैसी करूँ कहाँ जाऊँ, विषय विलास बसेउ मन माहीं, निर्मल भगति कहाँ पाऊँ । सरयू अलि करि कृपा देहु मोहिं, प्रेम भगति अभिरामिनी सिय स्वामिनि मोरी ॥ प्रीति०॥ ८ ॥

गरज है किशोरी जू हमें आप ही से, न मतलब हमें है जगत में किसी से । विरद आपका हमने जबसे सुना है, लगन लग गई है मिलन की तभी से ॥ भला कैसे होता है विरही का जीवन, जरा पूछ लीजै हमारे ही जी से । यही एक जीवन में प्रण है हमारा, मिलेंगे किसी दिन सिया स्वामिनी से ॥ चहै स्नेहलति का चरण तरल तरना, जो होने को

होगा सो होगा इसीसे ॥ गरज० ॥ ६ ॥ स्वामिनी पद पंज की ओर, लगी है आशाओं की डोर। अन्तर की तुमहीं सब जानो, प्यासे हिय की हू पहिचानो। करिय कृपा की कोर॥ प्रीति रीति की वेलि पुरानी, सूखि रही पाये बिन पानी। सींचिय अमिय बहोर॥ स्वामिनि सहज स्वरूप सम्हारो, जानि अबोध न मोहि बिसारो। अब जनि हाथ सिकोर॥ युगल स्वरूप सदा ही ध्याऊँ, रसना से रसमय गुण गाऊँ। करि दीजै रसबोर॥ स्वामिनी० ॥ १० ॥ प्रणिपातहि ते सुप्रसन्नमना, करुणायतना मिथिलेश किशोरी। चित म्लान न काहु को देखि सकैं, सखि कोमल भाव भरी अति थोरी॥ हमसी अपराधिनि की रुचि को, जोगवैं नित ही अपनी सुख छोरी। ऐसिउ कोमलताई "किशोर", न चित्त चढ़ै तेहि बुद्धि निगोरी ॥ ११ ॥ अपराध अगाध बिसारि सदा, करुणा उर में नित आनत हैं। गुन एकहुँ जो कहिं दृष्टि परै, तेहि बारहि बार बखानत हैं॥ फुर झूठहुँ जो कहे रावर हौं, अपनो करिके तेहि मानत हैं। करनी न 'किशोर' बिचार करैं, उरभाव सदा पहिचानत हैं॥१२

तव पद पदुम विहाय न भरोसो मोहिं, जोहि जिय लीजै सुधि मेरी सिय स्वामिनी॥ प्रभुहू ते सरस क्षमादि शुभ गुण सिन्धु, कीरति वदत श्रुति तेरी सिय स्वामिनी। ताहि बल सोच छाड़ि नाम लै उदर भरौं, निदरि गुणादि कृत केरो सिय स्वामिनी॥ करत अधिक छोह तापै आप प्राणनाथ, जापै रंच तोर दृग हेरी सिय स्वामिनी। ताते बार बार कर जोरि माँगौं दीन होय, राखु निज चरणन नेरी सिय स्वामिनी॥ द्रवत न कौशल किशोर तव नेह बिन, करै क्यों न कर्म योग ढेरी सिय स्वामिननी। जइहौं नाहीं द्वारे ते निकारे हू पै दया निधे!, साँची गुनि कहत हौं टेरी सिय स्वामिनी॥ जौन माया योगी सिद्ध ज्ञानी विधि शम्भु हूँ लौं, निज बश माहिं किये जेरी सिय स्वामिनी। सोउ तव भृकुटी विलोकति रहति सदा, चाहति कटाक्ष कृपा केरी सिय स्वामिनी॥ जनकदुलारी रघुवंश मणि प्राण प्यारी, अब जनि कीजै नेकु देरी सिय स्वामिनी। नेह लता प्रीतम सों दीजिये धरायकर कर, विगरी बनैगी तव मेरी सिय स्वामिनी॥ १३॥

यह विनती मिथिलेश किशोरी। क्षमि अपराध सकृत अवलोकहु, स्वामिनि मेरी ओरी। देखि परम अघ कोउ न पूछत, सबहिन नाक सिकोरी। स्वकृत कर्म को फल भोगत हौं, काहुहिं देहु न खोरी॥ सब दिशि ते अवलम्ब हीन हौं, कासों कहौं निहोरी। "दासकिशोर" भुवन ठकुराइन, करहु कृपा कण कोरी॥ १ ॥ अबकी लेहु बचाय किशोरी। कियो बहुत अपराध रावरो, लह्यो आज ताको फल सोरी॥ गोपद जलद डूब मरि जाऊँ, कर्म विचारि अहै सोउ थोरी। नस नस माहिं कील ठुकि जावै, होइ अगति अंग अंग की मोरी॥ अब अति ही अवलम्ब हीन भयो, सबहि रहे झकझोरी। "दासकिशोर" पाहि करुणामयि, परेउ शरण ताकौं कर जोरी॥ २ ॥

रसना सीताराम उचारे। मंगल मंजुल मोद प्रदायक, सन्तन प्राण अधारे॥ नाम रटत शिव शेष पवन सुत, गणपति भये सुखारे। सीताशरण शरणनामहिं की, आश

न अपर हमारे ॥ १ ॥ मन सिय राम चरण में लाग । महा मोह सोवत निशि वासर, भोर भयो अब जाग ॥ जगस्वारथी न तेरो कोई, सबकी आशा त्याग । सीताशरण शरण गहु प्रभु की, तो जागहिं मम भाग ॥२॥ रे मन सिय पद नाता जोड़ । श्रीसद्गुरुवर बचन मानि अब, जगके नाता तोड़ ॥ आगमनि सन्तजन वर्णत, विषय पिपासा छोड़ । सीता-शरण शरण रहु सिय की, सब जग ते मुख मोड़ ॥ ३ ॥ मानव मानवता न भुआओ । जगतनाथ सियराम चरण में, निशिदिन नेह लगाओ ॥ मिथ्या अति अभिमान करो मत, सन्त चरण चित लाओ । सीताशरण कृपा लहि तिन की, आवागवन मिटाओ ॥ ४ ॥ सीताराम भक्त हितकारी । कृपामूर्ति मिथिलेश किशोरी करुणानिधि धनुधारी । दीन गरीब जिनहिं अति प्यारे, जगकीरति विस्तारी । सीताशरण कृपा करि हेरिय, आयो शरण तिहारी ॥५॥ रघुवर राखो मेरी लाज । करुणासिन्धु कृपामय विग्रह, ईशन के शिरताज ॥ आनन्द कन्द द्वन्द दुख मोचन, राम गरीब निवाज । सीताशरण शरण में राखिये, अति उदार महराज ॥ ६ ॥

सिया जू तुम्हरो विरद उदार । करिआईं करि हो करतीं हों, निज आश्रित पर प्यार ॥ एक बार दै दर्श दयामयि, हरहु दुसह दुख भार । गुन शीला पद कंज मंजु लखि, रहौं सदा बलिहार ॥ ७ ॥ लली जू ! निजकर कंज सम्हारो । एक बार करि कृपा दृष्टि हँसि, मेरी ओर निहारो ॥ पतितनहूँ अपनाय करत शुचि, अस श्रुति सन्त पुकारो । सीताशरण दरश दै कीजिये, जीवन सफल हमारो ॥ ८ ॥ सिया जू रावरे गुण ग्राम । प्रणत आरति हरण अशरण, शरण परम ललाम ॥ सुनत गावत हरत अघ, दायक सकल अभिराम । चहत सीताशरण अविचल, प्रीति तुम्हारे नाम ॥ ९ ॥ सीता नाम सरस सुख-दाई । अति ही मधुर सुधा हू जेहि सम, नाहिन उपमा पाई ॥ रघुनन्दन के प्रेम प्राप्तिहित नाहिन आन उपाई । सीताशरण सिया को सुमिरत, आवत हिय उमगाई ॥१०॥ सिया जू कब मोकहँ अपनइहो । कबकरि कृपा कृपामयि स्वामिनि, सम दृग सन्मुख अइहो । मैं भरि प्यार चरण लपटाऊँ, निजकर कंज उठइहो । अंक बिठाय लगाय कंठ सों, कुशल पूछि समझइहो ॥ मृदु कर कंज फेरि शिर ऊपर, बार बार बलि जइहो । गुन शीला मुख चूमि लाड़िली !, आपन प्यार जनइहो ॥ ११ ॥ सिया जू मोहिं भरोस तिहारो । सुनु मिथिलेश कुवाँरि लड़ैती, आपन विरद सम्हारो ॥ नाते नाँव गाँव मिथिला के, और न कोउ हमारो । मनभावन की विनती है यह, चरण ते नहिं टारो ॥ १४ ॥ मोहिं तो भरोसो सियजू रावरे चरण को ॥ प्रेम राशि सो बसत पद तल रजकण, कौशलकिशोर मनमूरि सो हरण को । तब पद तरवा तरणि के किरण मेरे, कब उगिहैं उर मंगल करण को ॥ नेक नेह करत निहाल होन जन जिय, विरद उदार बिन कारण को ॥१५॥ सियाजू सदा प्रणत हितकारी । करत स्वजन पर प्यार सर्वदा, जेहि विधि रहे सुखारी ॥ तैसेहि सब संयोग बनावत, दोष न नयन निहारी । जोगवति जन की रुचि निशिवासर, पल पल वाहि सम्हारी ॥ सुनि

तव विरद शरण में आयो, जग की आश बिसारी। सीताशरण चरण दर्शन दे, मेटहु बिपति हमारी॥ १६॥

सीते जीवन मूरि हमारी। प्राण प्राणकी जी कीजी हो, कबहुँ न पल छिन न्यारी॥ तुम बिन जगत जहर सम लागत, स्वर्ग नर्क दुखकारी। दास रामहर्षण अब दीजै, दर्श हृदय मन हारी॥१८॥ सीते कहहु कहाँ अब जाऊँ। चरण शरण तजि अन्य न जान्यो, एकहु ओर न ठाऊँ। जग में आपनोक है न कोई, सबके हृदय पिराऊँ। दास रामहर्षण त्रण रद गहि, परेउँ तुम्हारे पाऊँ॥ १६॥ भजु मन जनकजा सुखभवन। गौर सूरति मधुर मूरति, राम राजिव रमन॥ कृपारूप स्वभाव शुचि, निज जन हृदय रस भरन। मिटत छन में सब असंगल, जो लहै पद शरन॥ बिना इनके चरण सेये, भवतरहिं कहु कवन। नाम इनको जगत में विख्यात अशरन शरन॥ पतित पाँवर दीन कुटिल, कुचालि अवगुन भवन। त्यागि तव पद जाहिं सीता, शरन काकी शरन॥२०॥ कृपा अब कीजै श्रीजनकदुलारी। जगत जनक जगदीश जगत पति, रघुबर प्राण अधारी॥ सुयश उदार अपार आपको, कहें श्रुति सन्त पुकारी। करुणाखानि क्षमा की मूरति सूरति की बलिहारी॥ कृपा स्वारूप जगत हित कारिनि, दृग भरि मोहिं निहारी। गुनशीला निज चरण दरश दै, कीजिय मोहिं सुखारी॥ २१॥ कृपा को मूरति सिय सुकुमारी। आपनि जानि बिलोकिय मम दिशि, करुणा किरण पसारी॥ मेरी एक अधार लाडिली, सब बिधि तुम रिझवारी। गुनशीला सेवत पद पंकज, रहिहौं नित बलिहारी॥ २२॥

कृपा करि हेरो श्रीराजकिशोरी। तव मुख चन्द्र पियूष पान हित हों मम नयन चकोरी। तजि तुम्हरे पद कंज कृपामयि, मन न जाय केहु ओरी। गुनशीला सेवौं पद पंकज निशिदिन प्रम विभोरी॥ २३॥ तुम्हीं हो मम जीवन आधार डूबि रही अपार भव निधि में, कर गहि लेहु उबार॥ तुम सम कवन अधम खल तारन, काको सुयश उदार। करुणा सिन्धु कृपा की मूरति सूरति पर बलिहार॥ यद्यपि अवगुन भरी कुटिल मति, तदपि कहात तुम्हार। गुनशीला निज जानि लाड़िली, दर्शन दो इक बार॥ २४॥ लाड़िलो मम जीवन आधार। हे सुखखानि स्वामिनी सीते, भव भय भंजनि हार॥ तजि तुम्हरे पद कंज किशोरी, जाऊँ केहि के द्वार। तुम बिन कवन समर्थ हेत बिन, तारक परम उदार॥ तुम्हरी कृपा कोर नित चाहत, विधि, हरि, हर जग सार। कीजै कृपा कोर निज जन गुनि, आय परेउ तव द्वार॥ यद्यपि हौं अति अधम अपावन, अघनिधि कुटिल गमार। तदपि श्रवण सुनि सुयश रावरो, विनती करूँ पुकार॥ दीजै कृपा भीख अब मोकहँ, अपनी शरण विचार शरणागत रक्षक व्रत तुम्हरो,कर गहि लेहुँ उबार॥ रीझै सेवा भजन बिना ही, ऐसो को रिझवार। कृपा कोर करि हे करुणामयि दीजै सकृत निहार॥ मम हितकारी अपर न तुम सम, जो करि सकै उधार। सीताशरण चरण दर्शन दै, दर्शाइय निज प्यार॥२५॥

तुम तजि और कौन पहँ जाऊँ। काको बिरद उदार आप ते, जासु चरण गिरि जाऊँ। मेरी आश्रयदानि एक तुम, अपर काहि गोहराऊँ। अशरण शरण कृपा की

मूरति, गहौं तुम्हारे पाऊँ ॥ कीजै दया दयामयि निज गुनि, नित तव गुण गण गाऊँ। परम मधुर तर नाम सुधा तव, पियत न कबहुँ अघाऊँ । तुम्हरो शील स्वभाव परम प्रिय, हिय बिचारि सुख पाऊँ । सीताशरण सिया स्वामिनि सुठि सूरति दृगन बसाऊँ ॥ २६ ॥ लगन मोहिं लागी सिय चरणन की । जग के सब सम्बन्ध स्वाद तजि, रहति सदा मति पागी ॥ सब व्यवहार भार सम लागत, लली चरण रति जागी । गुनशीला सिय कृपा कोर लहि, भई परम बड़ भागी ॥ सोइ पंडित बुधिवन्त चतुर सोइ, जो सियपद अनुरागी। बड़भागी सयाम सोई अति, सिय बिन सकल अभागी ॥ २७ ॥ दिवस निशि भजिये सीता-राम । शोक, मोह, दुख, द्वन्द, विनाशक, भवनिधि तारक नाम ॥ पूरणतम परमीश परम विभु, व्यापक जग अभिराम । गुणागार श्रुतिसार सबनि को, दायक बर विश्राम ॥ भजन, भक्ति, भावना विकाशक, पूरक सब मन काम । भक्त भाव ग्राहक सुषमानिधि, रससागर सुखधाम ॥ प्रेमिन प्राणाधार परम प्रिय, जिव जीवन धन श्याम । सीताशरण भजो सिय रघुवर, प्रमुदित आठो आम ॥ २८ ॥

बृथा इमि कोटिन जन्म गमाये । कृपासिन्धु सियराम चरण तजि जग सों नेह लगाये ॥ तन नाते अति प्रिय दृढ़ माने, प्रभु नाते बिसराये । याते जन्मेउ जोनि अनेकन, नाना विधि दुख पाये ॥ सुख पावन हित किये यत्न नित, सपनेहुँ शान्ति न पाये । नित नव नव अशान्ति दुख बाढ़े, मन मलीनता छाये ॥ जिन जिनको अपनो करि मान्यो, वे सब भये पराये । सीताशरण शरण रहु सिय की, कबहूँ दुख न सताये ॥२६॥ हे सिय स्वामिनि सुभग सलोनी साजन सुखद सरस सुख बोरी । प्रीतम प्रीति प्रतीति प्रदायिनि, पल पल पिय बिधु बदन चकोरी ॥ परिकर प्रेम पियूष पियावनि, कृपा मूर्ति मृदुचित अतिभोरी। गुनशीला पदपंकज पूजत पावौं परमानन्द अथोरी ॥ ३० ॥ निज कर कमल कृपा करि कबहूँ, स्वामिनि मम शिर परसि सिहैहो । मृदुल बचन कहि कहि दुलरावत; लाड़िलि आपन प्यार जनैहो ॥ मैं तव पद पंकज शिर राखौं, कर गहि आपनि अंक बिठैहो । गुन शीला लै विपुल बलैया कुशल पूँछि हँसि कण्ठ लगैहो ॥ ३१ ॥

राम रसिक रघुबर रस रसिया, सिय जीवन धन प्राण अधारे । परि कर प्रेम पियूष प्रदायक, प्रेमिन प्राण समान पियारे । कब मुख कन्ज मंजु दिखलैहो, रस लम्पट रस रूप उजारे । गुनशीला नव नेह भरे पिय, सुछबि निरखि निज सर्वस वारे ॥ ३२ ॥ हे रसिकेश रसिक रस लम्पट, कब निज चरण सरोज दिखैहो । मैं भरि प्यार चरण लट-टावौं हँसिकर गहि तुम कण्ठ लगैहो ॥ प्रेम सुधा सब पियत पियावत, मोहिं आपने रंग रंगि दैहो । गुनशीला गुन गन गर्बीले, रिझवीले मम आश पुजैहो ॥ ३३ ॥ सियजू सलोनी सुभग सुकुमारी सखियन के जीवन हो प्राण अधार। करुणा कृपा की क्षमामयि मूरति सूरति, पै हौं बलिहार बलिहार ॥ बिन कारण सबकी हितकारी, मृदुचित परमउदार हो उदार । दोष न काहू के अवलोकत, सब पर करत हृदय से प्यार ॥ पाँवर पतित अधम उद्धारक,

कीरति विमल जगत उजियार। प्रीति प्रतीति सुरीति प्रदायिनि, सुनत श्रवण दुख भरी पुकार॥ कृपा विवश होवत अति व्याकुल, दुख मेटत करिके उपचार। देखि न सकत दीन कर जोरे, भोर सुभाव भरीं अति प्यार॥ स्वामिनि कृपा कि दृष्टि वृष्टि करि, हरिये ममउर ताप अपार। गुनशीला मेरी सर्वसनिधि, रिझबीली मम प्राण अधार॥ ३४॥ जौं मेरो अवगुन उरधारो। तो मिथिलेश नन्दिनी स्वामिनि, कोटि कलप नहिं मोर उबारो॥ कौन सी क्रिया कीन्ह मैं नाहिन, यह संसार असार पनारो। करुणासिन्धु शील गुण सीमा दासी (श्री) युगल प्रिया न विसारो॥ ३५॥

❀ श्रीसीताराम लीला माधुरी ❀

श्लोक :— चरितं श्री रघुनाथस्य शतकोटि प्रविस्तरम्।
एकैकाक्षरं पुन्सां महा पातक नाशनम्॥

महर्षि श्री बाल्मीकि जी लिखते हैं कि-श्रीरघुनाथ जी का चरित्र सौ करोड़ विस्तार वाला है। अर्थात् श्रीरामजी का चरित्र अनन्त अपार है। जिस चरित्र का एक एक अक्षर महान् पापों का नाश करने वाला है। भगवान् श्रीरामजी की लीला परम सुखद एवं रसद है। इसकी महिमा यद्यपि महर्षियों ने बहुत अधिक गाई है। विद्वानों को विदित ही है। प्रातः स्मरणीय पूज्य चरण गोस्वामी श्री तुलसीदास जी महाराज ने श्रीरामचरितमानस बालकाण्ड में लिखा है कि-विषयनि कहँ पुनि हरिगुण ग्रामा। श्रवण सुखद अरु मन अभिरामा॥ अर्थात् भगवान् श्रीहरि के गुण समूह (लीला, कथा, चरित्र) भगवत् भक्तों के तो प्राणाधार हैं ही, विषयी जीवों को भी सुनने में सुखद और मन को परमानन्दानुभव कराने वाले हैं। महिमा इससे अधिक क्या कही जाय कि जिसका एक एक अक्षर "महापातक नाशनम्" सभी महान पापों का नाशक है। और—जे सकामनर सुनहिं जे गावहिं। सुख सम्पति नाना विधि पावहिं॥ सुर दुर्लभ सुख करि जग माहीं। अन्तकाल रघुपति पुर जाहीं॥ सकाम भाव से गाने और सुनने पर सुर दुर्लभ सुख भोग कर अन्त में रघुपतिपुर की प्राप्ति होती है। और निष्काम भाव से गाने या सुनने वाले को, लिखा गया कि लहैं भगति गति सम्पति नई॥ अस्तु पाठकगण अब श्रीसीताराम लीला माधुरी का रसास्वादन करें।

बृ० ब्र० सं० पा० २ अ०, पृ० ७७ से ७६ तक, में श्रीमन्नारायणजी ने श्रीलक्ष्मी जी से कहा कि—

एवं चतुर्विधादेवि ममपुर्योभवन्ति हि। माथुरेमथुरापुण्या तत्रवृन्दावनंवनम् ॥१॥ अयोध्याकोशलेदेशे सरयूपुलिनेस्थिता। यत्रराजीवपत्राक्षो रामोदशरथात्मजा

॥ २ ॥ परमात्मासंभवं जानकीरूपात्वया । तयोर्लीलानुसन्धानान्मुक्तिर्भवति सद्-गतिः ॥ ३ ॥ श्रीराममन्त्रराजस्य माहात्म्य गिरिजापतिः जानाति भगवान्शंभुर्ज्वलत्पावकलोचनः ॥ ४ ॥ रामोऽङेन्तोवह्निपूर्वो नमोन्तः स्यात्षडक्षरः । तारको-मन्त्रराजोऽयं संसारविनिवर्तकः ॥५॥ रमन्ते योगिनोऽनन्ते सत्यानन्दे चिदात्मनि। इतिरामपदेनासौ परंब्रह्माभिधीयते ॥६॥ रामेतिकिलवर्णाभ्यां ब्रह्मेतिप्रतिपाद्यते। कारणं सर्वभूतानामवधिः परिकथ्यते ॥ ७ ॥ बृहद्गुणानामाधारो रहितः प्राकृतेर्गुणैः । एष सर्वस्यविधृतिः सेतुः श्रुत्याप्रकीर्तितः ॥ ८ ॥

अर्थ—हे देवि ! इस प्रकार से मेरी चार प्रकार की पुरियाँ होती हैं। वहाँ पर मथुरा देश मथुरा नाम की पवित्र नगरी में बृन्दाबन नाम का बन है ॥१॥ यह पूर्व अध्याय का सम्बन्ध कहा गया है। अब कोशल देश में अयोध्या नाम की नगरी है, जो सरयूजी के किनारे पर स्थित है। जहाँ पर कमल दल नैन चक्रवर्ति श्रीदशरथ नन्दन श्रीरामजी निवास करते हैं॥ २ ॥ हे लक्ष्मी ! उस स्थान में तुम श्रीजानकी जी के रूप में उन परमात्मा के बामभाग में विराजती हो। उन श्रीसीताजी की लीला अनुसन्धान करने से उत्तम सद्गति रूप मोक्ष होता है ॥ ३ ॥ उन श्रीरामजी के मन्त्र का महात्म्य गिरिजापति भगवान श्री शंकरजी जानते हैं। जिसके पुण्य प्रभाव से प्रचन्ड अग्नि के समान नेत्र (आँख) वाले हो गये ॥ ४ ॥ राम इस नाम के ङे विभक्ति अन्त में लगाने से और अग्नि बीज प्रथम लगाने से नमः अन्त में रख देने से छै अक्षर का श्रीराम मन्त्र होता है। इस मन्त्र को मन्त्रराज और तारकमन्त्र कहा जाता है। जो संसार चक्र से सर्वथा छुड़ा कर मोक्ष देता है॥ ५ ॥ जो मन्त्रराज सत् चिद् आनन्द स्वरूप और अनन्त हैं। जिसमें योगी लोग रमण करते हैं। ऐसे रामपदवाच्य परात्परब्रह्म इस नाम से कहे जाते हैं ॥६॥ रा और म केवल इन दो वर्णों से ब्रह्म इस शब्द का प्रतिपादन होता है। जो सभी भूतों का कारण और परमावधि कहा जाता है ॥ ७ ॥ ब्रह्म शब्द में बृहत् अर्थात् महान् दिव्य गुणों का आधार और प्राकृतिक गुणों से रहित (जिसको उपनिषद् में महतोमहीयान) ऐसा कहा जाता है। यह महतो महीयान ही समस्त चारपाद विभूति को धारण करने वाला, और एक पाद विभूति से आत्मा को त्रिपाद विभूति में ले जाने के लिये सेतुभूत (पुल के समान) ऐसा श्रुतियों ने गान किया है ॥ ८ ॥

यदायदा हि धर्मस्यग्लानिर्भवति भूतले। अभ्युत्थानमधर्मस्य तदा-ऽऽत्मानं सृजात्यसौ ॥ ९ ॥ परित्राणायसाधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् । धर्म संस्थापनार्थाय जातोऽहं राम संज्ञया ॥ १० ॥ रामोनीलोत्पलश्यामे रामेकोदण्ड-भूषिते । भक्त्याऽभ्येति परंस्थानं बैकुण्ठाख्यं सुदुर्लभम् ।११। चतुर्थी चात्रनिर्दिष्टा तदार्थ्ये कमलोद्भव । अभ्यंति तेन रामं हि संत्यज्यान्यप्रयोजनम् ॥ १२ ॥

साधनानां तु संत्यागं नमः शब्दो हि शंसति । अनेन शरणापत्तिः परमैकान्तिनां मता ॥ १३ ॥ सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणागतान् । मोचयिष्यामि सर्वेभ्यः पापेभ्यो नात्र संशयः ॥ १४ ॥ दासोऽस्मीति च संधाय चाऽऽत्मानं परमेश्वरि । अभयं तस्य दास्यामि यो मामेतिनिरन्तरम् ॥ १५ ॥ गच्छंस्तिष्ठन्स्वपन्भक्त्या नमन्यो गुरुदेवयोः । दासोऽस्मीति निजं रूपं स्मरन्मुच्येत बन्धनात् ॥ १६ ॥ नारायणस्य ये भक्ताः शान्तास्तद्गतमानसाः । तेषां दासस्य दासोऽहमिति संचिन्तयेद्धिया ॥ १७ ॥ शङ्ख चक्रोर्ध्वपुण्ड्राद्यैर्दासवेषं विधाय च । शश्वत्तु देव देवेशं भक्त्या परिचरेद्धरिम् ॥ १८ ॥

अर्थ—इस पृथ्वीलोक में जब जब धर्म का संकोच (ह्रास) होता है। तब ये श्रीरामजी धर्म का उत्थान (उन्नति) और अधर्म को मिटाने के लिये आवश्यकतानुसार अपने अवतारों को प्रगट करते हैं ॥ ९ ॥ और दुष्टजनों का विनाश तथा साधुओं की भली भाँति रक्षा एवं धर्म की स्थापना करने के लिये मैं श्रीराम नामक परमात्मा से उत्पन्न होता हूँ ॥ १० ॥ वह श्रीराम जी नीलमणि के समान प्रकाशमान श्यामसुन्दर हैं, अनेक योगी लोग जिनमें रमण करते हैं। अथवा जो सबमय रमण करते हैं। और अपने आश्रित के दुःखदायियों को दण्ड देने के लिये धनुष धारण करते हैं। उन श्रीरामजी में भक्ति करने से अत्यन्त दुर्लभ बैकुण्ठ नामक परात्परस्थान साकेत धाम में चले जाते हैं॥ ११ ॥ हे ब्रह्मा ! इस राममन्त्र में बीज के रकार में तादर्थ्य जो चतुर्थी निर्देश हुई है उसमें अन्य प्रयोजन को उपलक्ष करके अन्य रक्षकत्व को सम्यक् प्रकार त्यागने के लिये कहा गया है। अतः अनन्यता पूर्वक अकार त्रय सम्पन्न होकरके भजन करने से भक्त सम्यक् प्रकार श्रीरामजी को प्राप्त हो जाता है॥ १२ ॥ श्रीराम मन्त्र में जो नमः शब्द है, वह अन्य सभी साधनों का त्याग करना कहता है। इससे परमैकान्तिकों का सिद्धान्त, भली भाँति शरणागति (प्रपत्ति कही गई है ॥ १३ ॥ इससे जो भक्त सब धर्मों का सम्यक् त्याग करके केवल एक मात्र मेरी शरणागति धर्म को अपनाता है, उसको मैं समस्त पापों से मुक्त कर देता हूँ। इसमें कुछ भी संशय (सन्देह) नहीं है ॥ १४ ॥ हे परमेश्वरि ! जो जीव अपनी आत्मा को मैं भगवान् का दास हूँ, ऐसा अनुसन्धान करता है। उस भक्त को मैं अभय कर देता हूँ। जिससे वह निरन्तर मुझ में विलीन (आशक्त चित्त) रहता है ॥ १५ ॥ जो चलते बैठते, सोते समय स्वप्न में भक्ति पूर्वक गुरु और अपने इष्ट देव को नमस्कार करते हुये मैं भवद्दास हूँ, अपने स्वरूप का इस प्रकार स्मरण करता है तो वह जन्म और मृत्यु के बन्धन से छूट जाता है ॥१६॥ भक्त अपनी बुद्धि से भगवान् के जो भक्त शान्त चित्त और तद्गत मन वाले भक्त हैं, मैं उनका दास हूँ ऐसा चिन्तवन करे। ॥१७॥ तप्त भगवदायुधों तथा ऊर्ध्व पुण्ड्रतिलक तुलसीमालादि भगवद्दास वेष धारण करके, समस्त देवताओं के भी परम देवता परात्परब्रह्म की भक्तिपूर्वक सेवा करता रहे ॥ १८ ॥

स सर्वसिद्धिमासाद्य ह्यन्ते रामपदं व्रजेत । चिन्तयेच्चेतसानित्यं श्रीरामः शरणंमम ॥ १९ ॥ चिद्रूपस्याऽऽत्मनोरूप पारतन्त्र्यं विचिन्त्य च। चिन्तयेच्चेतसानित्यं श्रीरामः शरणंमम ॥ २० ॥ अचिन्त्योऽपि शरीरादेः स्वातन्त्र्यं नैव विद्यते । चिन्तयेच्चेतसानित्यं श्रीरामः शरणंमम ॥ २१ ॥ आत्माधारं स्वतन्त्रं च सर्वशक्तिं विचिन्त्य च । चिन्तयेच्चेतसानित्यं श्रीरामः शरणंमम ॥ नित्यात्मगुण संयुक्तो नित्यात्मतनुमण्डितः । नित्यात्मकेलि निरतः श्रीरामः शरणंमम ॥ २३ ॥ गुणलीलास्वरूपेषु मितिर्यस्य न विद्यते । अतोवाङ्मनसावेद्यः श्रीरामः शरणंमम ॥ २४ ॥ कर्त्तासर्वस्यजगतो भर्त्तासर्वस्य सर्वगः । संहर्त्ता कार्यजातस्य श्रीरामः शरणंमम ॥ २५ ॥ वासुदेवादिमूर्तीनां चतुर्णां कारणं परम् । चतुर्विंशतिमूर्तीनामाश्रयः शरणंमम ॥ २६ ॥

जो नित्यप्रति अपने चित्तबृत्ति से श्रीरामः शरणंमम इस मन्त्र का चिन्तवन करेगा, वह समस्त सिद्धियों को प्राप्त करके श्रीरामजी के धाम को जायेगा ॥ १९ ॥ अब चित्त से चिन्तवन करने का स्वरूप बताते हैं कि—जो चैतन्यशक्ति का भी आत्मा है, उसके रूप की परतन्त्रता बिचार करके, अपने चित्त से श्रीरामः शरणंमम ऐसा चिन्तबन करे ॥ १० ॥ यद्यपि वह परमपुरुष शरीराभिमानियों से अचिन्त्य भी है, तथापि किसी में स्वतन्त्रता नहीं है । ऐसा चित्त से चिन्तवन करते हुये श्रीरामः शरणं मम मन्त्र को जपे ॥ २१ ॥ श्रीरामजी ही समस्त आत्माओं के एकमात्र आधार और स्वतन्त्र हैं और सर्व शक्ति सम्पन्न हैं। चित्त से ऐसा चिन्तवन करते हुये, श्रीरामः शरणंमम जपे ॥२२॥ जो त्रिगुणमयिमाया के प्राकृतगुणों से रहित, और आत्मगुणों (अलौकिक दिव्यगुणों) से नित्य संयुक्त हैं, और जो आत्मा के भी आत्मा हैं। आत्मा ही जिनके अंग भूषण हैं। तथा समस्त आत्मायें ही जिनका नित्य विहार स्थल हैं, वह श्रीराम जी मेरे उपाय हैं ॥ २३ ॥ जिनके गुण, लीलायें एवं स्वरूप अनन्त हैं । जो मनवाणी से परे हैं, वेद जिन्हें नेति कहते हैं, यथा—नेति नेति जेहि वेद निरूपा । निजानन्द निरूपाधि अनूपा ॥ रा० च० मा० बा० कां० १४४ दो० ॥ ऐसे महामहिम्न श्रीरामजी मेरे उपाय हैं। मैं उन श्रीरामजी का रक्ष्य हूँ ॥ २४ ॥ जो समस्त जगत के कारण और सब जगत के भरणपोषण करने वाले, सर्व व्यापक, तथा उत्पन्न हुये समस्त जगत के संहारकर्त्ता श्रीरामजी मेरे रक्षक हैं ॥ वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध इन चतुर्व्यूहों के परमकारण और चौबीस अवतारों के आश्रयण स्वरूप श्रीरामजी मेरे उपाय (रक्षक हैं ॥ २६ ॥

नित्यमुक्तजनैर्जुष्टो निविष्टः परमेपदे । परंपरमभक्तानां श्रीरामः शरणंमम ॥ २७ ॥
महदादिस्वरूपेण संस्थितः प्राकृतेपदे । ब्रह्मादिदेवरूपैश्च श्रीरामः शरणंमम ॥ २८ ॥
मन्वादिनृपरूपेण श्रुतिमार्गंविभर्त्तियः । यः प्राप्तेस्वरूपेण श्रीरामः शरणंमम ॥२९॥
ऋषिरूपेणयोदेवो वन्यवृत्तिमपालयत । योऽन्तरात्माचसर्वेषां श्रीरामः शरणंमम ॥३०

योऽसौ सर्वतनुः सर्वः सर्वनामासनातनः । आस्थितः सर्वभावेषु श्रीरामः शरणंमम ॥ ३१ ॥
बहिर्मत्स्यादिरूपेण सद्धर्ममनुपालयन् । परिपातिजनान्दीन् श्रीरामः शरणंमम ॥ ३२ ॥
यश्चात्मानं पृथक्कृत्य भावेनपुरुषोत्तमः । आचार्यामावस्थितोदेवः श्रीरामःशरणंमम ॥३३॥
अर्चावताररूपेण दर्शनस्पर्शनादिभिः । दीनानुद्धरतेयोऽसौ श्रीरामः शरणंमम ॥ ३४ ॥
कौशल्याशुक्तिसंजातो जानकीकण्ठभूषणः । मुक्ताफलसमोयोऽसौ श्रीरामःशरणंमम ॥ ३५॥
विश्वामित्रमखत्राता ताडकागतिदायकः । अहिल्याशापशमनः श्रीरामः शरणंमम ॥ ३६ ॥

अर्थ—नित्य और मुक्त पार्षदों से सेवित परात्परधाम में रहने वाले, परमभक्तों के प्राप्य श्रीरामजी मेरे रक्षक हैं ॥ २७ ॥ एकपाद विभूति में महातत्त्व आदिक रूपों में स्थित, ब्रह्मा आदि देवताओं के स्वरूपों में प्रगट, अर्थात् भक्तों के भाव में रहने वाले, श्रीरामजी मेरे रक्षक हैं ॥ २८ ॥ मनु इत्यादि राजाओं के रूप से जो वेदमार्ग (सद्धर्म) की स्थापना करते हैं, और अपने यथार्थ रूप से जो प्राप्त होते हैं । ऐसे श्रीरामजी मेरे रक्षक हैं ॥ २९ ॥ जो सनकादिक ऋषियों के रूपों से वन में रहकर भजन की वृत्ति का पालन करते हैं । और जो सभी के अन्तरात्मा में निवास करने वाले हैं, वह श्रीरामजी मेरे रक्षक हैं ॥ ३० ॥ जो विराटरूप से अनेक शरीर, अनेक रूप अनेक नाम वाले हो गये । वह सनातन पुरुष सभी के भावों में स्थिर रहने वाले, श्रीरामजी मेरे रक्षक हैं ॥३१ फिर वही प्रभु मत्स (मछली) कूर्म (कछुआ) आदि बाह्य रूपों से भगवद्धर्म का पालन (रक्षण) करते हुये, शरणागत दीन भक्तों की भली भाँति रक्षा करने वाले, श्रीराम जी मेरे रक्षक हैं ॥ ३२ ॥ जो पुरुषोत्तम, परात्परब्रह्म अपनी आत्मा को देव रूप से अलग करके अर्चाविग्रह में स्थित होते हैं, वह श्रीराम जी मेरे रक्षक हैं ॥ ३३ ॥ पुनः जो अर्चा-वतार रूप से दर्शन देकर स्पर्श कराते हुये सेवा स्वीकार करके उद्धार करते हैं वह श्रीराम जी मेरे रक्षक हैं ॥ ३४ ॥ माता श्री कौशल्या रूपी शुक्ति (सीपी) से प्रगट होकर श्रीजानकीजी के कण्ठ के भूषण स्वरूप मुक्तामणि के समान जो श्रीरामजी हैं, वही मेरे रक्षक हैं ॥ ३५ ॥ श्रीविश्वामित्र जी के यज्ञ की रक्षा करने वाले, ताड़का को अपने बाण से गति प्रदान करने वाले, श्रीगौतम जी द्वारा दिये गये श्रीअहिल्याजी के श्राप को शमन (मिटाने) करने वाले श्रीरामजी मेरे रक्षक हैं ॥ ३६ ॥

पिनाक भंजनः श्रीमान्, जानकी प्रेम पालकः । जामदग्न्य-प्रतापघ्नः, श्रीरामः शरणंमम ॥ ३७ ॥ राज्याभिषेकसंहृष्टः, कैकेईवचनात्पुनः । पित्रादत्तवनक्रीडः, श्रीरामः शरणंमम ॥ ३८ ॥ जटाचीरधरोधन्वी, जानकीलक्ष्मणान्वितः । चित्रकूटकृतावासः, श्रीरामः शरणंमम ॥ ३९ ॥ महापञ्चवटीलीला, सञ्जातपरमोत्सवः । दण्डकारण्यसञ्चारी, श्रीरामः शरणंमम ॥ ४० ॥ खरदूषणविच्छेदी, दुष्टराक्षसभञ्जनः, हृतशूर्पनखाशोभः, श्रीरामः शरणंमम ॥४१॥ मायामृगविभेत्ता च, हृतसीतानुतापकृत । जानकीविरहाक्रोशी, श्रीरामः शरणंमम ॥४२॥ लक्ष्मणानुचरोधन्वी, लोकयात्राविडम्बकृत । पम्पातीरकृतान्वेषः, श्रीरामः

शरणंमम ॥ ४३ ॥ जटायुगतिदाता च, कबन्ध गतिदायकः । हनुमत्कृत साहित्या, श्रीरामः शरणंमम ॥ ४४ ॥

अर्थ—शंकरजी के धनुध को तोड़ने वाले, अत्यन्त शोभा सम्पन्न, श्रीजानकी जी के प्रेम का पालन करने वाले, परशुरामजी के प्रताप को भंग करने वाले श्रीरामजी मेरे उपाय हैं ॥ ३७ ॥ राज्याभिषेक की घोषणा करके प्रसन्नता बढ़ाकर, फिर श्री कैकईजी के बचनों से पिताजी के द्वारा दिया हुआ बन बिहार करने वाले श्रीरामजी मेरे उपाय हैं ॥ ३८ ॥ जटा वलकल वस्त्र और श्रीजानकी जी एवं श्रीलक्ष्मणजी के सहित चित्रकूट में पूर्णकुटी बनाकर रहने वाले श्रीरामजी मेरे रक्षक हैं ॥३९॥ पंचवटी में महानलीलाओं का परमउत्सव करने वाले, और दण्डक बन में विचारने वाले श्रीरामजी मेरे रक्षक हैं ॥४०॥ खरदूषण का बध करने वाले तथा और भी अनेकों राक्षसों को मारने वाले, शूर्पनखा की शोभा को हरण करने वाले श्रीराम जी मेरे रक्षक हैं ॥ ४१ ॥ माया मृग मारीच को मारने वाले, श्रीसीताजी के हरण होने पर वियोग में सन्तप्त होने वाले, श्रीजानकीजी के विरह में करुणा करने वाले, श्रीरामजी मेरे रक्षक हैं ॥ ४२ ॥ धनुषधारी श्रीरामजी अपने अनुगामी श्रीलक्ष्मण जी के सहित लोक लीला के व्याज से पम्पा सरोवर के तटपर श्री-जानकीजी को अन्वेषण करने श्रीरामजी मेरे रक्षक हैं ॥ ४३ ॥ जटायु और कबन्ध को गति देने वाले, श्रीहनुमानजी से सहायता लेने वाले श्रीरामजी मेरे उपाय हैं ॥ ४४ ॥

सुग्रीवराज्यदाश्रीशो, बालिनिग्रहकारकः । अङ्गदाश्वासनकरः श्रीरामः शरणंमम ॥ ४५ ॥
सीतान्वेषणनिर्मुक्त, हनुमत्प्रमुखब्रजः । मुद्रानिवेशितवलः श्रीरामः शरणंमम ॥ ४६ ॥
हेलोत्तरितपाथोधिदूर्तनिर्धूतराक्षसः । लङ्कादाहकरोधीरः श्रीरामः शरणंमम ॥ ४८ ॥
जानकीजीवनत्राता, विभीषणसमृद्धिदः । पुष्पकारोहरणाशक्ता, श्रीरामः शरणंमम ॥४९॥
राज्यसिहासनारूढा, कौशल्यानन्दबर्द्धनः । नामनिर्धूतनिरयः श्रीरामः शरणंमम ॥ ५० ॥
यज्ञकर्त्तायज्ञभोक्ता, यज्ञभर्त्ता महेश्वरः । अयोध्यामुक्तिदः शास्ता, श्रीरामः शरणंमम ॥५१
प्रपठेद्यः शुभं स्तोत्रं, मुच्येतभवबन्धनात् । मन्त्रश्चाष्टाक्षरोदेवः श्रीरामः शरणंमम ॥ ५१ ॥

सुग्रीव को राज्यदेने वाले, महानऐश्वर्य शाली बालि को मारने वाले, अंगद को आस्वाशन देने वाले, श्रीरामजी मेरे रक्षक हैं ॥ ४५ ॥ श्रीहनुमानजी की प्रधानता में वानर समुदाय को भेजकर श्रीसीताजी का अन्वेषण कराने वाले और मणि-मुद्रिका में अपने प्रभाव को आवेशित करने (भर देने) वाले श्रीरामजी मेरे रक्षक हैं ॥४६॥ समुद्र को लाँघने का दूत के द्वारा राक्षसों के बल को मर्दन कराकर लंकादाह कराने वाले श्रीरामजी मेरे रक्षक हैं ॥ ४७ ॥ क्रोध करके समुद्र में पुल बाँधकर लंका के किला को घेर कर रावण इत्यादि राक्षसों का बध करने वाले श्रीरामजी मेरे रक्षक हैं ॥४८॥ श्रीजानकी जी के जीवन की रक्षा करने वाले, और अनुराग पूर्वक पुष्पक विमान पर चढ़ने वाले श्रीरामजी मेरे उपाय हैं ॥ ३९ ॥ राज्यसिंहासन पर बैठने वाले माता श्रीकौशल्या जी के

अनुरागमय आनन्द को बढ़ाने वाले, अपने नाम के प्रभाव से आश्रितों के जन्म मरन और नरक को मिटाने वाले, श्रीरामजी हमारे रक्षक हैं ॥ ५० ॥ यज्ञों को करने वाले यज्ञों के भोक्ता, और यज्ञों को करने वालों के मनोरथों को पूर्ण करने वाले ईश्वरों के भी प्रेरक महाईश्वर, अयोध्या के जड़ चेतनात्मक सभी को मोक्ष देने वाले, सभी के शासन करने वाले श्रीरामजी मेरे रक्षक हैं ॥ ५१ ॥ जो कोई भी इस शुभ स्तोत्र को मन लगाकर पढ़ेगा, वह भव बन्धन से मुक्त हो जायगा। इस प्रकार यह अष्टाक्षर मंत्र के देवता अनन्तश्रियों को रमण करने वाले भगवान श्रीरामजी मेरे रक्षक हैं ॥ ५२ ॥

परात्पर श्रीसाकेतधाम में श्रीसीतारामजी का अवतार हेतु परस्पर सम्बाद.....!

दो०—नित्य सच्चिदानंदमय बिलसत श्रीसाकेत। विहरत जहँ सीता रमण परिकर बृन्द समेत ॥ १ ॥ परम प्रभामय दिव्यतम अच्युत अमल अनूप। शाश्वत सुन्दर एकरस धाम प्रेम रसरूप ॥ २ ॥

छं०—जहाँ न सृष्टि न प्रलय होत कबहूँ केहु काला। संतत लीला होति मधुर मन हरन रसाला ॥१॥ जहँ नहिं अग्नि न चन्द्र सूर्य किरणै न प्रकाशै। स्वयं प्रकाश स्वरूप धाम प्रतिभा प्रतिकाशै ॥२॥ सब धामन को मूल परम पावन ते पावन। जासु अंश सब धाम अमल अनवद्य सोहावन ॥ ३ ॥ जहँ नित नवल विहार करत सीतावल्लभ प्रभु। परतम परम परेश प्रेम पूरक उदार विभु ॥ ४ ॥ अज अनन्त अनवद्य अमल अविगत अविनामी। अकथ अनीह अनूप अखिल जीवन उरबासी ॥ ५ ॥ व्यापक व्याप्य विभूति वदत वर बिबुध वेद विद। कृपा सिन्धु कमनीय केलि क्रीड़ारत सतचिद ॥ ६ ॥

वार्ता—अपने परात्पर नित्य एक रस त्रिगुणातीत सच्चिदानन्द स्वरूप श्री-साकेतधाम में परस्पर प्रेम रस में पगे हुये परब्रह्म श्रीसीताराम जी एकान्त स्थल में विराजमान थे। नित्य परिकर वृन्द युगल मुखचन्द्र की माधुरी का चकोरीवत एकटक पानकर रहे थे। अनेकानेक वाद्यों की मधुर ध्वनि के साथ कोमल कलित कण्ठों से सुधा विनिन्दित स्वरों में दम्पति के गुणानुवादों के मधुरातिमधुर रसमय मंजुल गीतों का गायन हो रहा था। इस परम मंगलोत्सव के अवसर पर एकाएक श्रीकिशोरीजू का मुख मयंक मलीन हो गया। वह अपने को सँभाल न सकीं, प्रियतम की अंक में मूर्छा को प्राप्त हो गईं। श्रीजू के अभिन्नात्मा परिकर बृन्द विकल हो गये, विविधोपचार के पश्चात् श्रीजू प्रकृतिस्थ (पूर्ववत स्वस्थ) हुईं, तब आश्चर्य चकित होकर श्रीरामजी ने कहा कि हे प्राण प्रिये! इस परमरसमय मंगलोत्सव के अवसर पर आपकी ऐसी विचित्र अवस्था क्यों होगई।

दो०---जिनकी कृपा कटाक्ष से, रमा उमा ब्रह्मानि। जग प्रसिद्ध ऐश्वर्य अरु, लह्यो अचल सनमान ॥ ७॥ जाकी महिमा अति अगम वेद न पावत पार। स्थिर गुण इकरस सदा चिन्मय दिव्य उदार ॥ ८ ॥ सहज सुहृदता तव निरखि हूँ मैं तव आधीन। भो उदास मुख मंजु क्यों कहिये प्रिये प्रवीनै ॥ ८ ॥

छं०---हे मम जीवन मूरि यथा चिता तव दूरी। कहिये कैसे होय यत्न करिहौं मैं भूरा ॥ १ ॥ तव मयंक मुख मधुर म्लीन नहिं सकौं निहारी। कहिये हृदय विचार वेगि हे प्राण अधारी ॥ २ ॥

प्रियतम के स्नेह पूर्ण बचनों को सुनकर श्रीजू ने कहा कि—

दो०--सावधान होकर सुनिय हे प्रियतम चितलाय। मम प्रसन्नता के लिये करिये वेग उपाय ॥१०॥ हम दोउन के अंश हैं, जगके सारे जीव। साधन धाम सुमुक्ति प्रद नरतन सब सुख सींव ॥ ११ ॥

छ०—तव माया वश मोह ग्रसे विषयनि अरुझाने। नहिं स्वरूप सुख लहत दिवस निशि रहत भुलाने ॥३॥ साश्वत दिव्य अखण्ड एक रस सुख किमि पावैं। पियत गरल सम बिषय मानिसुख अपर न भावैं ॥ ४ ॥

अस्तु हे राजीवलोचन आप उन जीवों को सुखी करने का उपाय कीजिये। तब श्रीरामजी ने कहा :--

दो०:- मेरे सतगुण रूप ही श्रीपति धरि बहुरूप। प्रगटत युग युग में सदा लीला करत अनूप ॥ १२ ॥ मत्सकूर्म बाराह बुध बावन नरहरि देह। धरब करत रसमय चरित पावन पगे सनेह ॥ १३ ॥

छंन्द :- वेद, उपनिषद्, शास्त्र, स्मृति, संहिता, पुराना। काव्य और इतिहास मुनिन ने विपुल वखाना ॥ ५ ॥ तिन में येही कहा विषय सुख स्वप्न समाना। है केवल भ्रममात्र तदपि देवत दुख नाना ॥ ६ ॥

वेद तो मेरी ही दिव्य वाणी है वेदों के सारार्थस्वरूप उपनिषद शास्त्र संहिता पुराण स्मृति इतिहास मेरी प्रेर्णा से मनियों ने लिखे हैं। उन सभी ग्रन्थों में बिषय सुख को झुँठा कहकर उनकी घोर निन्दा की है विषयानन्द को मायामय भ्रममात्र वतलाकर जीवों को विषय से विमुख होकर निष्कामकर्म, ज्ञान, योग उपासना, शरणागति प्रवत्ति, इत्यादि के द्वारा सुखी होने के अनेक साधन बतलाये है। तथापि यदि जीव सुखी न हो पाये, तो आप ही कहिये कि अब मैं क्याकरूँ। प्रभु के इन बचनों को सुनकर श्री किशोरीजू ने कहा कि--

दो०-नाथ कहा सो सत्य पर माया अतिबलवान। मोहत ज्ञानी मुनिन को उपजावत अज्ञान।१४। मोहे बिषई जीव तो क्या आश्चर्य महान। तव मायाबश बिषय ही लियो परम सुख मान ।१५। छं०--दिव्य धाम को दिव्य स्वाद सुख

कबहुँ न पायो। वीते कल्प अनन्त बुद्धि में विषय समायो ॥ ७ ॥ येही कारण प्रबलभयो विषयनि अनुरागा। दिव्य स्वाद किमि लहैं विषय सुख जात न त्यागा।८।

वार्ता—इसलिये हे जीवनधन! यदि आप समस्त जीवों को परमानन्द देना चाहते हैं, तो हम दोनों अपने इसी दिव्य विग्रह से पृथ्वीतल पर प्रकट होकर--

दो०---हिलमिल उनके साथ में निज ऐश्वर्य छिपाय। करि सुदिव्य पावन चरित दीजिय सुखी बनाय ॥१६॥ शब्द, रूप, रस, गन्ध अरु तव स्पर्शहिं पाय। तजि अनित्य जग के विषय प्रभु पद प्रीति बढ़ाय ॥ १७ ॥

छन्द :-- शब्दादिक रस, रूप, गन्ध, स्पर्श भुलाने। जग में करि अपनत्व रहत विषयनि अरुझाने ॥ ९ ॥ हम दोउन के सरिस रूप, रस पावत नाहीं। याते स्वसुख भुलाय जगत में सतत भ्रमाहीं ॥ १० ॥

वार्ता- अस्तु हे जीव जीवन जू मृत्यु लोक के जीव जब हम दोनों के सौन्दर्य सागर मंगलमय दिव्य विग्रह को देखेंगे, तो अनायास ही अनित्य विषय, मद, मोह, ममता त्यागकर हम दोनों के चरणो में स्वाभाविक अनुराग करेंगे। क्योंकि सभीजीव सौन्दर्य एवं एकरस परमानन्द के उपासक हैं। परन्तु संसार में सौन्दर्य और सुख का तो केवल भास मात्र भाषित होता है सम्पूर्ण सौन्दर्य और एकरसपरमानन्द की अमृतमय मंजुल मूर्ति तो हमी दोनोंहैं। जो प्राणी मधुर शब्द में आशक्त हैं, उन्हें हम लोगों जैसा मधुर प्रिय शब्द अन्यत्र कहाँ और किस का मिलेगा। और जो जीव स्पर्श या रूपाशक्त एवं रसाशक्त हैं। उनको भी हमारे और आपके मृदुलाङ्गों जैसा दिव्य स्पर्श एवं हमदोनों के समान सच्चिदानन्दमय दिव्यरूप तथा हम दोनों के समान परम रस का अनुभव और गन्धाशक्त जीवों को हमारे और आप के श्री अंगों से बढ़कर दिव्य सुगन्ध भी प्राप्त न होगी। और लीलाशक्त जीवों को हमदोनों की लीला के समान परमानन्द प्रदायिनी मनोहारिणी रसमयि दिव्य मधुर लीला भी अन्यत्र न मिलने पर सभी जीवों का आकर्षण हम दोनों की ओर होना स्वाभाविक होगा। इस प्रकार सभी जीव सहज में ही परम सुखी हो जायेंगे यह सुनकर श्रीराम जी ने कहा कि, हे प्रिये—

दो० :-- मेरे भय से ही सदा पवन, इन्द्र, दिनराय। विधि, हरि, हर, ग्रह, काल, भू, मृत्यु हृदय डराय ॥ १८ ॥ जाको जो आयसु वई नियमित कारज माहिं। आलस तजि निज कार्य को, निशिदिन सतत कराहिं ॥ १९ ॥

छंद :-- मच्छर से भयभीय अल्पबल मनुज विचारे। मेरो भय विसराय भरे अभिमान अपारे ॥ ११ ॥ मानत वेद न शास्त्र मुनिन मर्याद न माने। विषय भोग आशक्त करत सब कृत मनमाने ॥ १२ ॥

दो०:--चलत कुमारग पर सदा पावत दुःख अपार। कर मीजत पछितात बहु, हा हा करत पुकार ॥२०॥ खेलूँ इनके साथ नित मेरे मन यह चाह। किन्तु न देखत मोहिं यह चलत आपनी राह ॥ २१ ॥

छंद--प्रति क्षण यह अपराध करत मेरो भय त्यागी। प्रिये तुमहिं किन कहहु होहिं कैसे बड़भागी ॥ १३ ॥ निशिदिन मम प्रतिकूल कर्म करि अति दुख पावत। हठवश करि अन्याय माथ पीटत पछितावत ॥ १४ ॥

वार्ता—तब श्री किशोरी ने करुणापूर्ण हृदय से वात्सल्य भाव विभोर होकर कहा कि--हे भक्त वत्सल प्रभो! संसारी माता पिता भी तो अपने बालकों के दोष नहीं देखते हैं।

दो०—जिमि पितुमातु अवोधशिशु, दोषन देखत नाहिं। तिमि मायावृत जीव को आपहु क्षमाकराहिं ॥ १५ ॥ इन के मन अरु बुद्धिपर, माया पटल विशेषि। मायावरण हटे बिना सकत न आपहिं देखि ॥ २३ ॥ छंद – उनमें नहिं सामर्थ कि माया पटल हटावैं। फिर उनमें बहु दोष प्रभो! केहि हेत बतावैं ॥१५॥ माया बन्धन प्रबल आपही सकत छुड़ाई। जीवों में अकलंक बृथा प्रभु रहे लगाई ॥ १६ ॥ दो०—पितु को अति ऐश्वर्य लखि, बालक नहीं डराहिं। जीव न डरते आप से तदपि अदोष सदाहिं ॥ २४ ॥ शिशु के टेढ़ेउ चरित लखि मातु पिता सुख लेत। प्यार सदा करते उन्हें, सपनेहुँ दोष न देत ॥२५॥ छंदः- सच्चे जग पितु आप सुहृद करुणा गुण सागर। क्षमा कृपा आगार प्यार वर्धक नव नागर ॥ १६ ॥ नाथ न होइय रुष्ट जीव सब शिशु समुदाई। अति अबोध यहि लागि विषय में रहे भुलाई ॥ १७ ॥

वार्ता—हे राजिव नयन! आप जीवों के अवगुणों पर दृष्टि न डालकर उनकी दुर्दशा पर विचार कीजिये। हे हृदयेशजू! यदि इन बेचारों को ज्ञान होता तो क्या कभी भूल कर भी यह आपको विस्मृत करते। इन सबको आपसे विमुख करके विषय में फसाना एकमात्र आपकी बलवती त्रिगुणमयी माया का काम है। तथापि हे प्रभो! आपने--

दो०:– जीवन के अवगुणन लखि प्रबल निठुरता धारि। क्षमा कृपा करुणा स्वगुण दीन्हे सकल विसारि ॥ २६ ॥ विश्वविमोहन दिव्य तन, कृपा मूर्ति सुखसार। पृथ्वी मण्डल में प्रभो! आप लेहिं अवतार ॥ १७ ॥

तब श्रीराम जी ने कहा--

छंद :– जीवों पर करि कृपा लेउँ यदि मैं अवतारा। प्रगटौं मैं भू लोक होय आश्चर्य अपारा ॥ १८ ॥ अज अनन्त अनवद्य एक अविगत अविनासी। गुणातीत निर्लेप अगुन निरवधि सुखरासी ॥ १६ ॥ दो०--व्यापक ब्रह्म अनीह अरु, अलख अनादि अनूप। चहूँ वेद ने इस तरह कहा हमार स्वरूप ॥ २८ ॥ यदि मैं प्रगटौं देह धरि वेद मृषा हो जाहिं। तो अनर्थ हो जगत में यही भाव मन माहिं ॥ २६ ॥

वार्ता--मेरे प्रगट होने पर मेरे अज अचिंत्य अगोचरादि नाम व्यर्थ हो जायेंगे। तब लोग वेदों को भी झूठा मानेगे, जो परम अर्थ का मूल होगा क्योंकि सृष्टि का सारा व्यापार वेदों के आधार से ही होता है। तब श्रीकिशोरी ने कहा कि--

दो०:--वर्णन करि करि वेद नित, नेति नेति कहि देहिं। याते सतत अदोष हैं, वेद झूँठ नहिं होहिं ॥ ३० ॥ तब पुनः श्रीरामजी बोले कि--

दो०--शरणागत रक्षण करन, मैंने दृढ़ व्रत कीन। प्रिये दोष मेरो कहा, जीव शरण नहिं लीन ॥ ३१ ॥ छन्द--मुझसे मिलने हेतु जीव इक पैर बढ़ावै। मैं कोटिन पग धाय मिलूँ सो अति सुख पावै ॥ २० ॥ प्रियतम के इस प्रकार शब्दों को सुनकर श्रीजी प्रेम पूर्वक प्रभु का हाथ पकड़कर कहने लगीं कि--

छंद--चहत अपेक्षा आप कहावत परम उदारा। तो दयालुता कवन अगर शिशू करहिं पुकारा ॥ २१ ॥ वार्ता--हे प्राणेश ! भीख माँगने पर भोजन कराना या त्राहि माम पाहिमाम् कहने पर रक्षा करना न तो उदारता ही है न अभय प्रदानता या वात्सल्यता है। अस्तु बिना प्रार्थना किये ही उन सब जीवों पर कृपा करना चाहिये यथा अबोध बालक पिता से यह नहीं कहते कि मैं आपका बालक हूँ, आप हमारी रक्षा कीजिये। तथापि पिता अपनी ओर से प्यार पूर्वक बालक को सारी सुविधायें देता है। उसी प्रकार सृष्टि के सभी जीव आपकी सन्तान हैं। आप अपनी ओर से ही कृपा करके उनको सुखी बनाइये--

दो०--हम दोउन की प्राप्ति हित कीन्हों तप अति घोर। स्वायंभूमनु नारि युत अतिसय प्रेम विभोर ॥ ३२ ॥ दर्शन देकर दुहुँन कहँ, आप दियो बरदान। उसे न अब बिसराइये, हे जीवनधन प्रान ॥३३॥ छंद--मनु भय दशरथ भूप अवध में लसत उदारा। सतरूपा तिन नारि कौशिला विमल विचारा ॥ २२ ॥ ब्रह्मादिक सुर निकर सतत पथ लखत तुम्हारी। करके कृपा अपार पधारिय हे धनुधारी ।२३। दो०-दशरथ कौशल्या सुवन आप बनिय सरकार। मैं विदेह मखभूति ते प्रगटौं प्राण अधार ॥ ३४ ॥ श्रीमिथिलेशहिं बाल सुख दइहौं परम अनूप। करि शिशु चरित रसाल वर, धरि प्रिय मंजु स्वरूप ॥३५ छं०--हम दोउ चलि भूलोक महिं धरि मानव देहा। प्रेम गंग प्रगटाइ सबनि हिय भरैं सनेहा ॥ २४ ॥ ब्रह्मादिक सुरनिकर जौन सुख लगि ललचावैं। मिथिला अवध मझार नित्य सोइ सुख बरसावैं ॥ २५ ॥ दो०--मेरे मन अभिलाष यह, पुरवहु हे प्राणेश। यद्यपि परम स्वतन्त्र प्रभु पूरणतम परमेश ॥३६॥ सुनत सिया के बैन इमि, भरे वात्सल प्यार। जीवों पर अनुराग लखि, हँसि बोले सरकार ॥ ३७ ॥ छंद-ऐ हो प्राण अधार प्रिये मम जीवन मूरी। क्षमा कृपा की मूर्ति मधुर मंजुल गुण भूरी ॥ २६ ॥ बिनसाधन निरपेक्ष जीव पर प्यार अपारा। धन्यवाद बहुबार न कोउ तुम सरिस उदारा ॥ २७ ॥ दो०--जबकी मुझमें ही नहीं, ऐसी कृपा उदार। तब तुमको तजि हे प्रिये, को ऐसो रिझवार ॥ ३८ ॥ जीवों के कल्याण हित यह मारग बलवान। निर्हैतुकि तुम्हरो कृपा,

साधन एक प्रधान ॥ ३६ ॥ छं०--सब जीवों की सतत सकल विधि रक्षणकारी ॥ तुम अति मृदुल स्वभाव बारबहु मैं बलिहारी ॥ २८ ॥ हौं स्वतन्त्र सब भाँति स्वबश करि सकै न कोई। अजित सकै नहिं जीत चहै कैसोउ भट होई ॥ २६ ॥ दो०—बिन कारणहिं कृपालुता, तव लखि के मन मोर। विश्वबिमोहन मुग्ध हो, रहूँ सदा बश तोर ॥ ४० ॥ प्राण प्रिये तुमने कहा, मैं अब करिहौं सोइ। दिव्य चरित भूलोक में, करौं दिव्य तन होय ॥४१॥ छंद--मैं द्रुत अवध मझार बनौं नृप दशरथ लाला। तुम प्रगटौ मिथिलेश यज्ञ बनि मधुर सुबाला ॥ ३० ॥ करि प्रिय दिव्य चरित्र प्रीति रस रीति दिखाई। परमानन्द समुद्र माहि सब जाहि डुबाई ॥ ३१ ॥ वार्ता--प्रभु के इस प्रकार बचन सुनकर श्रीकिशोरी जू ने प्रसन्नता पूर्वक गाढ़ालिकन करके श्रीरामजी से कहा कि—

छंद--प्राण प्राण के प्राण जीव के जीवन नाथ। सब सुख के सुख सार प्यार वर्धक तव गाथा ॥३२॥ तुम तजि हे प्राणेश जीव को कौन सम्हारे। प्रभु को सुयश अपार सतत श्रुति सन्त पुकारे ॥ ३३ ॥ याते कृपानिधान प्रभु अब अति करुणा कीजिये। मोह ग्रसित सब जीव हैं शरण आपनी लीजिये ॥ ३४ ॥ वार्ता --इस प्रकार परस्पर प्रेममय वार्तालाप के पश्चात् अभिन्नात्मा भगवान् श्रीसीतारामजी ने अपने कुछ परिकरों को लीला की भूमिका बनाने के लिये श्रीअवध एवं मिथिला जी में भेज दिया। इधर श्रीअवध धाम में सिंहासनासीन चक्रवर्ति सम्राट श्रीदशरथजी ने धर्म पूर्वक राज्य करते हुये अपनी आयु का तीन भाग विता दिया। तब तक पुत्ररत्न प्राप्त न होने के कारण। चौ०-एक बार भूपति मन माही। भइ ग्लानि मोरे सुत नाहीं ॥ मैं वृद्ध हो गया अभी तक मेरे सन्तान न हुई इस महादुःख से दुखी होकर गुरुदेव श्रीबशिष्ठजी के यहाँ गये। गुरुदेव की चरणवन्दना करके अपने हृदय की व्यथा व्यक्त की। तब श्रीबशिष्ठ जी ने कहा कि--चौ०-धरहु धीर होइहैं सुतचारी। त्रिभुवन विदित भगत भयहारी॥ सृङ्गी ऋषिहिं वशिष्ठ बुलावा। पुत्र काम शुभ यज्ञ करावा ॥ वार्ता--प्रेम भाव पूर्वक भक्ति सहित श्री सृङ्गी ऋषि ने सविधि यज्ञ सम्पादन करवाया। यज्ञान्त में पूर्णाहुति के पश्चात् श्रीअग्निदेव जी हाथ में चरू (खीर) से युक्त थाल लिये प्रगट हुये, और कहा कि--चौ०-जो बशिष्ठ कछु हृदय विचारा। सकल काम भा सिद्ध तुम्हारा ॥ यह हवि बाँटि देहु नृप जाई। जथा जोग जेहि भाग बनाई॥ वार्ता--सम्पूर्ण सभा को ऐसा समझाकर अग्निदेव अदृश्य हो गये। उस दिव्य चरू को पाकर अग्निदेव की वाणी सुनकर महाराज श्रीदशरथजी परमानन्द में मगन हो गये, हृदय में इतना हर्ष उत्पन्न होगया कि जो अन्दर समाता नहीं है। रोमांच पुलकावली इत्यादि के द्वारा बाहर प्रगट होता है। श्रीदशरथजी महाराज ने अपनी प्रिय रानियों को बुलाकर अग्मिदेव के द्वारा प्राप्त वह दिव्य चरू का विभाजन किया। सम्पूर्ण चरू का आधा भाग माता श्री कौशल्याजी को दे दिया। आधे में से दो भाग करके एक भाग श्रीकैकेईजी को दे दिया। शेष चरू के पुनः दो भाग किये, इस प्रकार सभी महा-

रानियों को गर्भाधान हुआ। वह अपने हृदय में बहुत हर्षित हुईं। जिस दिन से भगवान् श्रीहरि अंशों समेत माताओं के गर्भ में प्रगट हुये, उसी दिन से समस्त विश्व सुख और सम्पति से परिपूर्ण हो गया। परम शोभा, शील एवं तेज की खानि महारानियाँ राज-मन्दिरों (भवनों) में शोभायमान हो रही हैं। इस प्रकार कुछ समय बीत गया, प्रभु के प्रगट होने का समय निकट आ गया। उस परम पावन अवसर पर—

दोहा—जोग, लगन, ग्रह, वार, तिथि, सकल भये अनुकूल।
चर अरु अचर हर्ष युत, रामजनम सुखमूल ॥१८७॥

वार्ता—चैत्र शुक्ल नौमी तिथि और प्रभु प्रीति प्रदायिनी अभिजित मुहूर्त में दिन के मध्य (दोपहर) में उस समय न तो अधिक शीत (ठण्डी) थी न अत्यन्त तीक्ष्ण घाम (धूप) ही था। समस्त लोकों को परम विश्राम देने वाले उस परम पवित्र समय में शीतल मन्द सुगन्धित वायु चल रही थी। देवता प्रसन्न थे, संतों के हृदय में उत्साह बढ़ रहा था। सभी वन बाग एवं वाटिकाओं के वृक्ष एक साथ खिल उठे। अपनी सम्पत्ति फूल और फलों से सम्पन्न हो गये। पर्वतों में अनेक प्रकार की दिव्य मणि प्रगट हो गईं। और सभी नदियों में अमृत के समान शीतल मधुर प्रिय जल बहने लगा। उस परम दिव्य अवसर पर श्री ब्रह्माजी समस्त देवताओं के साथ विमान सजाकर श्रीअवध के ऊपर आकाश मण्डल में आ गये। उस समय देवताओं के विमानों से आकाश में भी भीड़ हो गई। अनेकानेक गन्धर्व प्रभु के मंगलमय गुणों का गान कर रहे थे। देवता लोग विमान पर बैठकर—

चौ०—बरषहिं सुमन सुअंजलि साजी। गहगहि गगन दुन्दभी बाजी॥
अस्तुति करहिं नाग मुनि देवा। बहुविधि लावहिं निज निज सेवा॥

वार्ता—इस प्रकार प्रार्थना करके सभी देवता अपने अपने लोक को चले गये, तब सकल जगत् में व्यापक रूप से निवास करने वाले, एवं समस्त लोकों को परम विश्राम देने वाले प्रभु प्रगट हुये :—

छंद—प्रगटे सुषमाकर परम प्रभाकर भक्त जनन हितकारी। मृदु मंजुल मूरति अति प्रिय सूरति करुणानिधि धनुधारी॥ मातहिं सुखदायक प्रभु सब लायक कृपासिन्धु सुखरूपम्। सुठि वेष सम्हारे अतिमनहारे अद्भुत मधुर अनूपम्॥ नयनन सुखकारी हिय रुचिकारी श्यामबरण छविसारम्। विलसति बनमाला नयनरसाला चितवनि परमउदारम्॥ मुखचन्द्र सोहावन अति मनभावन कोटिन शशि द्युतिहारी। दोउभुजा विशाला अति छवि जाला सुन्दर भूषणधारी॥ आयतउर सोहत लखि मनमोहत पदिकहार छविछाये। मणिमुक्तनमाला सुखद रसाला चितवत चितहिंचुराये ॥ लखि सुभग स्वरूपं अकथ अनूपं माता बैन

उचारी । जय प्रभु जगकारण अधम उधारण कृपामूर्ति दुखहारी ॥ जय जगत प्रकाशक खलदल नाशक दीनानाथ दयाला । भक्तन परतन्त्रा परम स्वतन्त्रा अघहर परमकृपाला ॥ जय करुणासागर शुभगुण आगर गुणातीत भगवन्ता । माया जेहि दासी अज अविनासी अगम अनादि अनन्ता ॥ सो मम हित कारण नरतन धारण कियो सप्रेम सुखारी । निजरूप दिखायो मोद बढ़ायो आपनिमातु विचारी ॥ मम उदरनिवासी सुनि उपहासी करिहैं नर अरु नारी । यह ज्ञान प्रकाशत प्रभु मुसुकात निज लीला विस्तारी ॥ कहि सुखद कहानी सुतप बखानी पुत्रहोन वर माँगा । रुचि रखन तुम्हारी हे महतारी आयों भरि अनुरागा ॥ मोहिं प्यार करीजै अति सुख लींजै आपन बालक जानी । सुनि प्रभुकी बानी शुचि सुखखानी बोलीं माँ सुख सानी हे राजिवनयना प्रभु सुखअयना प्रिय शिशु रूप बनाओं । तब मैं दुलरावौं मोद समावौं अस अभिलाष पुजाओ ॥ माँ की प्रियबानी खुठि रस सानी सुनि प्रभु हिय हर्षाये । अतिशय मनहारी प्रिय रुचिकारी लघु शिशु रूप बनाये ॥ प्रभु जनम चरित्रा परम पवित्रा जो सज्जन हिय ध्यावैं । संतत जो गावैं हरिपुर जावैं परमानन्द समावैं ॥

दो०—यहि विधि परमानन्दघन, सतचित परम उदार ।
भक्त सुखद प्रभु प्रगट भय, सीताशरण अधार ॥

चौ०—सुनि शिशु रुदन परम प्रिय बानी । संभ्रम चलि आईं सब रानी ॥
हर्षित जहँ तहँ धाईं दासी । आनँद मगना सकल पुर बासी ॥

वार्ता—वह रात्रि मानो सूर्यको देखकर सकुचा गई हो तथापि सन्ध्या का अनुमान होने लगा । अगर और धूप इतनी अधिक मात्रा में जल रहे हैं कि मानों अँधेरा सा हो गया है । उस अगर और धूप इतनी अधिक मात्रा में जल रहे हैं कि मानों अँधेरा सा होगया है । उस अगर और धूप के धुआँ में अबीर उड़ाया जाता है, वह मानों सायंकाल की लालिमा है ।

चौ०:—मन्दिर मनि समूह जनु तारा । नृप गृह कलश सो इन्दु उदारा ॥
भवन वेद ध्वनि अति मृदुबानी । जनु खग मुखर समय जनुसानी ॥

वार्ता—उस महामहोत्सव के परमानन्दमय कौतुक को देखकर भगवान भास्कर एक महीना तक भ्रमण कार्य भूल श्रीअवध का आनन्द देखते रहे । श्रीरामावतार का दिन लोक की गणनानुसार एक महीना का हुआ, किन्तु इस रहस्य को सर्व साधारण कोई भी व्यक्ति जान नहीं सका । कारण यह था कि रथ सहित सूर्य भगवान स्तब्ध हो गये तब रात्रि कैसे हो ।

चौ०:---यह रहस्य काहू नहिं जाना । दिनमनि चले करत गुण गाना ॥
देखि महोत्सव सुरमुनि नागा । चले भवन वर्णत निज भागा ॥

श्रीशंकरजी श्रीपार्वतीजी से कहते हैं कि हे गिरजे! तुम दृढ़ बुद्धि वाली हो, इसलिये मैं अपनी भी एक चोरी तुमसे कहता हूँ। वह यह कि--श्रीकागभुसुण्डजी के साथ हम भी मानव रूप बनाकर परमानन्द प्रेम और प्रभु दर्शन के परम सुखकी लालसा में फूले हुये, श्रीअवध की गलियों में मगन होकर इधर उधर विचरण कर रहे थे । नगर निवासी प्रेम में भरे हुये श्रीराम जन्म की बधाई गा रहे थे । महाराजाधिराज श्रीचक्रवर्तिजी सभी को मनमाना दानदेकर प्रसन्न कर रहे थे ।

चौ०:----गज रथ तुरग हेम गो हीरा । दीने नृप नाना विधि चीरा ।

दो०:---मन संतोषे सबनि के, जहँ तहँ देहिं असीश।
मकल तनय चिर जीवहु तुलसी के ईश ॥

इस प्रकार उत्सव का परमानन्द श्री अवध भर में ही नहीं लोक-लोकान्तरों में भर रहा था । महल में प्रवेश करके श्रीअवध निवासिनी मातायें बधाई गाती हैं उसे ध्यान दकर सुनो :—

❀ श्रीरामजन्म बधाई उत्सव मंगल पद ❀

सब मिलि आओ री सजनी, संगल गाइये ॥ रानी कौशिल्या के भये सुत वेगि वधावो जाइये । आज कैसो दिवस सजनी, बड़े भागन पाइये ॥ घसि चारुचन्दन लीपि आँगन मोतिन चौक पुराइये । सात सीक सँवारि सथियाँ बन्दनवार बँधाइये ॥ लालन मुख लखि लेउँ बलैयाँ, नैनन हियोसिराइये । प्राण सर्वसवारने करि, फूली अंगन माइये ॥ हिय हुती सो दृगनदेखी भयो सबनि मनभाइये । 'हित' अनूप हमार जीवन विधना तू चिरजाइये ॥ १ ॥ वार्ता--सखी की इस प्रकार बात सुनकर दूसरी सखी कहती है कि--हे सखी सुनो तो सही ।

आज महामंगल कोशलपुर, सुनि नृप के सुतचारि भये । सदनसदन सोहिलो सोहावनो, नभ अरु नगर निशान हये ॥ सजि सजि जान अमर किन्नर मुनि, जानि समय सम गानठये । नाचहिं नभ अपसरा मुदित मन, पुनि पुनि बरषहिं सुमनचये ॥ अति सुख वेगिबोलि गुरु भूसुर, भूपति भीतर भवन गये । जातकरम करि कनक बसन मनि, भूषितसुरभि समूह दये ॥ दल फल फूल दूब दधि रोचन, जुवतिन भरिभरि थार लये । गावत चलीं भीर भइ वीथन, वन्दिन बाँकुरे विरद वये ॥ कनककलश चामर पताक ध्वज, जहँ तहँ बन्दनवार नये । भरहिं अँबीर अरगजाछिरकहिं, सकल लोक इकरंग रये ॥ उमगि चल्यो आनन्द लोकतिहुँ, देत सबनि मन्दिररितये । तुलसिदास पुनि भरेहिं देखियत, रामकृपा चितवनि चितये ॥ २ ॥ वार्ता--तब तीसरी सखी कहती है कि -हे सखी ! ध्यान

देकर सुनिये--बाजत आज आनन्द बधाई ॥ कौशिल्या के राम जनमलिये, देखहु नयन-अघाई। सब नरनारि सुमंगलगावहिं नाचहिं तालबजाई ॥ कूदहिं करहिं कलोल परस्पर, अतर अँबीर उड़ाई। लालभयो सरयूजल शोभित, गलियन कीच-मचाई ॥ बरषहिं सुमन बजावहिं नाचहिं, देव विमान विहाई। अवधपुरी में मंगल घरघर, लखि ब्रह्मादि सिहाई ॥ अवधपुरी सब लोक एक भयो, मंगल तिहुँपुर छाई। कोटिकाम छवि लखि दशरथसुत "(श्री) रामचरण" बलि जाई ॥ ३ ॥ वार्ता--उन सखियों की प्रेम भरी बात सुनकर चौथी सखी कहती है कि--

महराजा अवधेश के सुनु सोहिलरा। बजत बधाई आज मेरा मन मोहिलरा॥ जनमें पुत्र सुपुत्र हैं सुनु'' । अचल भयो कुलराज मेरा० ॥ नृपत दान बहुतेक दिए ॥सुनु० गउवें अरु गजबाजि मेरा० ॥ धरति सुवासिनि साथियाँ सुनु०। गावतिमंगलचार मेरा० ॥ (श्री 'कृपानिवास' को दीजिये सुनु०। महरानी गरे को हार मेरा० ॥ वार्ता—तब पाँचवीं सखी कहती है कि— हे सखी ध्यान से सुनो अवध भर में सोहिलो सुनाई दे रहा है। सहेली सुनु सोहिलो रे ॥ सोहिलो, सोहिलो, सोहिल सब जग आज। पूत सपूत कौशिला जायो, अचल भयो कुल-राज ॥ १ ॥ चैत चारू नौमीतिथि सितपख, मध्यगगत-गत भानु। नखत जोग ग्रह लगन भले दिन, मंगल मोद निधान ॥ २ ॥ व्योम, पवन, पावक, जल, थल, दिशिदशहु सुमंगलमूल। सुर दुन्दुभी बजावहिं गावहिं, हरषहिं बरषहिं फूल ॥ ३ ॥ भूपति भवन सोहिलो सुनि, बाजैं गहगहे निशान। जहँ तहँ सजैं कलश धुज चामर, तोरन केतु वितान ॥ ४ ॥ सींचि सुगन्ध रचैं चौके गृह आँगन गली बजार। दल फल फूल दूब दधि रोचन, घरघर मंगलचार ॥ ५ ॥ सुनि सानन्द उठे दशस्यंदन सकल समाज समेत ॥ ६ ॥ लिये बोलि गुरु सचिव भूमि सुर, दिये महिदेवन दान। तेहि अवसर सुत तीनि प्रगट भय, मंगल मुद कल्यान ॥ ७ ॥ आनन्द महँ आनन्द अवध, आनन्द बधावन होइ। उपमा कहौं चारि फल की, मोहिं भल न कहै कवि कोइ ॥ ८ ॥ सजि आरती विचित्र थार कर, जूथ जूथ बर नारि। गावत चलीं बधावन लै लै निज निज कुल अनुहारि ॥ ९ ॥ असही दुसही मरहु मनहि मन, बैरिन बढ़हु विषाद। नृप सुत चारि चारु चिर जीवहु, शंकर गौरि प्रसाद ॥ १० ॥ लै लै ढोब प्रजा प्रमुदित चले, भाँति भाँति भरि भार। करहिं गान करिआन रायकी, नाचहिं राजदुआर ॥ ११ ॥ गज रथ बाजि बाहिनी बाहन, सबनि सँवारे साज। जनु रतिपति ऋतुपति कोशलपुर, विहरत सहित समाज ॥ १२ ॥ घंटा घंटि पखाउज आउज, झाँझ बेनु डफतार। नूपुर धुनि मंजीर मनोहर करकंकण झनकार ॥ १३ ॥ नृत्य करहिं नटनटी नारि नर अपने अपने रंग। मनहुँ मदनरति विविध वेषधरि, नटन सुदेश सुढंग ॥ १४ ॥ उघटहिं छन्द प्रबन्ध गीत पद, राग-तान बन्धान। सुनि किन्नर गन्धर्व सराहत, बिथके हैं विबुध विमान ॥ १५ ॥ कुंकुम अगर अगरजा छिरकहिं, भरहिं गुलाल अँबीर। नभ प्रसूनझरि,

पुरी कोलाहल, भइ मनभावति भीर ।। १६ ।। बड़ी बयस विधि भयो दाहिनो, सुर गुरु आशिरबाद। दशरथ सुकृत सुधासागर सब, उमगे हैं तजि मरजाद ।। १७ ।। ब्राह्मण बेद बन्दि बिरदावलि, जयधुनि मंगल गान। निकसत पैठत लोग परस्पर बोलत लगि लगिकान ।। १८ ।। बारहिं मुक्ता रत्न रायमहिषी, पुरसुमुखि समान। बगरे नगर निछावरि मनिगन, जनु जुवारि जव धान ।। १६ ।। कीन वेदविधि लोकरीति नृप मन्दिर परम हुलास। कौशल्या कैकई सुमित्रा, रहस बिबश रनिबास ।। २० ।। रानिन दिये बसन मनि भूषन, राजा सहन भँडार। मागध-सूत-भाट-नट-याचक, जँह तहँ करहिं कबार ।। बिप्र बधू सनमानि सुआसिनि, जन पुरजन पहिराइ। सनमाने अवनीश अशीषत, ईश रमेश मनाइ ।। २२ ।। अष्टसिद्धि नवनिद्धि भूतिसब, भूपतिभवन कमाहिं। समउ समाज राज दशरथ को लोकप सकल सिहाहिं ।। २३ ।। को कहि सकै अवध वासिन को, प्रेम प्रमोद उछाह। शारद शेष गनेश गिरीशहिं, अगम निगम अवगाह ।। २४ ।। शिव बिरंचि मुनि सिद्ध प्रसंशत, बड़े भूप के भाग। तुलसिदास प्रभु सोहिलो गावत, उमगि उमगि अनुराग। सहेली सुनु सोहिलो रे ।। २५ ।। ५ ।।

आज सुदिन शुभघरी सोहाई। काह कहौं अधिकाई ।। रूप शील गुन धाम राम नृप, भवन प्रगट भय आई ।। अति पुनीत मधुमास लगन ग्रह, बार जोग समुदाई। हरषवन्त चर अचर भूमिसुर, तनरुह पुलक जनाई ।। बरषहिं बिबुध निकर कुसुमावलि, नभ दुन्दुभी बजाई। कौशल्यादि मातु मन हरषित, यह सुख बरनि न जाई ।। सुनि दशरथ सुत जनम लिये सब, गुरुजन बिप्र बोलहि। वेद विदित करिक्रिया परमशुचि, आनन्द उर न समाई ।। सदन वेद धुनि करत मधुर मुनि, बहुबिधि बाज बधाई। पुर वासिन प्रिय नाथ हेत निज, निज सम्पदा लुटाई ।। मनि तोरन बहुकेतु पताकनि, पुरी रुचिर करि छाई। मागध सूत द्वार बन्दीजन जहँ तहँ करत बड़ाई ।। सहज सिंगार किये बनिता चलीं, मंगल बिपुल बनाई। गावहि देहिं अशीश मुदित, चिरजिबौ तनय सुखदाई ।। बीथिन कुंकुम कीच अरगजा, अगर अँबीर उड़ाई। नाचहिं पुर नरनारि प्रेमभरि, देह दशा बिसराई ।। अमित धेनु गज तुरग बसन मनि, जात रूप अधिकाई। देत भूप अनुरूप जाहि जोइ, सकल सिद्धि गृह आई ।। सुखी भये सुर सन्त भूमिसुर, खलगन मन मलिनाई। सबैसुमन विकशत रवि निकसत, कुमुद बिपिन बिलखाई ।। जो सुख सिन्धु सुकृत सीकर ते, शिव विरंचि प्रभुताई। सोइ सुख अवध उमगि रह्यो दश दिशि, कौन जतन कहौं गाई ।। जे रघुबर चरणचिंतक, तिनकी गति प्रगट दिखाई। अविरल अमल अनूप भगति दृढ़, तुलसिदास तब पाई ।। ५ ।।

अवध आज आगमी एक आयो। करतल निरखि कहत सब गुन गन, बहुतन परिचौ पायो। बूढ़ो बड़ो प्रमानिक ब्राह्मण शंकर नाम सोहायो। संग शिशु शिष्य सुनत कौशल्या, भीतर भवन बुलायो ।। पायँ पखारि पूजि दियो आसन, असन बसन

पहिरायो। मेले चरण चारु चारयोसुत, माथे हाथ दिवायो ॥ नख सिख बालबिलोकि बिप्रतन पुलक नयन जल छायो। लै लै गोद कमलकर निरखत, उर प्रमोद न अमायो॥ जनम प्रसंग कह्यो कौशिक मिस, सीय स्वयंबर गायो। राम भरत रिपु दवन लखन को, जय सुख सुजस सुनायो॥ "तुलसिदास" रनिवास रहसबश, भयो सबको मन भायो। सनमान्यौ महिदेव असीसत, सानन्द सदन सिधायो॥६॥ कौशल्या के सुवन भयो सखि, देखन को उठि धाई री। मानिक थार भरे मंगल सब, यूथ यूथ सखि आई री॥ आरति करि पुनि करहिं निछावरि, आनन्द उर न समाई री। विविध भाँति पुर बजति बधाई, जहँ तहँ मंगल गाई री। दशरथ द्वार राग रागिनि किधौं, ढाढ़िनि रूप सोहाई री। वेद कर्म सब कीन भूपमनि, जेहि विधि गुरुन बताई री॥ बन्दी सुत मागध गायक बहु, जय जय बचन सुनाई री। किधौं वेद विधि शिव किन्नर सुर, याचक वेष बनाई री॥ दान देत दशरथ वशिष्ठ मिलि, गज रथ मनि समुदाई री। तुरंग भूमि पट आदि दिये सब, जेहि जेहि जो मन भाई री॥ बरषत सुमन देव ब्रह्मादिक, नभ दुंन्दुभी बजाई री। जय दशरथ जय जय कौशिल्या, आदि ब्रह्म सुत पाई री॥ कौशल्यादि सकल रनिबासू, याचक लीन बोलाई री। सर्वस दान दीन सब काहुँहिं, तिन सब हरषि लुटाई री॥ कुम्भ कनक कदली बितान रचि, घरघर मंगल छाई री। इत उत अँबिर अगर कुमकुम दै, गलियन कींच मचाई री॥ कहि न सकैं श्रुति शेष शारदा, दशरथ नगर निकाई री। निज निज पुर सुधि भूलि हरष विधि, हरि हर मन ललचाई री॥ असुरन के घर भयो अमंगल सुरमुनि मंगलदाई री। "रामचरण" जय जय दशरथ सुत, जय कौशिल्या माई री॥७॥

सजनी आज भयो मन भायो॥ भाग कि भाजन रानि कौशिला, सुघर सलोनो सुत जायो। हमहुँ भई अब भाग कि भाजन, दैहौं जाइ बधायो॥ चलिये वेगि बिलम्ब न कीजै, अब नहिं परत रहायो। देखिय मंगलमय मुख सुत को, उर उछाह अधिकायो॥ करि आरति तनमन धन वारिय, जानिय लेखे पायो। यूथ यूथ मिलि चलीं सुनारिन, कर में मंगलथार सोहायो॥ बहुत दिनन ते मनावत विधि को, आज दाहिने आयो। पूजे देव गणेश भवानी, आज सोई फल पायो॥ कोउ सजत कोउ जात चली मग, परत उतायल पायो। कोउ नृप मन्दिर पहुँचि सुभामिनि, निरखि राम सुख छायो॥ पुरबासी परिजन सेवकजन, भय सबको चितचायो। 'रसिकअली'' नाते सुख सबको, पुरुष तिया श्रुति गायो॥८॥ गावो सुभग सोहिलो, नृप महिषी सुत जायो री। बीती वय सुर सुकृत मनावत, आज सोई दिन आयो री॥ गयो सोच सबके उरते अब, जनम लाभ सोइ पायो री। कहौं कहा यह लाभ को लेखो, रंक सदन धन छायो री॥ जन्म हीन दृग कहँ लोचन सुख, निरखि मोक्ष पद गायो री। रोगी महा जनम को जैसे, रुजगत अंग सोहायो री॥ तिनते कोटि गुणों सुख तिन कहँ, जो चह लेखो लगायो री। मेरी कहा

चली री सजनी, अंकन विधि बनायो री ॥ दहशत सहस सहसदश लक्षणि, गुणित न लोक समायो री। सुर मुनि नाग ईश विधिको चित, या सुखको ललचायो री ॥ जेहि सुख लागि बिविधि जप तप मख, करत मुनी कोउ पायो री। "रसिकअली" पुरजन परिजन बिन, और कौन को दायो री ॥ ६ ॥ पद रेखता १० ॥ चलो सखि हरषतावल में। भये सुत राज रावल में ॥ मगन रस हँसत खेलो री। गावोंगी राम सुहेलों री ॥ सजो री साज स्वाँगन में। नचौंगी राय आँगन में ॥ करौंगी प्रेम की सैलें। उचारें आज मन फैलें ॥ परैं सुख सिन्धु में गहरें। उठें जहँ रंग की लहरें ॥ खड़े अनुराग भूलें री। खुशी के बाग फूलें री ॥ लखो री प्राण पालन को। खिलाओ गोद लालन को ॥ "कृपानिवास" के प्यारे। अवधपुर राय के बारे ॥ १० ॥ सुनो री नौबतें बाजैं। मानो सावन के घन गाजैं ॥ नचैं पुर सुघर कामिनि सी। दमक तन चपल दामिनि सी ॥ बनी छवि धूप धूमन की। मनो घटा श्यामलटन की ॥ बरषि सुर सुमन मन मोहैं। सुभग बगमाल सी सोहैं ॥ खुशी के बरस पानी री। हरे जहँ गार रानी री ॥ भरे मन रसिक सागर से। उपासक राम नागर से। बढ़ी सब प्रीति की नदियाँ। उखर बहि कूल फुलवगियाँ ॥ "कृपानिवास" मन मछियाँ। अवधपुर सदियाँ अछियाँ ॥ ११ ॥

बधाई अवधेश के बाजैं ॥ मनोघन गह गहे गाजैं। गुनी गन्धर्व जुरि आये। दान मनभावते पाये ॥ मलिनियाँ माल गुहि लाई। नाइनी हरी दूब बँधवाई ॥ सुवासिनि सोहिलो गावैं। लला के वारने जावैं ॥ सखी सथियाँ सँवारे री। विरद बन्दी उचारें री ॥ पढ़त द्विज वेद बरबानी। धन्य महराज महरानी ॥ यही छवि दखि सब हरषैं। सुमन बहु व्योम ते बरषैं ॥ असीसैं देत नर नारी। "रसिकगोबिन्द" बलिहारी ॥१२॥ महल में सोहिलो गावैं। सखी सब मोद उपजावैं। ललन की बाल छवि निरखैं। सुधन पटवारि मन हरषैं। सराहैं भाग दम्पति को। जो पाई ऐसी सम्पति को ॥ दुआरें नौबतें बाजैं। नगर में छाई आवाजैं ॥ ग्राम की नारि सुनि धाईं रावले माझ जुरि आईं बढ़ेउ सुख सिन्धु चहुँ ओरी। 'प्रेम रस मोद" को बोरी ॥ १३ ॥ लाल की छवि देखन चलो माई। उमगत हिय आनन्द अनूपम, कौशिल्या सुत जाई ॥ गजमनि चौक रची पुरवनिता, मंगल कलश धराई ॥ बन्दनवार द्वार प्रति बाँधत, ध्वज पताक छवि लाई ॥ गलियन कीच अरगजा माची. धूप धूम नभ छाई। "रसिकअली" नाचत सुर वनिता, कुसुममाल बरषाई ॥ १४ ॥ सुभग सेज शोभित कौशिल्या, रुचिर राम शिशु गोद लिये। बार बार बिधु बदन बिलोकति लोचन चारु चकोर किये ॥ कबहुँ पौढ़ि पय पान करावति, कबहुँक राखति लाय हिये। बालकेलि गावति हलरावति, पुलकित प्रेम पियूष पिये ॥ विधि महेश मुनि सुर सिहात सब, देखत अम्बुद ओट दिये। "तुलसिदास" ऐसो सुख रघुपति पै काहू पायो न बिये ॥ १५ ॥ या शिशु के गुन नाम बड़ाई। को कहि सकै सुनहु नरपति, श्रीपति समान प्रभुताई ॥ यद्यपि बुधि वय रूप शील गुन, समै चारु

चारो भाई। तदपि लोक लोचन चकोर शशि, राम भगत सुखदाई ॥ सुर नर मुनि करि अभय दनुज हति, हरहिं धरनि गरुआई। कीरति बिमल विश्व अघमोचनि, रहिहि सकल जग छाई ॥ याके चरण सरोज कपट तजि, जे भजिहैं मन लाई। ते कुल उभय सहित भव तरिहैं, यह न कछू अधिकाई ॥ सुनि गुरु बचन पुलकतन दम्पति, हरष न हृदय समाई। "तुलसिदास" अवलोकि मातु मुख, प्रभु मन में मुसुकाई ॥ १६ ॥

मंगलमय प्रभु जनम समय में अति उत्तम दश योग परे। अपने अपने नाम सदृश फल, दशौ जनावत खरे खरे ॥ ऋतुपति ऋतु पुनि आदि मासमधु, शुक्ल पक्ष निज धर्म भरे। अंक अवधि नौमी शशि वासर, नखत पुनर्वसु प्रकृति चरे ॥ योग सुकर्म समय मध्यम दिन, रविप्रताप जहँ अति पसरे। जय दाता अभिजित मुहूर्तवर, परमउच्च ग्रह पाँच ढरे ॥ नौमि पुनर्वसु परम उच्च रवि, कबहुँ न तीमिउ अंग अरे। यहि ते "देव" रूप कछु लखिये, गाय गाय गुण गाय तरे ॥ १७ ॥ पगनि कब चलिहो चारौ भैया। प्रेम पुलकि उरलाय सुवन सब कहति सुमित्रा मैया ॥ सुन्दर तन शिशु बसन विभूषन नखसिख निरखि निकैया। दलितृन प्राननिछावरि करि करि लैहैं मातु बलैया ॥ किनकनि नटनि चलनि चितवनि भजि मिलनि मनोहर तैवा ॥ मनिखम्भनि प्रतिबिम्ब झलक छवि छलकिहैं भरि अँगनैया ॥ बाल विनोद मोदमंजुल विधु लीला ललित जुन्हैया। भूपति पुन्य पयोधि उमगि घर घर आनन्द बधैया ॥ ह्वै हैं सकल सुकृत सुखभाजन लोचन लाहु लुटैया। अनायास पाइहैं जनमफल तोतरे बचन सुनैया ॥ भरत राम रिपुदवन लखन के चरित सरित अन्हवैया। "तुलसी" तब कैसे अजहुँ जानिबे रघुबर नगरबसैया ॥१८॥ ललन लोने लेरुआ बलि मैया। सुख सोइये नींद बेरिया भइ चारु चरित चारयो भैया ॥ कहति मल्हाइ लाइ उर छिन छिन छगन छबीले छैया। मोदकन्द कुलकुमुदचन्द्र मेरे रामचन्द्र रघुरैया ॥ रघुबर बालकेलि छोटे सन्तन की सुभगसुभद सुरगैया। "तुलसी" दुहि पीवत सुखजीवत पय सप्रेम घनोचैया ॥१६॥

छोटी छोटी गोड़ियाँ अँगुरियाँ छबीली छोटी, नख ज्योति मोती मानो कमल दलनि पर। ललित आँगन खेलैं ठुमुकि ठुमुकि खेलैं, झुनुझुनु झुनुझुनु पायँ पैंजनी मृदु-मुखर ॥ किंकिनी कलित कटि हाटक जटित मनि, मंजु करकंजनि पहुँचिया रुचिरतर। पियरी झीनी झँगुली साँवरे शरीर खुली, बालक दामिनि ओढ़े मानो बारे बारिधर ॥ उर बघनहा कन्ठ कठुला झँडूले केश, मेढ़ीलटकनि मसिबिन्दु मुनि मनहर। अंजन रंजित नैन चितचोरै चितवनि, मुखशोभा पै वारौं अमित असमर। चुटकी बजावती नचावती कौशल्या माता, बालकेलि गावती मल्हावती सुप्रेमभर। किलकि किलकि हँसैं द्वै द्वै दतुरियाँ लसैं, तुलसीके हियबसैं तोतरे बचनवर ॥२०॥ कौशल्यारानी तुमसम कौनसपूती। करी कमाई मनकी भाई नेक न माया छूती ॥ गोपुर स्वामी गोद खिलावै भक्ति लगाई दूती 'कृपानिवासी" मधुरे बैना गावत मैना तूती ॥२१॥ चलायो रानी परमेश्वर पर टोना ॥ बेदन गायो पार न पायो जायो श्याम सलोना। योगी योग साधना हेरैं तेरे खेल खेलौना॥

भयो नहीं न होइहैं कबहूँ बिना प्रेम कहाँ होना। "कृपानिवास" सनेहिन के बश कौशिल्या जू के छौना ॥२२॥ लाल की छबिदेखन चलो माई। उमगत हिय आनन्द अनूपम कौशल्या सुत जाई॥ गजमनि चौक रचो पुर बनितन मंगल कलश धराई। बन्दनवार द्वार प्रति बाँधत ध्वज पताक छबि लाई॥ गलियन बीच अरगजे माची धूप धूम नभ छाई 'रसिक-अली" नचत सुर बनिता कुसुममाल बरषाई ॥२३॥ रघुबर की बधाई गावो, प्रियप्राव: बरसावो मोरे रामा हो। सुनि के सोहिलो सोहन, छोहन छबावो मोरे रामा हो। तन मन निछावर करिके, दृगरस बरसावो मोरे रामा हो॥ भूपति मनि सुवन सलोनो, छवि हेरि हिरावो मोरे रामा हो॥ "युगलअनन्य" छनहिं छन, सुख सिन्धु समावो मेरे रामा हो ॥२४॥ लैहौं नेग मैं कर को कँगनवाँ॥ महारानी बिनती सुनु मोरी, सुखी रहैं तेरे चारों ललनवाँ। रामलला की निछावर लैहौं, और नहीं कछु मोर चहनवाँ॥ गाय बजाय रिझाय मजे से, ढाढ़िनि मचली भूप अँगनवाँ। "मधुरअली" हँसि देत निछावर, राम मातु मन मोद मगनवाँ ॥२५॥

चलो गी सखि देखि आवैं प्यारे रघुरैया॥ घर घर बन्दनवार पताका, बरखि न जाय निकैया। पुर नर नारि मगन होय गावैं, घर घर बजति बधैया॥ राम लक्ष्मण भरत शत्रुहन, सुन्दर चारों भैया। कौशिल्या कैकयी सुमित्रा, पुनि पुनि लेत बलैया॥ सुर नर मुनि जय जयकार कर हैं, बरषत सुमन निकैया। श्रीदशरथ जू के आँगन में नाचें "मस्त" गवैया ॥२६॥ न लैहौं महरानीजू करकँगना। बहुत दिननकी आश लगी है, सो दिन पहुँचो आनी जू। रामलला की निछावर लैहौं जो हमरे मन मानी जू। गले को हार कौशल्या रानी दीनों तब ढाढ़िनि मुसुकानी जू। "रामदास" की आश यही है,महल टहल मन मानी जू ॥२७॥सदा शुभहोवै जनमकी घरी॥ माई कौशिल्या की कोख सिरानी; गोद खिलावैं मोदभरी। राजा लुटावैं अन धन सोनवाँ, रानी लुटावैं मोतियन की लरी॥ द्वार द्वार प्रति नौबत बाजै, मालिनियाँ लिये माल खड़ी। सुर नर मुनि जय जयकार करत हैं."मस्त" करत फुलवनकी झड़ी ॥२८॥ बधाई बाजि रही घनघोर। दशरथ नन्दन के चार सुवन भय, दुइ श्यामल दुइ गोर॥ महल महल प्रति नौबत बाजै, मच्यो आनन्द को शोर। चन्द्रमुखी मृगनयनी गावैं, जस कोकिल बन मोर॥ पुरबासिन की दशा बिसर गइ, जानत नहिं निशि भोर। "सियाअली" यह कौतुक देखत, बीती रजनी जागने में ॥२९॥

सखी री श्रीमहलन के बीच बरसि रही प्रेम घटा घनघोर॥ हिलमिल हरषि हरषि हिय हेली, नाचैं नइ नइ नाच नवेली। चारहुँ ओर चलीं दृग खंजनि धरि अंजन की कोर॥ रानिन मोतियन चौक पुराये, पूजन कलश सखिन धरवाये। मंगल गावहिं सगुन मनावहिं गहि अंचल की छोर॥ सुरगन बैठि बिमान पधारे, बरसत सुमन बजाय नगारे। राम जनम उत्सव को आली, भयो त्रिभुवन में शोर॥ धन्य अवध के नर अरु

नारी, महल टहल के जे अधिकारी। जोर जोर दृग जोर "बिहारी" प्रभु चरणन की ओर ॥ ३० ॥ सब मोद मनावैं मन में, राजनगृह लालन जनमे। अनमोल बसन बिछि भूमि रहे, हीरन के तोरन झूमि रहे, मलसाउ जरे कलशन में ॥ नरनारी आवत जावत हैं, मणि माणिक लाल लुटावत हैं, सब धनपति ह्वै रहे धन में ॥ फूलन की मग मग महक मचीं, ऋतुपति ने रचना रुचिर रची, बागन बागन बन बन में ॥ दइ आज्ञा अवधविहारी ने, पायो अधिकार विहारीं ने, मन लागि रह्यो चरणन में ॥ रा०गृ० ३१ ॥ रघुकुलमणि श्रीराम चढ़े कौशिल्या कइयाँ। पीत झँगुलिया अंग फिरत कबहूँ घुटरइयाँ ॥ रतन जड़ित चूड़ा सोहैं कटि करधनियाँ। पग नूपुर अनमोल बजैं रुन झुन झनकइयाँ ॥ कच घुँघुरारे शीश चौतनी अनूप रूप। बघनखहा शुभ चन्द चारु ग्रीवा बिच महियाँ। चारो भाई खेलैं खेल आँगना में दौर दौर। धावत जननी ओर डरत लखि निज परिछहियाँ ॥ होत मन मोद मातु देखि देखि श्यामगात। दर्शन देत रमेश लेत मन जी ललकइयाँ ॥३२॥

चन्दा माँगैं रामलला। ठुमकि ठुमकि माता ढिग जावैं, छिन छिन खीझैं और खिझावैं। करि करि केलि कला ॥ कौशिल्या के बारी बारी, खीचैं सारी कबहुँ किनारी। कबहुँ तानि अचला ॥ को जानै कैसे ललचावैं, हेरि अकाशहिं पास बुलावैं। हौला हाथ हला ॥ कहौं कहाँ लगि "रस रंग" भाषैं, देखहिं लीला देव अकाशैं। कहि कहि भला भला ॥ चं० मा० ३३ ॥ ठुमकि ठुकमि पग चाल निरखि जननी सुख पावैं। गिरत उठत फिरि चलत राम हँसि सबहिं रिझावैं। बाल सुकुमार धाय भूप ढिग जाय जाय, बोलैं तोतरे बैन नृपति लै कण्ठ लगावैं ॥ मेवा पकवान आन खावैं सब भ्रात संग. चइयाँ मइयाँ नाचि चौक में खेल रचावैं। आनन्द अपार लेत मातु सब हेरि हेरि कहि कहि अइता कन्त अँगुरियन पास बुलावैं ॥ भइ बड़ि बार देखि लियो गोद में उठाय, बार बार मुख चूमि लाल पलना पौढ़ावैं ॥ सोइबे के काज गीत गावतीं दराज सब, सोजा बारे वीर झुलनवाँ झमकि झुलावैं ॥ पावतीं अनन्द मातु नन्द रामचन्द देखि, निशि दिन दीन रमेश दर्श हित चाह बढ़ावैं, हो निरखि जननी सुख पावैं ॥ ३४ ॥ जग पालक खेलि रहे पड़े पड़े पालना, छटा को निहार जरा होश को सँभलना। जगर मगर कान्ति होति बालरूप नाथ की, लहर लहर अलकैं अरु झलकैं प्रिय माथ की। टुकुर मुकुर हेरनि को पूछो कछु हालना ॥ छट० ॥ किलकारी देत हँसि कैसे के बखानिये, बताना कवित्त सकै चित्त बीच जानिये, मोहनीसी डारि रह्यो कौशिला को ललना ॥ पीत पीत अँगुली अरु स्वेत स्वेत पहुँचियाँ हिलत बाँह प्यारी लगै नीलमणि कौंचियाँ। नजर ना लगाना कोई सँभल नजर डालना॥ संतमण्डल भीज बढ़ी देखि बारबार है,मोह गये "रसरंगमणि" हो गये बलिहार हैं। बना रहे यही ध्यान रहे और ख्यालना ॥ छटा०॥ ३५ ॥

प्रभु नाचैं बीच अँगनियाँ। छम छम बाजै पैंजनियाँ ॥ नवनील घटा तन सोहत है, झँगुली चंचल लखि मोहत है। कटि में सोहत करधनियाँ ॥ छम० ॥

मणि खम्भ लखत निज छहियाँ हैं,किलकैं ऊँचीकरि बहियाँ हैं। हरखैं लखिलखि सब रनियाँ।। कर मोदक ताहि बतावत हैं, खेलन हित पास बुलावत हैं। चितवैं चंचल चितवनियाँ ।। जननी निज ओर बुलावत हैं, प्रभु ठुमुकि ठुमुकि चलि आवत हैं। नित लावैं अपनी कनियाँ। लालन को कण्ठ लगा करके, "मण्डल विहार" रस पा करके। लालन से लगी लगनियाँ ।। छम० ।। ३२ ।। सखन सँग खेलत आनन्द कन्द । रामलखन अरु भरत रिपु दवन, छविनिधि चारिहुँ चन्द ।। एक एक को भजि भजि पकरत, गिरत उठत स्वच्छन्द। जोरी जोरी हाथ पकरि कै, नाचत भरि आनन्द ।। ठुमकि ठुमकि पग धरत अवनि पर, कहत हेरि हँसि मन्द। तोतरे बैन ऐन सब सुख के, सुनत मिटैं दुख द्वन्द ।। मणि आँगन प्रतिबिम्ब निरखि निज, सकुचत श्रीरघुनन्द। मोसम बालक अपर कौन यह, सोचत सुषमाकन्द ।। पूप पवावन चहत वाहि प्रभु, किलकत भरे उमंग । तेहि ढिग चले चलेश सो लखि मुसुकात रंगे रस रङ्ग ।। लखि लखि माता पिता मुदित मन, पावत परमानन्द। सब "गुणशील" स्वरूप मनोहर, चिरजीवें चहुँचन्द ।। २३ ।। आनन्द अकथ अपार अवध में। आज लाल की छटी सोहावन, पुरजन हिय उद्गार ।। बन्दनवार वितान पताका, रचना रची उदार, गावत सरस बधाई प्रमुदित नृत्यत हिय भरि प्यार ।। चन्दन अगर अरगजा छिरकत, बिविध सुगन्धन डार। उड़त अँबीर लाल भय बादर, बरसत रँग रस धार ।। हर्षित देवत सुमन वर्षावत, बोलत जय जयकार। गुनशीला चिर जियें कुँवर सब, यह अभिलाष हमार ।। ३४ ।।

चहुँ श्रुति के सार प्रगटे राम रघुराई । नवमी चैत सित पावन सबनि मन भावन, सुमोद बढ़ावन। दिन मंगलवार प्रगटे राम रघुराई ।। अभिजित मुहूरति आई, जगत सुखदाई, महाछवि छाई । सन्तन रखवार प्रगटे राम रघुराई ।। पुरजन सनेह समाये, नृपति गृह आये, बधाई लाये। हिय भरि उद्गार, प्रगटे राम रघुराई। चन्दन अगर छिरकावैं, अँबीर उड़ावैं, हृदय सुख पावैं। नृत्यत भरि प्यार, प्रगटे राम रघुराई।। सब मिलि बधाई गावैं, मोद वर्षावैं, भान बिसरावैं। निज सर्बस वार, प्रगटे राम रघुराई। सुरगन व्योम में छाये, हृदय हर्षाये, सुमन बर्षाये। कहि जय जयकार, प्रगटे राम रघुराई ।। राजा परम सुख पाये, कोष खुलवाये, सबनि मन भाये। दिय दान अपार, प्रगटे राम रघुराई ।। गौयें बिपुल मँगवाईं, सिंगार सजाईं, द्विजन दिलवाईं। मणि मोतिन हार, प्रगटे राम रघुराई ।। मङ्गल बधाई गावै, भक्तिबर पावै, लालन ढिग जावै । गुनशीला बलिहार, प्रगटे राम रघुराई ।।३५।। प्रगटे आनन्दकन्दा अवध-पुर आनन्द छाये । श्रीमधुमास सोहावन पावन शुक्लपक्ष नौमी मनभावन । सन्तन मन आनन्दा ।।अवध०।। मध्यदिवस शुचि सुखद सुभवर, करहिं गान गन्धर्व मधुरस्वर मिटे सकल दुखद्वन्दा ।। अवध० ।। पुरनर नारि भाव भरि गावैं, नृत्यहिं सम्पति सकल लुटावहि । उरगत भरे उमङ्गा ।। अवध० ।। अँबिर उड़ावहिं धूम मचावहिं रसमयि

बधाइ बजावहिं । वर्षावहिं रसरंगा ॥ अवध० ॥ देव सुमन वर्षत हिय हर्षत, गायगीत सबको मन कर्षत । वर्षत परमानन्दा ॥ अवध० ॥ नृत्यहिं नेहभरीं, सुरनारी, पावहिं हिय बिच मोद अपारी । लखि लखि रघुकुल चन्दा ॥ अवध० ॥ बन्दीबिरद भाट गुन गावत, चहूँ ओर जय जय धुनि छावत । पढ़त वेद द्विज वृन्दा ॥ अवध० ॥ नृप प्रमुदित मणि रतन लुटावहिं, याचकजन अतिसय सुख पावैं । नृत्यहिं अति स्वच्छन्दा ॥अवध०॥ "सीताशरण" रहौं बलिहारी रघुवर मुखमाधुरी निहारी । चिरजीवैं रघुनन्दा ॥अवध०॥ ३६ ॥ रघुपति बालकेलि अति गावत । पग घुँघुरू रुणकार श्रवण सुनि, चकृत घुटुरुवन धावत ॥ मणिमय अजिर निरखि निज आभा, पकरैहू नहिं पावत । लोटत लोचन मूदि रुदन करि, मानत नाहि मनावत ॥ श्यामगात कटि लाल करधनी बघनख उर बनि आवत । कुन्चित केश कमलमुख मानौ, मधुपावलि लपटावत । पण्डित गिरा वदत बामा जब माता मोद न भावत । बालचरित्र विश्व मोहन वपु, "अग्रअली" गुन गावत ॥३७॥

रानि कौशिला सुवन सोवावति । थपथपाइ प्रिय पाणि हरुअमृदु, लालवत्स कहि भावति ॥ श्याम सुखद लखि लोरी गा गा, पलना मधुर झुलावति । मोरे लालहि आवो री निंदिया, शान्ति सुखहि सरसावति ॥ दूधौदन तोहि भोजन दैहौं, मान कही आ धावति आस आव अब आँखिन राखी, लाल ललित अस गावति ॥ आलस भरि शिव सर्वस सोये, रामलला छवि छावति । "हर्षण" जननि रंगी वात्सल्यहिं निरखि नयन सुख पावति ॥ ३८ ॥ राजत राम भूप की कनियाँ । नीलमणी-घनश्याम सरोरुह, बदन सरस सुठि सुखकी खनियाँ ॥ सुठि सुन्दर माधुर्य महोदधि, कोमल लावण ललित लुभनियाँ । नयन विशाल पीतपट पहिरे, घनविच विद्युत वर्ण सुहनियाँ ॥ कोटि भानु सम परम प्रकाशित, छोटी कुण्डल क्रीट छोहनियाँ । चन्दन चर्चित स्रग सुगन्ध मय, अँग अँग भूषण भव्य शोभनियाँ ॥ सुर नर मुनि गन्धर्व सुकिन्नर, सेवित बाल विनोद मोहनियाँ । "हर्षण" आनँद आनँद वर्षत, भीजत सरसत सकल भुवनियाँ ॥ ३९ ॥ ठुमुकि ठुमुकि नचतराम चंचल चित चोरे ॥ नूपुर रुनझुन बजाय, मुसुकि मुसुकि मन मोहाय । नयन सुधा सींचि सींचि, गावत भल भोरे ॥ चहत चापलहन हाथ, क्रीड़नहित बाल साथ । वेद वेद्य ब्रह्म नचत, प्रेम विवश होरे ॥ देखि देखि रामचन्द्र, मातु मनहिं अति अनन्द । प्रेमपगी सुधिहि भूलि, नयननीर वोरे ॥ अंचलीन लालकि लाला चूषति रस भरि रसाल । हर्षि हृदय हेरि हेरि "हर्षण" तृण तोरे ॥ ४० ॥

मलिनियाँ बाँधो री बाँधो री बन्दनवार । रानी कौशिला ढोटा जायो, गावो री गावो री मंगलचार ॥ सजि नव सप्त सबै मिलि भामिनि, साजो री साजो री मंगल-थार । "मधुपअली" मुख निरखि लला को, तन मन धन सब वार ॥ ३८ ॥ माँ आनन्द मंगल गावो री । दरश परश सुख पावो गुन गावो । धीं धा धुम किट क्राण क्राण तार्थेई तार्थेई नि नि ध ध नि म प दरसा बीन बजावो ॥ आज लाल की बरस गाँठ है री, सुनि

मुनि मोद बढ़ावो सुख पावो। "श्यामदास" दृग भरि रस लीजै री, नैन सों नैन मिलावो सुख पावो॥ ३९॥ बीन लिये नारद पितामह सारंगि लिये, मारुत सितार मुरचंग लिये शेष हैं। ताल लिये बरुण कुबेर करताल लिये, झाँझ लिये मृदंग अमरेश हैं॥ गावैं गुण सनक सनन्दन गणेश गण, उन्चास कोटि तान लेत चन्द्रमा दिनेश हैं। "लाल" कहैं अवध में दशरथ जू के लाल भये, झूमि झूमि सभा मध्य नाचत महेश हैं॥ ४०॥

❀ श्रीजानकी जन्मोत्सव प्रसंग ❀

श्रीरामजन्म से प्रतिवर्ष श्रीराम नवमी के पावन अवसर पर भूलोक के सभी राजा श्रीअवध में आकर श्रीरामजी की वर्ष गाँठ में उपस्थित होकर उस महामहोत्सव का परमानन्द प्राप्त करते थे। जिसके लिये बड़े, बड़े अमलात्मा मुनिवृन्द और देवता भी सर्वदा लालायित रहते हैं। तदनुसार महाराज श्रीमिथिलानरेश श्रीविदेहजी भी प्रति वर्ष श्रीअवध में आकर श्रीरामजी की वर्षगाँठ में भाग लेते थे। अपने ही वंशज होने के कारण चक्रवर्ति श्रीदशरथजी महाराज श्रीमिलिथाधिराज का बहुत आदर सत्कार करते थे। जब श्रीरामजी की आठवीं वर्षगाँठ थी, उस उत्सव में प्रतिवर्ष की भाँति सभी राजा तथा श्रीमिथिलेश जी श्रीअवध आये। यद्यपि श्रीरामजी चराचर जगत् को परम् प्रिय थे। तथापि प्रभु की लीलामय संकल्प होने के कारण इस वर्ष श्रीविदेहजी को श्रीरामजी में अत्यन्त आकर्षण हुआ। मन में भावना होने लगी कि यदि श्रीरामजी से हमारा कोई निजी सम्बन्ध हो जाये, तो हमको इनकी सेवा सत्कार करने का विशेष रूप से समय प्राप्त होगा। उत्सव पूर्ण होने पर इसी विचार में निमग्न श्रीमिथिलाजी लौट आये। उस समय श्रीविदेहजी के एकमात्र श्रीलक्ष्मीनिधिजी ही थे। अन्य सन्तान न थी। महाराज ने ऋषियों मुनियों एवं ब्राह्मणों को एकत्रित करके अपनी भावना पूर्ति का उपाय पूछा, तब मनीषियों ने कहा कि—श्रीरामजी के पिता का सम्बन्ध श्रीदशरथजी ने और गुरु सम्बन्ध श्रीवशिष्ठजी ने प्राप्त कर लिया है। विशिष्ट सम्बन्धों का एकमात्र श्वशुर का सम्बन्ध ही शेष है, उसे आप प्राप्त कर सकते हैं। किन्तु आपके कोई कन्या नहीं है, तब श्री विदेह जी ने निवेदन किया कि आप सब ऋषियों की कृपा से मेरे एक कन्या होना क्या दुर्लभ कार्य है। अस्तु आप सब सविधि पुत्रेष्ठि यज्ञ सम्पादन करवाइये! फिर क्या था' यज्ञकार्य कुशल ब्राह्मण विद्वान यज्ञ की तैयारी करवाने लगे।'

इसी बीचमें प्रभु प्रेरणासे मिथिला प्रदेशमें कुछ दिनोंसे लगातार। (अनावर्षण) हो रहा था। प्रजावर्ग भूख प्यास से दुखी हो गई थी। श्री विदेहजी तो सत्संग में सर्वदा ब्रह्म निरूपण करने और सुनने में निमग्न रहते थे, राज्य का कार्यभार मन्त्रियों के संकेत पर चलता था। इसलिये वे प्रजा के समाचारों से अवगत नहीं थे। वहाँ तो

नित्य इस प्रकार की चर्चा होती थी, जिसमें संसार अनित्य है, और एकमात्र ब्रह्म ही सत्य है। महर्षिगणों से दरबार भरा रहता था। प्रजावर्ग जब अत्यन्त पीड़ित हो गई, तब एक दिन बहुत से व्यक्ति मिलकर दरबार में महाराज को अपनी परिस्थिति निवेदन करने के विचार से गये। वहाँ पर इस प्रकार की चर्चा हो रही थी। श्रीविदेहजी महाराज इस प्रकार ब्रह्म शब्द की व्याख्या कर रहे थे।

ब्रह्मशब्दार्थ—अणोरणीयान्महतो महीयान् कठोपनिषद् १-२-२० के अनुसार व्याख्या—वृहति वर्द्धते-निरतिशय महत्व लक्षण-वृद्धिमान भवति-इस व्याख्यानुसार महतोमहीयान् आद्याशक्ति का अर्थ हो गया। म का अर्थ--मसिपरिमाणे धातु के अनुसार—अणोरणीयान् का अर्थ अणु आत्मा का भी उत्प्रेरक परमात्मा अणु से भी अणु है। अर्थात् प्रेरक परमात्मा महानों में महान् आद्या शक्ति के और अणु आत्मा के भी प्रेरक हैं। यह ब्रह्म शब्द – रामेति किल वर्णाभ्यां ब्रह्मेतिप्रतिपाद्यते, इस बृ० ब्र० संहिता पाद दो अ०-७, श्लो०-७ के अनुसार राम ब्रह्म हो गया॥ अतः उर प्रेरक रघुबंशविभूषण मानस की चौपाई चरितार्थ है। ब्रह्म शब्द में–ब, र्, ह्, अ, म्, अ, में छै अक्षरोंका संयोग है। अतः ये छै अक्षरों का अर्थ भी ऐसा है कि ब-बल धातु में 'ड' प्रत्यय करने से-- बुटावट, बुवाई, वरुण, घड़ा, योनी, समुद्र, जल, गमन, तन्तु, सन्तान सूचनादि अनेकार्थक है। र का ड, प्रत्यय करने पर अर्थ-अग्नि, गर्मि, ताप, प्रेम, वेग, रफ्तार(चाल), सोनादि अनेकार्थ है। अगस्त संहितामुसार र काराज्जायते ब्रह्मा राकाराज्जायते हरिः राकाराज्जायते शम्भू राकारात्सर्वशक्तयः॥ अर्थात् रकार से ब्रह्मा विष्णु महेश सब शक्तियाँ उत्पन्न हुई हैं। ह को ड, प्रत्यय अपने से पूर्व के शब्द पर जोर देने वाला है, अव्यय पद का अर्थ--जल, आकाश, रक्त, शून्य, शिव, स्वर्ग, ध्यान, धारण, शुभ, भय, ज्ञान, गर्व, वैद्य, कारण, चन्द्र, विष्णु, अश्व, युद्ध, हाश, हरण, वारण, सूखना, निन्दा, प्रसिद्धि, नियोग, आह्वान, अस्त्र, वीणा, स्वर, आनन्द, ब्रह्मादि, अनेकार्थक है। सारं ततो ग्राह्य मयास्य फल्गुः हंसैर्यथा क्षीर मिवाम्बुमध्यात्॥ अस्तु ह भी अनेकार्थक है। अ-- अक्षरक्षण से परमात्मा की बिरदावली तथा-अकारो वासुदेवस्या हाकारश्च पितामहः। अक्षराणा मकारोऽस्मि--आदि प्रकार से आकार का अर्थ परमात्मा का ऐश्वर्य या आकाश अथवा अन् कर देने से अ का अर्थ नहीं इस प्रकार निषेधार्थक भी होता है। तात्पर्य हुवा कि ब, र, ह, के शिवाय म, अ नहीं है। अर्थात् सत्तामान् की सत्ता रूप में ही म अ है अन्यथा नहीं है। इस स्थान में म अ आत्मा और आचार्य कहे जायेंगे म आत्मा अ-आचार्य इति म का अर्थ पचीशवाँ अक्षर होने से प्रकृति से परे आत्मतत्त्व कहा जाता है जैसा की महाभारत शान्ति पर्व अ० ३१८ के श्लोक ५६ में लिखा है—

अन्यश्च शाश्वतोऽव्यक्त स्तथान्यः पञ्चविंशकः। तस्य द्वा वनु पश्येतां तमेकमिति साधवः॥५६॥ वहीं पर आगे अ० ३३८ में श्लोक २३-२४-२५—

भूत ग्राम शरीरेषु नश्यत्सु नविनश्यति ॥ अजो नित्यः शाश्वतश्च निर्गुणो निष्कलतस्था ॥२३॥ द्विर्द्वादशेभ्य स्तत्वेभ्यः ख्यातो यः पञ्च विंशकः ॥ पुरुषो-निष्क्रियश्चैव, ज्ञानदृश्यश्चकथ्यते ॥ २४ ॥ वहीं पर आगे—यं प्रविश्य भवन्तीह मुक्तावै द्विज सत्तमाः स वासुदेवो विज्ञयेः परमात्मा सनातनः ॥ २५ ॥ वही पर अध्याय ८ श्लोक १७ में—षडविंशेन प्रबुद्धेन बुध्यमानोऽप्यबुद्धिमान् एतन्नना-त्वमित्युक्तं सांख्य श्रुतिनिदर्शनात् ॥ १७॥ फिर इसी अध्याय में आगे श्लोक २० में कहते हैं कि—निःसंगात्मानमासाद्य षड्विंशकमजंविभुम् । विभुस्त्यजात वा व्यक्तं यदात्वेत द्विबुध्यते ॥२०॥ चतुर्विंशमसारं च षड्विंशस्य प्रबोधतात् । वहीं पर आगे अध्याय ३१८ में लिखा है कि—न तु पश्यत्ति पश्यस्तु यश्चैनमनु-पश्यति पश्चविंशोभिमन्येत नान्योऽस्ति परतोमम ॥ ७३ ॥

अर्थ—याज्ञवल्क्य विश्वावसु कहते से कहते हैं—सनातन परमेश्वर छब्बीशवाँ तत्व अन्य है, तथा अव्यक्त पच्चीशवाँ तत्व अन्य है ऐसा देखा जाता है, परन्तु भजन प्रविष्ट सन्तजन सेवक सेव्यभाव से एकता देखते हैं । जैसे अंग अंगी एक होता है । इसी प्रकार और भी लिखा है ॥ ५६ ॥ पञ्चभूत मय नाशवान् शरीरों में जो अजन्मा नित्य सनातन निर्गुण निष्कल तथा ॥ २३ ॥ चौबीशतत्वों से परे पच्चीशवां तत्व जो प्रसिद्ध पुरुष हैं, वह निष्क्रिय तथा निष्फल ज्ञान दृश्य कहा जाता है ॥ २४ ॥ सनातन परमात्मा पच्चीशवाँ तत्त्व वासुदेव जानने योग्य हैं । जिसमें प्रवेश होने से द्विज श्रेष्ठ मुक्त होते हैं॥ १५ ॥ यह पच्चिशवाँ तत्व आत्मा छब्बीशवाँ तत्व परमात्मा से प्रेरित होकर ही अपने स्वरूप को भूलकर प्रकृति मण्डल में विविध रूप धारण करता है। जैसा कि सांख्य शास्त्र व श्रुति वचनों से कहा जाता है ॥ १७ ॥ छब्बिशवाँ तत्व तो अजन्मा सर्व व्यापी परमात्मा है । संग दोष से रहित है, उसी के जगाने से यह आत्मा परमात्मा की शरणागति प्राप्त करके सार रहित चौबीश तत्वों को त्याग सकता है। यदि जीवात्मा यह अभिमान करता है कि मुझसे बढ़कर दूसरा कोई नहीं है । तब जो परमात्मा उसे सर्वदा निरन्तर देखता है, वह उसको देखता हुआ भी नहीं देखता है । इस श्लोक का मतलब हुवा कि भगवत भक्ति बिना भगवान् कृपादृष्टि नहीं करते हैं ॥ ७३ ॥

दोहा—बृहद्धातु अतिशय बृहद मनिषेध अति छोट । प्रेर्य शक्ति व्यूहादि पर प्रेरक अणु अणु ओट ॥ १ ॥ अर्थ ब्रह्म शब्द को जो अणोरणीयान् महतो महीयान् पूर्व अर्थ कर आये हैं । वहीं पर यह दोहा भी कहते हैं, कि बड़प्पन की सीमा बृहद् से तथा म निषेध वाचक होने से अति छोटा अणु आत्मा का भी उरप्रेरक परमात्मा हैं । अर्थात् महाशक्ति चारपाद विभूतिरूप में है तो प्रेरक भी छोटा बड़ा सबका प्रेरक है॥१

दो०-ब्रह्म शब्द को अर्थ दुइ रूढ़ी योगिक भेद । यौगिक प्रेरक कहत हैं रूढ़ी प्रेय विभेद ॥२

लोगों को ब्रह्म शब्द पर विविध भ्रम होते हैं अतः कहते हैं कि ब्रह्म शब्द का अर्थ रूढ़ी यौगिक भेद से दो प्रकार का है—यौगिक शब्द का यथार्थ अर्थ, जैसे पहले कह आये हैं। और रूढी माने विना अर्थ का लोक प्रसिद्ध नाम है। जैसे किसी भिखमंगी का नाम लक्ष्मी है और अमरसिंह मर गया है। और एक राक्षस का नाम ब्रह्म है। परन्तु विशेष करके ब्रह्म शब्द का अर्थ दिव्य, अविनाशी, नित्य है क्योंकि प्रेरक परमात्मा का प्रेर्य दिव्य नित्य पदार्थ है। जिनको चैतन्य विभूति कहा जाता है ॥ २ ॥ दो०-शक्ति पुरुष रघुवर सिया शिव उर निवसत जोइ। रमण अकेले होत नहिं राम कहावैं दोइ ॥ ३ ॥ अर्थ–परात्पर ब्रह्म दो दलक बीज रूप में शक्ति एवं शक्तिमान श्रीसीताराम जी हैं, जो श्रीशंकरजी के इष्टदेवता हैं। वे ही रम्य रमण कहे जाते हैं। क्योंकि अकेले रमण नहीं हो सकता है अतः दोनों को राम कहा जाता है। इसी भाव पर गिरा अर्थ जल बीचि सम कहियत भिन्न नभिन्न। पूज्यपाद श्रीगोस्वामीजी का मत है ॥३॥ दो०-अणोरणीयान् श्रुति कहत महत महा यह ज्ञान। शक्ति व्यूह पर महत सिय प्रेरक राम सुजान ॥४॥ अर्थ--कठोपनिषद १-२-२० इस मन्त्र का अर्थ पहले कर आये हैं उसी को यह दोहा भी कहता है कि ज्ञान स्वरूप पच्चीशवाँ तत्व को प्रेरक स्वरूप छब्बीशवां तत्व इच्छा द्वारा क्रिया द्वारा क्रियाशक्ति देकर परावाणी से राग पैदाकर व्यूहाकार ज्ञान शक्ति बल ऐश्वर्य तेज वीर्य का विस्तार करते हैं ॥ ४ ॥

दोहा-ज्ञान तुरीया राग रस आहत अनहद ओम्। शब्द क्रिया अहलाद छवि तेज विन्दु बल सोम ॥ ५ ॥ अर्थ—अब आहत अनद भेद से शब्द ब्रह्म अ उ म् विभागों कर ज्ञानाकार तुरीयावस्था को आनन्द रैस मय राग पैदा करके ज्ञान स्वरूप वासुदेव ने कई प्रकार की दिव्य सृष्टि पैदा की जो अमृत श्रावी है जैसा कि यजुर्वेद संहिता अ० ३१ मन्त्र ४ में त्रिपादूर्द्ध मुदैत्पुरुषः पादोस्येहाभवत्पुनः ॥ ५ ॥ अर्थात् प्रद्युम्न शंकर्षण वासुदेव के तीन पाद विभूतियों के ऊपर प्रेरक पुरुष बिराजमान हैं। जैसा कि बृ० ब्र० सं० पा० १ अ० १३ के श्लोक १४६ में लिखा है—प्रद्युम्न शंकर्षण वासुदेवा इतित्रयः त्रिपाद विभूति राख्याताः और भी वहीं वह पा० २ अ० ७ श्लोक २६—वासुदेवादि मूर्तीनां चतुर्णां कारणं परं चतुर्विंशति मूर्तीनां माश्रयः शरणं मम ॥ २६ ॥ नित्यमुक्त जनैर्जुष्टोनिविष्टः परमे पदे। पदं परम भक्तानां श्रीरामः शरणं मम ॥ २७ ॥ इस प्रकार नित्य पार्षदों से युक्त त्रिपाद विभूतियों में विहार करने वाले श्रीरामजी की महिमा वर्णन है ॥५॥ दो०—सूर्य प्रभा सम राम दुइ प्रभा अंश सब भूति। प्रेरक सूर्य समान है सदसत्तत्त्रय मूर्ति ॥६॥ अर्थ—श्रीसीताराम जी सूर्य व प्रभा समान दो होते हुवे भी एक हैं, प्रभा के अंशों से चार पाद विभूति है। प्रेरक रामजी सूर्य सदृश दिव्य गुणसागर सगुण साकार नित्य विभूतियों में विराजमान हैं। सत विभूति त्रिपाद है, और जैसा कि गीता अ० १७ श्लोक २३ में—ॐ तत्सदिति निर्देशो ब्राह्मणस्त्रिविधः स्मृतः॥

सत् असत् ये दोनों प्रकार के विभूतियों का तत् पद बाच्य प्रेरक ने ॐ इस प्रणव द्वारा प्रेरणा करके प्रथम त्रिपाद् को स्मरण किया, फिर वेदों द्वारा ब्रह्मा से एक पादस्थ सृष्टि कराई, तब यज्ञों का विधान किया ॥६॥ दोहा-यौगिक ब्रह्म त युगल इक रूढ़ीब्रह्म अनेक ॥ कार्य सु कारण रमणता शब्द सूत रस टेक ॥ ७ ॥ अर्थ—शब्द बाच्य यौगिक अर्थ में तो श्रीसीतारामजी दो होते हुवे भी एक हैं, इस बात को पहले कह आये हैं, अब रूढ़ी अर्थ में कितने ब्रह्म हैं सो गिना रहे हैं। कोई को प्रेरक ने कारण बना रक्खा है कोई को कार्य रूप में प्रेरणा कर रक्खी है, इस तरह शब्द को परा पश्यन्ति मध्यमा बैखरी भेद से शब्द सूत में सबको गूँथकर रमण करते हैं। यह रामत्व है, जिससे रसोवैस:। रसं ह्येवायं लब्ध्वानन्दीभवति, यहतैत्तिरीयोपनिषद् ब्रह्मवल्याध्याये सप्तमानुवाकानुसार यही त्रिपादीय रस को भगवत् सेवा रूप में प्राप्त होने से सामीप्य मुक्ति रूप पार्षदत्व प्राप्त होता है। अनन्त शक्ति सम्पन्न पार्षद भगवान् के लिये भगवान् होते हैं ॥ ७ ॥

दो०—रूढ़ी ब्रह्म अनेक जो तिनको कहिये दिव्य। नाश न तिनको जानिये। प्रभु लीला रस सिव्य ॥ ८ ॥ अर्थ—दिव्य पदार्थ सब ब्रह्म शब्द से कहे जाते हैं। इनका नाश नहीं होता है, क्योंकि वे भगवान् के लीला पात्र सच्चिदानन्द हैं, अतः भगवान् के प्रेर्य अंगभूत हैं, सेवामें लगे हैं, सेवक सेव्य भावसे ब्रह्म हैं ॥८॥ दो०-वेद ब्रह्म अवतार सब ब्रह्म प्रणव हूँ ब्रह्म ॥ ज्ञान ब्रह्म गुरु ब्रह्म हैं शब्द ब्रह्म खं ब्रह्म ॥ ६ ॥ अन्न ब्रह्म मन ब्रह्म है प्राण ब्रह्म सुख ब्रह्म। महत्प्रकृति हूँ ब्रह्म है व्यूह ब्रह्म त्वं ब्रह्म ॥ १० ॥ अर्थ—वेदों को ब्रह्म तथा सभी अवतार भी ब्रह्म कहे जाते हैं। ॐ को ब्रह्म ज्ञान को आत्मस्वरूप कहा जाता है। गुरू कृपा स्वरूप होने से ब्रह्म हैं, शब्द ब्रह्म है, आकाश तुरीया होने से ब्रह्म हैं अन्न आत्मा रूप है, अत: ब्रह्म है। मोक्ष मार्गस्थ मन ब्रह्म है, प्राण ब्रह्म है, आनन्द ब्रह्म है। ममयोनिर्महत्ब्रह्म गीता अ० ३ में महत्प्रकृति को भी ब्रह्म कहा गया है। वासुदेवादि चतुर्व्यूह सब ब्रह्म हैं, त्वंस्त्री त्वंपुमानसि इस एकाक्षरोपनिषद ११वाँ मन्त्रानुसार त्वं पद बाच्य परमात्मा ब्रह्म है।

दो०—मोक्ष मुमुक्षू ब्रह्म है सत्य तुरीया ब्रह्म। ब्रह्म ज्योति सब ब्रह्म है राक्षसहूँ इक ब्रह्म ॥११॥ पञ्च देवहूँ ब्रह्म है सूर्य शक्ति शिव विष्णु। गुण गणपति तीरथ सकल ब्रह्म जानिये जिष्णु ॥१२॥ अर्थ—मोक्षस्थान भगवत् धाम ब्रह्म है। मुमुक्षु आत्मा ईश्वर की प्राप्ति चाह वाला ब्रह्म है। सत्य ब्रह्म है, तुरीयावस्था ब्रह्म है, ज्योती स्वरूप भी ब्रह्म है सर्वंखल्विदं ब्रह्म है। सत्य ब्रह्म है एक जाती का राक्षस भी ब्रह्म है, सूर्य शक्ति शिव विष्णु गणेश ये पञ्च देव भी व्यष्टिक व सामूहिक ब्रह्म हैं। पवित्र स्थान तीर्थ भी ब्रह्म है,जय करने वाला जयिष्णु भी ब्रह्म है। दो०-आहत अनहद भेद सों अर्थ अर्थगुण ज्ञान। आक्षर अक्षर निर अक्षरहुँ शब्द परात्पर जान ॥ १३ ॥ अर्थ—संगीत का स्वर और योगियों के समाधि अनहद का शब्द वेद बाणी का गुण अर्थ ज्ञान दिव्य वाणी प्राकृत

बाणी यह सब शब्द ब्रह्म का प्रभाव प्रेरक परमात्मा द्वारा प्रेरित होकर निरक्षर होकर निरक्षर ब्रह्म बासुदेवादि चतुर्व्यूहों को क्षर अक्षर रूप करोड़ों ब्रह्माडों के रूपों में परिणत किया जाता है। इस प्रकार परमात्मा परापश्यन्ति मध्यमा बैखरी ये चार बाणियों से जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति ये सब अवस्थाओं में बाणी के ही द्वारा प्रेरणा करके जगत् व्यापार करते हैं, इस बात को जानना ही परात्पर ज्ञान कहा जाता है ॥१३॥ सगुण अगुण साकार अरु निराकार सब सत्य। लीला धाम सुनाम गुण रूप रंग बिबिप्रत्य ॥१४॥ अर्थ--भगवान् की लीला भगवत् धाम में यथा नाम तथा गुण स्वरूप दिव्य अनन्त गुण संयुक्त कभी साकार कभी निराकार कभी निराकार में साकार कभी साकार में निराकार कभी उभय सत्य कभी असत्य मिश्रित भी सभी प्रकार सब सत्य नामों का अलग-२ रूप रंग प्रत्यक्ष करते हैं ॥ १४ ॥

दो०--सगुण बिना नहिं अगुण है, बिना साकार न कार। द्वैत नहीं अद्वैत तब शब्द जाय बेकार ॥ १५ ॥ अर्थ--साकार के बिना निराकार किसी प्रकार से सिद्ध नहीं हो सकता है। दिव्यगुणसागर परमात्मा के सत्य संकल्पता से ही संकल्प स्वरूपा भगवान् से बिपरीत गुण बाली माया परमात्मा की निर्गुण निराकार चैतन्य शक्ति के माया में प्रवेश करने पर तब माया परमात्मा के रूप में अविद्या जनित बिश्वरूप को प्रगट करके इस विश्व में से अनन्त चेतन जीवों को जोकी पहले निर्गुण निराकार चेतन शक्ति रूप थे, वे चेतन पहले माया द्वारा परमात्मा का रूप बनाकर माया में मोहित हो स्वर्ग नर्क रूप स्वरूप विरुद्ध सुख खोजने लगे, तब परमात्मा की दया से वेद आये वेदों द्वारा परमात्मा का धर्म आया उस परमात्मा के धर्म ने माया को नष्ट किया। अतः आत्मा उन परमात्मा के ध्यान से परमात्मा के रूप में परिणित होकर वह चेतन आत्मा परमात्मा का सेवक रूप में बासुदेव स्वरूप होगया। अब आत्मा परमात्मा का सेवक रूप में संकल्प करके सेवा करने लगा। जो जो परमात्मा की इच्छा हो वही कार्य करने पर केवल परमात्मा के सुख की चाहना आत्मा ने की तब परमात्मा के भक्त वात्सल्य सौशिल्यादि गुण प्रगट होने लगे। जैसा भक्त ने भगवान् के लिये संकल्प किया, वैसा ही भगवान् ने भी भक्त के लिये संकल्प करके भक्त को भगवान् बना दिया अतः भक्त भगवान् के लिये भगवान् हैं। तो भगवान् भी भक्त के लिये भगवान् पना प्रगट करते हैं। इस प्रकार आत्मा से परमात्मा से सम्बन्ध होता है, इसी प्रकार तत्त्व मसि एवं सोहमस्मि शब्दों का अर्थ होता है। इसके विरुद्ध अद्वैत शब्द व्यर्थ हो जाता है। क्योंकि द्वैत चित्त अचित्त अन्तर्यामी का नित्य व्यवहार चला आया है। इसी बात को छान्दोग्य उपनिषद में अध्याय ६ खण्ड २ मन्त्र ३ में लिखा है--एक बार परमात्मा ने इच्छा की तो आत्मा परमात्मा की इच्छा रूप माया में प्रवेश कर गया तब आत्मा ने इच्छा की तो जल को (प्राण को) उत्पन्न करके प्राण स्वरूप माया में प्रवेश कर गया।

इस प्रकार का सत्संग हो ही रहा था कि इतने में प्रजावर्ग अत्यन्त दीनावस्था से दरबार में उपस्थित होकर अपने अपने दुख निवेदन करने लगे। सभाभवन का दृश्य एकाएक परिवर्तन हो गया। सत्संग में ब्रह्मज्ञान रूपी दिव्य अमृत की वर्षा हो रही थी, वहाँ अनेक प्राणियों का दुःख भरा क्रन्दन होने लगा। उस विषम परिस्थिति को देखते ही श्रीविदेहजी अपनी सन्तान को देखकर वात्सल्यपूर्ण पिता की भाँति सिंहासन पर मूर्छा को प्राप्त हो गये। सभी महर्षिगण दुखार्णव में निमग्न हो गये। कुछ समय बीतने पर श्रीमिथिलेशजी प्रतिकस्थ (स्वस्थचित-सावधान) हुये। तब श्रीशतानन्दजी के यहाँ जाकर श्रीचरणों में मस्तक रखकर प्रणाम करके निवेदन किया कि--हे गुरुदेव! अब आप राज्य की व्यवस्था कीजिये। मैं राज्य कार्य चलाने योग्य नहीं हूँ। मेरे राज्यकाल में प्रजा को महान् कष्ट है। मैं ऐसा राज्य करना नहीं चाहता। तब श्रीशतानन्दजी ने कहा कि--हे राजन्! यह सब प्रभु का विधान है, आपका इसमें कोई दोष नहीं है। आप प्रसन्नचित्त से दरबार में जाइये। मैं आपके पुत्रेष्टियज्ञ की व्यवस्था कर चुका हूँ। कुछ ही दिन में यज्ञारम्भ हो जायेगा। यज्ञ भगवान् की कृपा से प्रजावर्ग सुखी हो जायेगी, और आपका मनोरथ भी पूर्ण हो जायेगा।

तब श्रीविदेहजी ने शतानन्दजी को प्रणाम करके दरबार में आकर मन्त्रियों से कहा कि राज्यकोष को खुलवा दिया जाये, सभी प्रजा की समुचित रूप से सुव्यवस्था की जाये। मेरी प्राणाधिक प्रिय प्रजा को स्वप्न में भी कष्ट नहीं हो। महाराज की आज्ञा पाते ही मन्त्रियों ने सभी प्रजावर्ग को आवश्यक सुविधायें प्रदान करके सुखी कर दिया। इधर श्री शतानन्दजी ने महर्षियों के सम्मत से यज्ञ भूमि का निश्चय किया। मनीषियों ने बताया कि यदि यज्ञ कार्य के लिये भूमि संशोधन कार्य को श्रीमिथिलेश जी महाराज रानी समेत स्वयं अपने हाथसे हलकर्षण करें, तो शीघ्र ही महाराज का मनोरथ पूर्ण और प्रजाका दुख दूर होगा। इसी प्रस्तावनानुसार निश्चित यज्ञभूमि में अनेक महर्षियों विद्वान ब्राह्मणों का स्वागत सत्कार करके हल का पूजनकर श्रीजनकजी महाराज माता श्रीसुनैयना जी समेत हल चलाने लगे। कुछ दूर चलने पर हल एकाएक रुक गया। बैलों ने विशेष जोर लगाया तो एक विलक्षण घटना यह हुई, कि हल के आगे पृथ्वी में से जगमगाता हुआ एक सिंहासन प्रगट हो गया। उस सिंहासन को शेष जी अपने मस्तक पर धारण किए हैं। उस सिंहासन में पृथ्वी देवी बिराजमान थीं। जिनकी अंक में कृपा, करुणा, क्षमा, दया, प्रेम और वात्सल्य की मधुर मंजुल मूर्ति श्रीमैथिली जू अपनी अभिन्नात्मा नित्य परिकरों से सेवित हो रही थीं।

उस मंगलमय दृश्य को देखकर देवता आकाश से फूल वर्षाकर जयजयकार करते हुये अनेक वाद्य बजाने लगे, विद्वान ब्राह्मण एवं महर्षिगण तथा मिथिलेशजी इत्यादि सब स्तुति करने लगे--

छंद :-- जय जय जगस्वामिनि मन अभिरामिनि कृपामूर्ति सुख रूपम् ।
जय करुणाखानी जन सुखदानी मंजुल मधुर अनूपम् ॥
जय जय जग कारणि अधम उधारणि छमा रूप छवि सारम् ।
जय दया स्वरूपा वेद निरूपा जय हिय वर्द्धक प्यारम् ॥
जय शक्ति अनादी शिव ब्रह्मादी ध्यावत तब पद कंजा ।
जय प्रेम पियासिनि अज अविनासिनि हरनि सकल भ्रम पुञ्जा ॥
जय जय जग माता पद जल जाता ध्यावत हो भवपारम् ।
जय प्रीति प्रकाशिनि सब अघनाशिनि महिमा अकथ अपारम् ॥

दोहा---यहि विधि स्तुति करत सब, पावत परमानन्द ।
कृपासिन्धु की कृपा लखि, मिटै सकल दुख द्वन्द ॥

जब सभी लोग स्तुति से उपराम हुये, तब परम अह्लादिनि आदि शक्ति श्रीसीताजी श्रीमिथिलेश जी से कहने लगीं कि---

सवैया----हे मिथिलेश नरेश सुनैं, चित दै यह सार भरी मम बानी ।
पूरब आप कियो तप घोर, मिल्यो तुमको सँग सॉंरग पानी ॥
मो छविपै तुम मुग्ध भये, अरु यह वर माँगि लियो सुखखानी ।
आप बनै तनया हमरी, अरु पाहुन हों प्रभु जीवन दानी ॥

दो०-याही ते महि से प्रगट, भई लखो हर्षाय । तात सुता मोहिं जानि निज, लालिय सरल सुभाय ॥ वार्ता--हे मिथिलेश महाराज ! आपने पूर्व जन्म में बन में घोर तपस्या की थी । आपकी तपस्या को देखकर मैंने श्रीरामजी सहित आपको दर्शन दिया था। आपने मेरी छवि पर मुग्ध होकर यह वरदान माँगा था कि आप हमारी पुत्री हों। और ये श्रीरामजी हमारे पाहुन (दामाद) हों । इसीलिए मैं पृथ्वी से प्रगट हुई हूँ। अब आप मुझे अपनी कन्या मानकर वात्सल्य भाव से मेरा लालन पालन करके परमानन्द का समास्वादन करिये। तब श्रीजनक जी महाराज ने हाथ जोड़कर कहा कि--

सवैया :---- हे करुणामयि भाव भरी, जन की रुचि राखनहार सयानी ।
हो तुम शील कृपा गुण सिन्धु, क्षमामयि मोहिं पिता निज मानी ॥
तो बिनती मम कान करो, शिशु रूप बनो हिय में सुख सानी ।
तो निसि वासर भाव समेत दुलार करौं निज जीवन जानी ॥

दो०:---यहि बिधि नृप की विनय सुनि, विद्युत सी द्युति छाय ।
बन्द भये दृग सबनि के, दृश्य न परयो दिखाय ॥

चौ०:---शिशु स्वरूप बनि जग सुखदानी ॥ रोवन लगीं सरस प्रिय बानी ॥

छत्र सिंहासन परिकर बृन्दा ॥ भये अदृश्य भरे आनन्दा ॥
तब विदेह नृप सुता उठाई ॥ वात्सल्य भरि हृदय लगाई ॥
दीन सुनैना अंक मझारी ॥ वात्सल्य उमग्यो हिय भारी ॥
पयधर श्रवन लग्यो पय तबहीं ॥ लीन गोद महँ सीतंहिं जबहीं ॥
तबहिं भई अति वृष्टि अपारा ॥ सुखी भयो सिगरो संसारा ॥
सीय कृपा मिथिला पुर माहीं ॥ सम्पति भरी दीन कोउ नाहीं ॥
अष्ट सिद्धि नव निधि हर्षाई ॥ घर घर बहु सम्पति प्रगटाई ॥

दो०:---- सुखी भये चर अचर सब, श्रीमिथिलापुर माहिं ।
दीन दुखी कोउ नहिं रहेउ, सब सम्राट लखाहिं ॥

तब श्रीजनक जी महाराज समाज समेत सानन्द अपने महल में पधारे । यज्ञ के परम फलस्वरूप श्रीमैथिली जू का जन्मोत्सव करने लगे। नगर निवासी मातायें बधाई गाने लगीं । जिस दिन श्रीमैथिली जू प्रगट हुई थीं। उसी दिन श्रीमिथिलाजी में राजपरिवार और प्रजावर्ग के घर घर में श्री किशोरीजू की अंशभूता अनेक बालिकायें प्रगट हुई थीं । वह सभी परम सौन्दर्य मूर्ति थीं ।

❀ श्री जानकी बधाई मंगल पद ❀

मंगल गावो री हेली मन के भावने । मिथिलापति केरी हेली शंकर दाहिने ॥ छंद--दाहिने विधि शम्भु अमृत बरषिये वर्षा भली । जनक सुकृत भरे सागर सीय पंकज की कली ॥ प्रफुल ह्वै दिन बढ़ो सुयश निवास कीरति संग चली। अवध बन ते भँवर आवैं राम रसिया वर लली ॥१॥ मंगल गावो री हेली दिन दिन चौगुने । भाग सिहावो री हेली सब मिलि आपने ॥ छंद--आपने बड़ भाग जानो लागि सिय पद सब रहैं। जानि अपनी बालपन ते वर मिलें बहियाँ गहैं ॥ यह संग सब दिन सुलभ सजनी लली सेवन जो चहैं । बढ़ो सरस सोहाग स्वामिनि सहचरी पद हम लहैं ॥ २ ॥ महिमा गावो री हेली सुनैना भाग कीं । उमही है री हेली बेलि सोहाग की ॥ छन्द उमही सबेलि सोहाग की बरबाम कोखि सोहावनी । अनुराग जल सों लागि पाल्यो सुरति मालिनि भावनी ॥ यह चाह टेक बढ़ाय मूरति लताललित लुभावनी । फूल ह्वै बरि माल दशरथलाल गर पहिरावनी ॥३॥ चौक पुरावो री हेली सोहिलो गाइये । जनम लख्यो है री हेली ब्याह मनाइये ॥ छंद-- वर चाह धारिये ब्याह की बर राम आवैं पाहुने । यह लाभ हमको भूप प्रण हित शम्भु चाप तुरावने ॥ सियराम मण्डप ललित भाँवरि समय सरस सोहावने । यह आश "कृपा निवास" उर की विपुल मंगल गावने ॥ ४ ॥ १ ॥ आज महामंगल मिथिलापुर घर घर बजत बधाई री । कुँवरि किशोरी प्रगट भई हैं सबहिन की सुखदाई री ॥ ताही दिन से

जनकपुरी में घर घर सम्पति आई री। द्वारे द्वारे बन्दनवारे अनगन आनन्द छाई री॥ चढ़ि विमान सुर कौतुक देखैं नभ दुन्दुभी बजाई री॥ जनक लली को सोहिलो गावत पुष्प वृष्टि झरि लाई री॥ सुन्दर श्याम राम की प्यारी शोभा अधिक सोहाई री। "तुलसिदास" बलिहारी छवि पर भक्ति बधाई पाई री॥ २॥ अखिल लोक श्री उदय भई है जनकरायपुर जाई। निरमोपम कन्या निमिकुल की सीता ऐसे नाईं॥ बरनत विदुष पार नहिं पावत बानी रही लजाई। जाके चरण कमल भवनौका नाहिन आन उपाई॥ निगमसार सामान सुयश जाको कहत तपो धन आई। ब्रह्म रुद्र अजहूँ पद आश्रित "अग्रअली" बलि जाई॥३॥

नमो नमो श्रीजनकलली जू। जनमत भई विदेह नृपति ग्रह कीरति त्रिभुवन उमगि चली जू॥ मिथिला आलवाल निमिकुल की सुकृति सुवेली सुफल फली जू। बीनत मुनि माली ब्रह्मादिक बालचरित मृदु कुसुमकली जू॥ षटदल गुण सम्पति परिपूरण चितवत अनुपम रूपझली जू। कृपा त्रिवश सौरभ प्रेमाभर सेवत अलि बड़भाग भली जू॥ "शूरकिशोर" निगम जल सींचत मायिक गुण एकौ न रली जू॥ अवलम्बन रघुवीर कलपतरु भइ भूपर उपमा अतुली जू॥ ४॥ जय जय जय श्रीस्वामिनि सीता। बरष गाँठ जादिन सिय आयो, भायो सब जग भयो अतीता। जहँ तहँ लोक अशोक बिलोकत कोउ न रह्यो सुख आनन्द रीता। श्रीमिथिलेश सुतयना रानी आप बजावत गावत गीता॥ ज्ञानी ध्यानी अभिमानी सब, कहत अबस ह्वै रघुबर सीता। "श्रीजानकिवर" की प्राण पियारी जपत रहत नित सीता सीता॥ १॥ पद रेखता--सुकृत मिथिलेश के जागे। सहायक देवगण लागे। चले सुख सिन्धु उमड़ाई। निरखि शशिमुखि सुता जाई॥ सुनयना प्राचीदिशि पावन। उदय यह विधु कियो भावन॥ जगत में छाई उजियारी। गई त्रय ताप हियहारी॥ सुधामय लोक सब नीके। जनम मरणादि हरि लीने॥ बधाई बज रही घरघर। सकल मिथिलापुरी अन्दर॥ न याजक कोई मिलते हैं। अयाचक सब निकलते हैं। बजे पुर व्योम में बाजे। रसिक आनन्द में गाजे॥ "मधुपअलि" सबको कर लीजै। सदा आनन्द सुख दीजै॥ ६॥

सुनैनारानी बजत बधाई तेरे द्वार री। प्रगटी सुता सुलक्षणि सुन्दरि, मिथिला अवध सिंगार री॥ रघुकुल तिलक द्वार तेरे अइहैं भूपति मुनिन समाज री। 'अग्रअली" की स्वामिनि प्रगटी, रसिकन हिय अनुराग री॥७॥ भले दिन जन्मलियो सुखदानी। निरखि बदन सुखसदन कुँवरिको, मगन भये नृप रानी॥ सकल सिद्धि सम्पदा पदारथ, मुक्ति द्वार अरुझानी। जनकपुरी में कोइ न सम्हारत रूप दरश मतिसानी। सकल सराहत भाग्य जनक के, जीवन सुफल प्रमानी। 'कृपानिवास' अली की स्वामिनि, शोभा नैन समानी॥८ जनकलली जू को सोहिलो गाऊँ। धन्य जनक धनिरानी सुनैना, निरखि लली मुख दृगन जुड़ाऊँ॥ या कन्या कुल प्रगट कियो है, सुर नर मुनि याको सुमिरत नाऊँ। "हरि

सहचरि" बारव तन मन धन, भक्ति बधाई नित नइ गाऊँ ॥ ६ ॥ बाजे बाजे बधाई आज जनकपुर रंगभरी । रानी सुनैना बेटी जाई, आज सुदिन शुभ योग घरी ॥ भये मुदित सुर साधु भूमि द्विज, असुरन के शिर गाज परी। गोरे अंग रूपगुण रासी, दामिनि की द्युति दूरि करी ॥ घर घर गान करत पुर बनिता, मंगल घट प्रतिद्वार धरी । रुचिर बितान पुंग कदली तरु, रोपे सुमंगल द्रव्य भरी ॥ सजि सजियान विबुध नभ छाये, बरसत कुसुम लगाइ झरी । "रसिकअली" गावत सुरनायक, नाचत कोटिन इन्द्र परी ॥ १० ॥ नाचे नाचे नवेलो नारि नूतन नाज करे ॥ ताथेइ ताथेइ तरलताल गति, रतिपति प्रानहरे । विविध विलाश प्रकाश हासरस, जसथलभावभरे ॥ रीझिरेत मिथिलेश महामनि, मुक्तामाल गरे । "युगलानन्य" मोहनीमूरति, सियहियमाहिं धरे ॥११॥

मिथिला बजतबधइया सबहिंसुख वारिवारि जावै । योग लगन ग्रह बारसुखद सब, तिथिहु पक्षमधुमइया ॥ जनकबधू पुत्री भल जाई, कोटिचन्द्र छविछइया । त्रिविधवायु सेवत अनुकूली, पंचतत्त्व सुखदइया ॥ नाचहिं गावहिं देव बधूटी, सुरन सुमन बरषया । सिद्ध मुनिनि मिलि स्तुति सारत, दुन्दुभि गगन बजइया । जय जय जयति जनकजा बोलत, आनन्द अमित अघइया । ललिहि ललकि लखि अम्ब सुनैना, दोनी भान भुलइया ॥ कुलगुरु सहित लखे मिथिलेशहु, पाये सुख अमितइया । जात कर्म नन्दी मुख श्राद्धहिं, कीने हिय हरषइया ॥ सर्वस दान दिये सब काहुहि, कनक बसन मणि गइया । अन्न भूमि रथ हयगय गृहरथ, कन्या दान दिवइया । मृग मद केशर कुम्कुम चन्दन, बीथि न गन्ध सिंचइयां । कनक थार भरि मंगल द्रव्यहिं, स्वर्ण कलश शिर लइया ॥ वृन्द वृन्द नव-नागरि प्रविशहिं, भूपभवन भलभइया । सोहिल गान करहिं पिकवैनी, मुनियन ध्यान छोड़इया ॥ जनकलली लखि बलि बलि जावैं, आरति करैं सुहइया । करि निछावरि निरखि लुभानी, सिगरी सुधि बिसरइया ॥ आनन्द मगन जनकपुर वासी, कहै कौन कवितइया । "हर्ष" प्रेम पगि नाचहिं गावहिं, धनि धनि लोग लुगइया ॥ १२ ॥

बजत बधाई सरस सुखसार गृह गृह सोहिल सोहै । रानि सुनैना आनन्द वर्धनि, भूपभाग बहुविधि समृद्धनि । प्रगट सोहाई प्रिया सुकुमार, रतीरमा मनमोहैं ॥ मातु पिता सुखसिन्धु समाने, सर्वस देत खुलाय खजाने । हय गय धेनु बसन मणिहार, सुखमय सब कहँ जोहैं ॥ लक्ष्मीनिधि नवनेह विभोरे, अनुजाभाव रसहिं रसबोरे । लहत हृदय आनन्द अपार, उत्सव सुखहिं सुखोहैं ॥ सुर प्रसून बर्षहिं नभ तेरे, जयकहि दुन्दुभि देत सुखेरे । नाचहिं अप्सरा भाव सम्हार, सेवहिं सियछवि सोहैं ॥ तैसेहि भूमि पंच धुनि माती, दधि केशर छिड़काहिं सुखमाती । लोग लुगाई नचैं सब वार, "हर्षस" दिविरस दोहै ॥ १३ ॥ चलो चलो री सहेली नृप महलन में । लक्ष्मीनिधि के भगिनि प्रगट भइ, छवि शृँगार सुख धवलन में ॥ उमा रमा ब्रह्माणि सुनीयत, आइ नचीं पुर अबलन में ॥ ऋषि मुनि वेद उचारत उचरे, आदि शक्ति मन अमलन में । देश देश के भूपति आये, भेंट

लिये छबलन में। नभ अरु नगर महानन्द छायो, जड़ चेतन नवनवलन में। "हर्षण" गगन नचत सुररवनी, बरँष पुष्प लव लवलन में ॥ १४ ॥ बाजै-बाजै बधइया अमिय रस बोर, मिथिला आनन्द भीनी। जनकलली जू प्रगट भई हैं। त्रिभुवन आनन्द आज लई हैं, सुख को सिन्धु उमड़ चहुँ ओर ॥ मिथिला० ॥ लक्ष्मीनिधि नवनेह समाये, देह गेह सब सुधिहिं भुलाये। सरबस दान दियो बिन मोर ॥ मिथिला० ॥ सुहृद सखा सह उत्सव सरसत, राते रोम रोम रस बर्षत। लखि लखि तिहुँ जग होत विभोर ॥ मिथिला० ॥ सोहिल गान करहिं पुर नारी, विप्र बन्दि श्रुति बिरत उचारी। बर्षिसुमन सुर जयजयशोर ॥ मिथिला० ॥ भू-नभ नवल कोलाहल छायो, बिधि हरिहर निज नगर भुलायो। वेष छिपाय फिरत पुरखोर ॥मिथिला०॥ आनँद अवधि जनक की बेटी, सबहिं देत सुखसिन्धु समेटी। "हर्षण" हर्षहिं हृदय हिलोर ॥ मिथिला० ॥१५॥ जनकलली जू के भाल डिठौना। मधुर मधुर मृदु मंजुल शोभित, ज्यों मृगांक मृग चिन्ह सलोना ॥ चिलकत चिकुर शीश गभुआरे, बिलसत नागिनि के जिमि छौना। किलकि लली अम्बहिं अवलोकति, करपद पटकति उछरि अयोना ॥ सुख सुषमा शृँगार सुमूरति, पलना परी मधुर रस भौना। जननी राई लोन उतारति, भय भरि कोउ करि देय न टोना ॥ मधुर भाव भावित सुख सिन्धुहिं, बूड़ी वाछल प्रेम अहोना। डीठहिं डरति विवश ह्वै "हर्षण", पीवति रूप रसहिं दृग दोना ॥ १६ ॥

सुनयना माई धनि धनि तेरी बेटी। जाको अन्त अनन्त न पावत, सो तव गोद में लेटी। जेहि दिशि दृग किंचित अवलोकत, तेहि के सब दुख मेटी। यहि पंद सद रति अति मुदताई, सब सुख सुकृत समेटी। श्रीगुरु कृपा सु "युगलविहारिनि" पाय प्रिया पिय भेंटी ॥ १७ ॥ तेरी लली चिरजीवे री माई। सकल लोक पद सेवहिं याके, सीता नाम सोहाई ॥ जग विजयी गुण शील मनोहर, नेह भर्यो रसदाई "रसिकअली" बर मिलिहैं याको, कोटि अनंग लजाई ॥ १८ ॥ जुग जुग जीवै तेरी बेटी सुनयना रानी। बड़भागिनि तेरे घर प्रगटी, सकल गुणन की खानी। अचल सोहाग भाग यश भाजन, भाविकजन जिय जानी। जेहि सेवत तजि लोक लाज गृह, काम बचन मन बानी ॥ श्रीमिथिलापुर नारि निहोरत, बचन सुधा जनु सानी। "ज्ञानाअलि" सिय जन्म सोहिलो, त्रिभुवन सब सुखदानी ॥ १९ ॥ सुनैना माई लाड़िलि युग युग जीजै। गोद प्रमोद बिनोद विनोदति अतिहित पय पीजै ॥ मूरति प्रीति प्रतीति सुपूरित, भव भय दुख छीजै। "युगलबिहारिन" सोहिलो गावैं सुता पद रति दीजै ॥ २० ॥ चिर जीवो हमारी दुलारी सिया। जाके हित मिथिलेश सुनैना, अमित जनम बहु सुतपकिया ॥ गनपति गौरि महेश कृपा से, पूरीभइ अभिलाष हिया। अब नित नव आनँद सरसैइहैं, सुख पइहैं मिथिलाकी धिया ॥ नर नारी मनमाने मनोरथ पाय न फूले समैइहैं हिया। "मधुपअली" सिय के ब्याहन को, जब ऐहैं अवधेश पिया। ॥ २१ ॥ हमरी लाड़िली गुसइयाँ कुशल राखैं ॥ जाकी कृपा कोर नितनूतन

हम आनन्द सुधा चाखैं। देवी देव सब पूजो मिलिके, जानें नहीं कोउ मनमाखैं॥ वर अनुकूल देव जगदीश्वर, पूजैं हिया की अभिलाषैं। "मधुपअली" युग युग जिवो स्वामिनि, श्रीसियजू की जय जय भाषैं॥२२॥ मैया मैं आई बड़ी दूर से खिलौना ले लो॥ आज सुनी मिथिलेश भवन में, लली प्रगट भइ आई। जनक नगर नर नारि मुदितमन, घर घर बजत बधाई। भाँति भाँति के सुभग खिलौना अपने हाथ बनाई। अति अनुराग पगहि पग चलिके, मैं तुमरे घर आई। मेरी यह अभिलाष पूरि करि देहु सुनैना माई। मैं अपनी लै गोद लड़ैती को तनि लेउँ खेलाई॥ मोद विनोद जनक आँगन में, दिनप्रति बढ़ै सदाई। "मधुपअली" मुख निरखि लली को, जन्म सुफल होइ जाई॥२३॥ खेलत मोरी लाड़िली झुनझुनवाँ। यह झुनझुनवाँ को शब्द मनोहर, सुर मुनि मन ललचनवाँ॥ यह झुनझुनवाँ सों सब जग खेलै, सिय जू के कर को खेलनवाँ। यह झुनझुनवाँ में बसत सकल जग, विधि शिव इन्द्र भवनवाँ॥ हर उर डारि सिय के झुनझुनवाँ में, बसि रह्यो आइ मदनवाँ। "मधुपअली" याके शब्द सुनत को, ललचत अवध ललनवाँ॥२४॥ सोहिल त्रिभुवन तान आज चहुँ ओरी हो। ललना आनँद मगन दिखात सबहिं बनि भोरी हो॥ धनि धनि रानी भूप सुयश जग जोरी हो। ब्रह्मशक्ति बनि पुत्रि जाहि रस बोरी हो॥ विधि हरिहर सुर सिद्ध करत जय शोरी हो। ललना नृत्यहिं देव विमान लाज जगछोरी हो॥ दुन्दुभि बजति प्रसून झरत दिवि ठौरी हो। ललना-तैसेहिं भू महँ आज पंच ध्वनि लोरी हो॥ दान विविध विधि देत भूप शिरमौरी हो। ललना चन्दन चोवा इत्र छिरक मग दौरी हो॥ दधि की कीच मचाय सबहिं हदबोरी हो। ललना-नाचहिं लोग लुगाइ प्रेमपथ भोरी हो॥ भाँड़ विदूषक स्वाँग करत हँस होरी हो। ललना आनन्द आनन्द छाव त्रिजग चित चोरी हो॥ श्रीजनक लली अनुराग अगत रस घोरी हो। ललना-"हर्षण" हर्ष समाय नस्यो भव घोरी हो॥२५॥

प्रगटीं सिय सुकुमारि री सजनी। सुनि सुनि प्रेममगन नरनारी, पावतमोद अपार रि सजनी। नृत्यत गावत हिय सुखपावत, संगति सर्बसवारि रि सजनी॥ नृप हर्षाय धेनु गज बाँटत, रानी बहुमणिहार रि सजनी॥ घरघर चौक पुराइ सुआसिनि, गावत मंगल-चार रि सजनी॥ सुरगन हर्षि सुमन बर्षावत बोलत जय जयकार रि सजनी। प्राणहुँ ते प्रिय जीवन जीकी, रघुवर प्राण पियारि रि सजनी॥ नृप लाड़िलीं सदा चिरजीवें, शुभ आशीष हमारि सजनी। "गुनशीला" मुख कंज मंजु लखि, रहौं सदा बलिहारि रि सजनी॥२६॥ मंगल आजे जनकपुर घर घर मंगल हो। ललना-प्रगटीं सिय सुकुमारि चहुँ दिशि मंगल हो॥ पुर नर नारि मुदित मन मोद मनावहिं हो। ललना-बन्दनवार पताका द्वार सजावहि हो मणिमय चौकपुराय कलशधरवावहिं हो। ललना-तिनपर जगमग दीपक ज्योति जगावहिं हो॥ नृत्यहिं भरि अनुराग सोहिलो गावहिं हो। ललना निज निज सम्पति पुरजन सकल लुटावहिं हो॥ सुरगन चढ़े विमान सुमन बर्षावहिं हो। ललना

प्रमुदित देहिं अशीष महाँ सुख पावहिं हो ॥ ऋषि मुनि जन मन मुदित जयति जय बोलहिं हो। ललना-परम प्रेमरस रँगे नारि नर डोलहिं हो ॥ नृपति खुलायो कोष जाहि जो भावहिं हो। ललना-निज निज रुचि अनुकूल सकल लै जावहिं हो ॥ मातन मन अति मोद परम सुख पावहिं हो। ललना-माणिक मोती मणिन सुमाल लुटावहिं हो ॥ याचक भये अयाचक जय ध्वनि लावहिं हो । ललना-विप्र वृन्द लहि दान प्रेम रस छावहिं हो ॥ अति प्रसन्न मन उमगि सुवेद सुनावहिं हो। ललना-चिरंजीव हो लली नृपति यश, पावहिं हो ॥ जब लगि महि अहि शीश गंगजल धारा हो। ललना-जब लगि रबि शशि उदय रहहि नभतारा हो ॥ तब तक कीर्ति सुअचल अशीष हमारी हो । ललना-"सीताशरण" विलोकि चरण बलिहारी हो ॥२७॥

बाजे बाजे हो आज मंगल बधैया बाजे बाजे हो। मिथिलपुर आनँद उमगि पर्‍यो, प्रगटीं भूपति भवन सिया बाजे बाजे हो ॥ प्रेम प्रमोद भरे नर नारी, मणिन लुटावहिं हर्षि हिया बाजे बाजे हो । कोउ गावहिं नाचहिं सुखमाते, करहिं बिदूषक विविध किया बाजे बाजे हो ॥ दुन्दुभि नाद सुमन सुर बर्षत सकल आशीषहिं बिबुध धिया बाजे बाजे हो। परमानन्द मगन नृप दम्पति, हर्षित सर्वस वारि दिया बाजे बाजे ॥ गोबिन्द जन्म उछाह भरे उर; मंजुल मंगल गान किया बाजे बाजे हो ॥ २८ ॥ सजनी सुखसार प्रगटीं सिया सुकुमारी। माधव सुमास सोहावन, परम मन भावन, सुरस बर्षावन। नौमी मंगलवार प्रगटीं सिया सुकुमारी ॥ सीता जनम जब लीना, सबहिं सुखदीना, महा रस भीना। भरे भुवन भण्डार प्रगटीं सिया सुकुमारी ॥ पुरजन सनेह समाये, हृदय हर्षाये, महाँ सुख छाये । आये नृप द्वार प्रगटीं सिया सुकुमारी ॥ राजा निरखि हर्षाये, परम सुख पाये, सुदान लुटाये । मणि मुक्तनहार प्रगटीं सिया सुकुमारी ॥ गावत मुदित नर नारी, लहत सुख भारी, सनेह सम्हारी । नृत्यत भरि प्यार प्रगटीं सिया सुकुमारी ॥ मंगल बधाई गावैं, सुमन वर्षावैं, देव हर्षावैं । कहि जयकार प्रगटीं सिया सुकुमारी ॥ अनुपम स्वरूप निहारी, रहौं बलिहारी, करौं जयकारी । निज सर्वसवार प्रगटीं सिया सुकुमारी ॥ "सीताशरण" सिय आशा चरण को दासा मिटी भव पाशा। गावैं मंगलचार प्रगटीं सिया सुकुमारी ॥ सजनी० ॥ २९ ॥

बधाई का उत्सव होने बाद, बारहाँ, अन्नप्रासन कर्णवेध इत्यादि अवसरों पर परमानन्द बर्धक महान उत्सव हुआ। श्रीमैथिली जू कुछ बड़ी हो गईं तब अपनी अनुजाओं एवं सखियों के साथ आँगन में खेलने लगीं । एक दिन श्रीकिशोरी जू ने माता जी कहा कि--

मैया मोरी काहे न कीजै चोटी। विथुर बाल मम आनन आवत, करौं काह किन कोटी ॥ क्रीड़न काल उपाधि करत जब, है जावत मन मोटी । भली भाँति गूँथै नहिं तू री, समुझि मनहिं मोहिं छोटी ॥ सबहिं सुधार सबहिं बाँधि अम्बा, केश कला

बिद होटी। बिना गुँथे नहिं खेलन जइहौं, जाउँ पलँग पर लोटी ॥ कौन काज महँ व्यस्त कहहु सत, दासी दास न टोटी। "हर्षण" मातु कही तब गुथिहौं, जब खावै घिउ रोटी॥३०

माताजी के इस प्रकार वात्सल्य भाव भरे बचन सुनकर श्रीमैथिलीजू ने बहिनों के साथ घी रोटी खाई, तब माताजी चोटी सँभालने लगीं—

मातु सम्हारति चोटी लली की। इतर फुलेल लगाय के, कंघी, कीन दुलारति होटी॥ सुठि सहकारि केशावलि कारी, नागिन सी भुँइ लोटी। बहुरि गूथ मणि गुच्छन दीनी, बेणी उत्तम कोटी॥ सुमन सुगन्धि सदशिर भूषण, शोभित सुभग अजोटी। शशि शतकोटी लजत लखि आनन, रती रमा सब छोटी॥ दै दर्पण जननी जिय चाहति, होय न दृग ते ओटी। लखत लाड़िली भई मगन मन,'हर्षण' लखि भल चोटी॥३१॥

इस प्रकार चोटी हो जाने के बाद श्रीकिशोरीजू सहचरियों के साथ आँगन में खेलने लगीं :- सखिन सँग खेलहिं जनक दुलारी। चारु शिला हेमादिक अलिराँ, खेलन साज सँवारी। गुड्डा गुड़िया ब्याह रचावहिं, करत बरात तयारी। ब्याह करावहिं गारी गावहिं, मानहिं मोद अपारी॥ कन्दुक क्रीड़हिं भौंर नचावहि, विहँसत दै किलकारी। ठुमुकि चलैं पग नूपुर बाजैं, सखि अंशन भुजधारी। सखियन स्वकर पवावहिं हित सों, हिय अति होहिं सुखारी। तेउ सब सियहिं पवावहिं निजकर, छबि लखि तनमन वारी॥ बाल भाव सम्पन्न मैथिली, करत अमित खिलवारी। "गुनशीला" लखि सिय शिशु लीला, मातु होहिं बलिहारी॥ ३२॥

खेलते खेलते जब सब सखियाँ थक गईं तब अपने अपने घर चली गईं। श्री-मैथिलीजू भी माताजी की गोदमें बैठकर अलसाने लगीं। तब माताजी से कहने लगींकि:- मैया अब नहिं जात जगी। झुकि झुकि परौं बैठ तब गोदी, निद्रा अधिक लगी॥ पग पिरात किय क्रीड़ा बहुती, अलियन प्रेम पगी। पलँग परात स्वयं सँग पौढ़ी, देहि सोवाय सगी। सुनि प्रिय बचन पुत्रि नव नेहनि, रस वात्सल्य रँगी अंक उठाय सियहिं लै सोई, मनहुँ नहिं बिलगी॥ नीदउ बदन सोहावन सिय को, लखतहिं भान भगी। 'हर्षण' जननि सफल जिय जानति, जानकि ज्योति जगी॥ ३३॥ प्रातःकाल ब्रह्म बेला में माताजी जाग कर श्रीकिशोरी जू को दुलार पूर्वक जगाईं। इतने में भगिनि प्रेम पगे श्रीलक्ष्मीनिधि जी आये और श्रीमैथिली जू को दुलार पूर्वक विविध खिलौने देकर प्रसन्न करने लगे।

प्रात समय उठि अम्बसुनैना सिय कहँ जाय जगावै। उठहु उठहु मम लाड़िलि लोनी, कलरव शकुन सुनावै॥ अरुणोदय बेला अब आई, उड़गन मलिन जनावै। संध्या करहिं वेद द्विज उचरें, चिन्मत ब्रह्म सुहावैं॥ नौबत बाजति भैरवि रागहिं, गायक गण गुण गावैं। अलियाँ आय बैठि सब पौरी, दरश हेतु ललचावैं। सुनत सिया उठि बैठि पलँग पै, दृग झाँपति अलसावैं। जननि उठाय "हर्ष" उर लाई, यत्ननि नींद भगावैं॥ ३४॥ भोर भये जनक दुलारी। समय समुझि लक्ष्मीनिधि आये, अनुजा प्रीति अपारी॥

निशाविरह आतुर सम भाषत, भ्रात भगिनि सुखकारी। मन प्रसन्न मुख पंकज निकस्यो, इक इक काहिं निहारी ॥ अंक लिये सिय श्रीनिधि सोहत, चुम्बत बदन पियारी। लालिहु ललकि भ्रात गल लिपटी, नेह नवल अविकारी ॥ खेलन खान वस्तु भल दीने जनक सुवन सब वारी। "हर्षण" नेह निरखि दोउ नयनन, बहत हृदय रस धारी ॥ ३५ ॥ दिन में जब अनेक सखियों के साथ लाड़िली श्री किशोरीजू नानाप्रकार के रसमय खेलखेलनेलगीं, उसपरमोत्सवानन्द को देखकर श्रीपार्वतीजी तथा श्रीलक्ष्मीजी एवं श्री शारदाजी से भी न रहागया, वे सब इन्द्राणी इत्यादि को साथ लेकर श्रीकिशोरीजू के समान अवस्था की बालिका बनकर श्रीमैथिलीजू के बालिका समाज में मिलकर लाडिली श्री किशोरीजू के साथ खेलने लगीं :—

सियाजू खेल सखिन सँग करहीं। लखिलखि उमा रमा ब्रह्मानी, आनन्द हियमें भरहीं ॥ बेष बदलि बनि सिय सम बाला, अलियत मध्य बिचरही। जानगईं सर्वज्ञ मैथिली, सत्कारत सुख सरहीं ॥ लहि बहुप्यार दुलार सियाको, मंजुमनोरथ करहीं। "गुनशीला" नित खेलौं सिय सँग, अति सुख सागर परहीं ॥३६॥ कभी कभी श्रीलक्ष्मीनिधि जी श्रीकिशोरी जू की अँगुली पकड़कर महल की ही पुष्पवाटिका में ले जाते हैं। सब सखियाँ भैया जी के साथ वहाँ अनेक कौतुक विनोद करती हैं। एक मयूर को नृत्य करते देखकर भैयाजी ने श्रीकिशोरीजू से कहा कि हे लाड़िली जू—छहर छबि नृत्यत नव नव मोर। लखहु लली फहराय पंख प्रिय, शोभित सुख प्रद प्रेम बिभोर ॥ मधुर मधुर मृदु बोली बोलत, बारिद सों कर प्रीति अथोर। सुनत भ्रात की बात जनकजा, देखि सुखी भइ हृदय हिलोर ॥ कहति मोहिं चहिये यह केकी, क्रीड़ा करौं सखिनसँग जोर।—वह परम बड़भागी मोर तो श्रीकिशोरी जू का परम कृपापात्र पार्षद था, उनकी क्रीड़ा का सहायक होने के लिये ही उपस्थित हुआ था, अस्तु साधारण संकेत पाते ही श्रीमैथिलीजू के निकट आगया—करि प्रयत्न लक्ष्मीनिधि लाबे, परसि प्रसन्न भईं सुनिशोर ॥ कछुक काल रहि गयो बहुरि उड़ि, सिसकन लगीं सिया तेहि ठौर। श्रीनिधि कहे याहु ते सुन्दर, "हर्षण" देहुँ शकुन चितचोर ॥ ३७ ॥

उस मोर के उड़ जाने से बालाभाव सम्पन्न श्रीकिशोरीजू को सिसकते देखकर भैयाजी ने समझाकर कहा कि लाड़िलीजू, मैं इससे भी सुन्दर मोर आपको मँगवा दूँगा। यह उड़ गया इसे उड़ जाने दो। ऐसा कहकर एक गेंद दिये कि आप सखियों के साथ इस गेंद से खेलो। श्री किशोरीजी सखियों के साथ गेंद खेलने लगीं—कन्दुक क्रीड़ति जनक दुलारी। उछरि उछरि सखियन बिच प्रमुदित, होवति परम सुखारी ॥ दौरि चलत गिर परति उठबि द्रुत, बिहँसत दै किलकारी। 'गुनशीला" लखि भ्रात मुदित मन पागत प्रेम अपारी ॥ ३८ ॥ कबहूँ सिय जू चंग उड़ावैं अतिसय ऊँचे कबहूँ नीचे, खैंचि परम सुख पावैं ॥ लखि लखि सखी सहेली प्रमुदित, आनँद सिन्धु समावैं। "गुनशीला" लखि

भैया अपनो तनमन सब न्यौछावैं ॥ ३६ ॥ पतंग उड़ाने के बाद श्रीकिशोरीजू ने कहा कि भैयाजी मैं खेलते खेलते थक गई हूँ । अब आप मुझे हिंडोरा में बिठाकर झूला झुलाइये। अपनी आत्मधन प्राण सर्वस्व श्रीलाड़िलीजू की प्यार भरी बातें सुनकर भैयाजी श्रीकिशोरीजू को अंक में उठाकर हिंडोरा में बैठ गये । सखियाँ झोंका देने लगीं ।

झूलति श्रावण सिया हिंडोर । बैठी भैया अंक विराजति मन महँ मोद अथोर ॥ झूलन वेग जबहिं कछु दरशत, भय भरि बनत विभोर । लिपटि रहत भ्राता तन पकरी, लखतहिं दृग तेहि ठौर ॥ मन्द मन्द झूलनगति होवत, जाति सिया सुखबोर । अनुजा आनँद अतिहि अघावै, सोई करतब मोर ॥ अस विचारि हिय लाड़िहि लाली, श्रीनिधि झुलत हिलोर । "हर्षण" सियहु अधिक सुखसानति, भ्रात प्यार लहि जोर ॥४०॥ कुछ समय बीतने पर श्रीलक्ष्मीनिधिजी का ब्याहोत्सव हुआ. महाराज श्री श्रीधर कन्या श्रीसिद्धि कुँवरि नववधू बनकर श्रीमिथिलाजी आईं । तब भैया श्रीलक्ष्मीनिधिजी ने श्रीसिद्धिकुँवरि को शिक्षा दी कि- जनक सुवन सिखवत निज प्यारी । श्रीधर राजकुँअरि सुखसागर, सब विधि मम अनुरूप सम्हारी ॥ सिय सेवहिं गुनि मम शुचि सेवा, तासु चाह ममचाह बिचारी । अष्ट याम सेवहु सब भाँतिहिं, जेहि ते रहैं प्रसन्न दुलारी ॥ अनुजा सुखी सुखी मैं सहजहिं, तासु दुखहिं नहिं सकौं निहारी । मंगल लली मोर बड़ मंगल, जानेउ सदा मोर हितकारी ॥ हौ सहधर्मिणि सहचरि मोरी, प्राण प्रिया दुहुँकुल उजियारी । सुनि सिखमानि सिद्धि परि पैयाँ, "हर्षण" हर्षि भई बलिहारी ॥ ४१ ॥

सिद्धि सिया पै सर्वस वारे रे । लक्ष्मीनिधि जिमि सिय सुख चाहत, प्राणन प्राण पियारी रे ॥ श्रीधर कुँवरि तथा निज ननदहिं, मानत आतम अधारी रे । सियहु सुखी भाभी भल पाई, परमा प्रीति पसारी रे ॥ मज्जन अशन शयन सँग संगहिं, इक एकहिं सुखकारी रे । निज निज मनहिं परस्पर मेलो, क्षीर नीर इक धारी रे ॥ लखिलखि जनक सुनैना हर्षत, श्रीनिधि हर्ष अपारी रे । "हर्षण" सुख की सरित बहत नित, मज्जहिं पुर नर नारी रे ॥ ४२ ॥ भगिनि भवन जब जावत भैया । द्वार आय भेंटति अनुरागी, सिया सुभग सुख दैया ॥ मिलनि प्रीति किमि कहैं कवी कोउ, मन बाणी नहिं जैया । चन्दन चर्चि सुमाल पिन्हावति, निजकर गुथी सुहइया ॥ पान गन्ध दै मंगल गावति, सखिन सहित पुलकइया श्रीनिधि अंक बिठाय प्यारि बहु, देत भेंट बहुतइया ॥ कथा-कहानी सुखद सुनावत, आनँन अतिहिं अघैया । "हर्षण" भगिनी भ्रात परस्पर, लखि लखि नेह नहइया ॥ ४३ ॥ सखिन घर कबहुँ जात सिय प्यारी । ऊँच नीच को भेद भुलाई, सबको करति सुखारी ॥ सर्वेश्वरि जग जीवन दानी, रूप शील उजियारी । "गुनशीला" परतन्त्र प्रेम के जीवन मूरि हमारी ॥ ४४ ॥

इस प्रकार कुछ समय बीतने पर श्रीकिशोरी जी को अपने प्राणधन जीवन सर्वस्व श्रीसाकेतनाथ की स्मृति आ गई । अपने हाथ से वस्त्र की मूर्ति बनाकर अपने कक्ष

में एकान्त पाकर पूजन करके ध्यान में प्रियतम से भेंट करने लगीं । पद :—पूजति सिय साकेत बिहारी, पराधाम को रूप सम्हारी । बैठ विविक्ते यदपि बालिका, ध्यान मगन दृग अँसुअन धारी ॥ जाय जननि अरु जनक विलोके, बस्त्र विनिर्मित मूरति प्यारी । सियहिं जगाय गोद लै बोले, सुन्दर विग्रह तव सुखकारी ॥ पूजन हित बनवैहैं लाड़िलि, जस रुचि होवै हिया तिहारी । अस कहि तुरत मूर्ति बनवाई, नीलमणी की सिय मत पारी ॥ सोई लगी पूजिवे चित दै, प्रेमपगी हिय हर्ष अपारी । "हर्षण" हियको भाव धन्य धनि, धनि धनि निमकुल की उजियारी ॥ ४५ ॥ सिय के सदन उछाह भर्‌यो री । भैया द्वितिया आज अनूपम,भ्रात निमन्त्रण लली कर्‌योरी ॥ विविध भाँति ब्यंजन बनवाई,परुसि जिमावत यत्न चर्‌यो री । परुसनिचलनि मधुर मधु बोलनि,सुधा सरिस शुचिअन्न धर्‌यो री ॥ लक्ष्मीनिधिपावत, अनुरागे नवल नेह दृग झरनि झर्‌योरी । अवर लेहिं यह आपहिं योगू, कहति सिया भल भाव ढर्‌योरी ॥ भ्रात भगिनि सुख सिन्धु समाये, निरखत सबके, मनहिं हर्‌यो री । "हर्षण" सुमिरि दुहुँन की प्रीतीं, चहत अबहिं भव सिन्धु तर्‌यो री ॥ ४६ ॥

कार्तिक शुक्ल भैया दुइज को श्रीकिशोरीजी ने अपने अग्रज श्रीलक्ष्मीनिधि को निमन्त्रण दिया, अपनी सखियों के साथ उमंग में भरकर नाना प्रकार व्यंजन पकवान बनवाये, और अपने हाथ से परस परसकर भैयाज को भोजन करवाया, पश्चात भैया जी से कहा कि—पद–आज नेग मनमानी लहौंगी । भैया देन कहहिं तो सुनिबो, उर उमंग जो उठति कहौंगी ॥ वस्त्राभूषण देय भोराई सोन चली चित चाह चहौंगी । सुनि सिय बैन मधुर मुसुकाई, बन्धु कह्यो हिय बस्तु गहौंगी ॥ मुख प्रसन्न लक्ष्मीनिधि अनुजा, बोली तब बिन कछु न चहौंगी । गोद बिठाय प्यार नित मोकहँ, देत रहहु सुख सुधा सनौंगी ॥ सुनि सुखमानि नेह भरि नयनन, अग्रज कहेउ तुमहिं निबहौंगी । "हर्षण" पुनि दै बस्त्र विभूषण, चूमि मुखहिं कह हृदय रहौंगी ॥ ४७ ॥ इस प्रकार सुखमय कुछ समय बीत गया, तब एक बार व्योम वीथियों विचरते हुये में बिचरते हुये देवऋषि श्रीनारद जी श्रीमिथिलेश जी के महल में पधारे, माता श्रीसुनैनाजी समेत श्रीजनकजी ने श्रीनारद जी का स्वागत सत्कार किया, श्रीनारदजी ने श्रीरामजन्म से बधाई उत्सव बाललीला का गान किया जिसे सुनकर श्रीमैथिली जू को प्रियतम की प्रगाढ़तम स्मृति जग गई, किन्तु शील संकोच के कारण अपने भाव को किसी से व्यक्त नहीं किया । किसी दिन माता सुनैनाजी किसी कार्य में व्यस्त थीं समयाभाव होने के कारण स्वयं शिवधनुष पूजन करने नहीं जा सकीं, श्रीकिशोरी जी को सखियों समेत भेज दिये, कि आज हमें समय नहीं है, आपही शिव धनुष पूजनकर आओ । श्रीकिशोरीजी ने अपने समाज समेत जाकर सादर सप्रेम धनुष का पूजन किया, और समाज समेत परिक्रमा करने लगीं । तब श्रीमैथिलीजू की सारी का छोर धनुष की नोक में फँस गया, परिक्रमा में संलग्नचित श्रीकिशोरीजी ने नहीं जान पाया कि हमारो सारी का छोर धनुष में अरुझ गया है ।

परिणामतः धनुष भी चारों ओर घूमने लगा, सखियों ने देखा तो श्रीकिशोरी जू को रोक कर सारी को धनुष से अलग किया, सभी के मन में भय लगने लगा कि कहीं शंकरजी अप्रसन्न न हो जायें। पुनः जब सखियों समेत श्रीमैथिली जू माताजी के पास आईं, तब सखियों के मुख से शिव धनुष का घूमना सुनकर माता श्रीसुनैनाजी एवं श्रीविदेहजी को आश्चर्य होने लगा कि ऐसा कैसे हो गया। पश्चात् महाराज ने स्वयं देखा तो बात सत्य थी, तब श्रीविदेहजी के मन में विचार उठने लगे कि—जिन श्रीजानकी जी की सारी में उलझकर धनुष कई बार घूम गया, जो धनुष किसी बलवान से भी नहीं उठता है। यह प्रसंग इस प्रकार भी सुना गया है कि माताजी की आज्ञा से श्रीकिशोरी जू जब धनुष पूजने गईं तो देखा कि चारों ओर भूमि तो स्वच्छ है, किन्तु धनुष के नीचे धूल जमी है, उसमें घास जम गई है। श्रीकिशोरीजी ने बायें हाथ से धनुष को उठाकर दाहिने हाथ से नीचे की भूमि स्वच्छ करके चौका लगा दिया। और जब सखियों द्वारा श्री-विदेहजी को विदित हुआ कि आज श्रीकिशोरी जी ने धनुष को बाँयें हाथ से उठाकर वहाँ चौका लगा दिया है। तब श्रीविदेहजी के पूछने पर श्रीकिशोरी जी ने कहा कि—

कवित्त—दाऊ आज अम्ब की सुआयसु लहि मुदित हृदय, गई उत जहाँ धनुष धरेउ बिशाल। देखी सब भूमि स्वच्छ परम प्रकाशमान, धनुष के तरे किन्तु धूरि त्रण जाल है॥ एक हाथ सों उठाय स्वच्छ करि आई तहाँ, कीन्हों सविधि पूजन मैं धूप दीप माल है। चलिये भला देखिये सुठौर रमणीक अति तात अब जात सुखदाई सब काल है॥

वार्ता—हे पिताजी! मैं आज माताजी की आज्ञा से जहाँ धनुष रखा हुआ है, वहाँ चौका लगाने गई, तो मैंने देखा कि चारों ओर सब भूमि स्वच्छ है। किन्तु धनुष के नीचे धूल में बहुत घास जमी है। मैंने एक हाथ से धनुष को उठाकर धनुष के नीचे से धूल और घास को हटाकर चौका लगा दिया, और धूप दीप नैवेद्य माला फूल चन्दन इत्यादि से सविधि धनुष का पूजन भी कर दिया है। चलिये भला देखिये तो अब वहाँ कितना अच्छा लगता है। श्रीकिशोरीजू के बचनों को सुनकर महाराज मन ही मन सोचने लगे कि जो धनुष हमारे यहाँ कई पीढ़ी से रक्खा है। किन्तु आज तक जहाँ शंकरजी रख गये थे वहीं धरा है। कोई वीर भी नहीं उठा पाता है। उसी धनुष को श्रीकिशोरीजू ने बाँयें हाथ से उठा लिया है। तब इनके समान बलवान योग्य बर कहाँ और कैसे मिलेगा। लोक की मर्यादा है कि वर कन्या से सब प्रकार श्रेष्ठ होना चाहिये। श्रीविदेहजी इसी विचार में मग्न होकर भगवान् शंकरजीके मन्दिर में जाकर ध्यान करने लगे:-ध्यान बीच शिव आयसु दीनो। मम पिनाक जो तव गृह राजत। ताकर भेद सुनहु सुप्रवीनो॥ सो केवल वर ब्रह्म बुलावन, अन्य हेतु नहिं चित्तहिं चीनो। धनुर्यज्ञ साधहु निमि भूषण, करि प्रण यथा कहहु सुख भीनो॥ तोरै जो कोइ चाप विशाला, लहहिं

सिया जय कीर्ति सुखीनो । इष्टदेव मम यहि मिस आई, व्यहि हैं अली अवस रस भीनो ॥ चिन्ताहरणि प्रणमि चितचिन्ता, देहैं आनन्द तुमहिं बलीनो । "हर्षण" जागि भूप हिय हर्षेउ, शम्भु सुआयु शिर धरि कीनो ॥ ४८ ॥ वार्ता—ध्यान से उपराम होने पर सभा में आकर गुरुदेव जी से श्रीकिशोरीजी का धनुष उठाना, अपने मन की चिन्ता, और ध्यान में भगवान् शंकरजी की आज्ञा सुनाई। तब श्री याज्ञवल्कि जी तथा अन्य महर्षि एवं ब्राह्मणों ने कहा कि राजन् ! आप भगवान् शंकरजी की आज्ञा का अवश्य पालन करिये, शंकरजी की कृपा से कुछ भी हानि नहीं होगी, सब ठीक होगा। आप शुभ दिन सोधकर धनुषयज्ञ प्रारम्भ कर दीजिये। श्रीगुरुदेवजी एवं ब्राह्मणों की आज्ञा से श्रीजनक जी ने धनुषयज्ञ की तैयारी करने की आज्ञा मन्त्री और सेवकों को दे दी। मन्त्रियों के विचार से धनुषयज्ञ की तैयारी होने लगी। समस्त जनकपुर में बिजली की भाँति यह समाचार व्याप्त हो गया। श्रीलक्ष्मीनिधिजी अपने अन्तःपुर में एकान्त में श्रीसिद्धिजी से बोले कि मेरे विचार से तो यदि महाराज श्रीदशरथजी के आँगन में खेलने वाले श्रीराम जी के साथ श्रीकिशोरीजी का व्याह हो जाय तो, हम लोगों का जीवन कृतार्थ हो जाये। श्रीरामजी के अतिरिक्त श्रीकिशोरीजी के योग्य दूसरा वर मेरी समझ में तो संसार में कहीं नहीं है। प्रिये मुझे स्वप्न में भगवान् शंकरजी ने ठीक कहा है कि— मेरे इष्टदेव श्रीरामजी आपके बहनोई होंगे। प्रिये मेरा यह स्वप्न अवश्य ही सत्य होगा। अपने मन में मनोरथ करते हैं कि—[पद]—दरश कब दैहो राजकिशोर। कोटि काम कमनीय माधुरी, श्यामबरण चितचोर ॥ कब मम हृदय लपटि अति हित सों, मृदु हँसि दृग दृग जोर। हे "गुणशील" स्वरूप उजागर, करि दैहो रस बोर ॥ ४९ ॥ पुनः कहने लगे कि प्रिये ! मैंने यह भी स्वप्न में देखा कि—

दो०-कौशिक मुनि के संग में, रामलखन दोउ भाइ। आये मिथिला देश में लखत नगर हर्षाइ ॥ ॥ प्रेम सहित हम से मिले, अति अपनत्व जनाइ। मृदु हँसि बोलनि मिलनि अरु, भाव न वरणि सिराइ ॥ ॥ फिर कहने लगे कि—इस समय श्री-मिथिलाजी के समान कोई भी भाग्यशाली नहीं है। जहाँ आदि शक्ति प्रगट हुई हैं अस्तु यहाँ की महिमा कौन कह सकता है ॥ श्रीविदेहजी ने धनुर्यज्ञ की तैयारी करवाकर सभी देशों में डुग्गी ...... पिटवा दी कि जो कोई भी वीर भगवान् शंकर जी के धनुष को उठाकर प्रत्यन्चा चढ़ाये और धनुष का खन्डन करेगा। उसीको श्रीजानकी अर्पण की जावेंगी। यह समाचार सुनकर अनेक देशों के राजा राजकुमार तथा राजकुमारों के वेष में देवता दैत्य भी आने लगे। श्रीजनकजी की ओर से सभी आगन्तुकों को समुचित प्रकार से सुविधायें दी गईं ॥ अनेक वीर नित्य आते थे। धनुष उठाते थे, धनुष न उठने पर पछताते हुये लौट जाते थे। श्रीजनकजी का संकल्प था कि एक वर्ष तक धनुर्यज्ञ होगा। इसी अवधि में जो वीर धनुष को तोड़ेगा, उसी के साथ मैथिली का पाणिग्रहण होगा।

इधर श्रीअवध में श्रीरामजी बाललीला कर रहे हैं। शैशवावस्था से चरित्र पर ध्यान दीजियेगा। उसके पूर्व श्रीहनुमानजी की बधाई के पदों का रसास्वादन किया जाये।

❀ श्रीहनुमत जन्म बधाई मंगल पद ❀

परम सोहाई बजत बधाई। मंगल मूरति हनुमत प्रगटे, आज महामंगल जग माई॥ मंगल कपिकुल सकल सुजन सुख, मंगल अंजनि कोखि सोहाई। 'कृपानिवास' सुमंगल गावत, भक्ति निछावरि बहु बिधि पाई॥ १॥ आज केशरी भवन बधाई। शुभ लक्षण सुन्दर सुत जायो, बड़ भागिनि भइ अंजनि माई॥ बृद्ध बधू सब जुरि मिलि आईं, यथा योग्य कुल रीति कराईं। दान मान विप्रन को दीनो, मणि मुक्ता पट भूषणताई॥ मृगनयनी कल कोकिल बयनी, करि शृँगार बैठी अँगनाई। नाम केशरी सुवन अंजनी, गारी गावत परम सोहाई॥ ध्वज पताक तोरण मणिजाला, द्वारन बन्दनवार बँधाई। 'श्रीमतिशरण' करन नवमंगल, जयति जयति सब सुरन मनाई॥ २॥ हिय उमगि उमगि हर्षाय बधाई गावो री। श्रीअंजनि गृह जन्म लियो है, श्रीकपिवर कपिराय॥ मंगल दिन ग्रह लगन सुखावी. मंगल गृह गृह छाय। मंगल कार्तिक मास रास रस, मंगल चौदसि भाय॥ मंगल मूरति आप प्रगट भइ, श्रीसियवर हित आय। मिट्यो अमंगल मूल शूल जन, लंक शंक अकुलाय॥ सुर सुरतिय हिय हरषि सुमनचय, गगन मगन झरिलाय। "युगल विहारिन अवध महल सिय, बाजत आनन्द बधाय॥ ३॥ कार्तिक मास असित तिथि चौदसि, श्रीहनुमत अवतार लियो। केशरि नन्दन जन मन रंजन, सजि सुख सबहिं दियो॥ शीतल मन्द सुगन्ध पवन चलि, मेघन छाँह कियो। बर्षत पुष्प माल इन्द्रादिक, जय धुनि शब्द कियो॥ नाचति नभ अप्सरा मुदित मन, प्रेम पियूष पियो। चौदह भुवन चराचर दशदिशि, आनन्द हुलसि हियो॥ लंक शंक आनन्द देवगन, जीवन सबहिं जियो। 'लालमणी' भवउदधि मगन लखि, बूड़त काढ़ि लियो॥ ३॥

रेखता पद—बधाई मारुती गावैं। सुमन की माल वर्षावैं। उमा ब्रह्मानि इन्द्रानी। रमादिक गान सुर ठानी॥ बीणा मृदंग सारंगी। विष्णु बिधि शिव बहूरंगी॥ गान की तान झरि लावैं। नृत्य को भेद दरशावैं उमगि चले प्रेम सागर से, रसिक हनुमान नागर से॥ कृपा प्रभु दास पर कीजै। 'लाल' को भक्ति बर दीजै॥५॥ रेखता पद-चलो घर केशरी कपि के। बधाई गाइये कसि के॥ नचाइये नाचिये सजि के। लुटाइये मोतियाँ गुथिके॥ कलश ध्वजा बन्द पुर सोहैं। देखि सब देव गण मोहैं॥ भाग सम अंजनी को है। नेत्र भरि बाल मुख जोहै॥ मोद भरि गोद दुलरावैं। जनम को लाभ लुटि पावैं॥ 'लालमणि' भक्तिबर पावैं। लाल को जन्म यश गावैं॥६॥ अञ्जनि लालन गोद खिलावैं॥ मूरति मोंद विनोद करन प्रिय, हियलावैं हलरावैं। नानाभाँति चरित रघुपतिके, जननी अति-हित गावैं॥ रामनाम अभिराम काम प्रद, सुनि अँग अँग उमगावैं। आनन सम आनन न

आनकहुँ, चतुरानन सकुचावैं ॥ त्रिभुवन के दुख दवन रवन सिय, अति प्रीतम श्रुति गावै। 'रामवल्लभाशरण' चरण नित, भक्ति अभय वर पावै ॥ ७॥ जियै सुत तेरो केशरि रानी ॥ होय सपूत दूत सियवर को, राम रसिक रस सानी । युग युग अलच चलै जग कीरति, जब लगि सुरसरि पानी ॥ सुर बनितादि अशीषत अंजनि, सुनि मन मुदित जुड़ानी । 'बिक्रमबली' मधुर विपुलाई, होय न कबहूँ हानी ॥ ८ ॥

आरती पद:-आरति हनुमत पवन कुँवर की । रसिक अनन्य रामव्रत धरकी॥ सियपति भक्ति सदन सुखसागर । युगल उपासक रस गुणनागर ॥ परम उदार कृपाकी मूरति । शरण सुखद मन बाञ्छित पूरति ॥ मधुर महारस ईश्वर तापर । त्रिगुण पारतम महामहेश्वर ॥ निगमचारि षट कीरति गावैं । ज्ञान योग जप पार न पावैं ॥ कनक वरन तन तेज बिराजै । अद्भुत छबि त्रिभुवन पर छाजै । अवध महल सुख के अधिकारी। प्रेम प्रबाह प्रगत उपकारी ॥ बिधि हरिहर सुर मुनि जन जेते । करत आरती हरष समेते ॥ उमा रमा शचि शक्ति भारती । राम सुजन सब करत आरती ॥ जगत ज्योति जग तिमिर बिहंडन । श्रीहनुमान प्रान सुख मंडन ॥ बाजैं राग रागिनी जहँ लों। पद नूपुर ते प्रगट तहाँ लों । जो यह आरति हिय नित गावैं । रंग महल बसि रसिक कहावैं। समुझि लहैं ते परम उपासी । राम सिया सुख रहत बिलासी ॥ 'कृपानिवास' आरती गाई । रीझि कृपाकरि निकट बसाई ॥ ९ ॥ जन्म समय का पद--प्रगटे जग मंगल लोचन पिंगल शालि वरन अनुहारी । पद करतल लोने सारस सोने आनन रवि छबिहारी ॥ प्रवसति लखि नन्दन पूरि अनन्दन पवन सुमन झरिकारी । पारस इव रंका लै निज अंका पय प्यावति महतारी ॥ चूमैं चुचुकारैं हरषि दुलारैं हिय लावैं हलराई । अंजनि मन-रंजन सुकृत प्रभंजन केशरि कपि सुखदाई ॥ होइहैं सब लायक जगयश छायक रघुनायक मन भाई । सियपिय पद सँगहि 'मणिरखरंगहिं' प्रेम उमंग लगाई ॥ १० ॥

सीताराम प्रेम रस पागे भक्त सुखद वर परम उदार । भक्त सुखद वर परम उदार पवनसुत सन्तन प्राणाधार । मातु अंजनी गोद खिलौना, श्रीकेशरी केर प्रिय छौना, रूप शील गुणनिधि छबि भौना, मूरति मंजुल मधुर मनोहर मुनिमन सुखदातार ॥ सीता-राम०॥ सहजहि कोटिन खल मद मर्दक, सीताराम प्रेम रस बर्धक, रसिकन हिय रस रीति विवर्धक, ध्यावत सीताराम रूप हिय भरे परम उद्गार ॥ सीताराम चरित कोइ गावत, तहाँ स्वयं हनुमत चलि जावत, हाथ जोरि तेहि शीश झुकावत । सुनत सुधा ते सरस स्वच्छ सुठि सुयश भरे अति प्यार ॥ जो जन सीताराम सुनावत, तापर अतिसय प्रेम बढ़ावत, स्वयं सतत सियवर यश गावत । पागे प्रेम पियूष परम प्रिय पावन पवन कुमार ॥ सन्तत सीताराम दुलारे, जिनहिं लखत प्रभु होत सुखारे निर्मल सुयश भुवन विस्तारे । सकल देव नर मुनि यश गावत बोलत जय जयकार ॥ जो सियराम चरित्र सुनावै, हनुमत कृपा सकल फल पावै, ताको नहिं दुख द्वन्द सतावै । पावै सीताराम प्रेम

रस हो भवनिधि से पार ॥ हनुमत कृपा कोर बिन पाये, रति रस रीति न उर में आये, करि जप जोग शरीर सुखाये । आगम निगम भनित बहु साधन करत न पावै पार ॥ हे श्रीसीतापति प्रिय दासा सन्तत सेवत भरे हुलासा, कीजै मम हिय माहिं प्रकाशा । "सीता शरण" कृपा करि दीजै मेरी ओर निहार ॥ सीताराम० ॥ जयति सियराम को प्यारे, दुलारे श्रीपवन नन्दन । सन्त सुख प्रद सतत मंजुल मधुर मूरति पवननन्दन ॥ सकल गुणशील शोभाधाम, अति अभिराम ज्ञान सुघन । अनूपम रूप प्रेम पगे, कोटि मन्मथ सुमद मर्दन । मातु अंजनि के दृग तारे, किये शिशु चरित मनहारे । कुतूहल बश भातु भच्छेउ, पढ़े श्रुति शास्त्र सुकुमारे ॥ कीन सुग्रीव की रक्षा, कराई भेंट रघुबर से । बनाकर मित्र सियवर का, दिलायो राज छविधर से । गये प्रमुदित हृदय लंका, विभीषण से मिले जाकर । सुनायो शीलगुण प्रभु के, भक्तवात्सल्य निधि रघुबर ॥ निकट श्रीजानकी के जा, चरित रघुवीर के गाये । मिटाये ताप सिय हिय के, बिमल बरदान बहु पाये ॥ कियो बन ध्वंश रावण को, अनेकन वीर भट मारे । घटायो गर्व दशमुख को, मुदित लंका नगर जारे ॥ गये सन्देश लै सियका सुनायो जाय रघुवर को । लगायो कण्ठ हँसि प्रभु ने खिलायो कमल तब उर को ॥ भयो जब युद्ध लंका में, बिपुल खल दल समर मारे । बचाये प्राण लक्ष्मण के करत सुर सन्त जयकारे ॥ दशानन बध विजय रघुवीर की, सिया को सुनाई जब । भई श्रीमैथिली प्रमुदित, सुआशिरबाद दीनो तब ॥ कराई भेंट प्रभु सिय की, सँदेशा भरत को दीना । मिटाये सोच सब हिय के, चरित वर्णन सकल कीना ॥ भये सीतारमण राजा, पुजारी नित बने हनुमत । कृपाकी कोर लहि "सीताशरण" कर जोरि नित विनवत ॥१२॥

आरति अंजनि लाल की कीजै । मूरति मधुर निरखि सुख लीजै ॥ सीताराम प्रेम रस पागे, जपत नाम हिय अति अनुरागे, सुमन वृष्टि प्रमुदित मन कीजै ॥ आरति करिये हिय उमगाई, अनूपम छबि निज दृगन बसाई, निशिदिन परम प्रेम रस भीजै ॥ श्रीहनुमान आरती गाई पावत सुख सुरमुनि समुदाई, "सीताशरण" प्रेम रस पीजै ॥ आरति० ॥ १३ ॥ आरती अंजनि लाला की । भक्तवर रूप रसाल की ॥ पवन सुत भक्तन हितकारी, मनोहर मूरति अति प्यारी । सतत सन्तन प्रतिपाला की ॥आरती०॥ सर्वदा सुमिरत सीताराम, हृदय में ध्यावत सुषमाधाम । अरुणतन नैन विशाला की ॥ सुनावत जो सियराम चरित्र, करत वाको हिय परम पवित्र । जयति जय दीनदयाला की ॥ सुनावै जो कोइ सीताराम, देत वाके मन अति अभिराम । सुहृदतम परम कृपाला की ॥ कथामृत पीवत अति सुख पाय, जोरि दोनोंकर शीश झुकाय । प्रेम पगि प्रभु जगपाला की ॥ हृदय बिच हुलसत सिय रघुवीर, कृपा करि हरत स्वजन भवभीर । हरन सब बिधि जग-जाला की ॥ सौम्य अति मूरति सुखकारी, हृदय बिच विहरत धनुधारी । मोद मंदिर छबिजाला की ॥ सुछबि लखि "सीताशरण" सिहाय, सुमन बर्षावत आनँद पाय । जयति जय कहि सुरपाला की ॥ आरती० ॥

❀ जगतगुरु अनन्त श्रीस्वामी रामानन्दाचार्यजी के बधाईपद ❀

आज परममंगल द्विजवर घर हरि नर को अवतार लिये। माघ मास शुचि पाख अशित तिथि, सातैं चित्रा नखत भये ॥ कुम्भ लग्न शुभासिद्धि योग ग्रह, वार विमल अनुकूल भये ॥ सुनि सुत जन्म भूरि कर्मा तब, सकल याचकन दान दये ॥ जात कर्म करि महामुदितमन, गुरुकुल बृद्धन चरन नये। भाग निधान प्रयाग निवासी, सब आये अनुराग रये ॥ मंगल थार गहे तिनकी तिय, आईं उरन उछाह छये। लखि सुन्दर सुत न्यौछावरि करि, समय सोहावन गान ठये ॥ बजत बधावन नचहिं नागरी, अंगन भाव देखाय नये। कहि न जात तेहि अवसर को सुख, सबके सब दुख बिसरि गये ॥ तब कैसे अजहूँ विचरहिं जे, आचारज उत्सव नितये। ते तरिहैं "रसरंगमणी" भव, रामानन्द कृपा चितये ॥ १ ॥ पद रेखता—बधाई गाइये प्यारी। जन्म आचार्य सुखकारी ॥ भनै को भाग द्विजवर को। लुटावैं सम्पदा घर को ॥ चलीं सब प्राग की नारी। सजे मंगल लिये थारी ॥ लखैं शिशू सोहिलो गावैं। सबै सन्मान सुख पावैं। दुवारे नौबतैं बाजैं नचैं तिय त्यागि कै लाजैं ॥ पुरोहित कुण्डली साधैं। करैं नन्दी मुखीं आधैं ॥ गगन ते सुर सुमन बरषैं। धरम रक्षक समुझि हरषैं ॥ हरी अवतार आरामी। श्रीरामानन्द गुरु स्वामी ॥ मन्त्र तारक सुगम मग से। उधारे जीव कलियुग से ॥ अजहुँ उत्सव जनम दिनको। रचैं जे धन्य है तिनको ॥ गहे प्रभु सम्पदा शरणैं। सुयश 'रसरंगमणि' बरणैं ॥२

आचारज को जन्ममहोत्सव, गावत सन्त बधाई ॥ माघ पाख दिन तिथी नखत ग्रह, मंगल साज सजाई। बन्दनवार वितान कलश ध्वध, मोतियन चौक पुराई ॥ नाचैं गावैं रस उपजावैं, बाजै विविध बजाई। राग रागिनी छाय रह्यो है, आनन्द हिय उमगाई ॥ नभ बिमान सुर थकित रहे हैं, सुमनमाल बरषाई। बन्दी मागध सूत सु जाँचक बरणत गुण सुघराई ॥ दान मान न्युछावरि अगणित, पावत सबहिं अघाई। केलि कोलाहल कौतुक देखत, देह दशा बिसराई ॥ कबहुँ पालने झूलत किलकत, गावति मंगल माई। चिरजीवैं श्री सतगुरु प्यारे "प्रेम मोद" मन भाई ॥ ३ ॥ प्रगटे सुखसार आचारज हितकारी। महिना माघ को पावन, परम मन भावन, सनेह बढ़ावन। हरने महिभार आचारज हितकारी ॥ सातैं अशित पख आई, सन्त सुखदाई, लगन भल पाई। दिन मंगलवार आजारज हितकारी ॥ प्रमुदित प्रयाग निवासी, हृदय में हुलासी, दास अरु दासी। भरे अति उदगार आचारज हितकारी ॥ हरषित बधाई गावैं, सुबाद्य बजावैं, नटत सुख पावैं। पुरजन भरि प्यार आचारज हितकारी ॥ सुन्दर चौक पुरवाई, कलश धरवाई, सुदीप जलाई। गावैं मंगलचार आचारज हितकारी ॥ सुरगन स्वर्ग ते आये, सुवाद्य बजाये, सुमन बरषाये। कहि जय जयकार आचारज हितकारी ॥ माता पिता हरषवैं, सुदान लुटावैं, परम सुख पावैं। को कहि लहै पार आचारज हितकारी ॥ द्विज गण सुवेद सुनावैं, सुकृत्य करावैं, गोद मन पावैं॥ लहिदान अपार आचार हितकारी ॥

"सीताशरण" उमगाई, बधाई गाई, सनेह समाई । सन्तत बलिहार आचारज हित-कारी ॥ प्रभु की बधाई गावै, जनम फल पावै, सजन घर जावै । हो भवनिधि पार आचारज हितकारी ॥ ४ ॥

सोहर पद—श्रीसतगुरु सुखसागर परम उजागर हो। ललना प्रगटे जगहित हेतु सुक्षिति नवनागर हो॥ जोग लगन ग्रह बार नखत भल सोहै हो । ललना-मास पाख छबिखानि देखि मन मोहै हो॥ बाजन लागि बधाई सुपरम सोहाई हो। ललना-नाचैं गावैं राग तान नभ छाई हो ॥ देव बिमानन आइ निशान बजावैं हो। ललना-जय जयकार सुनाय सुमन झरि लावैं हो। तात मात हिय हरष न कछु कहि आवै हो। ललना निरखि निरखि सुत बदन सुभाग मनावैं हो ॥ जो यह सोहिलो गावहिं हिय हुमगावहिं हो। ललना-श्रीसद्गुरुढिग वास रूप निज पावहिं हो॥ श्रीसद्गुरु पद कमल भक्ति मन भावनि हो । ललना "प्रेम मोद" रस खानि भाव सुख छावनि हो ॥ अब पाठक गण पुनः श्रीराम जी के बाल चरित्र से लगातार ब्याह पर्यंत लीला का रसा-स्वादन करें :—

श्रीरामजी का बालचरित्र :--चौ०:-एक बार जननी अन्हवाए। करि सिंगार पलना पौढ़ाये ॥ निज कुल इष्टदेव भगवाना। पूजाहेतु कीन स्नाना ॥ करि पूजा नैवेद्य चढ़वा। आप गई जहँ पाक बनावा ॥ बहुरि मातु तहवाँ चलि आई । भोजन करत दीख सुत जाई ॥

इस आश्चर्यमयि लीला को देखकर माताजी डरती हुई बालक रूप श्रीरामजी के पास गईं, तो देखा कि श्रीरामजी सो रहे हैं । पुनः आकर देखा तो वही बालक मन्दिर में भोजन पा रहा है, जो पलना में सो रहा है। इहाँ मन्दिर में और वहाँ पलना में एक समान दो बालक देखकर हृदय काँपता है, मन में धैर्य नहीं होता। माताजी मन में सोचती हैं कि मेरी बुद्धि में भ्रम हो गया है, अथवा कोई विशेष कारण (देवमाया) है माताजी की ऐसी विचित्र स्थिति देखकर श्रीरामजी मन्द मन्द मुसुकाने लगे। और दो०-देखरावा मातहिं निज अद्भुत रूप अखंड। रोम रोम प्रति लागे कोटि कोटि ब्रह्मण्ड ॥ माताजी ने श्रीरामजी के विराटरूप में अनेक सूर्य चन्द्र शिव ब्रह्मा इत्यादि देवता तथा अनेक पर्वत नदी समुद्र पृथ्वी बन काल कर्म गुन ज्ञान सुभाउ को देखा और—देखी माया सब विधि गाढ़ी। अति सभीत जोरे कर ठाढ़ी ॥ देखा जीव नचावै ताही । देखी भगति जो छोरै ताही ॥ तन पुलकित मुख बचन न आवा। नयन मूदि चरणन शिर-नावा॥ विसमयवन्त देखि महतारी । भये बहुरि शिशु रूप खरारी ॥ स्तुति करि न जाय भय माना । जगत पिता मैं सुत करि जाना ॥

जब माताजी ने कहा कि मैंने जगतपिता को अपना पुत्र करके समझा, तब श्रीरामजी ने कहा कि—हे माताजी ! यह बात कि-मैं जगत पिता हूँ, कभी भी किसी से

नहीं कहना । मैं तो आपका बालक हूँ। आप मेरी माता हैं । किन्तु माताजी तो विराट रूप देख चुकी थीं इसलिये, बार-बार कौशिल्या बिनय करै कर जोरि। अब जनि कबहूँ ब्यापै प्रभु मोहिं माया तोरि॥ जब श्रीरामजी ने कहा कि हे माता जी आप कभी भी किसी से न कहना कि हमारे पुत्र जगतपिता हैं, तब माताजी ने कहा कि मैं न कहूँगी। किन्तु आज से आप भी अपनी माया का विस्तार (विराट रूप) नहीं दिखाइयेगा। यदि आप इसी प्रकार हमें बार-बार विराट रूप दिखलायेंगे, तो मैं भी सबसे कहूँगी कि हमारे लालजी बड़े जादूगर हैं। कभी अनेक रूप हो जाते हैं। कभी बालक बन जाते हैं। कभी बड़े हो जाते हैं। तब श्रीरामजी ने कहा कि—

कवित्त—अंशकला औ विभूति भोग ना चढ़ाति मोहिं, प्रथम खवावै फेरि मोहिं को खवावै तू। ऐसी अनुचित फेरि कबहूँ न करीजै मातु, कबहूँ यह बात नहिं और को जनावै तू॥ रँग श्री हमारे जो प्रथम अनादि अंश, अक्षत हमारी कला और को ध्यावै तू। ना तो हम प्रथम ही जूठो करि दइहौं भोग, मेरे ही में रंग जू को देखि ना भुलावै तू॥

श्रीरामजी ने कहा कि—हे माताजी ! आप मेरी ही कला अंश रूप श्रीरंगनाथ जी इत्यादि को प्रथम भोग लगाकर तब वहीं प्रसाद मुझे पवाती हो । यह अनुचित है । ऐसा कभी भी नहीं करना, और मेरा विराट रूप दिखलाना भी किसी को नहीं बतलाना तदुपरान्त माताजी पुनः प्रभु के माधुर्य भाव विभोर वात्सल्य रस का रसास्वादन करने लगीं। श्रीरामजी कुछ बड़े हुये, तब चारों भाई आँगन में घुटुरुअन चलते हुये खेलने लगे ॥ गीतावली पद नं० ३६ ॥ भूमितल भूपके बड़भाग । रामलखन रिपु दवन भरत शिशु, निरखत अति अनुराग॥ बाल विभूषण लसत पायँ मृदु, मंजुल अंग विभाग । दशरथ सुकृत मनोहर विरवनि रूप करह जनुलाग ॥ राजमराल बिराजत बिहरत, जे हर हृदय तड़ाग । ते नृप अजिर जानु कर धावत, धरन चटक चल काग ॥ सिद्ध सिहात सराहत मुनिगन, कहैं सुर किन्नर नाग । 'ह्वै वरु बिहंग त्रिलोकिय बालक, बसि पुर उपबन बाग ॥ परिजन सहित राय रानिन कियो मज्जन प्रेम प्रयाग । "तुलसी" फलताके चार्यो मनि, मरकत पंकज राग ।४०। इस प्रकार मंगलमयि लीलाकरते हुये श्रीरामजी कुछ और बड़े हुए, माताजी अंगुली पकड़कर चलाना सिखाती हैं। गीतावली पद नं० ३२ – ललित सुतहिं लालति सचु पाये । कौसल्या कल कनकअजिर महँ खिखवति चलन अँगुरियाँ लाये॥ कटि किंकिणी पैजनी पाँयनि बाजति रुनझुन मधुर रेंगाए । पहुँची करनि कण्ठ कठुला बन्यो, केहरि नख मनि जरति जराये॥ पीतपुनीत विचित्र झँगुलिया, सोहति श्याम शरीर सोहाये । दतियाँ द्वै द्वै मनोहर मुख छवि, अरुणअधर चितलेत चोराये ॥ चिबुक कपोल नासिका सुन्दर,भाल तिलक मसिबिन्दुबनाये। राजत नयन मंजु अंजनयुत,खंजन कंज मन मदनाये ॥ लटकन चारु भृकुटिया टेढ़ी, मेढ़ी सुभग सुदेश सुभाये। किलकि किलकि नाचत

चुटकी सुमि, डरपति जननि पानि छुटकाये ।। गिरि घुटु सवन टेकि उठि अनुजनि तोतरि बोलति पूप देखाये। बालकेलि अवलोकि मातु सब, मुदित मगन आनँद न अमाये ।। देखत नभ घनओट चरित मुनि, जोग समाधि विराति विसराबे । तुलसिदास जे रसिक न यह रस, ते नर जड़ जीवत जग जाये ।। ४२ ।। भगवान् श्रीरामजी की बालक रूप की झाँकी कवितावली पद नं० २, ३, ४, ५ सवैया –

पग नूपुर औ पहुँची कर कंजनि मंजु बनी मणिमाल हिये ।
नव नील कलेवर पीत झँगा झलकै पुलकैं नृप गोद लिये ।।
अरविन्द सो आनन रूप मरन्द अनन्दित लोचन भृंग पिये ।
मन में न बस्यो अस बालक जौं तुलसी जग में फल कौन जिये ।।१।।
तन की दुति श्याम सरोरुह लोचन कंज की कोमलताई हरैं ।
अति सुन्दर सोहत धूरि भरे छवि भूरि अनंग की दूरि करैं ।।
दमकें दतियाँ दुति दामिनि ज्यों किलकैं कल बाल बिनोद करैं ।
अवधेश के बालक चारि सदा तुलसी मन मन्दिर में बिहरैं ।।२।।
कबहूँ शशि माँगत आरि करैं कबहूँ प्रतिबिम्ब निहारि डरैं ।
कबहूँ करताल बजाय के नाचत मातु सबै मन मोद भरैं ।।
कबहूँ रिसिआइ कहैं हठि के पुनि लेत सोई जेहि लागि अरैं ।
अवधेश के बालक चारि सदा तुलसी मन मन्दिर में बिहरैं ।।३।।
वरदन्त की पंगति कुंदकली अधराधर पल्लव खोलन की ।
चपला चमकैं घन बीच जगै छवि मोतिन माल अनमोलन की ।।
घुँघुरारी लटैं लटकैं मुख ऊपर, कुँडल लोल कपोलन की ।
नेवछावरि प्राण करैं तुलसी बलि जाउँ लला इन बोलन की ।।४।।

कछुक काल बीते सब भाई । बड़े भये परिजन सुखदाई ।। चूड़ा करन कीन गुरु जाई । विप्रन पुनि दछिना बहु पाई ।। परम मनोहर चरित अपारा । करत फिरत चारिउ सुकुमारा ।। मन क्रम बचन अगोचर जोई । दशरथ अजिर विचर प्रभु सोई ।। भोजन करत बोल जब राजा । नहिं आवत तजि बाल समाजा ।। कौसल्या जब बोलन जाई । ठुमुकि ठुमुकि प्रभु चलैं पराई ।। निगमनेति शिव अन्त न पावा । ताहि धरै जननी हठि धावा ।। धूसर धूरि भरे तन आये । भूपति बिहँसि गोद बैठाये ।। दो०-भोजन करत चपल चित इत उत अवसरु पाइ । भाजि चले किलकत मुख, दधि ओदन लपटाइ ।।
वार्ता—इस प्रकार शिशु लीला करते हुये श्रीरामजी कुछ और बड़े हुये, तो राजमहल के बाहर सड़कों तथा गलियों में अपने भाई एवं सखाओं के साथ खेलते हुये चले जाते

थे। गीतावली पद नं०-४३— ललित ललित लघु लघु धनुशरकर, तैसी तरकसी कटि कसे पट पियरे। ललित पनहीं पायँ पैजनी किंकिनि धुनि, सुनि सुख लहे मन रहै नित नियरे॥ पहुँची अंगद चारु हृदय पदिकहारु, कुण्डल तिलक छवि गड़ी कवि जियरे। शिरखिटिपारो लाल नीरज नयन विशाल, सुन्दर बदन ठाढ़े सुर तरु नियरे॥ सुभग सकल अंग अनुज बालक संग, देखि नर नारि रहैं ज्यों कुरंग दियरे। खेलत अवध खोरि गोली भौंरा चक डोरि, मूरति मधुर बसै तुलसी के हियरे॥ ४३॥ उसके बाद— भये कुमार जबहिं सब भ्राता। दीन जनेऊ गुरु पितु माता॥ गुरु गृह गये पढ़न रघुराई अलप काल विद्या सब आई॥ जाकी सहज स्वाँस श्रुति चारी। सोउ हरि पढ़ यह कौतुक भारी॥ विद्या विनय निपुन गुनशीला। खेलहिं खेल सकल नृप लीला॥ करतल बान धनुष अति सोहा। देखत रूप चराचर मोहा॥ जिन वीथिन बिहरहिं सब भाई। थकित होहिं सब लोग लुगाई॥ दो०—कोशलपुर बासी नर नारि वृद्ध अरु बाल प्राणहुँ ते प्रिय लागत सब कहँ राम कृपाल॥ ॥ कभी कभी श्रीरामजी भाइयों के साथ सखाओं को लेकर श्रीसरयूजी के तट पर खेल खेलते हैं। गीतावली पद नं० ४५— रामलखन इक ओर भरत रिपुदवन लाल इक ओर भये। सरजू तीर सम सुखद भूमि थल, गनि गनि गुइयाँ बाँटि लये॥ कन्दुक केलि कुशल हय चढ़ि चढ़ि, मन कसि कसि ठोंकि ठोंकि खये। कर कमलनि बिचित्र चौगाने, खेलन लगे खेल रिझाये॥ व्योम विमानिनि विबुध विलोकत, खेलक पेखक छाँह छये। सहित समाज सराहि दशरथहिं, वरषत निज तरु कुसुमचये॥ लै लै बढ़त एक फेरत सब, प्रेम प्रमोद विनोद मये। एक कहत भइहार रामजू की, एक कहत भैया भरत जये। प्रभु बकसत गजबाजि बसन मणि, जय धुनि गगन निशान हये। पाइ सखा सेवक जाचक भरि, जनम न दुसरे द्वार गये॥ नभपुर परति निछावरि जहँ तहँ, सुरसिद्धनि बरदान दये। भूरि भाग अनुराग उमगि जे गावत सुनत चरित नित ये॥ हारे हरष होत हिय भरतहिं, जिते सकुच शिर नयन नये। तुलसी सुमिरि सुभावशील, सुकृती तेइ जे येहि रंग रये॥ ४४॥

इस प्रकार बाल क्रीड़ा करते हुए श्रीरामजी सरयूतट के बनो में आखेट लीला करने लगे। चौ०:- बन्धु सखा सँग लेहिं बोलाई। बन मृगया नित खेलहिं जाई॥ पावन मृग मारहि जिय जानी। दिन प्रति नृपहि देखावहि आनी॥ जे मृग रामबाण के ते तन तजि सुरलोक सिधारे॥ अनुज सखा सँग भोजन करहीं। देखि सकल जननी सुख भरहीं॥--कुछ मांस प्रिय व्यक्ति इसी प्रसंग में कहा करते हैं कि श्रीरामजी भी शिकार करके मांस खाते थे। परन्तु यह उनका सर्वथा अनर्गल प्रलाप है। क्योंकि यहाँ पर स्पष्ट लिखा है कि-अनुज सखा सँग भोजन करहीं। अर्थात् मानव का भोज्य पदार्थ का भाव है। शास्त्रों में महर्षियों ने मांस खाना निषेध लिखा है। मांस को अखाद्य पदार्थों में कहा है। खाद्य में नहीं। मानव का खाद्य पदार्थ--दूध, अन्न, साग,

फल, कन्द, मूल है, इनमें भी कुछ दूध अन्न साग फल कन्दमूल भी निषेध है। तब श्रीरामजी को मांस खाना कहना, केवल कोरा पागलपन ही है, और कुछ नहीं। भगवान् श्रीरामजी का अवतार धर्म की रक्षा के लिए हुआ है, तब मांस भक्षण जैसा अधर्मकृत पापमय आक्षेप करना मांस भक्षण प्रिय बुद्धि जीवी कहलाने वाले बुद्धि के दरिद्रों का ही काम है। बुद्धिमानों का नहीं। अब कवितावली के एक सवैया सरयूतट की एक झाँकी का रसानुभव करिये--

सरयूवर तीरहि तीर फिरैं, रघुवीर सखा अरु बीर सबै। धनुहीं करतीर निषंग कसे कटि पीतदुकूल नवीन फबै॥ तुलसी तेहि औसर लावनिता दशचारि नौ तीन इकीश सबै। मति भारति पंगुभई जो निहारि विचारिफिरी उपमा न पवै॥

चौ०--विश्वामित्र महामुनि ज्ञानी। बसहिं बिपिन शुभ आश्रम जानी॥ तहँ जप जज्ञ जोग मुनि करहीं। अति मारीच सुबाहुहिं डरहीं॥ विश्वामित्र जी जैसे यज्ञ करना प्रारम्भ करते थे, धुआँ देखते ही निशाचर दौड़कर आजाते थे, फिर यज्ञशाला में उपद्रव कर देते थे, जिससे मुनि को महान दुख होता था। चौ०--गाधि तनय मन चिंता व्यापी। हरि बिन मरैं न निशिचर पापी॥ वार्ता--तब मुनिराज ने अपने मन में बिचार किया कि इस समय प्रभु ने कृपा करके पृथ्वी का भार उतारने के लिए रघुकुल में अवतार धारण किया है। अस्तु में इसी यज्ञ रक्षा के बहाने जाकर उन पूर्णतम ब्रह्म श्रीरामजी के चरणों का दर्शन करूँ, और स्तुति प्रार्थना करके श्रीरामजी एवं श्रीलक्ष्मण जी दोनों भाइयों को अपने आश्रम में ले आऊँ, तो मुझे उन परम प्रभु का दर्शन भी और यज्ञ की पूर्ति भी हो जायेगी॥ चौ०--ज्ञान विराग सकल गुण अयना। सो प्रभु मैं देखब भरि नयना॥ वार्ता--इस प्रकार मन में अनेक मनोरथ करते हुये अपने तपोवन से श्रीअवध को प्रस्तान किया, भगवद्दर्शन की उत्कण्ठा के कारण मार्ग का समय बहुत स्वल्प मालूम पड़ा। श्रीसरयूजी में स्नान करके चक्रवर्ति सम्राट श्रीदशरथजी के दरबार में पधारे।

<u>मुनि आगमन</u>—चौ०--मुनि आगमन सुना जब राजा। मिलन गयो लै विप्र समाज॥ करि दण्डवत मुनहि सनमानी। निज आसन बैठारिन आनी॥ चरण पखारि कीन अति पूजा। मोसम भागवन्त नहिं दूजा॥ विविध भाँति भोजन करवावा मुनिवर हृदय हरष अति पावा॥ पुनि चरणन मेले सुत चारी। राम देखि मुनि देह बिसारी॥ भये मगन देखत मुख शोभा। जनु चकोर पूरन शशि लोभा॥ बार्ता--तब श्री चक्रवर्ति जी महाराज ने हाथ जोड़कर प्रसन्न चित्त से निवेदन किया कि--चौ०-केहि कारण आगमन तुम्हारा कहहु सो करत न लौवौं बारा॥

सवैया---मुनिनायक कीन कृपा अतिसय, बड़भाग हमार उदय भयो आजू। परसे पद पंकज के रजके, सब पाप छयो मैं समस्त समाजू॥ हे प्रभो! कीनी दया

अस काहु नहीं, जो अनुग्रह आज कियो महराजू । कारण कौन कियो इत गौन, जो आयसु होइ करौं सोइ आजू ॥५॥

तब श्रीविश्वामित्रजी ने श्रीदशरथजी से कहा कि--[कवित्त]-विदित वसुन्धरा विभाकर विशुद्धवंश, वन्दित वसुन्धरा धिराजन सों सर्वदा। सगर दिलीप अम्बरीष अंशुमान अज, जैसे भये तैसे आप भुवन के शर्नदा ॥ "रघुराज" रावरे को भाषिवो न आश्चर्य, परम प्रताप देवराज हू को भर्मदा । जाके हैं वशिष्ठ से सदैव उपदेश वारे, ताके बैन विप्रन के धर्म कर्म वर्मदा ॥ १ ॥ चौ०-असुर समूह सतावहिं मोही । मैं जाचन आयों नृप तोही ॥ अनुज समेत देहु रघुनाथा । निशिचर बध मैं होव सनाथा ॥ सवैया- मोहिं सतावत दुष्ट निशाचर, याचन आयो हौं राजन तोही । सानुज रामलला सुत आपन, दीजै कृपाकरि माँगन मोही ॥ संग मेरे मम आश्रम जाय, बधैं दोउ बीर निशाचर कोही । होव सनाथ जबहिं हम नाथ, तुमहिं अति धर्म इनहिं सुख होई ॥ ६ ॥ कवित्त--नीरद बरण वारो पंकज नयन वारो, भृकुटी विशाल वारो लम्बभुजवारो है। पीत पट कटिवारो मन्द मुसुकान वारो, शूर सरदारो रण कबहूँ न हारो है ॥ "रघुराज" रावरे को रोज रोज प्राण प्यारो, डालिम जुलफ वारो कौशिला दुलारो है । माँगनो हमारो होय मेरो मख रखवारो, रामनाम वारो जेठोतनय जो तिहारो है ॥ २ ॥ पद--राजन ! रामलखन जो पाऊँ । सकल भुवन में भूप मुकुटमणि, यश रावरो बढ़ाऊँ ॥ नाम सुकेतु ताहि का दुहिता, प्रवल ताड़का नाऊँ । तासु तनय मारीच सुभुज अति, दुष्ट कहाँ लगि गाऊँ ॥ करन न देत यज्ञ नृप मोकहँ, चलत न नेक उपाऊँ । करत विघ्न अति धाइ धाइ नृप, करउँ यज्ञ केहि ठाऊँ ॥ ये बलवान मारिहैं उनको, जग हो प्रगट प्रभाऊँ । "शंकर" दानि शिरोमणि हो तुम, और कहाँ मैं जाऊँ ॥ ४५ ॥

विश्वामित्रजी के ऐसे बचन सुनकर वात्सल्य भाव विभोर होकर हाथ जोड़कर श्रीदशरथजी बोले-- चौ०:- चौथे पन पायउँ सुत चारी । विप्र बचन नहिं कहेउ विचारी ॥ प्रभो ! यदि आप मेरे प्राणाधिक प्रिय इन पुत्रों के अतिरिक्त-- माँगहु भूमि धेनु धन कोसा । सर्वस देउँ आज सहरोसा ॥ इस स्थल पर सहरोसा शब्द का अर्थ होगा कि प्रसन्नता पूर्वक । अस्तु हे प्रभो ! इन मेरे नयनों के तारे परम सुकुमारे बालकों को छोड़कर यदि आप कहें तो--देह प्राण ते प्रिय कछु नाहीं । सोउ मुनि देउँ निमिष एक माहीं ॥ भगवान यद्यपि--सब सुत प्रिय मोहिं प्राण की नाईं । तथापि यदि आप श्रीरामलला के अतिरिक्त अन्य किसी को माँगते, तो किसी भी प्रकार जैसे तैसे धैर्य धारण करके आपकी बात पर कुछ विचार भी किया जा सकता था । किन्तु किसी भी प्रकार राम देत नहिं बनइ गोसाईं ॥ अस्तु हे प्रभो ! आप मुझपर कृपा ही किये रहिये । आप तो त्रिकालज्ञ सर्वज्ञ हैं, आप यह भली भाँति समझ रहे हैं कि--श्रीराम ही मेरे प्राण हैं, यही मेरी आत्मा हैं, इसलिये--(पद) भगवन् रामलखन नहिं दइहौं । जीवन प्राण

भुवन मेरे प्रभु, तिनहिं देत दुःख पइहौं ।। आयसु होय नाथ अबहीं मैं, सैन सहित प्रभु जइहौं। "मधुरअली" सब मारि निशाचर, विमल यज्ञ करवइयौं ।। ४६ ।। कवित्त--मैं ही सैन साजि चलौं साथ मुनिनाथजू के, सँग लैके शूर सबै संगर जुझारहैं । राक्षस प्रबल कहाँ इन्द्र लौं डरात जिन्हैं, कहाँ वे बालक सिरस हू ते सुकुमार हैं ।। आपही बिचारि देखो "ललिते" हिये में नेक, हंस सुत मन्दर को कैसे सहैं भार हैं । माँगिये सँभारि प्रभो ! बार बार गहौं पग, राम हो कुमार मेरे प्राण के अधार हैं ।। ३ ।।

सवैया--माँगहु धेनु औ धाम धरा, धन माँगहु देत न बार करैंगे । साजिके सैन सबै संग लै, खल राक्षस सों मुनिराज लरैंगे ।। किन्तु प्रभो ये तो अभी-- बालक हैं कछु जानत नाहिं, कहो मुनि युद्ध में कैसे अरैंगे । प्राण ते प्यारे सबै सुत हैं, पर राम वियोग न धीर धरैंगे ।। ७ ।। तब विश्वामित्रजी महाराज श्रीदशरथजी को समझाते हुए पुनः बोले कि---(पद)--राजन राम लखन जो दीजै । यश रावरो लाभ ढोटन को, मुनि सनाथ सब कीजै ।। डरपत हो झूठहिं सनेह बश, सुत प्रभाव नहिं जाने । बूझिय वामदेव अरु कुल गुरु, तुम प्रिय परम सयाने ।। रिपु रण दलि मख राखि कुशल पुनि लौटि भूप गृह आइहैं । "तुलसिदास" रघुवंश तिलक को, कवि कुल गौरव गइहैं ।।४७।। दो०--दानि न हेरत हानि कछु, दान देत हर्षात । तनिक बात में भूप तब सबै गात थहरात ।। मुनिराज के बचन सुनकर श्री दशरथ जी मस्तक नत (नीचे को झुकाकर) करके बोले कि-- [कवित्त]--सुनिये रिषिराज महाराज ज्ञानवान आप, बालक हमारे ये प्राणहूँ ते प्यारे हैं । अबहीं मिलि बाल वृन्द करते हैं बाल केलि, युद्ध काह जानै अभी दूध मुखवारे हैं ।। माता की सुअंक माहिं खेलत समोद अबहिं, सकल अवधवासिन के नैन उजियारे हैं । ये हो "गुणशील" क्षमा धाम सुखददासन को, पुत्रन तजि नाथ पर सर्वस हम वारे हैं ।। ४ ।। वार्ता--श्रीदशरथजी के इस प्रकार प्रेम भरे बचन सुनकर विश्वामित्रजी हँसकर बोले--दो०-राज राज रघुवंशमणि, चित कत करत खभार । रन प्रवीण सुत रावरे, मेरे प्राण अधार ।। छंद--मेरे प्राण अधार नृपति दोउ तनय तुम्हारे । सुष सुखमा आगार शीलगुणगण उजियारे ।। ये सब भाँति समर्थ परम बलवान सुजाना । जगदाधार परेश राम श्रुति शास्त्र बखाना ।। दो०-याते नृप अब मोह तजि, पठवहु मेरे साथ । निशिचर गण संहार हो हम सब होहिं सनाथ ।। वार्ता-- यद्यपि विश्वामित्र ने संकेत से श्रीराम का ऐश्वर्य प्रगट किया, किन्तु वात्सल्याधिकता के कारण महाराज को तो श्रीरामजी अभी परम सुकुमार बालक ही दीख रहे हैं । अस्तु राजा ने कहा कि हे मुनिराज आप जो भी कहिये, किन्तु मेरी प्रार्थना सुनिये । चौ० -कहँ निशिचर अति घोर कठोरा । कहँ सुन्दर सुत परम किशोरा ।। और--दो०--अतिसय मायावी प्रबल, निशिचरगण बलवान । तिनसों युद्ध न करि सकैं, ये बालक नादान ।। चौ०-सुनि नृप गिरा प्रेम रस सानी । हृदय हरष माना मुनि ज्ञानी ।। दो०--ऊपर से अति रुष्ट सम,

बोले बचन रिसाय। प्रथम कहा क्यों देन को, अब किमि रहे डराय॥ यदि सुत देना था
नहीं, प्रथमहिं देत बताय। मुनिवर माँगिय पुत्र तजि, जो कछु तुमहिं सोहाय॥ छंद तो
याचक नहिं बनत,सहत दुख विपिन सिधाई। किन्तु करी नृप भूल महादानी कहलाई॥ अब
यदि देत न भूप हमहिं दोउ पुत्र सुखारी। तो तुव कुशल न होय लेहु मनमाहिं बिचारी॥
वार्ता–राजन आप खूब सोच लीजिये, मैं द्वार द्वार भीख माँगने वाला भिक्षुक नहीं
हूँ। मेरे तेज प्रभाव एवं स्वभाव को आप के गुरुदेव ये वशिष्ठ जी भली भाँति जानते
हैं। आप तो श्रीरामजी को केवल अपना पुत्र ही मानते हैं। परन्तु श्रीरामजी कौन हैं,
इनमें क्या सामर्थ है इसे मैं अच्छी तरह जानता हूँ, और ये वशिष्ठ भी जानते हैं।
तुम तो मोह में फँसे हो। अस्तु अब मैं जाना चाहता हूँ, यदि आप अयोध्या के राज्य
समेत अपनी कुशल चाहते हैं, तो दोनों पुत्रों को मेरे साथ भेज दो, अन्यथा मैं क्या
नहीं कर सकता हूँ, यह वशिष्ठजी से पूछ लो। मुनि के क्रोध पूर्ण बचनों को सुनकर—
कवित्त--कोमल कमल पै तुषार को तोपाउ जैसे, नवलतिका पै ज्यों दमारि दीह ज्वाल है।
जैसे गजराज पै गराज मृगराज केरी, पुनि ग्रहराज पै ज्यों सिंहिकाको लाल है। भनै
'रघुराज' रघुराजको विरह जानि, मुख पियरायगयो कोशलभुआल है। परम कशाला पाय
ह्वै के बिहाला अति, गिरि गयो सिंहासन सों भूमि भूमिपाल है॥ दो०–नृप की दशा
विलोकि तब, सेवकगण अकुलाय। सुमन विजन हाँकन लगे, सुरभित जल छिरकाय॥
यहि विधि बीते दण्ड दो, उठेउ नृपति धरि धीर। प्रेम विवश मुनि सन कहत, कम्पत
सकल शरीर॥ कवित्त--बूढ़े भये ज्ञानी भये तपसी विख्यात भये, राजऋषि हूते ब्रह्मऋषि
तुम ह्वै गये। विमल विरागी भये जगत के त्यागी भये, विश्व बड़भागी भए, विषय डर
ना नये॥ भनै "रघुराज" भगवान भक्तिवान भए, महाधर्मवान सत्यवान जग ज्वै गये।
छमा में अछेह क्षमामान भये काहे मुनि, मेरे छोहरा पै तुम दयावान ना भये॥ ५॥

यह सुनकर विश्वामित्रजी बोले कि--ठीक है राजन, आपका वंश सर्वदा
दानियों में शिरोमणि रहा है, मेरा तो विचार यही था कि आप अपने वंश में असत्य-
वादिता का दोष रूप कलंक न लगाते, क्योंकि--दो०---तवकुल की मर्याद यह, दान देत
हर्षाय। हानि लाभ चिन्ता रहित, सब संकोच विहाय॥ हरिश्चन्द्र मोहिं स्वप्न में, दीनी
कुन्जी दान। अरु हय केर लगाम सो दई जागि हुलसान॥ अब तुमरी रुचि होय जस,
करिय नृपति सुख पाय। मैं प्रसन्नता पूर्वक जाउँ बनहिं हर्षाय॥ वार्ता--तब श्रीवशिष्ठ
जी ने श्रीदशरथजी को समझाकर कहा कि–दो०--देहुँ भूप मन हर्षित, तजहु मोह अज्ञान।
धर्म सुयश नृप तुम कहँ इनकहँ अति कल्यान॥ जानिय विश्वामित्र सम, अपनो और न
मित्र। रामलखन में जानिए, इनको विमल चरित्र॥ चौ०-तब बशिष्ठ बहुविधि समझावा।
नृप सन्देह नाश को पावा॥ अति आदर दोउ तनय बोलाये। हृदय लाय बहु भाँति
सिखाये॥ दो०-मुनिवर विश्वामित्र सँग, जाहु लखन अरु राम। शिर धरि आयसु पालि

नित, रहना करत प्रणाम ॥ कष्ट न हो मुनिराज को, रखना सन्तत ध्यान । तजि चंचलता बालपन, करना अति सनमान ॥ वार्ता—पुनः दोनों पुत्रों का हाथ विश्वामित्रजी को पकड़ाकर कहने लगे कि – चौ०--मेरे प्राण नाथ सुत दोऊ । तुम मुनि पिता आन नहिं कोऊ ॥ दो० – याते अपनो शिशु समुझि, करना छोह अपार । निज सुयज्ञ करि पूर्णप्रभु, देना दरश उदार ॥ यदि शिशु चंचलता करैं, क्षमिये करुणागार । अपने बालक मान हिय, करत रहिय अति प्यार ॥

वार्ता—तब विश्वामित्रजी ने कहा कि-- पद--राजन मन में शंक न कीजै । सन्तत हिय महँ मोद भरीजै ॥ दोउ सुत जीवन प्राण हमारे । रहिहैं मम सँग परम सुखारे ॥ तब श्रीदशरथजी ने प्रणाम किया, विश्वामित्रजी चलने को तैयार हुये, तब प्रणाम करके श्रीरामजी ने कहा कि--चौ०--जौं गुरुवर की आज्ञा पाऊँ। जाइ मातु चरणन शिर नाऊँ ॥ लै प्रभु माँ को आशिर्वादा । तब ढिग आवौं भरि अहलादा ॥ तब विश्वामित्रजी ने कहा कि-- दो०--जग में जेते पूज्यवर, बरणे वेद पुरान । तिन सब में अति पूज्यतम माता कहब सुजान ॥ चौ०--अस्तु जाय पद बन्दन करहूँ । लहि आशीष हृदय सुख भरहू ॥ किन्तु वत्स नहि बिलंब करीजै । चलना शीघ्र हृदय धरि लीजै ॥ वार्ता--- श्रीरामजी तथा श्रीलक्ष्मणजी महल में जाकर माताजी को प्रणाम कर कहने कि--- श्लोक) नमोऽस्तुते मातृपदारविन्द मनुग्रहो वाञ्छित मेव मह्यम् । पितुर्निदेशेन व्रजामि शीघ्रं त्रातुं मुनेर्यज्ञमहं महर्षेः ॥ दो०--कौशिक मुनि के साथ मोहिं, कियो पिता भरि प्यार । कहेउ करावहु यज्ञ सुत, दुष्ट निशाचर मार ॥ अस्तु चरण पर शीश धरि, विनवौं बारम्बर । मा तव आशिर्वाद से, मंगल सतत हमार ॥

वार्ता---श्रीरामजी के इन बचनों को सुनकर माताजी की समाधि सी लग गई । कुछ समय तक बोलते न बना, तदुपरान्त धैर्य धारणकर बोलीं कि---मेरे जीवन प्राणधन, रामलखन दोउ वीर । बिन देखे विधु बदन तव, कैसे धरिहौं धीर ॥ फिर विधाता से निवेदन करने लगीं कि--[पद]--हे विधि मैंने काह बिगारो । जेहि लगि तुम करि कोप कहहु किमि, मेरो भवन उजारो ॥ मेरे जीवन प्राण लाल दोउ करन चहत दृग न्यारो । हे "गुणशील" स्वरूप कृपामय दीजै बेगि सहारो ॥

वार्ता--माताजी को वात्सल्य सागर में विभोर समझकर श्रीरामजी ने कहा कि-(पद) मैया मोहिं प्यार करि लीजै ॥ दुख मानन को मातु न अवसर, हिय विश्वास करीजै ॥ वेगि आइ तव चरण लागि हौं, आशिष मोकहँ दीजै ॥ गुरुवर खड़े विलम्ब होत है, मन में सोच न कीजै । हे "गुणशील" स्वभाव परम प्रिय, चलन चहत लखि लीजै ॥ वार्ता--तब माता जी ने दोनों भाइयों को अपनी अंक में बिठाकर दुलार पूर्वक अपने हाथों से मधुर मिष्ठान पवाया, श्रीरंगनाथ जी की प्रसादीमाला पहिराई, पुनः मंगल स्तवन किया---मंगलं कोशलेन्द्राय महनीय गुणाब्धये । चक्रवर्ति तनुजाय सार्वभौमाय मंगलम् ॥ पुनः कहा कि---दो०- जाओ मुनि सँग लाल दोउ, मेरे प्राणाधार । रंगनाथ

रक्षा करैं, न्हात खसै जनि बार ॥ मुदित आरती कीन पुनि, राई लोन उतार। जल न्यौछावत प्यार भरि हो पुनि पुनि बलिहार ॥ छं०--सादर हृदय लगाय चूमि मुख नेह समानी। पुनि पुनि मस्तक सूँघि, नैन बरषत शुचि पानी ॥ कहा जाहु दोउ बन्धु किन्तु मुख शीघ्र दिखइहो। बत्स मातु की सुरत कहीं बिसराइ का जइहो ॥ दो०--बिनु देखे मुख कंज तव, मेरी जो गति होय। तुमहिं विदित हो भली विधि, तदपि करै न कोय॥ वार्ता—यद्यपि मैं मन से स्वप्न में भी कभी तुम्हें अपनी आँखों की ओट होने देना नहीं चाहती हूँ। तथापि यदि आपको पिताजी ने मुनिराज के साथ जाने की आज्ञा दे दी है, तो मैं बिबश हूँ। अब मुझे कुछ भी कहना उचित नहीं है। तब माताजी के चरणों में प्रणाम कर दोनों भाई विश्वामित्रजी के पास आगये। कुछ दूर चलने पर श्रीरामजी के सखाओं का समाज खेलते मिला सबने प्रणाम कर पूछा कि हे प्राणधन जीवन आप हम सबोंको छोड़कर अकेले ही दोनों भाई कहाँ जा रहे हैं। हमलोग भी आपके साथ चलेंगे तब श्रीरामजी ने समझाकर कहा कि भैइया आप लोग तो हमारे सर्वस्व हो। मैं आप सबों को त्याग कैसे करता हूँ ? इस समय पिताजी की आज्ञा से इन मुनिराज के साथ जाकर इनके यज्ञ की रक्षा करके आप लोगों से आकर शीघ्रही मिलेंगे। यद्यपि सखाओं को प्रभु का वियोग सर्वथा असह्य था, तथापि प्रभु की आज्ञा मानकर मृतक सदृश्य रह गये। दोनों भाइयों के साथ मुनिराज मार्ग में जा रहे हैं। गीतावली पद ५९—

ऋषि सँग हरषि चले दोउ भाई। पितु पद बन्दि शीश लियो आयसु, सुनि सिख आशिष पाई ॥ नील पीत पाथोज बरन बपु, बय किशोर बनि आई। शरधनुपाणि पीत पट कटि तट, कसे निषंग बनाई ॥ ललित कण्ठ मणिमाल कलेवर, चन्दन खौरि सोहाई। सुन्दर बदन सरोरुह लोचन, मुखछबि बरणि न जाई ॥ पल्लव पंख सुमन शिर सोहत, क्यों कहौं बेष लुनाई। मनु मूरतिधरि उभय भाग भइ, त्रिभुवन सुन्दरताई ॥ पैठत सरनि शिलनि चढ़ि चितवत, खग मृग बन रुचिराई। सादर सभय सप्रेम पुलकि मुनि, पुनि पुनि लेत बुलाई ॥ एक तीर तकि हती ताड़का विद्या विप्र पढ़ाई। राखेउ यज्ञ जीति रजनीचर भइ जग बिदित बड़ाई ॥ चरण कमल रज परसि अहिल्या, निज पति लोक पठाई। "तुलसिदास" प्रभु के बूझे मुनि, सुरसरि कथा सुनाई ॥ वार्ता—सखाओं से विदा होकर चलने पर नगर के बाहरी सीमा के दूर जाने पर बनकी शोभा देख कर विश्वामित्रजी ने कहा कि--दो०--वत्स लखो यह ताल तरु, अति उतंग सुखकंद। बृन्द बृन्द मिलिके करत, भानु प्रभा को मन्द ॥ दोनों भाई देखने लगे, तब श्रीरामजी से लक्ष्मणजी ने कहा कि--दो०--जानि परत मोहिं नाथ यह, इहै ऊँचाई देखि। कहुँ उत्तर दक्षिण कहूँ चलत भानु जिय लेखि ॥ तब श्रीरामजी बोले. (सवैया)-- कैसे लसें कचनार अनार रसाल विशाल तमाल सोहाये। देखो अशोक मिले तिलकौं बकुची लकुची अगरौं छबि छाये ॥ फूले भले झपके लपके, "ललिते" अति ही उपमा सरसाये। देन अनन्दन

वृन्दन को, सुमनो बन नन्दन को तजि आये ।। पुनः लक्ष्मण जी ने कहा- (सवैया)—एक है धाय धरैं तरु दूसरो, भौंर भ्रमै सुख राग सने से। पाती हरी कहुँ पीत सुश्यामरी, फूलफली तरु पाय घने से ।। बायु लगे लहरात सोहात, टरैं नहिं नाथ सो नेक हिये से। देखो इतै लतिकान के जाल लसैं अति चारु बितान तने से ।। तब श्रीरामजी ने कहा भैया लक्ष्मण उधर तो देखो, (सवैया)—चातक कोकिल कीर चकोर औ मोर पुकार करैं मन भाये । कोयल घोष-महोष मिलै, "ललिते" अति ही उपमा सरसाये ।। तीतर तूती चँडूलन डोलन, बोलन में रस भूरि बढ़ाये । जोर कहूँ मधुरे मधुरे चहुँओर लखो खग शोर मचाये ।। लक्ष्मणजी ने कहा-- झाँपे सबै जल जातके पातन देखत ही मनको अति मोहैं। और प्रभो ! इधर बन में तो देखिए--फूले गुलाब सबै रँग के घुमड़े अलि जे सुषमा न समाये ।। सारस हंस चकी बक शोर रहे अरिकै बरनै कवि कोहैं । देखो इतै हितकै बन वीर बनी विच कैसो सरोबर सोहैं ।। तब विश्वामित्रजी ने कहा कि-दो०-सघन छाँह विस्तरित अति, सुभग बिलोकहु राम ! श्रम निबारिबे हेतु सुत करन चहौं विश्राम ।। अति सुखमा या विपिन की कही कछुक नहिं जात । राम तिहारो आगमन अचरज सो दरशात'। कवित्त-तड़ाग नीर हीर के समीर होत केशबदास, पुण्डरीक भुण्ड भौंर मण्डलीन मण्डहीं । तमाल बल्लरी समेत सूखि सूखि गये जौन, बाग फूल फूलके समूल मूल खण्डहीं ।। चितवत चकोरनी चकोर मोर मोरनीन, हंस हंसिनी सुकादि सारिका सबै सहीं । जहाँ जहाँ करते विश्राम रामभद्र आप, तहाँ तहाँ अद्भुत कलान आज देखहीं।।

कुछ समय विश्राम करके आगे चले। चौ०—चले जात मुनि दीन दिखाई। सुनि ताड़का क्रोध करि धाई ।। किन्तु श्रीरामजी की मंगलमय मंजुल झाँकी देखकर कहती है कि-सवैया-दानव दैत्य हैं देखे अनेकन, चारण सिद्ध अनेकन गाई। राजकुमार लखे है अनेक, न देखी कहूँ अस सुन्दरताई ।। मुख में दया को न नाम रह्यो, पै विचित्र दशा यह आज लखाई । "श्रीरघुराज" कहा कहिबे, नहिं खात बनै नहिं भागे भलाई ।। यद्यपि ताड़का श्रीरामजी के सौन्दर्य पर आश्चर्य चकित है तथापि राक्षसी स्वभाव के कारण गर्जती हुई आगे बढ़ी । श्रीरामजी सोचने लगे कि हम वीरों के बालक होकर इस अबला पर बाण चलावैं, यह अनुचित है। ताड़का आगे बढ़ी आ रही है, श्रीराम जी बाण नहीं चढ़ा रहे हैं, तब वात्सल्य विभोर होकर विश्वामित्रजी ने हुँकार करके ताड़का की गति रोकदी, फिर श्रीरामजी से कहा कि वत्स यह महा पापिनी है, इसे शीघ्र मार दीजिये, तब हाथ जोड़कर श्रीरामजी ने कहाकि--- प्रभो ! यह तो अवश्य अबला है, रघुवंशी स्त्री पर शस्त्र नहीं चलाते । सवैया--- है वरनो बरनीं रघुबंश की कीरति छाई है नाथ जहान में । नीति घनी है रही उर में, मति मोरि सभी प्रभु बेद पुरान में ।। वीर अनेकन हूँ से लरौं न डरौं प्रभु नेकहु मैं संग्राम में। नारि पै बान चलै न प्रभो ! निज बंश की आन को राखिके ध्यान में ।। कवित्त---एक तो प्रथम ही परीक्षाको

दिवस आज, भानुवंशियों का रक्त अपयश न लूटैगा। कीर्ति वीरता भी एक छोर जा छिपेगी और, धर्म बाहु बल का प्रसिद्ध पात्र फूटैगा॥ 'विन्दु कवि' चाहे मोहिं कायर बनावैं लोग, किन्तु नीति पथ का विचार तो न छूटैगा। क्षमा कीजिये महर्षि माननीय मुनिनाथ, नारी पर हाथ रघुनाथ का न छूटैगा॥

तब विश्वामित्र जी ने कहा कि—दो०-नारि जानि नहिं छोड़िये, कर्म करति अति घोर। नारि नहीं यह कर्कशा, दश हजार गज जोर॥ सवैया—याहि संहारन कारन आपको, लाये कुमार हैं संग लिवाई। बल राखत है दश सहस गजेन्द्र को मारन देत पहाड़ उड़ाई॥ मारि अकारन विप्र कुमारन, नाथ अनेकन लीन चबाई। द्रुत मारिय याहि कहा मम मानि; न मारे बिना यहि केर भलाई॥ दो०-बलिभगिनी सुरपति हनी, भृगु पत्नी हरि आप। जो कुपंथ में पग धरै ताहि बधे नहिं पाप॥ मुनि बचनों को सुन कर श्रीरामजी ने कहा कि—सवैया—जानत हो रघुवंशिन को पथ मैं मर्याद की वानि निवाहत। दान कृपा न विधानन सों, जसको जगतीतल पुञ्ज पसारत॥ का कहिये प्रभु सों "ललिते" मैं हिये में बारहिं बार विचारत। नाथ डरौं अपवादहिं से प्रभु, वीर न तीर तियान पै मारत॥ तब विश्वामित्रजी ने कहा—दो०-हे रघुवंश किशोर प्रभु, धर्महेतु अवतार। अस्तु याहि अब मारि कर, करिय धर्म विस्तार॥ द्विज द्रोषी न विचारिये कहा पुरुष कह नारि। राम विराम न लीजिये, देहु ताड़का मारि॥ विश्वामित्र जी के भयभीत बचनों को सुनकर श्रीरामजी को दया आ गई॥ चौ०-एकहिं बाण प्राण हरि लीना। दीन जानि तेहि निज पद दीना॥ तब प्रसन्न होकर विश्वामित्रजी ने श्रीरामजी को बलाअति बला विद्या तथा अनेक प्रकार के अस्त्र शस्त्र प्रदान किये। चौ०-जाते लाग न छुधा पिपासा। अतुलित बल तन तेज प्रकासा॥ दो०—आयुध सर्व समर्पि के प्रभु निज आश्रम आनि। कन्दमूल फल भोजन दीन भगति हित जानि॥ चौ०-प्रातकहा मुनि सन रघुराई। निर्भय यज्ञ करहु तुम जाई॥ सवैया—हे मुनिनायक यज्ञ करो, जेहि कारण लै आये मोहिं माँगी। मैं रखवारो खड़ो मख को, करिये सुख से सबहो भय त्यागी॥ जो कोइ आवै यज्ञ विनासन, मारौं ताहि बचै नहिं भागी। श्रीमहराज खड़े दोउ भ्रात, रखावहिंगे दिन रातिहिं जागी॥ चौ०-होम करन लागे मुनि भारी। आप रहे मख की रखवारी॥ सुनि मारीच निशाचर कोही। लै सहाय धावा मुनि द्रोही॥ बिन फण बाण राम तेहि मारा। सत जोजन गा सागर पारा॥ पावक शर सुबाहु पुनि मारा। अनुज निशाचर कटक संहारा॥ मारि असुर द्विज निर्भयकारी॥ अस्तुति करहिं देव मुनि भारी॥ धनुषयज्ञ सुनि रघुकुल नाथा। हरषि चले मुनिवर के साथा॥ पूछा मुनिहि शिला प्रभु देखी। श्रीरामजी ने विश्वामित्रजी से पूछा कि—सवैया—वेद पढ़ैं न कहूँ द्विज बृन्द, बनी यह ऐसी बढ़ावति भैसी। सूखे रसाल तमालन के तरु, जानि परै यह बात अनैसी॥ कूजैं नहीं खग गुंजैं न भौंर, लखी "ललिते" नहिं आज लौं ऐसी।

कीजै कृपा कहिये मुनिनाथ, ये मारग माहिं शिला प्रभु कैसो ॥ कवित्त--वृक्षन में पात थहरात मुनिनाथ नाहिं, कूप और तड़ाग आग लागि सों लखात हैं। पक्षी नहिं बोलैं, औ कलोलैं नहिं मीन मच्छ, डोलैं ना बटोही इत आवत सकात हैं ॥ लटपट परत पैर झटपट बिलोकत वन, झट पट बताओ नाथ, अद्भुत यह बात है ॥ तब विश्वामित्रजी ने कहा कि--दो०-गौतम नारि श्राप बश, उपल देह धरि धीर। चरण कमल रज चाहति, कृपा करहु रघुवीर ॥ सवैया--संग रमी सुरनायक के छल के बल पाप भरी छरी छीजै। ताप भरी पति श्राप सों पीड़ित, गौतम नारि प्रभो! गति दीजै ॥ कै करुणा करुणानिधि पावन, एक इहै जगमें यश लीजै। हे रघुवीर! सुशील सुभाव, छुवाय के पाँव कृतारथ कीजै ॥ तब श्रीरामजी ने हाथ जोड़कर कहा कि-दो०-हे गुरुवर हम नृप कुवँर, ब्राह्मण पूज्य हमार। मुनि पत्नी तन पग छुवत, होय महा अपचार ॥

यह सुनकर विश्वामित्रजी ने कहा कि-दो०-राम बचन तुव सत्यवर, कीजिय तदपि विचार। पर सुख साधन करन में, होत नहीं अपचार। यदि तुम मुनि पत्नी निदरि देते चरण छुवाय। तो निश्चय जिय जानिये लगतो पाप अघाय ॥ किन्तु न यह अपचार है, होय परम उपकार। याते चरण छुवाय के, कीजै बेगि उधार ॥ तब गुरु आज्ञा गरीयसी के सिद्धान्तानुसार संकोच पूर्वक शिला में चरण छुवा दिया। छं०-परसत पद पावन शोक नशावन प्रगट भई तपपुञ्ज सही। देखत रघुनायक जनसुखदायक सनमुख ह्वै कर जोर रही ॥ श्रीअहल्याजी ने कहा कि हे प्रभो!--मैं नारि अपावन प्रभु जगपावन रावणरिपु जन सुखदाई। राजीव विलोचन भव भय मोचन पाहि पाहि शरणहिं आई ॥ मुनि श्राप जो दीना अति भल कीना परम अनुग्रह मैं माना। देख्यों भरि लोचन हरि भव मोचन इहै लाभ शंकर जाना ॥ विनती प्रभु मोरी मैं मति भोरी। नाथ न माँगौं आना। पद पद्म परागा रस अनुरागा मम मन मधप करै पाना ॥ जेहि पद सुर सरिता परम पुनीता प्रगट भई शिव शीश धरी। सोई पद पंकज जेहि पूजत अज मम शिर धरेउ कृपालु हरी ॥ अहिल्याजी की इस प्रकार भावयुक्त प्रेम भरी प्रार्थना सुनकर श्रीरामजी ने एवमस्तु कहा, तब अहिल्याजी श्रीरामजी के चरणों में बार बार प्रणाम करके प्रसन्न चित्त से आनन्द पूर्वक पति लोक (श्रीगौतमजी के आश्रम) में चली गईं ॥

तब वहाँ से-चौ०-चले राम लछिमन मुनि संगा। गये जहाँ जग पावनि गंगा ॥ श्रीरामजी के पूछने पर-चौ०-गाधिसूनु सब कथा सुनाई। जेहि प्रकार सुरसरि महि आई ॥ वार्ता--विश्वामित्रजी ने कहा हे राघव! आपकी वंश परम्परा में कई पीढ़ी पूर्व आपके पूर्वज महाराजा सगर हुये, उनके केशनी और सुमति दो रानियाँ थीं। केशनी के पुत्र असमंजस और असमंजस के पुत्र अंशमान हुये, दूसरी रानी सुमति के साठ हजार पुत्र हुये थे, असमंजस राज को स्वीकार न करके बन में भजन करने चले गये। सगरजी ने अश्वमेध यज्ञ का घोड़ा छोड़ा, इन्द्रदेव ने घोड़ा चुराकर कपिलदेवजी के

आश्रम में ले जाकर बाँध दिया । खोजते हुये सगर के पुत्र वहाँ पहुँचे, घोड़ा को बँधा देखा, कपिलदेव की समाधि लगी हुई थी, राजपुत्रों ने कोलाहल किया कि पकड़ो चोर मिल गया । उस कोलाहल के कारण महात्मा की समाधि में बाधा पड़ी मुनि को क्रोध आ गया, उनको आँख खुलते ही साठो हजार पुत्र जलकर भस्म हो गये । पुत्रों के बहुत दिन तक न लौटने पर सगरजी ने अपने पौत्र अंसमान को भेजा वह भी वहीं पहुँचे, गरुड़जी के द्वारा अपने चाचाओं के भस्म होने का कारण जानकर दुखी चित्त से अयोध्याजी आकर सगरजी को समाचार सुनाया, तब सगरजी ने अंशमान को राजभार सौंप दिया, स्वयं बन में तपस्या करने चले गये । बहुत समय तक तपस्या करके शरीरान्त होगया, तब अंशमान अपने पुत्र दिलीप को राज देकर ३२ हजार वर्ष तक तपस्या करके शरीर पूरा किये । तब दिलीप भी अपने पुत्र भगीरथजी को राजदेकर तपस्या किये, किन्तु गंगाजी नहीं लासके, दिलीप के मरने पर भगीरथ बिना पुत्र हुये ही मंत्रियों को राज्य सौंपकर तपस्या करने चले गये । दश हजार वर्ष बीतने पर ब्रह्माजी ने दर्शन देकर बरदान में गंगाजी को दिया, तभी से ये गंगाजी पृथ्वीतल पर बह रही हैं । भगीरथ जी लाये थे, इसीसे भागीरथीगंगा कही जाती हैं । इनकी महिमा अपार है । भगीरथजी गंगाजी की कृपा से अपने साठ हजार पूर्वजों का उद्धार किया । स्कंद पु० ब्रह्म खं० गंगा महात्म्य ३१ अ० ७वें श्लोक में लिखा है कि—गङ्गागङ्गेति यो ब्रूयाद् योजनानां शतैरपि । मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति ।। और महाभारत वन पर्व के ८५ अ० में ६४ । ६४-६८ तथा अनुशा० २६ अ० के २६-१०१-१०६ यह पूरा अ० गंगा महा० से ही भरा है । गंगा महिमा के श्लोक मानस सिद्धान्त भाष्य के द्वितीय खं० ११२२ पृ० से लिये हैं । कथा प्रसंग प्रथम भाग के पृ० ६२६-२७ से दिया है ।

विश्वामित्रजी के द्वारा गंगा का आगमन तथा महात्म्य सुनकर – चौ०-तब प्रभु रिषिन समेत नहाये । बिबिध दान महिदेवन पाये ।। हरषि चले मुनि बृन्द सहाय । वेदि विदेह नगर नियराया ।। पुररम्यता राम जब देखी । हरषे अनुज समेत बिषेखी ।। विश्वामित्रजी ने कहा कि-दो०-राजतनय देखो इतै, अति सुषमा सरसाति । जनक नृपति के नगर की, धर्म ध्वजा फहराति ।। धवल पताका देखि यह, लगेउ हियो हर्षान । निमि कुल मणि को सुयश मनु सुरपुर कियो पयान ।। यह सुनकर लक्ष्मणजी ने कहा-दो०-लाल पताका देखि यह, बढ़त हिये अति मोद । जनु अरुणोदय नगर को, सियकोदित चहुँ कोद ।। तब श्रीरामजी बोले-दो०-पीत पताका नीलमणि, छत्रन में उरझाय । भले मेघ के संग में, दामिनि बंक लखाय ।। श्रीरामजी ने श्रीलक्ष्मणजी से कहा-सवैया--कैसी बनी यह दिव्यपुरी, लखिये प्रियबन्धु छटा वगरी । नवकुंजन पुंज औ वाटिका बागन, कोटिन नन्दन सों अगरी । कंचन धाम बने अभिराम मणीगण ज्योति जगामग री । "गोविन्द" काह कहूँ हियकी अति लागति है प्रिय या नगरी ।। कवित्त – चहुँदिशि वाटिका

सुहाटिका छवी को मनो, कोकिला की कूक मोहिं बरवश बुलाये लेत। चपलचमंक चारु मणिमय सुभौनन की, विद्युत द्युतिहारी चटक चखको चुराये लेत॥ सबै नरनारी मनोहारी अनूप रूप, सुधा सानी बानी मेरे मन को लुभाये लेत। कहा "गोविन्द" या पुरी में कछु इन्द्रजाल, बरवश मन मेरो बन्धु बागी बनाये देत॥ तब विश्वामित्रजी ने श्रीरामजी से कहा--दो०-परमरम्यतर बाग यह, सब विधि सकल सुपास। वत्स हमारो मन कहत कीजै यहाँ निवास॥ पुनः लक्ष्मणजी बोले--दो०-धाम धाम पै कलश यह, लखि दृग अति सुख होत। जनु रवि रखि बहुरूप नित, पुर द्युति करत उदोत॥ नाथ लखो मिथिले पुर, छविधर सुषमा ऐन। जेहि लखि लाजत इन्द्रपुर, जनक नगर सम है न॥ यह सुनकर श्रीरामजी ने कहा कि--- दो०--महल महल प्रति विमल ये, धवल ध्वजा फहरात। मानहुँ नृपति विदेह के, यश निशान घहरात॥ प्रभु के भाव भरे शब्दों को सुनकर दूर से संकेत करके श्रीलक्ष्मण जी बोले-दो०-छटा अटा पर तियन की, कैसी छटा दिखाय, मनहुँ घटाघन विज्जुगण, प्रगटत औ छिपि जाय॥ ७७॥ देखि अनूप एक अँवराई। सब सुपास सब भाँति सोहाई॥ कौशिक कहेउ मोर मन माना। इहाँ रहिय रघुबीर सुजाना॥ दो०-यह अमराई अतिसुभग, सब सुपासयुत राम, मोरे मन आवत यहीं, करौं वत्स विश्राम॥७८॥ मुनिराज की वात्सल्य पूरित बातें सुनकर श्रीराम जी ने कहा कि--जो आज्ञा गुरुदेवजी, लेउँ शीश पर धार। प्रभु की रुचि पालन करूँ यह कर्तव्य हमार॥ ७९॥ भलेहिं नाथ कहि कृपा निकेता। उतरे तहँ मुनि बृन्द समेता॥ विश्वामित्र महा मुनि आये। समाचार मिथिलापति पाये॥

श्रीविश्वामित्रजी श्रीरामजी कुमार लक्ष्मण जी तथा मुनि मण्डली समेत बाग में विराजे, तब माली ने आकर प्रणाम किया, और निवेदन किया कि, सेवक आपका परिचय जानना चाहता है, क्योंकि दरबार में सूचना पहुँचाउँगा। तब श्रीमिथिलेश जी महाराज आपको स्वागत सत्कार पूर्वक नगर में ले जायेंगे। विश्वामित्र जी ने कहा कि हम तो सन्त हैं, नगर की अपेक्षा यहीं रहना हमारे लिये अधिक सुविधाजनक रहेगा। तथापि आप योगिराज श्रीविदेहजी से कहना कि-- सिद्धाश्रम निवासी गाधिनन्दन विश्वामित्रजी अपनी सन्त मण्डली समेत आपके बाग में आ गये हैं। दूत ने आज्ञानाथ कहकर प्रणाम किया और नगर को ओर चला गया। दरबार में जाकर कहा कि-- दो०--जय जय हो महाराज तब, श्रीमिथिलेश नरेश। मुनि समाज युत गाधि सुत, आये प्रभु के देश॥८०॥ युगल मनोहर मंजुतर, मूरति अति सुकुमार। संग लिये बालक सुभग, सुषमागार अपार॥ ८१॥ सुनते ही चौंककर श्रीजनकजी ने कहा-क्या मुनिराज श्रीविश्वामित्रजी आगये हैं। तब तो मेरे अहोभाग्य हैं। हाथ जोड़कर सतानन्दजी से कहा-कवित्त-कृपाकरि पधारे मुनिराज प्रभु नगर माहिं, सुनते हैं समूह ऋषि साथ में पधारे हैं। पूजा सामिग्री सजाय नाथ चलिय बेगि, विप्र मण्डली के संग भाग्य अति हमारे हैं॥

मन में उमंग उठ रही हैं बहुत मेरे आज, ऐसा लग रहा है आये आत्मधन सुखारे हैं। जय जय भूत भावन कृपाके रूप भोले नाथ, 'गुनशील" पठये हमारे प्रण पूर्ण हारेहैं ॥.॥ ऐसा कहकर दो०-संग सचिव शुचि भूरि भट, भुसुर वर गुरु जाति। चले मिलन मुनि नायकहिं, मुदित राव यहि भाँति ॥ ८२ ॥

श्रीविदेह जी आरहे हैं, मुनिराज भजन करने लगे तब तक श्रीरामजी दोनों भाई बाग घूम घूमकर शोभा देख रहे थे। उधर श्रीजनकजी समाज समेत निकट आगये। और--कीन प्रणाम चरण धरि माथा। दीन अशीष मुदित मुनिनाथा ॥ विप्र वृन्द सब सादर वन्दे। जानि भाग्य बड़ राव अनन्दे ॥ तब विश्वामित्रजी ने विदेहजी से कहा--दो०-कहिये श्रीमिथिलाधिपति, सब बिधि निज कुशलात। विश्व वन्द्य भगवान शिव तव रक्षक दिन रात ॥ हाथ जोड़कर विदेहजी बोले, दो०-नाथ आपकी कृपाते, सब प्रकार कुशलात। प्रभुदर्शन हित सर्वदा, रहे नयन अनुलात ॥ अब लखि प्रभु के पद कमल पायेउ मोद महान। योगक्षेम सन्तत करत, सब विधि शिव भगवान ॥ चौ०-तेहि अवसर आयें दोउ भाई। गये रहे देखन फुलवाई ॥ श्याम गौर मृदु वयस किशोरा। लोचन सुखद विश्व चितचोरा ॥ उठे सकल जब रघुपति आये। विश्वामित्र निकट बैठाये ॥ भय सब सुखी देखि दोउ भ्राता। बारि विलोचन पुलकित गाता ॥ मूरति मधुर मनोहर देखी। भये विदेह विदेह विशेषी ॥ धैर्य धारण कर हाथ जोड़ कर श्रीजनकजी ने विश्वामित्रजी से पूछा — कवित्त - नाथ कहिये साथ में बालक मनोहर ये, मुनिकुल उजारेया नृपति दुलारे हैं ॥ सहज ही विराग के स्वरूप प्रभु हमारो मन, चन्द्रमुख दिखाइ के चकोर करिडारे हैं। सुनिये "गुराशील" करुणा निधान हे मुनीश, इनकी मंजुमाधुरी पर सर्वस हमवारे हैं ॥ सवैया- कोटि मनोज लजावनहार एमत्तगयन्दनकी गति जोहैं। देखे सुने अवलौं न कहूँ, अति सुन्दर जोरी अलौकिक सोहैं ॥ होत हिये अनुराग महाँ, कहि जाय न सो रसना सकुचौहैं। मुनिनायक जू कहिये सतभाव, यह अद्भुत रूप धरे नर को हैं ॥ दो०-लखि इनकी मुख माधुरी, मन से गयो विराग। बरबश ही मम हृदय से गयो ब्रह्म सुख भाग ॥ कवित्त -देखत ही इनकी मंजु मूरति हे नाथ सुनो, हृदय से विराग ब्रह्मसुख भागि गयो है। मन तो विन मोल ही विकानो प्रभु इनके हाथ, मो पै न जानै कौन जादू करि दयो है। इनको मुखचन्द्र सुधा माधुरी विहाय देव, देखन नहि चहत अपर इनके वश भयो है। कहिये "गुणशील" समरथ्य अहै हेतु कौन, मेरो मन इनके रूप मीत है गयो है ॥ कवित्त—एक ओर ब्रह्म ज्योति धवलीकृत धारा दिव्य, दीपितदिगन्त भहर भहर भहरा रही ॥ एक ओर भव्य नव्य नीलम महाछविकी. उदधीकृत आभा लहर लहर लहरा रही ॥ एक ओर कोटि मार्तण्ड की प्रचण्ड प्रभा, अण्ड ब्रह्माण्ड छहर छहर छहरा रही। अहह 'गोविन्द" समझ आता न रहस्य कौन, प्राणों में विवश कहर कहर कहरा रही ॥ किधौं त्रैलोक्य शोभा आज पुंजीभूत भई, जिनको समेटि बिधि युगल

बताये हैं। कैधौं मनोज ऋतुराज युग रूप धरि, करिबे को विश्व विवश, इतै चलि आये हैं॥ कैधौं श्रृंगार छवि वारिधि के युग्ल रत्न, मथि के,मनोभव निज हाथ प्रगटाये हैं। अनुपमेय "गोविन्द" कछु उपमा कही न परै, बरबश वश प्राण कीने नयनन लुभाये हैं॥ अहो इनहिं लगता है बरबश लगालूँ हिये, छोड़ूँ न छण भर प्राण रहते शरीर में। प्राणों के अतिथि इनहिं पलकों से पोंछि राखूँ, रहूँ आशक्त जैसे मीन प्रियनीर में॥ चूमि मुखचन्द्र चारु प्यार से दुलार करूँ, सन्तत सुलाऊँ दृग पुतरिन के तीर में। बारि बारि ब्रह्म सुख लगता इनहिं की रुख, "गोविन्द" मिलजाऊँ जैसे नीर प्रिय छीर में॥ इनके—कीट कमनीय पै कोटिरवि चन्द्र वारूँ, हीरक हजार हार कुण्डल भलकान पै। नयन नुकीलिन पै कोटि नीरज मृग मीन वारूँ, कोटिन मनोज चाप भृकुटी कमान पै॥ जुलुफ जाल ऊपर कोटि सावन घनराजि वारूँ, कोटि कोटि दाड़िम द्युति दन्त दमकान पै। अधर अरुणारे पर बिम्बाफल कोटि वारूँ, 'गोविन्द' सर्वस्व वारूँ मन्द मुसुकान पै॥

तब विश्वामित्रजी ने कहा --दो०-योगीराज विदेह नृप, तुमरो नीक विचार। सत्य बचन अनुभव जनित श्रुति पुराण के सार॥ कवित्त—जगत में चराचर हैं जीव सब रूप माहिं, सबके प्राण प्यारे ये अनूप रूप धारे हैं। अवध महीपति चक्रवर्ति दशरत्थ जू के, राजकुवँर सुषमा समुद्र सुकुमारे हैं॥ इनके समान अवर पुत्र दो भूपति घर, उनहुन की छवि पर कोटि मदन वारि डारे हैं। मेरे यज्ञ रक्षण हित भेजे मम साथ भूप, सकल "गुणशील" धाम खलगण संहारे हैं॥ दो०-श्यामल गौर किशोर वर, रामलखन शुभ नाम। मम मख रखेउ बाहु बल, ये छविधर सुखधाम॥ विश्वामित्र के वचनो को सुनकर विदेहजी मन में सोचने लगे कि—दो०- यदि इनने बधि रातिचर मुनि मख रक्षा कीन। मम प्रण पूरण करन हित हम कहँ दर्शन दीन॥ तो अवश्य करुणायतन, परम तत्त्व अखिलेश। धनुष तोरि सिय को वरहिं, ये मेरे हृदयेश॥ द्रुत तोरैं यह शिव धनुष,पूरन हो मम आस। निज कर धोवौं पद कमल, हिय भरि परम हुलास॥ बाद में विदेहजी से कहा कि- कवित्त—सुनिये मुनीश तव चरणन को दर्शन पाय, आज मम भाग जे तो जात नहिं गायो है। श्यामल गौर बन्धु दोऊ, दृग भरि विलोके हम, आनँद हूँ को आनँद धरि रूप प्रगटायो है॥ इनकी मन भावन परस्पर सोहावन प्रीति,जैसे ब्रह्म जीव सहजही में अरुझायो है। हृदय में उठाकर बिठा लूँ "गुणशील" इनहिं,कंजमुख निरखि मन मधुकर लुभायो है॥ चौ०-पुनि पुनि प्रभुहिं चितव नर नाहू। पुलक गात उर अधिक उछाहू॥ मुनिहिं प्रशंसि नाय पद शीशू। चलेउ लवाय नगर अवनीशू॥ सुन्दर सदन सुखद सब काला। तहाँ बास लै दीन भुआला॥ करि पूजा सब बिधि सेवकाई। गये राव गृह बिदा कराई॥ दो० रिषय संग रघुवंश मणि, करि भोजन विश्राम। बैठे प्रभु भ्राता सहित, दिवस रहा भरि जाम॥ चौ०-लखन हृदय लालसा विशेषी। जाइ जनकपुर आइअ देखी॥ किन्तु भगवान् का भय और मुनि के संकोच वस कुछ भी बोलते नहीं हैं,

मन्द-२ मुसुकाते हैं। चौ०--रामअनुज मन की गति जानी। भगत बछलता हिय हुलसानी॥ परम विनीत सकुचि मुसुकाई। बोले गुरु अनुशासन पाई॥ नाथ लखन पुर देखन चहहीं। प्रभु सकोच बस प्रकट न कहहीं॥ कवित्त--नाथ कछू विनती सुनिये, रघुराज चहै लघु बन्धु हमारो। पाय रजाय तिहारि प्रसन्न सों, देखहुँ मैं मिथिलापुर सारो॥ मोहिं लजाय डरै तुमको, प्रभु ताते नहिं बैन उचारो। जाऊँ लेवाय लै आऊँ देखाय पुरी यदि शासन होय तिहारो॥ वार्ता--यदि आपकी आज्ञा हो, तो मैं नगर दिखाकर शीघ्र लौट आऊँ। विश्वामित्रजी की आज्ञा पाकर दोनों भाई नगर देखने गये।

नगर-दर्शन, मैथिल बालकों का लीला पाठ)

जिस दिन विश्वामित्रजी श्रीरामजी और लक्ष्मणजी के साथ श्रीमिथिलाजी पधारे उसके पूर्व वाली रात में एक मैथिल बालक ने स्वप्न देखा, कि मुनि विश्वामित्र जी के साथ श्याम गौर परम सुन्दर दो राजकुमार आये हैं। उसने स्वप्न में श्रीराम जी का दर्शन किया, तभी से उसका मन उस मंजुलमयि मधुर मूर्ति के हाथ बिना ही दाम बिक गया, प्रातःकाल जगने पर नित्य क्रिया करके, अपने सखाओं से मिला, किन्तु उसका मन तो श्याम चित्त चोर ने स्वप्न में ही चुरा लिया था, इसलिये उसको कुछ भी व्यवहार प्रिय नहीं लगता था, तथापि सभी सखाओं से प्रेम पूर्वक मिला। तब अपने स्वप्न की चर्चा की, एक बालक ने पूछा कि बन्धुवर! विश्व में सबसे महान क्या है? आप कृपा करके बतलाइये, द्वितीय बालक ने कहाकि--भाई इस विषय में अनेक मत हैं किन्तु मैं अपना सिद्धान्त प्रस्तुत करता हूँ। कवित्त-कोई कहते हैं बन्धु सबसे बड़ा है ज्ञान, करते महत्ता कोई कर्म को प्रदान है। कोई कहते हैं कि जप तप बड़ा है योग, कोई बताते उपासना महान है॥ किन्तु-मैं तो मानता हूँ सखे सबसे बड़ा है प्रेम तानते हैं अन्य सभी तर्क के वितान हैं। प्रेम में भी "गोविन्द" सम्बन्ध हैं अनेक किन्तु, सख्यसा रँगीला रस और नहीं आन है॥ प्रथम बालक-दो०-ज्ञान शिरोमणि विश्व में, मिथिलापति विख्यात। है ज्ञानी तुम कर रहे, प्रेम प्रेम की बात॥ कल तक थे तुम ज्ञान की, चर्चा रहे चलाय। आज प्रेम को रट रहे कहो गये बौराय॥ द्वितीय बालक-दो०-था गर्वीला ज्ञान का, सत्य कहा हे मित्र। पर मम उर में खिंच रहा आज सजीला चित्र॥ निर्विकार ज्ञानियों का उर नित श्वेत पवित्र। किन्तु बन्धुवर -यह विचित्र है खिंच रहा बहाँ सजीला चित्र॥ कवित्त--लगता है बन्धु एक सुभग सजीला श्याम, वर्ण की न जिसके घन कंज उपमान हैं। परम रसीला तन धारे पट पीला-पीला वयस का किशोर कर धारे धनु बान है॥ केश घुँघुराले तिनपर शोभित है क्रीट मुकुट नयन कजरारे मुख मन्द मुसुकान है। नेह गर्वीला एक "गोविन्द" रँगीला चित्र, छयल छबीला मित्र खींच रहा प्रान है॥ प्रथम बालक दो०-प्रेमिन की वानी वदत, भरे प्रेम उद्‌गार। चलहु भ्रमण कहिं कल्पना

है जावै साकार ॥ कुछ दूर चलने पर प्रकाश पुंज को देखकर आश्चर्य चकित होकर अपने अपने भाव प्रगट करने लगे दो०-बन्धु कहा यहि दिशि लखहु, प्रबल छटा छहराय। कोटि कोटि शत भानु जनु, उये एक सँग आय ॥ द्वितीय बालक-- नहीं नहीं बन्धुवर! दो०--एक ओर छवि श्याम सी, दूजी गौर लसन्त। मनु घन दामिन की छटा, छहर रही छविवन्त ॥ प्रथम बालक- बन्धु कुछ और समीप चलिये। श्रीरामजी एवं श्री-लक्ष्मणजी को देखकर कहा--अहह सखे! देखिये तो ये दोनों कौन हैं। श्लोक---उद्यच्छशांक छबिमान बिमर्दमन्तौ, आस्य प्रभा विजित मंजुल पंकज श्री। स्नेहावलोकन परैर्नयनाभिरामैः, चिन्तापहार करणाबिधौ कुरुतौ सखे कौ ॥

प्रथम बालक दो०-अनुपमेय शोभा सदन, श्याम गौर सुकुमार। अंग अंग प्रतिबारिये, कोटि कोटि शत मार ॥ द्वितीय बालक दो०- क्रीटमुकुट की लटक पै, अटकि रह्यो मन मोर। दृग न पलक डारेउ चहत, उर विच उठत मरोर ॥ प्र०बा०दो०-जुलफ जाल कुँचित कलित, ललित कपोलन भौंर। मानहुँ ललित कपोल रस पीवन हित जुरे भौंर ॥ द्वि०बा०दो०-नयन बड़े कज्जल कलित, श्वेत श्याम रतनार। जियतमरत झुकि झुकि परत, जेहिदिशि देत निहार ॥ प्र०बा०दो०-अनुपमेय आननलख्यो, नाशाशुक अनुहार। तापै एक मोती परयो, अजब सुराहीदार ॥ द्वि० बा० दो०—दूर्वादल द्युति बदन पै, कलकपोल रसपूर। श्याम रंग पै लसे जनु, गदरीले अंगूर ॥ प्र० बालक— हाँ हाँ तभी तो भैया देखिये तो उधर ॥ दो०-मकराकृत कुण्डल श्रवण, हलनि कपोलन भाय। मनहुँ मीन द्राक्षा समुझि, चाहत चोट चलाय ॥ "गोविन्द" अरुणिम अधर विच, रहे दशन छवि पाय। कुसुम कुन्द बिम्बा पुटक, मानहुँ रचे बनाय ॥ प्र० बा० दो०—"गोविन्द" मधुमय अधर पै मुसुकनि की बलिहार। मानहुँ रसिकन हित कठिन, मोहन मन्त्र प्रचार ॥ द्वि० बालक दो०--श्वेत ऊर्ध्व रेखा युगल, तामधि युगल लसन्त। पीत खौर कुंकुम छटा, अतिसय छवि छहरन्त ॥ प्र० बा० दो०--शुकलजबानी नाशिका, शुक तारक मणिवन्त। अब "किशोर" उर बसि गये, श्यामल कुँवर हसन्त ॥ द्वि० बा० दो०-अरुणाधर अतिशय सरस, किंशुक कुसुम समान। बसि "किशोर" नैनन गये, अन्तर अति ललचान ॥ प्र० बालक दो०-श्यामारुण भमभावने, मंजुल मुकुर कपोल; जनु "किशोर" द्राक्षा सरस लेत रसिक मनमोल ॥ कवित्त-मिथिलापुर बासी हम बालक विरागी, जगरूप के न रागी तिनहिं बागी बनाये देत। ब्रह्म ज्ञानियों का गढ़ परमपुरी में देखो, रूप के अगारे आज आगी लगाये देत ॥ चित्त की प्रतीति हमें, सतत रही है मित्र, चरित बिचित्र आज ताहि के दिखाये देत। श्याम गौर तेज की "किशोर" मंजु मूरतिये सारे ब्रह्म ज्ञान की सफेदी ही मिटाये देत ॥ सवैया-रस ही रस के बने दोनों मनो, रसधारें चले बरसाते हुये। अहो बन्धुवर रस ही रस क्या कर देंगे यहाँ, कर क्या रहे ये मुसुकाते हुये। गढ़ ज्ञान का डूब विराग गया, सभी संयम शून्य बनाते हुये ॥ यह श्यामल गौर "किशोर" अरे,

कर देंगे प्रलय रसमाते हुये ॥ भैया मैं अपने मनकी बात बताता हूँ । दो०-लगता मुख चूमि लगालूँ हिये, दृग से महामाधुरी पीता रहूँ । जगतीतल में कुछ और भी है, इस ख्याल से पूर्ण व्यतीता रहूँ ॥ मन मोहन विश्वविमोहन मैं, तुम्हें देखता ही बस जीता रहूँ । भुजडाले "किशोर" सुअंशन में, सदा गाता सुप्रीति कि गीता रहूँ ॥ तब दूसरे बालक ने कहा भैया देखिये तो उधर— द्वि० बा० कवित्त-- लघु बन्धु के अंश पै हाथ धरे, खड़े कैसे त्रिभंगी बनाये हुये । अलकावली काली निराली अहो, मुसुकान को जाल बिछाये हुये ॥ मिथिलापुर को तो अरण्य किया, मृग से पुर लोग फसाये हुये । दृग बाण "किशोर" कमाल करैं, फिर क्यों धनु ये लटकाये हुये ॥ तब प्र०बा० ने कहा कि–कवित्त-का कहिये उरभाव सखे यहि काल सुनो हमरे मन जोई । होय रही मनमें अभिलाष, न भाषि सकौं न सकौं तेहि गोई ॥ सुन्दरता अनुकूल अहै, सम्बन्ध वहू नृप मन्दिर होई । तौ हिलिके मिलिके हँसि के, सबलोग इनहिं कहते बहनोई ॥ बार्ता–बन्धुवर ! यदि श्यामले सलोने से हमारी लाड़िली श्रीकिशोरीजी का व्याह हो जाता, तब तो हम लोगों का जीवन कृतार्थ हो जाता । हम सब इनको प्राणों से भी अधिक प्यार करते । इनके श्रीचरणार विन्दों की सेवा में अपना सर्वस्व न्यौछावर कर देतें ।

तब प्र० बा० ने कहा कि हम लोग इनके निकट चलकर इनका परिचय लें कि ये कौन और कहाँ से आये हैं । हो सकता है कि ये हम लोगों के मित्र बन जायें । तब तो हम सब धन्य हो जायें । सभी बालक निकट आकर रूप माधुरी का पान करने लगे । प्रथम बालक ने हाथ जोड़कर पूछा कि– दो०– श्याम गौर सुषमा सदन, मन मोहन सुकुमार । हे "गुणशील" स्वरूप निधि, कहँ घर द्वार तुम्हार ॥ केहि कारण कहँ जात हो, कहिए मन की बात । निज परिचय बतलाइये, हम तुमपर बलि जात ॥ उस बालक की प्रेम भरी बात सुनकर मन्द मुसुकाते हुए श्रीरामजी ने कहा--दो० मुनिवर विश्वामित्र संग आये मिथिला धाम । अवधपुरी मम ग्राम है रामलखन मम नाम ॥ चक्रवर्ति अवधेश सुत, हम दोनों निज भ्रात । देखन हित मिथिला नगर चले हृदय हुलसात ॥ मिलि जातो यदि मित्र कोइ, देतो नगर दिखाय । हम मनते उपकार बड़, द्रुत गुरुवर ढिग जाय ।, तब प्र० बालक ने कहा कि— दो०–चक्रवति अवधेश सुत, हो तुम दोनों भ्रात । हम धनहीन अबोध शिशु मित्र बनत सकुचात ॥ हम सब परम असभ्य हैं तुम प्रवीण सब भाँति । हम सब साधारण प्रजा, प्रभु उत्तम कुल जाति ॥ यदि नहिं कछु संकोच हो राजकुँवर मन माहिं । तो "गुणशील" स्वरूप निधि, लेवैं मित्र बनाय ॥ छंद – सुनि तिनके बर बैन प्रेमरस भरे मधुर तर । बिहँसे सुषमासदन मदन मर्दन सनेह घर ॥ पुनि बोले श्रीराम बचन अति प्यार सरस तर । वर्धक प्रेम पियूष प्यार पालक प्रमोदकर ॥ दो०--यद्यपि हम अवधेश सुत, पिता महीपन ईश । अखिल विश्व के भूप सब, नावत जिनको शीश ॥ तदपि हमारी रीति यह, सुनो सकल दे ध्यान ।

जाति पाँति गुण दोष तजि, प्रेमी हिय पहिचान ।। सब विधि अपनो वाहिकरि, राखत हृदय लगाय। भेद भाव मानौं नहीं, पालौं रुचि हर्षाय ।। तब वह प्रथम बालक बोला—कवित्त--चक्रवर्ती अवध नरेश के कुमार आप, हम धनहीनों से सनेह क्या बढ़ाओगे। तुम तो हो विमल विवेक सभ्यता के रूप, हम से असभ्यों को निकट क्या बुलाओगे ।। एक 'अश्रु विन्दु" की है सेवा हमारे पास, बोलो इसी धन से कहीं रीझि तो न जाओगे। खोटे हैं, खरे हैं, या भले हैं या बुरे हैं किन्तु सत्य कहो मित्र हमें भूल तो न जाओगे ।। मैं पीड़ा का राजकुँवर हूँ, तुम शहजादे रूप नगर के। विधि विधान से हुई भेंट जो, बोलों साथ कहाँ तक दोगे। यह मिथिला प्रकाश की नगरी, ज्ञान विचिन्तन काम हमारा, किन्तु आज सब हवा होगया, लखते रूप ललाम तुम्हारा। अब तो आशिक हुये तिहारे बोलो साथ कहाँ तक दोगे ।। वर्ण तुम्हारे कर्ण तुम्हारे, औ ये दृग विन्यास तुम्हारे। केश तिहारे वेश तिहारे, ये अरुणाधर प्यारे प्यारे, रूप बजार "किशोर" बिक गया बोलो पाल हमें क्या लोगों ।। मैं पीड़ा का....।।

इस प्रकार वार्तालाप होने के बाद उन बालकों ने श्रीरामजी को प्रणाम किया, श्रीरामजी उन सबों को प्रेम पूर्वक गले से लगाकर मिलें। फिर सभी बालकों के साथ नगर देखनेको चले, नगरमें प्रवेश किया, सभी मिथिलावासी उस अपार रूप सौन्दर्य माधुरी का रसास्वादन करने लगे। कवित्त-छोटे बड़े पुरवासी सबै लखे रूप अनूप सु भूप किशोरन। मेचक कुंचित केश मनोहर चंचल नैनन चित्त के चोरन ।। श्री "रघुराज" चलैं मग मंद अनंद उदोत करै सब ठौरन। खूब खुशी के खजाने खुले पुर धावन धावन खोरन खोरन।। बिज्जु छटा ज्यों घटा घन में, तिमि ऊँची अटान चढ़ीं पुरनारी। धाम को काम बिसारि बधू युग बन्धु बिलोकहिं होहिं सुखारी ।। श्री रघुराज के आनन अम्बुज मे अलि अंबक आशु निहारी। पावैं यथासुर पादप को यक बारहिं भाग ते भूखे भिखारी ।।१।। चौ०--देखन नगर भूप सुत आये । समाचार पुरवासिन पाये ।। धाये धाम काम सब त्यागी। मनहुँ रंक निधि लूटन लागी ।। युवती भवन झरोखन लागीं । निरखहिं राम रूप अनुरागीं ।। कहहिं परस्पर बचन सप्रीती। सखि इन कोटि काम छवि जीती ।।

एक सखी ने सखियों से कहा--दो०-कहाकहौं पुरकी प्रभा, आज नई दरशात। जनु कीनी है विधि सखी, सुषमा की बर्षात ।। तीन लोक में कौन अस, जो सखि कहिय समान। या सुषमा के सदनको, होय जौन उपमान ।। यह सुनकर दूसरी सखी ने कहा-दो०--सखि सुनियत हैं विष्णु अति, रूपवंत भगवान। तिनहिं न काहे पट तरिय, इन समान उपमान ।। यह सुनकर प्रथम सखी पुनः बोली-- दो०-हैं यद्यपि छितिवंत हरि, इन सम रूप निधान। पै आयोग भुजचारि से, किमि पटतरिय समान ।। तब तीसरी सखी बोली--दो०-तौ विधिना को लीजिये, तेजवान गुणवान। वे काहे नहिं ह्वै सकैं, सखि इनके उपमान ।। तीसरी सखी का उत्तर देते हुए प्रथम सखी बोली--दो०-तेजवान

द्विविवान हैं। औ गुणवान महान । पै उनके मुख चारि हैं, अस्तु न भल उपमान ॥ यह सुनकर चौथी सखी बोली कि--दो०-अति समर्थ सब काज में, श्री शंकर भगवान्। क्यों न कहति फिर ऐ सखी, उनको ही उपमान ॥ यह सुनकर प्रथम सखी बोली-- दो०—काह कहति है बावरी, पंचमुखी शिव जान। है सकते कैसे कहो वे इनकी उपमान॥ फिर उस प्रथम सखी ने उन सबके प्रश्नों का एक साथ उत्तर दिया--सवैया—कमलापति के भुज चारि सखी, कमलासन के मुख चार सुनो हैं। त्रिपुरारी जो काम जरावन हार बहू मुखपंच के पूर धनी है॥ शचीपति के अस रूप कहाँ, नहिं देवन में कोउ रूप धनी है। राजकिशोर महाछवि धाम की, सुन्दरता अतिनीक बनी है॥ तब अन्य सखियों ने कहा कि दो०-काह बावरी सी बको, ये अति रूप अमेय। उपमा कैसी जगत में, है न सकत उपमेय॥ वय किशोर सुषमा सदन, श्याम गौर सुखधाम। अंग अंग पै वारिये, कोटि कोटि शतकाम॥ तब तक कोई अन्य पाँचवीं सखी कहने लगी कि--कवित्त--जैसे अवधेश के कुमार प्यार करन योग, ऐसी ही हमारी मिथिलेश की कुमारी हैं। उपमा में विष्णु कहूँ सो तो भुजचारि सखि, विधि को बताऊँ तो वे भी मुख चारी हैं॥ शंकर की समता जो इनकी गिनाऊँ अलि, मन में तू विचारै वे विकट वेषधारी हैं हैं॥ इनके सम येई मैं चित्तवीच आनी वीर, राम घनश्याम सिय बिज्जु द्युतिकारी हैं॥ सुन्दर वर नारी मन काह धौं विचारी तुम, पीतपट धारी पर कोटि काम नारी है। ताड़का को मारि कीन मुखिमख रखवारी इन, मगमें मुनि गौतम की नारि हू को तारी है॥ जब सों निहारी या रूप को पियारी नैन, भई मैं चकोर वह चन्द्र उजियारी है। हौं तो गँवारी नारि बात पै विचारी कहूँ, राम घनश्याम सिय बिज्जु द्युतिकारी है॥

तब छटीं सखी ने कहा—[कवित्त]-आये वीर देशन विदेशन के भूप द्वार, रूप औ स्वरूपवान एक एक भारी है। योग वर जानकी के येई और कोउ नाहिं, येही है अंदेशो प्रण कठिन रावधारी है॥ जोरी कैसी जोरी विधि देखले विसूरीराम प्रीतम बसन्त सिय हरी फुलवारी है। नाहिं नाहिं आली मति मेरी मतवाली भई, रामघनश्याम सिय बिज्जु द्विविकारी है॥ तब सातवीं सखी सखी कहने लगी---कवित्त---ऐरी सयानी तू भई है दिवानी, मैं लीनी सब जानी यह बीर अति भारी है। लाये मुनि ज्ञानी नृप इनको पहिचानी, अति कीनो सनमानी सुठि सदन में उतारी है॥ प्रण भूपति ने ठानी भये विधि वश अज्ञानी, जो शंकर धनु तानी सो पावै सुकुमारी है। ये भंजैं धनु पानी या न खंडै सुनु बानी हैं राम घनश्याम सिय बिज्जु द्युतिकारी है। मन के हरनहार दोऊ हैं कुमार सखि, (किन्तु) साँवरो सलोनो कछु टोनो सो डारी है। होनी जो होवै सो होवै पर साँची कहूँ, इनका पुनि दर्शन हम सबको कठिनारी है॥ हे हो विधाता जो होवैं सियनाथा ये, तो मान यह नाता पुनि अइहैं ससुरारी है। शंकर है साखी क्या बाँकी यह झाँकी है, राम घनश्याम सिय बिज्जुद्युतिकारी है॥ उस सखी की बात सुनकर एक और सखी बोली।

सवैया- तुमने जो कहा सो ठीक सखी अब ध्यान धरो हमरो बतियाँ। सखि येही सुबाहुँ मरीच हते नहिं लागत सत्य किहूँ भँतियाँ॥ रघुराज महाँ सुकुमार कुमार हमार हरैं हिय की गतियाँ। निशि चारिन संग लड़ावत में कस कौशिक की फटी छतियाँ॥ दो०-जन्म अनेकन को सुकृति, जो कछु होय हमार। तौ ब्याहै वर जानकी, सुन्दर राजकुमार॥ सवैया-कोई कह्यो धरो धीरज धाम में राम हमैं सुख बोरिहैं बोरिहैं। सो मिथिलाधिप को प्रण बन्धन, बीर विशेष कै छोरिहैं छोरिहैं॥ श्रीरघुराज समाज के मध्य महीपन को मद भोरिहैं मोरिहैं। श्याम महाअभिराम बिनाश्रम शम्भु शरासन तोरिहैं तोरिहैं॥ विश्व की सुन्दरताई समेटि कै, चन्द्रसुशीलता तासु मिलाई। कोमलता लियो कल्पलता की, क्षमाक्षिति छीनि दियो तेहि छाई॥ जौन विरंचि रचीं सिय मूरति, श्री "रघुराज" भरी निपुणाई। सो विधि साँवरी मूरति सोहनी, मोहनी मूरति दोन्यों बनाई॥ एक सखी ने कहा कि हम सब तो रूप की रसिका हैं किन्तु इन राजकुमारों का तो रूप ही ऐसा अलौकिक है कि--चौ०-कहहु सखी अस को तन धारी। जो न मोह यह रूप निहारी॥ तब किसी सखी ने कहा-- चौ०-ये दोऊ दशरथ के ढोटा। बाल मरालनि के कल जोटा॥ मुनि कौशिक मख के रखवारे। जिन रन अजिर निशाचर मारे। श्यामगात कल कंज विलोचन। जो मारीच सुभुज मद मोचन॥ कौसल्या सुत सो सुख खानी। नाम राम धनुसायक पानी॥ गौर किशोर वेष वर काछे। कर शर-चाप राम पाछे॥ लछिमन नाम राम लघुभ्राता। सुनु सखि तासु सुमित्रामाता॥ देखि रामछवि कोउ असकहई। जोग जानकिहि यहवर अहई॥ जौं सखि इनहिं देख नरनाहू। पन परिहरि हठि करइ बिबाहू॥

वार्ता तब किसी सखी ने कहा कि श्री जनक जी ने इनको देखा है, वह इनको पहचानते हैं, मुनि विश्वामित्त के साथ आदर पूर्वक इनका बहुत सनमान किया है। चौ०-सखि परन्तु पन राउ न तजई। विधि बस हठ अबिबेकहि भजई॥ तब किसी सखी ने कहा कि यदि विधाता सबको उचित फल देने वाले भले हैं, चौ०-तौ जानकिहि मिलिहिं वर एहू। नाहिन आलि इहाँ सन्देहू॥ जौं विधि बस अस बनै संजोगू। तौ कृतकृत्य होहिं सब लोगू॥ यह सुनकर कोई और सखी कहने लगी बहिन यह ठीक है कि यह साँवरे राजकुमार हमारी लाड़िली श्रीकिशोरीजी के योग्य हैं किन्तु बीच में शंकर जी का कठोर धनुष भी तो व्यविधान हो रहा है। क्योंकि श्यामले राज-कुमार अभी किशोरावस्था में परम सुकुमार हैं। ऐसा सुनकर- सवैया)- कोई कही मटकाइके नैन, चढ़ाइ के भौंह सुशीश डुलाई। तू ना सुनी री प्रभाव कुमार को, भाषति हौं जो पै मैं सुनि आई॥ येई अबै गये गौतम की कुटी, सो इनके पग की रज पाई॥ "श्रीरघुराज' भयो बड़ काज, अहल्या सु पाहन ते प्रगटाई॥ अस्तु आप सब यह संकोच न मानिये कि परम सुकुमार श्याम सुन्दर से शिव धनुष नहीं टूटेगा॥ आप सब निश्चय

ही मानिये कि ये साँवरे राजकुमार ही शिव धनुष तोड़कर श्रीजानकीजी को वरण करेंगे। परस्पर में सखियाँ इस प्रकार वार्तालाप कर रहीं हैं राजकुमार धीरे धीरे आगे चले जारहे हैं। अट्टालिकाओं पर से पुष्प वृष्टि करती हुई वे सब गाती हैं—

'वर्षहिं सुमन नगर नागरिया। करि उद्देश्य रामरघुवीरहिं, चितवहिं चतुर गुणन आगरिया। प्रीति रीति पहिचान मुसुकि मुख, निरखत श्याम सुभग आटरिया। लखि लखि मिथिला बाम प्रहर्षहि पूजहिं नेह नयन गागरिया। जहँ जहँ जात कुँअर दशरथ के, तहँ तहँ परमानँद पागरिया। डगर-डगर प्रति जगर-जगर जग, धूम मची पुर सुख सागरिया। कहर-कहर कर हृदय सबहिं को, ज्ञान भवन मे रस आकरिया। हर्षण प्रेम प्रवाह बहे सब जड़ चेतन जग ते जागरिया॥

अहह तात अवलोकहु कैसी अनुपम बनी बजार। अनुपम बनी बजार यहाँ की शोभा अकथ अपार॥ ऊँचे ऊँचे भवन सोहावन, राजत दुहुँ दिशि अति मनभावन, चित्र विचित्र ललित छवि छावन। मध्य मार्ग विस्तृत सुरम्य, तर उड़त सुगन्ध फुहार॥ महलन ऊपर लसत अटारी रुचिर झरोखा रचे सँवारी तिनमें खड़ी लखहिं सुकुमारी। हरषि सुमन वर्षावैं मृदुहँसि मेरी ओर निहार॥ भैया इधर तो देखिये-निज निज सबहिं दुकान सजाई। अमित द्रव्य मणि रत्न सोहाई॥ सकल बस्तु बिन मोल बिकाई॥ कोटि कोटि शत धनद यहाँ की सम्पति पर बलिहार॥ शुचि सुशील सुन्दर नरनारी। ज्ञानी परमतत्त्व अधिकारी। भाव सहित सेवत त्रिपुरारी॥ बिमल विराग हृदय में सबके भरे भक्ति भण्डार॥ भैया यहाँ का वैभव ऐसा क्यों न हो, क्योंकि—श्रीविदेह नृप यहि पुर फेरे जिनहिं मुनीश रहत नित घेरे, सुनत विविध उपदेश घनेरे। शुकसनकादिक नारदादि मुनि आवत जिनके द्वार॥ रच्यो नगर अतिसय मनहारी। याहि निरखि मैं भयों सुखारी। पायेउँ मन में मोद अपारी। ऐ 'गुनशील' यहाँ की सुषमा बरणि को पावै पार॥ सखाओं के साथ नगर देखते हुये श्रीरामजी हलवाइयों की बाजार में गये, तो कोई हलवाई दूर से ही देखर बोला—

कवित्त-गर्मागर्म पूड़ी औ कचौड़ी नर्मानर्म नाथ खाइये कुमार डाला अनुपम मशाला है। पेड़ा औ वरफी कलाकन्द औ गुलाब जामुन बालूशाही खुर्मा भी अनेक रंग वाला है॥ लड्डू दलवेशन औ मोतीचूर मगदल हैं नुकती नुकीली अभी सीरे में डाला है। पापर अनरसे हैं तिलौरी औ दनौरी अवलोको माल बनो शुद्ध उत्तम निराला है॥ श्रीरामजी आगे बढ़े तो वस्त्रों की बाजार में पहुँचे, देखकर एक बजाज कहने लगा—कवित्त—देखो महाराज कैसे बस्त्र हैं सजाये आज सासन गुल लेट जामदानी थान लाये हैं। नैनू औ सैनू गुलबदन जरी बफ्त नाथ कीन खाप जाली लेट सासने सजाये हैं॥ ढाँका का मलमल अति बाँका है लखो देव आपके हेतु दैके आर्डर मँगाये हैं। लीजिये दया निधान मोको निज दास जानि, अहोभाग मेरे जो आप यहाँ आये हैं॥ श्रीरामजी

आगे बढ़कर पुस्तकालय के सामने गये, दूकानदार कहने लगा--कबित्त -वेद औ पुराण औ अगणित पुस्तकें नाथ, शुद्ध साफ सुन्दर अनेकन सजाई हैं। चालीसा अनेक औ नाटक सब नये नये, सिंहासन बतीसो औ पचीसी भी लगाई हैं॥ आयुर्वेद धनुर्वेद खोजि खोजि वेद औ लयेद भाँति भाँति कई मेल की मँगाई हैं॥ इस प्रकार नगर देखते हुए आगे बढ़े तो लक्ष्मणजी ने कहा--दो०--अटा अटा पर तियन की, कैसी छटा दिखाय। मनहुँ घटा घन विज्जुगण, प्रगटत औ छिपि जाय॥ श्रीरामजी एवं श्रीलक्ष्मणजी सखाओं के साथ समस्त नगर देखते हुए, चौ०-पुर पूरब दिशि के दोउ भाई। जहाँ धनुष मख भूमि बनाई॥ पुर बालक कहि कहि मृदु बचना। सादर प्रभुहिं दिखावहिं रचना॥ श्रीरामजी ने बालकों से पूछा-- रतन पाँति दरशात भल, बिच बिच लाल प्रवाल। केहि हित ये वर वेदिका, बिरची जनक भुआल॥ शुचि सुन्दरता सुघरता, अतिसय रहे पसार। केहि हित ये चित चेत सों, बिरचे रचे अगार॥ सुर बिमान से लगतये, जगत प्रभा जनु भान। कौन हेतु निर्मित भयो, अति उचान मंचान॥ सुठि शोभा लोभत मनहिं, छोभत छबि लखि काम। कौन हेत अभिराम ये, बिरचे कंचन धाम॥

एक बालक श्रीरामजी का हाथ पकड़कर कहता है कि-सवैया--कैसी फराक फबी छबि सों, कवि सों उपमा नाहिं जात बिचारी। मोहि लिए मुनि लोगन के मन, मंजुल सों मुकता गजकारी॥ शंभु शरासन थापिबे को, लखिए शुभ वेदिका चारु सँवारी। प्यारी लगै तिहुँ लोचन को, यह प्यारी छटा अवधेश बिहारी॥ दूसरा बालक राजत उन्नत मण्डली मंच भलो गज दन्तमई शुभ रासी। देखि सिहात सबै "ललिते" छिति फैलि रही महि चन्द्रप्रभासी॥ आइ इतै अवलोकिय राम जू, चैन कि मानो मैन प्रकासी। राज समाज बिलोकिबे को सबै, बैठिहैं आय यहाँ पुरबासी॥ तीसरे बालक ने कहा बन्धुवर इधर तो देखिये-- सवैया—चित्त चुरावनहार भले, मणि चित्रित चित्र बने अभिराम हैं। त्यों "ललिते" अति ऊँचे लसें, निजहाथन सों बिरचे जनु काम हैं देखि थके विधि से हरसे बहुँ, आनन्द ये उपचावत राम हैं। देखिबे को महिपालन को पुर वालन हेतु बने यह धाम हैं॥ दो०-बाघम्बर मृगचर्म ये, बिछे आसनन माहिं। जहाँ बैठि ऋषि मुनि निरखि, अति आनन्द समाहिं॥ चौथे बालक ने कहा-- दो०--कंचन मणिमय महल ये, सुषमागार अपार। जहाँ जननियुत जानकी सखिन समाज सम्हार॥ बैठि लखैंगी धनुष मख, हे रघुवीर सुजान। नृपविदेह समकक्ष नृप, तिन हित ये मंचान॥

धनुषयज्ञ भूमि देखनेके बाद श्रीरामजीने बालसखाओं से कहाकि बन्धुवर अब हम दोनों भाइ श्रीगुरुदेवजी के पास जायेंगे आप सबभी अपने अपने घरको जाइये। यह सुनकर बालकों ने कहा कि मित्रवर आपने समस्त नगर भ्रमण किया, किन्तु हमारे घर पर पधार कर उसे पावन नहीं बनाया, अस्तु आप कृपा करके हमारे घर

पर पधारिये। बालकों भाव के प्रेम वश श्रीरामजी उन सबके घर गये, उनका स्वागत स्वीकार किया। तदन्तर उनसे विदा माँगी, तब सब कहने लगे कि–सवैया--छोड़त काहे प्रभू निज दासन, का अपराध हृदय में विचारो। सेवा करैं हम साथ रहैं, अवलोकैं सदा मुख चन्द्र तिहारो॥ कैसे जियें अवलोके बिना, प्रभु का अपराध हमार निहारो। आप हैं दीन दयाल कृपाल, कृपा करि बैन न ऐसे उचारो॥ दूसरे बालक ने कहा कि सवैया—ये प्राण मुखाम्बुज का तुम्हरे करि ध्यान सदा मतवाला रहूँ॥ हृदय से लगाके तुमहिं छवि धाम, मिटाता हृदय की ज्वाला रहूँ॥ मुख चन्द्रहिं बारहिं बार विलोकि, पिन्हाता सुअश्रु की माला रहूँ। इस रूप की मंजुल माधुरी का, दिनरात पिए रस प्याला रहूँ॥ तीसरे सखा ने कहा कि--लखता यही रूप तुम्हारा सदा छवि सिन्धु में नित्य नहाया करूँ। नख से सिख में सिख से नख लें, दृग युग्म "किशोर" घुमाया करूँ। कर कंज गहे मिथिलापुर के नित नूतन दृश्य दिखाया करूँ। महामोद में मित्र भुलाया रहूँ, हँसता तुम्हें खूब हँसाता रहूँ॥

तब श्रीरामजी ने कहा; भैया बालक वृन्द सुनो! सवैया—जाता हूँ बन्धु तुम्हें तजिके, पर प्राण तुम्हरे ही साथ रहेंगे। जिनको एक बार गहा तो गहा, अब हाथ वे मेरे ही हाथ रहेंगे॥ अपनाया जिन्हें उर लाया जिन्हें, उनका जपते गुण गाथ रहेंगे। अब भूलेंगे कैसे गोविन्द तुम्हें, पद की रज से सदा माथ रहेंगे॥ सुनिये बन्धुवर–मुझको कोइ ब्रह्म अखण्ड कहे, निज दासों के दास का दास हूँ मैं। जिसने अपना इकबार कहा, अपनाता उसे सहुलास हूँ मैं॥ **मुझे बाँध सकै न तपी तप से,** बँधता इक प्रेम की पाश **हूँ मैं। सर्वस्व लुटाके न "गोबिन्द" तोष, सदा रहता तिम पास हूँ मैं** ॥ बन्धु न भय मोहिं है मृगराज सों, दैत्यबली बहुतेरे सँहारे। इन्द्र उपेन्द्रहु से भय नाहिन, कालहु कोटिन काहि प्रचारे॥ भय नहिं रंच न तात न मात सों, भय नहिं होत भये दुख भारे। पै भय होत "गोविन्द" गये, गुरुदेव समीप अबेर बिचारे॥ किसी बाल सखा ने कहा--दो०--हम सबको तजकर प्रभो, आप मुनी ढिग जाय। लहि दुलार मुनिराज को जैहो हमहिं भुलाय'। तब श्रीरामजी ने कहा—

सवैया—मित्र मन मानस में पाकर सनेह नीर, कमल समान सदा फूले हैं औ फूलैंगे। चक्रवर्ती ताज क्या तीन लोक राजसुख, प्रेम के मुकाबले न तूले हैं न तूलेंगे॥ "बिन्दु कवि" अनोखे चोखे भोले भाले भक्तों के, टेढ़े सूधे बचन कबूले हैं कबूलेंगे। कारबार जगके हजार बार तजे किन्तु, प्रेमियों के प्यार को न भूलेहैं न भूलेंगे॥ इस प्रकार चौ०--कहि बातें मृदु मधुर सोहाई। किये बिदा बालक बरियाई॥ दो०-- सभय सप्रेम बिनीत अति, सकुच सहित दोउ भाइ। गुरु पद पंकज नाइ शिर, बैठे आयसु पाय॥ शीश सूँघि कर फेरि शिर, दै अशीष उर लाय। अति सप्रेम मुख चन्द्र लखि, परमानन्द समाय॥ पूछत मुनि लालन कहो, कैसो मिथिला धाम। हाट बाट अरु धनुषमख रचना

रची ललाम ॥ तब श्रीरामजी ने हाथ जोड़कर कहा--काह कहौं छवि नगर की सुषमा-गार अपार। नर नारी सब अति सुभग, रूप शील उजियार ॥ नगर डगर अरु भवनवर बहुधर भरे सुनीर। ललित लतायुत विटप बहु, तिन पर बोलत कीर ॥ छंद-रंगभूमि अति सुभग जहाँ मख भूमि बनाई। तहँ की रचना ललित कलित को सकै बताई ॥ स्वर्ण रतन मणि जड़ित विपुल वर भवन बनाई। जहाँ बैठि पुर नारि लखैं धनु मख हरषाई ॥ मध्य बिमल वेदिका जहाँ धनु धरेउ बनाई। अनुपम धनु मखशाल ज्योति जगमग प्रगटाई ॥ इस प्रकार वार्तालाप करते हुये सूर्यास्त हो गये। तब सभी ने सन्ध्या बन्दन किया। प्राचीन इतिहास एवं कथायें सुनते आधीरात बीत गई। चौ० मुनिवर शयन कीन तब जाई ॥ लगे चरण चापन दोउ भाई ॥ जिनके चरण सरोरुह लागी। करत विविध जप जोग विरागी ॥ ते दोउ बन्धु प्रेम जनु जीते। गुरु पद कमल पलोटत प्रीते ॥ बार बार मुनि आज्ञा दीनो ॥ विश्वामित्रजी ने कहा वत्स श्रीरामभद्र एवं लक्ष्मणजी आप दोनों भाई अब शयन करिये आप दोनों बालक हैं, नगर भ्रमण में श्रम होगया होगा, हम तो यहीं बैठे रहे अस्तु हमें कुछ भी थकावट नहीं है। तब श्रीरामजी ने कहा, नहीं नहीं गुरुदेव हमें श्रम नहीं हुआ. हम तो बालकों के साथ श्रीअवध में भी खेलते ही रहते थे। आप अवश्य आश्रम से यहाँ तक आने से श्रमित हो गये होंगे। दो०-नाथ नहीं श्रम मोहिं कछु, परसत प्रभु पदकंज। पावत परमानन्दमन उठत मनोरथ मंजु ॥ नाथ हमारे बड़भाग गुरुपद सेवा पाय। हौं सब भाँति कृतार्थ अब सोइय प्रभु हरषाय ॥ पुनः विश्वामित्रजी ने कहा वत्स अब सो जावो। तब गुरु चरणों में प्रणाम करके श्रीरामजी शयन किये, तब श्रीलक्ष्मणजी चरणसेवा करने लगे। सवैया--पदकी रज लै कहुँ शीशभरैं कबहूँ पद पंकज शीश धरैं। मन माहिं विचार करैं क्षण ही क्षण, को जग मोसम मोद भरैं ॥ परिचारक लाखन हैं घरमें, तिनको सुख लूटि हमें अफरैं। भरतौ रिपुसूदन श्रीरघुराज, न आज बराबरी मोरि करैं ॥ तब श्रीरामजी ने कहा भैया लक्ष्मण अब आप भी सो जाओ। रात्रि बहुत व्यतीत हो गई है। चौ०-पुनि पुनि प्रभु कह सोवहु ताता। पौढ़े धीर उर पद जल जाता ॥ दो०-उठे लखन निशि विगत सुनि, अरुन सिखा धुनि कान। गुरु ते पहिले जगतपति, जागे राम सुजान ॥ ब्रह्ममुहूर्त में मुर्गा का शब्द सुनकर श्रीलक्ष्मणजी उठकर श्रीरामजी के चरणों में मस्तक रखकर प्रणाम किये, श्रीरामजी ने दुलार पूर्वक अपना कर कमल श्रीलक्ष्मणजी के शिर पर फिराते हुए हृदय से लगाकर प्यार किया। पुनः दोनों भाइयों ने श्रीविश्वामित्र जी को प्रणाम किया. मुनि के मनमें वात्सल्य की बाढ़ आ गई। दो०-निरखि राम मुखकंज छवि, सादर हृदय लगाय। शिर सूँघत अति प्रेम सों मुख चूमत दुलराय ॥ फेरत शिर पर कर कमल, दै अशीष हर्षाय। मंगल मन्त्र उचारहीं, परमानन्द समाय ॥ चौ०-सकल शौच करि जाय नहाये। नित्य निबाहि मुनिहिं सिर नाये ॥ समय जानि गुरु आयसु पाई। लेन प्रसून चले दोउ भाई ॥ विश्वामित्र

जी ने श्रीरामजी से कहा- दो०--हरि पूजन हित फूल फल, तुलसी दलहिं उतार। ले आइय नृप बाग सों, प्रमुदित रामकुमार॥ चरणविन्द गवनत भये, रामलखन दोउ वीर। करत परस्पर बतकही, गये बाग के तीर॥ चौ०-भूप बागवर देखेउ जाई। जहँ बसन्त ऋतु रही लोभाई॥ श्रीरामजी ने श्रीलक्ष्मणजी से कहा--दो०-लखन लखो यह बागवर, सब जग में छिवुवन्त। बास करत या में सदा, मानो सुभग बसन्त॥ यह सुनकर लक्ष्मणजी ने कहा--दो०-अति अनूप छिविवन्त यह, वरणत सुमति सकाति। पवन लगे छहराति छवि, ललितलता लहराति॥

सवैया--तन दीने वितान सों बेलि बढ़ी, उड़ैं भौंर हजारन डारन में। "ललिते" तरुपुंज लसें बगरे सगरे जगके सुखकारन में॥ निकसे विकसे नवपल्लव ये, प्रगटे सुखमान के जारन में। टपके मकरन्दन सों भपटे, लचके ये प्रसून के भारन में॥ तब श्रीरामजी ने कहा--दो०-गुलमलता विकसे लखो, करैं सुमन आधीन॥ भौंर गिरैं मद मत्त यह, फिरैं चमेलिन लीन॥ सवैया- दौर धरैं वर मंजरी मंजु, करैं बहु प्रीति पराग भरे भिरैं। त्यों "ललिते" लखि लोनी लतान, वितान तने गुलदेंचन से घिरैं॥ चोप से चाव चढ़े चित चंचल, चाँदनी चारु चमेलिन पै फिरैं। मोद भरे अति गैशन पै, अति लौसन सों गुलसौसन सों घिरैं॥ तब लक्ष्मणजी ने कहा नाथ इधर तो देखिये। सवैया--बगरे जड़े माणिक सों बरफूलि, रहे भले गुलमलता गँसिकै। डगरे गिरे भौंरे भरे रजपीत, भये बसके रसके रसिकै॥ भुपरे झुकेये लपके "ललिते" जो रहे चहुँ ओरन सों लसिकै। मन कैसे कढ़े बढ़े आनन्द सों, गुलचीन न पेंचन में फँसिकै॥ तब श्रीरामजी बोले-- दो०- सुभग साँवरी गैश यह, निरखत मन हर्षात। या अनूप वर बाग की, छिवि बरनी नहिं जात॥ सवैया--बोलती कोयल माती जहाँ, बहु भाँतिन बोलिन हीसों घनो रहै। त्यों "ललिते" मधु लोभी मलिन्द, भरे बड़ गुंजन ठाठ ठटो रहै॥ कोऊ नहीं उपमान तिहूँपुर, शोभन सों सुखमान सनो रहै। श्रीमिथिलाधिप के वर बाग में वारहु मास बसन्त बनो रहै॥ पुनः लक्ष्मणजी बोले, दो०-लखो नाथ अनुराग युत, अति सुषमा को जाल। लखे ताल छवि माल सह, बिहरै, बिपुल मराल॥ सवैया- भूमे झुके तरुपुंज रसाल तमालन जालन में छिवि साजैं। त्यों "ललिते" कचनार अनार प्रसूनन भार अभार सो राजैं। कोकिल कीर कपोतन के कुल, बोलन सों मधुरी ध्वनि साजैं। श्रीमिथिलाधिप के बर बाग में, बारहु मास बसन्त बिराजैं॥

तब श्रीरामजी ने कहा-सवैया—मोद बढ़ाय रही उर में, यह शोर घनो करै कोयल माती।। फूले पराग खिले तरु पै, घुमड़ै घनी शोभन भौंनन पाँती॥ रागिनी जाग रही "ललिते", सुनि क्वैलिया कूकन को हरषाती। पाइके धीर सुनीर समीर लखो यह कैसी लता लहराती॥ श्रीरामजी के बचनों को सुनकर लक्ष्मणजी बोले- कवित्त--बगरे लतानयुत सिगरे विटपवर, सुमन समूह सोहैं आगर सुवेश को। फूलन के भार डार

द्वार पै अपार छिति, कोकिल की कूक हरै त्रिविध कलेश को ॥ कहत बनैना कछु 'ललिते' निहारो इतै, उमड़ि परो है सुख मानो देश देश को । जनक सो राजत जनक जू को बाग तो यह, नन्दन सो लागै मन नन्दन सुरेश को ॥ श्रीरामजी ने कहा हाँ हाँ भाई ऐसा ही है । इधर तो देखिये-कवित्त--विकसे बनज बान बगरि बहार वारे, बोलत विहंगबर बिपुल सुबेले लेत । भारी भीर भौंरन भरी भरमाई भूमि भरे, भार भौंरे भये आनन्द सुमेले लेत ॥ मणिन सँभारे घाट मोहन मुनिन मन, ललित अनूप रूप बारि छिति फैले देत । सुषमा समूह सरस त सरिस मानसर, सम्पति समूह सुख सुषमा सकेले देत ॥ यह सुनकर लक्ष्मणजी बोले-दो०-अनुपम छवि यह बाग की, बरनि को पावै पार । दूरिहिं ते सुषमा निरखि, प्रगटत मोद अपार ॥ दोनों भाई बाग के प्रधान द्वार पर पहुँचकर चारों ओर देखकर कहते हैं कि, दो०--को माली यह बाग को, अधिकारी छितिवान । सो जो कहै गुरु हेतु तो, लेहिं फूल मतिमान ॥ श्रीरामजी का सुधा विनिन्दक सरस प्रिय मधुर शब्द सुनकर माली आया, और हाथ जोड़कर बोला, सवैया--माली हूँ मैं मिथिलाधिप को, सो करौं नित फूलन की रखवारी । राजकुमार कहाँ के लला, पगधारि पवित्र कियो फुलवारी ॥ छैल छबीले नुकीले दोऊ आँग अंग पै कोटिन काम है वारी । तुलसीदल पुष्प उतारि जिते, जोइ दीजै रजाय सो लावौं उतारी ॥

श्रीरामजी बोले—सवैया-एहो महीपति माली सुनो, गुरुपूजन के हित फूल उतारन । आये हतै हम बन्धु समेत, उतारैं प्रसून न होइ निवारन॥ कैसे कहे बिन फूल चुने, मिथिलेश की वाटिका के मन हारन । बस्तु बिरानी को पूछे बिना, "रघुराज" जु लेव न वेद उचारन ॥ तब माली ने हाथ जोड़कर कहा—सवैया-तुम श्यामल गौर सुनो दोउ लालन, आये कहाँ ते उरायन में । इत कौन पठायो दया नहिं लायो, सु फूलन तोरि उपायन में ॥ मिथिलेश की वाटिका में विहरो, हियरो हरि हेरि सुभायन में । "रघुराज" कहीं गड़ि जैहैं लला, पुहुपान की पाँखुरी पायन में ॥ यह सुनकर श्रीरामजी बोले-- दो० हम कुमार अवधेश के, आये मुनि के साथ । गुरुपूजन हित पुष्प दल, तोरैं अपने हाथ ॥ माली ने कहा--सवैया-कैसे को तोरौ प्रसून लला, इन कोमल हाथन टूटिहैं ना । बेली लतान की कंटक जो, गहैं पीत पिताम्बर छूटिहैं ना ॥ चाँदनी चन्द मुखार पड़ैतो, कमोदिनि की पौ फूटि है ना । अंग गुलाब के रंग लखे, अलि कैसे कहें रस लूटिहैं ना ॥ दूसरा माली बोला—दो०-कैसे तोरहुगे सुमन, सुमन न मानत भोर । कंटक कोमल करन में गड़ि जैहैं बरजोर ॥ तीसरे माली ने कहा—कवित्त- चन्द्र अनुहार तो निहार के मुखारविन्द, बावरो चकोर कही चोट न लगावहीं । बिम्वाफल के समान अधारन की ललाई देखि, आय आयकीर कहीं चोंच ना चलावहीं ॥ साँवरो बदन श्याम घनके समान मान, मोर हू लतान में शोर ना मचावहीं । टूटैं कैसे कोमल करन सों कमलफूल, ताके क्यों कमल फूल भौंर पुंज धावहीं ॥ चौथे माली ने कहा – भैया इन राजकुमारों के

हो अंगमें मुझे तो एक विचित्त फुलवारी जैसी फूली दीखती है, आप भी ध्यान देकर देखिये। कवित्त चोटी बसन्त भाल भृकुटी बसन्त, नैन नासिका बसन्त औ कपोल बिलसन्त हैं। बेलिन बसन्त औ चमेलिन बसन्त, गुलखेर में बसन्त मुचुकुन्द में बसन्त हैं॥ पगमें बसन्त औ जंघमें बसन्त, पुनि अधर में बसन्त ग्रीवा माममें बसन्त है। नखपै बसन्त नखसिख पे बसन्त, कौन पावै आदिअन्त राम अंगन बसन्त है॥

पाँचवा माली बोला--गजल-कोमल किशोर गात हो अवधेश दुलारे। फूले फले हैं फूल सभी अंग तुम्हारे॥ लाला करै कसाला है मुख लाल के ऊपर। सम्बुल को ऐंठ होती है लखि केश घुँघारे॥ बेला जुही चमेली नखों पर हैं वारियाँ। नरगिस को नहीं चैन तेरे नयन निहारे॥ भृकुटी कमान देखिके डर खाते हैं टेसू। भौंरे गुलाब छोड़ कपोलों पै सिधारे॥ अब फूल कौन बाकी है कहिये तो लाल जी। तोड़ोगे उनको कैसे जो हैं आपसे हारे॥ गजरे बनाके हमने धरे हेतु तुम्हारे। कीजै कबूल फूल दया करके हमारे॥ दो०-हम सब सेवा में खड़े, सेवक भूप किशोर। जो-जो आयसु दीजिये, सो-सो लावैं तोर॥ छठाँ माली बोला--सवैया-तोड़ेंगे आप तो एक अनार पै दन्त निहार हजार गिरैंगे। जंघ पै दंग रहैं कदली, नहिं काटे बिना फिर फेरि फरैंगे॥ अम्ब लबम्ब कदम्ब नरंग, सो अंग के रंग पै लाज मरैंगे। कौन को तोड़िहौ छोड़िहौ जौनको, डाह बिथा सब झार झरैंगे॥ सातवें माली ने कहा--सवैया-कहो कुन्द कली कचनार कदम्ब, कमोदिनि काम कनैर गनाऊँ। मौलसिरी और मोतिया मालती, सूँगिया मोगरा माला मगाऊँ। गूँथूँ गुलाबन के गजरे, गुलदाऊदी गेंदेके गेंद बनाऊँ। चाँदनी चम्प चमेलिन चारु, चहैंचित जोई सोइ चुन लाऊँ॥ आठवाँ माली बोला--अवलोकत ही नख पाँतन को बक पाँत सबै सरसे दुरिहैं। कच घूँघर वाले बिलोकत ही, अलि पुष्पन से मुँह को मुरिहैं॥ यह लाल कपोल को देख लला, लतिकान से से पुष्प सबै गिरिहैं। अँग अँग निहारि के फूल झरैं, फिरि रावरे काह कहो तुरिहैं॥ फूली लतान ठठोली करैं, बाँह अंचल को अरुझैहैं कहूँ। श्यामछटा लखि श्यामघटा भ्रम, मोर समूह उमैहैं कहूँ। कोमलगात प्रसूनन से रवि तेज लगे मुरझैहैं कहूँ। पाँखुरी पुष्प गिरैं झरिके, अड़िके पग में गड़ि जैहैं कहूँ॥ लखे मुख कंजन को भ्रम जानि चहूँ दिशिते अलिना मड़ि जायँ। लखे अधरावर बिम्बन को, शुक आपस में न कहूँ लड़ि जायँ॥ सुने वरबीन बैन भले, "ललिते" मग में मृग ना मड़ि जायँ। लला करकोमल पाँखुरी तीखी गुलाबनकी न कहूँ गड़ि जायँ॥ नववाँ माली बोला:-

दो०-सुमन तोरि हैं आप क्यों, हम सब तुम्हरे दास। भरि लोने दोने विविध, लैआऊँ प्रभु पास॥ सवैया-- हमेंडर लगता है कि लखे मुखमंजु सुधाकर जानि, चकोर न चोट कहूँ करि जायँ। विलोचन हू वर कंजन मानि, कहूँ भ्रमरावलि ना मड़ि जायँ॥ सिरीस प्रसून झरे जे परे, पगमंजुल मे न दबे गड़ि जायँ। गुलाब रसाल छुये करमें, कहुँ छाल अँगूरिन ना परिजायँ॥ कवित्त—द्रुमन लतानन में मिले

हैं मलिन्द वृन्द, चन्द्र की किरन सी सुहात चारु चन्दनी। भिकुर झकोर मन्द मारुत सुगन्धयुत, ऋतुकेलि कोकिला किलोल कल मण्डनी॥ सरस रसालवर बेलि फैलि रही तैसी, ललित प्रवालसो मनोज ओज मण्डनी। वाटिका विलोकिये ये सुन्दर विदेह बारी कैसी "भूषण" सों अनूप रूप है बनी॥ मालियों की इस प्रकार भाव भरी बातें सुन श्रीलक्ष्मणजी ने कहा—सवैया-कर खैंचि शरासन बान भले, सब कठिनता से भरेइ रहैं। कर अंगुल तान सँभारि सदा, मृदुतानि को दूर करेइ रहैं॥ तन कौच को धारि सदा रन में, निज शत्रुन साथ अरेइ रहैं। द्विज काज गुरू के निरालस हैं, कुल धर्म की वानि धरेइ रहैं॥ तब माली ने कहा—राजकुवँर हम आपके सेवक हैं, यह तो हमारी सेवा है, आपकी आज्ञा के ही अनुसार हम फूल तुलसीदल और फूलों की मालायें सेवा में प्रस्तुत करेंगे। यह सुनकर श्रीरामजी ने कहा--दो०-कहत ठीक सब बैन तुम, हो माली होशियार। काज गुरू के हाथ निज लैहैं फूल उतार॥ कवित्त--मालाकार सुनो वेदशास्त्र की मर्याद यह, इष्ट पूजन हेत सौज निजकर सजाइये। पावनता रुचिरता मधुरता हृदय मझ धारि, आलस औ प्रमाद को दूर भ्रांति भगाइये॥ निजकर प्रसून जल तुलसीदल फल उतारि, शुद्ध भावना से रचि के भोग को लगाइये। (इसलिये भाई मालाकार) पूजन हित गुरुवर के निजकर हम लैहैं फूल, ऐहो "गुणशील" अब देर ना लगाइये॥ दो०--सुनि इमि रघुवर के बचन, आपस में बतराय। बोले माली कीजिये, जो प्रभु के मन भाय॥ किन्तु इस वाटिका में प्रवेश करने वालों के लिये नियम है कि वह श्रीकिशोरी जू की जय बोलकर अन्दर प्रवेश करें। अस्तु आप लोग भी श्रीकिशोरीजू की जय बोलिये फिर अपनी रुचि के अनुकूल फूल फल तुलसीदल उतारिये।

तब श्रीलक्ष्मणजी ने कहा कि—दो०--हम रघुवंशी वीरवर, सुयश जगत उजियार। जय नहिं बोलत तियन की यह मर्याद हमार॥ तब माली ने कहा ठीक है, आप स्त्रियों की जय नहीं बोलते, किन्तु यह बाग तो श्रीकिशोरीजू का। यहाँ की मर्यादा का पालन करना आपको उचित हैं। क्योंकि आप राजकुमार हैं, आपको राजनीति का भली भाँति ज्ञान है। तब आप यहाँ की मर्यादा का अतिक्रमण करैं, यह आपके योग्य नहीं है। अस्तु आपको श्रीकिशोरीजू की जय बोलकर प्रवेश करना ही आपके योग्य है। श्रीरामजी ने देखा हमें फूल तुलसी लेना ही है, तब विवाद में समय क्यों खोवैं अस्तु श्रीरामजी ने कहा-- कवित्त--जासु जय जनक नरेश हैं जय के पात्र, अपने सुकर्म से आप हीं अभय हो। योग भोग उनके अधीन सब काल रहैं; सुयश समूह क्षितितल में अक्षय हो॥ रामाधीन उनके प्रभाव प्यारी पुत्रिका की, कीरति कदम्ब कलानिधि से उदय हो। जाके गुणशील को प्रशंसा है, विश्व माहिं, प्राण प्यारी श्रीजनक दुलारी जू की जय हो॥ तब माली ने लक्ष्मणजी से कहाकि आप भी जय बोलिये। श्रीलक्ष्मणजी ने कहा-- दो०-जय जय श्रीमिथिलेश जू, शील गुणन आगार। तासु सुता श्रीजानकी, सदा

रहे जयकार ॥ तब दोनों भाई बाग में प्रवेश कर फूल उतारते हुये बाग की शोभा देखते हैं। श्रीरामजी ने कहा भैया यहाँ की शोभा क्या कही जाये --

गुच्छ कलशासे त्यों बितानन कशासे खासे, पुहुप अवासे बहुरंग के प्रकाशे हैं। कलपलतासे लतावृन्दन विलासे झुके, अजबकितासे भूमि लौरनके आशे हैं ॥ शिशिरतरासे ऋतुपतिकी हवासे हरे, किशलै निकासे फूले हीरन हरासे हैं। भनै, "रघुराज" कल्पवृक्ष उपमासे फले, अतिअनयासे तरुकरत तमासे हैं ॥ दो०--मधु ग्रीषम वर्षा शरद सुखद शिशिर हेमन्त। निजगुण निजथल प्रगटऋतु, सब थल बसत बसन्त ॥ षटऋतु के मन्दिर बने, षटऋतु प्रकट प्रभाव। तामें अधिक प्रभाव करि, सोहिरह्यो ऋतुराज ॥ कवित्त-पल्लव लसत पिकवल्लभ के पन्नासम, शाखाभूमि लोरै फल फूलनके भाराहैं। कुंज मंजुमहाँ मनरंजन मुनीशन-के भौंरनके कुंजन में गुंजन अपारा हैं ॥ बिछे वसुधामें झरे फूलनकी सेज हीसी, पवनप्रसंग परिमल को पसारा है। चैत्र रथ कामबन नन्दन की नाकी छबि, कहैं "रघुराज" राम कामके सँभाराहैं ॥ भैया इधर तो देखिये--कवित्त--तालन तमालनके तैसहिन तालनके, रुचिर रमालन के जालमनभाये हैं। हेम आलवालनके रजत देवालनके, आलय लोकपालनके लोकन लजाये हैं ॥ दिल देवालनके देखते बिहालहोत, षटऋतु कालनके फूलफल छाये हैं। और महिपालनके बालनकी बातें कौन, "रघुराज" कौशलेशलालन लोभाये हैं। दो०--राजत अतिसय रुचिर तरु, मनहुँ चन्द्रकी ज्योति। कनकलता लहरैं ललित मनु रविदोति उदोति ॥ लक्ष्मणजी ने कहा---कवित्त--कंचन कियारिन में फटिक फराश फाबैं, तामैं झरैं मालती सुमन मनुताराहैं। बदन कुरंगनके विविध विहंगनके, मुखन मतंगन तुरंगनफुहाराहैं ॥ केते कुंजभौन लताभौन लोने लोनेलसैं, बल्लिन वितान त्यों निशानहूँ अपारा हैं। भनै 'रघुराज" नवपल्लवित मल्लिकाके अमल अगारा हैं मुनारा हैं दुआरा हैं ॥ श्रीरामजी बोले--- कवित्त---कीरन की भीर कामनीन के सहित सोहैं, कूजि रहे कुंजकुंज मुनियन मनहारने। कोकिला कलापैं चित्तचोरत अलापैं परैं, मनकी कलापैंथापैं थिरता अपारने ॥ भनै "रघुराज" केकीकूकैं सुनि चूकैं चित्त करत चकोर चारिओरहूँ विहारने। पिय की पुकार त्यों पपिहा की पुकारैं हिय, हारैं हर हारैं बेशुमारैं देवदारने ॥ रसिया--भैयालखन विदेह बागकी देखो कैसी छटा अपार। कैसी छटा अपार बहे जहँ सदा बसन्त बहार ॥ सब तरु ललित किशोर सोहाये, जिनहिं निरखि सुररूख लजायं, लता-ललकि बिटपन अरुझाये। नव पल्लव फल सुमन मनोहर शोभा अकथ अपार ॥

बोलत कोयल अतिप्रियबानी, मनअभिराम श्रवण सुखदानी मानहुँ परमप्रेमरस सानी। कुंजन मोरनटत पपिहा नित पिउ पिउ करत पुकार॥ बेला जुही गुलाब सोहावन, कुन्द मालती अति मनभावन,चम्पा और चाँदनी पावन। गेंदा और निवारी फूली सुन्दर लगे अनार॥ बागमध्य सर अतिमन हारी, तामधि विकसे बनज अपारी, रतनजड़ित सोपान सम्हारी। विविध रंग के कमल सुमन पर भँवर करैं गुंजार॥ निकटहिं गिरिजाजी को मन्दिर, जगमग ज्योति जगत तेहि अन्दर, लसत कँगूरा रंग रंगवर। चहुँदिशि सुमन वाटिका सुन्दर मुनिमन सुखदातार॥ "सीताशरण" बाग की शोभा, को कहि सकै निरखि सुख जो भा, सुमनकुंज लखि ममन लोभा। कहि न सिराइ कोटिमुख सुषमा रघुनन्दन बलिहार॥

सवैया--कहुँ हेत प्रसून प्रमोद भरे, "ललिते" लतिकान के भोरन में। कहुँ कुँजन में विसराम करैं, अवनीरुह छाहँ के छोरन में॥ वर वाटिका ठौरन ठौरन में, "रघुराज" लखें चहुँओरनमें। चितचोरन राजकिशोरनको, मन लागिरह्यो सुमन तोरन में॥ दोनों राजकुमार फूल उतार रहे हैं. इतने में--चौ०-तेहि अवसर सीता तहँ आईं। गिरजा पूजन जननि पठाईं॥ संग सखीं सब सुभग सयानी। गावहिं गीत मनोहर बानी॥ कवित्त--दासी संग खासी छवि रासी चपलासी चारु, आनँद विभासी रनिवास की निवासिनी। चन्द्र चन्द्रिकासी लसै कमला कलासी कल, कनकलतासी सबै सिय की सुपासिनी॥ भनै "रघुराज" सिय प्रेम की पियासी रहैं, सर्वदा हुलासी जे प्रकासी मन्द हासिनी। रतिसी सुरम्भासी तिलोत्तमासी मैनकासी, मायासी मवासी मंजु मिथिला मवासिनी॥ दो०-सखी सकल गावहिं, मधुर, सुन्दर चरण बनाय। वीणा वेणु मृदंग डफ, ऊँचे सुरन मिलाय॥ पद--जय जय मिथिला राजकुमारी। जय विदेह नन्दिनी अर्तान्दनि, चन्द मन्द दुतिकारी॥ निमिकुलकमल दिवाकरकी दुति, रमारमन मनहारी। श्री "रघुराज" दिगन्तनलौं निज, कीरतिलता पसारी॥॥१॥ जय जय जनक-लली गुनखानी। कृपामयी मंजुल मृदुमूरति, आश्रितजन सुखदानी॥ हिमहुँ लगेजो सी सी सिसकत, निज सुनाम जपमानी। अपनावत करि दया दृष्टि तेहि सब विधि आपन मानी॥ क्षमास्वरूप परम करुणामयि, कोमलता चितसानी। जय जय सब "गुणशील" उजागरि, नागरि परम सयानी॥२॥ जय जय जनकलली सुखरासी। मिथिला नगर छीर निधि संभव, कान्तिमती कमलासी॥ स्वच्छाचार विहारिनि तारिनि उमा रमा जेहि दासी। वर्णतवेद विश्व ठकुराइनि, पूरणब्रह्म कृपासी॥ सरलस्वभाव प्रभाव विदित जग, जेहि कीरति कलिकासी। श्री "रघुराज" आजको यहिसम, विरद विशाल त्रिकासी॥३॥ जय जय जीवनमूरि किशोरी। करुणाखानि कृपाकी मूरति, सन्तत प्रेम विभोरी॥ शम्भुप्रियागिरजा पूजनरत, भावभरी रसबोरी। सब "गुणशील"

स्वरूप क्षमामयि अनुपम रूप उजोरी ॥ ४॥ चलो चलो श्रीकिशोरी गौरी पूजन को। करि अम्ब ध्यानरत निजमनको ॥ दधि अक्षत जल पुष्प फल, धूप दीप अरु भोग। लीने साज समाज सब गौरी पूजन योग, दर्शन करिआवैं चरणन को ॥ चलो० ॥ कुन्ज पुन्ज बिच सुभगअति, मन्दिर छवि छहराय। कोटि कोटि नन्दन विपिन; शोभा पर बलि जाय, सुनि भरैं मोद अलि गुंजन को ॥चलो०॥ शम्भु प्रिया के सुभग शिर, सुमनमाल पहिराय। अस्तुति करि करजोर पुनि, मागैं शीश नवाय, "गोविन्द" लहिय भावत मनको ॥चलो०॥ ॥ ५ ॥ पूजा मिस जात प्यारी लखन फुलवारी ॥ चलियै सखी सँग सारी, पहिर नइ सारी, हाथ लै झारी, आरती वारी, पूजन जगमात, प्यारी लखन फुलवारी ॥ गावो सबै लाचारी, द्वार दै धारो, सिया हैं बारी अतिहि सुकुमारी। कोमल हैं गात, प्यारी लखन फुलवारी ॥ गौरी बड़ी बरदानी, शम्भु की रानी, दया की खानी, देहि मन मानी। जोरौ दोउ हाथ। प्यारी लखन फुलवारी ॥ चलिके विनय बहु कीजै, चरन शिर दीजै, माँग यह लीजै, सिया वर दीजै। लागी भल घात, प्यारी लखन फुलवारी ॥६॥ भवानी मोहिं दर्शन दीजै री ॥ सिया मेरो वारी, परम सुकुमारी, चरन निज डारि लीजै री। भूपप्रण भारी, करहु रखवारी, हमारे मनवारी कीजै री ॥ भवानी० ॥ बहुत दिन ध्याई, चरण चितलाई, किशोरी पर माई रीझै री। रूप की राशी, शम्भु उरबासी, सिया निज दासी कीजै री ॥ भवानी० ॥ ७ ॥ नोट--ध्यान रहे कि ये पद मधुरलीला विभोरावस्था में ऐश्वर्य के विस्मृत समय के हैं। इनमें वर्णन विषय माधुर्य लीला रस के रसास्वादनार्थ ही है। पाठकगण ऐसा नहीं समझलें कि श्रीगिरिजाजी की कृपा के बिना श्रीमैथली जी असहाय थीं। श्री रा०च०मा० बा० कां० १४८ दो० में लिखा है। जासु अंश उपजैं गुनखानी। अगनित लच्छि उमा ब्रह्मानी ॥ भृकुटि विलास जासु जग होई। राम बाम दिशि सीता सोई ॥ अस्तु भ्रम में न पड़िये।

पूजैं भवानी जात चलीं अलबेली अखिन सँग जानकी। मन्द मन्द पग धरति धरणि पर, षोड़षचन्द्र समानकी ॥ ऐसी छटा छबीली जग में, लखि न परै कहुँ आनकी। "मधुरअली" बेटी विदेह की, होइहैं बधू कुल भानु की ॥ ८ ॥ कुशल राखैं हमारि लाड़िली गुसइयाँ। देवि देवता पूजैं सब मिलि, जाते न कोऊ मनमाखैं ॥ जाकी कृपाकोर निशिवासर, हम आनन्द सुधा चाखैं। 'मधुरअली' जुग जुग जियो स्वामिनि, सिय जू की जय जय भाखैं ॥ ६ ॥ इस प्रकार सुधा विनिन्दिक स्वरों में मंगलमय मंजुल गीतों को गाती हुईं सखियाँ श्रीकिशोरी जू को बाग में सरोवर के तटपर लाईं ॥ चौ० मज्जनकरि सर सखिन समेता। गईं मुदित मन गौरि निकेता ॥ पूजा कीन्ह अधिक अनुरागा। निज अनुरूप सुभग वर माँगा। एक सखी सिय संग बिहाई। गई रही देखन फुलवाई ॥ तेहि दोउ बन्धु बिलोके जाई ॥ दो०-नृप किशोर तोरत सुमन, आपस में बतराय। तेहि क्षण सिय की एक सखि, गई सामने आय ॥ नखसिख श्याम स्वरूप लखि मन्द मन्द मुसुकाय। मृदुबानी सुनि चपल चख, देखत भूली भान ॥ लौटि चली सिय ओर पुनि,

तनकी नहीं सम्हार। कम्पत अँग पुलकावली, बहत हगन जलधार॥ इत उत पग डगमग परत, लेवन ऊर्ध उसास। गिरत परत केहु भाँतिसो, आई सखियन पास॥ प्रेम बिवस सीता पहिं आई॥ दो०--तासु दशा देखी सखिन, पुलगात जल नैन। कहु कारन निज हरषकर, पूछहिं सब मृदुबैन॥ उस प्रेम दिवानी सखी से अन्य सखियों ने पूछा-पद--कैसी हो गई दशातोर, हमसे कहति किन बाला। तुमतो हमरे सँग आई, गई थी फुलवाई, लख्यो का जाई। अँखियाँ रसबोर॥ हमसे०॥ यातो अमल कछु खाई, गई बौराई, हगन अरुणाई। कौन मारे हगनकोर॥ हमसे०॥ मुखसे बचन ना उचारे, हगन जलढारे, बसन न सम्हारे। भइ काहे बिभोर॥ हमसे०॥ कोई सखी दुलराई, हृदय से लगाई सनेह समाई। पोंछत हगकोर॥ हमसे०॥ दूसरी सखी बोली-सवैया-- ऐरी सखी तोहि काह भयो, पूछेउ पर नाहिन उतर देती। आनँद भीजी सनेह सों सीजी, चितै कहुँ पाछे उसासन लेती॥ काह चखो अरु काह लखी, सखि बेगि बताव दुराव न हेती। "श्रीरघुराज" कहँ कहँ रीझी, भई तन लीझी अजौ दशा ऐती॥ ऐसा कहने पर भी जब वह सखी न बोली, तब अन्य सखियों ने कहा-कवित्त ठाढ़ी तू ठकीसी त्यों धकीसी मुख मीसी मन्द, खीसी त्यों अनन्द कीसी बैकलसी दीसी है। पीसी है मनोजकीसी छुटिगै छतीसी छटी, सुरति उड़ीसी भरी भागकी नदीसी है॥ घाव की लगीसी बिसे बीसी त्यों घसीटी प्रीति, त्यागे कुलरानिहीसी औचक उचीसी है। "रघुराज" नेह नीति रुचिर रचीसी पची, तची बिरहानल सों ऊधम मचीसी है॥ दो०-सब सखियन के बैन सुनि, मन में धीरज धार। हिय में श्यामकिशोर लखि, रसमय गिरा उचार॥ सखी कहती है--सवैया-बाग में आज सुनो सजनी, दुइ राजकिशोर अनूप सिधाये। बिन मोल ही लेत खरीद हियो, अँग अंग महा छवि धाम सोहाये॥ सुठि दोना लसैं, कर कंजन में, अवलोकि अनेकन काम लजाये। "गुनशीला" उतै न चलो सखियों, बिकिहौ बिनमोल बचौ न बचाये॥ पद--बागे में आये राजकिशोर। कल जिनने मिथिलाबासिन के, लीने हैं चितचोर॥ अँग अँग लाजत बहु रतिपति, निरखि बिकेउ मनमोर। 'गुनशीला' न जाउ वा मारग, नहिं चलिहैं कछु जोर॥ कवित्त--पूछति कहाहै उतै कौतुक महा है नहिं जातसो कहा है अब जौन लखि पाई री। बिधिके सँवारे राजकुँवर पधारे प्यारे, बिश्व मनहारे धारे बिश्व सुन्दराई री॥ साँवरो सलोनो दूजो दुति को दिमाग वारो हग ते टरै न टारो मति अकुलाई री। कहे ना सिराई 'रघुराज' बिनदेखे बनिआई, आज लौं न देखी जौन आज देखिआई री॥ नीलमणि मंजुताई नीरदकी श्यामताई, अलसी कुसुम कोमलाई हठि आई है। केशर सुगन्धताई बिज्जु दीपताई सोन, जूही नहिं पाई पटपीत पियराई है॥ भौंहन कमान कसि प्रीति खरसान चोखे, नैनबाण मारे फूटि गाँसी अटकाई है। 'रघुराज' कैसो राजकुँवर अनोखो अरी हौंतो इतै घायल है घूमिघूमि आई है॥ पद-सखीरी जो जैहैं वहि ओर। कहौं बनाय बनाय कछूनहिं राजकुँवर चितचोर॥ जो न मानि हैं सीख

सीख सयानी, पुनि न चली कछुजोर। 'श्रीरघुराज' हाल होइ सोई, जौन भयो अब मोर ॥ ६ ॥ लखे हौं जबते राजकुमार। तबते इन अँखियन अस दीसत, श्याम भयो संसार॥ कहौ तबहिंलौं हमहिं बावरी, मानहुँ मोहिं गँवार। 'श्रीरघुराज' लखी जबलौं नहिं वह मूरति मनहार ॥ सवैया--जानि परैगो तबै तुमको, जबै बावरी आपहू मेरीसी होइहौ। भूलिहै खान औ पान सभी, हँसती हो हमै ललि आपहु रोइहौ ॥ वे बरजोर करैं अपने वश, लाज औ कानि सबै कुल खोइहौ। साँवरीमूरति देखतही सखि साँची कहौं सबै बावरो होइहौ ॥

उस सखी की ऐसी बातें सुनकर एक सखी ने गिरिजीजी के मन्दिर में जाकर श्रीकिशोरीजी से कहाकि, हे लाड़िली जू! एक सखी बाग में कुछ कौतुक देख आई है, गिरिजाजी का पूजन तो हो गया है, आप बाहर आकर देखिये। सखी की बात सुनकर श्रीकिशोरीजू ने मन्दिर से बाहर आकर उस सखी की दशा देखकर प्रेमपूर्वक पूछा, बहिनजो किस कौतुक को देखकर तुम्हारी ऐसी दशा हो गई है। तब वह बावरी सखीने कहा--दो० घनोकुँज लोनीलता, फूलेफूल अपार। लखे कुसुमतोरत तहाँ, सुन्दर युगल कुमार ॥ सवैया--साँवरो सुन्दर एक मनोहर, दूसरो गौर किशोर सुखारी। का कहिये मिथिलेशलली, वह मूरति पै मन है बलिहारी ॥ 'श्रीरघुराज' बनै नहिं भाषत, राखत ही में बनै छवि प्यारी। नैन विना रसना रसना बिन, नैन कहो किमि जाय उचारी ॥ पद--मृदुबयस सोहाई, तन श्याम गौरताई, नख सिख छवि छाई अति लोने। द्वैकुँवर लखे सखि बाग सुघर असभये न हैं नहिं होने ॥ विधु शरद जुन्हाई, मुख अमित सोहाई, राजीव नयन रतनारे। कुँचितकच करुणकपोल, लसतजनु कंजभ्रमर मतवारे ॥ दोउ नवलकिशोरा, चितवन चितचोरा, सर्वस मनमोरा हरआली। मुखमुसुकनि जादू भरे रसीले चाल चलत मतवाली ॥ इक श्यामसलोना, लीने कंज कर दोना, लघुहंस कोसो छौना अति प्यारो। सखि प्रविश्यो हियकेबीच, खींचमन टरत न उरसे टारो ॥ शशिप्रभ सुघराई, लखि सुधि बिसराई, उर अति घबराई चितहारी। 'गोविन्द' न पलछिन चैन सखी री वाछविपै बलिहारी ॥

वार्ता--उस सखी की बातें सुनकर श्रीविमलाजी ने कहा कि-हे लाड़िली जू! सवैया--मैं सुना आज महीपति मन्दिर, कौशिकसंग महासुकुमारे। राजकुमार उभै कोउ आये, निजै छवि मारहुँको मदमारे ॥ कालि निहारिगये नगरी, नरनारि लखे निज तेइ उचारे। 'श्रीरघुराज' स्वरूपकी माधुरी,आजलौं ऐसी न नैन निहारे॥ जे उनको चितयें भरि नैनन, धोखहु वे जेहि ओर निहारे। ते सिगरे बिगरे निज बानि, द्रुतैतिनपे तनहूँ मतवारे। 'श्रीरघुराज' सबै नरनारिन, कीने बशैनिज राजकुमारे। या मिथिलापुर में विचरे, निजरूपकी मोहनी कापै न डारे ॥ दो०--ह्वै हैं तेई अवशि ये, और न दूसर होय। राम लखन असनाम जिन, कहत सखी सब कोय ॥ चौ०-तासु बचन अति सियहिं सोहाने।

दरस लागि लोचन अकुलाने ।। चलीं अग्र करि प्रिय सखि सोई । प्रीति पुरातन लखै न कोई ।। दो०-सुमिर सीय नारद बचन, उपजी प्रीति पुनीत । चकित बिलोकति सकलदिसि, जनु ससि मृगी सभीत ।। चौ०-कंकन किंकिन नूपुर धुनि सुनि । कहत लखन सन राम हृदय गुनि ।। मानहुँ मदन दुन्दुभी दीनी । मनसा बिश्व विजय कहँ कीनी ।। सवैया-और कियो तनको मनको यह, मोपै चूम चढ़ि सासन लागी । लै ऋतुराज समाज सबै सँग, कोकिलकीर व गाजन लागी ।। दूरिकै धीर समीर लगे 'ललिते' लतिकावर राजन लागी । जीतने को जग साजन साज, मनोज की दुँन्दुभि बाजन लागी ।। चौ०-अस कहि फिरि चितये तेहि ओरा । सिय मुखससि भये नैन चकोरा ।। भये विलोचन चारु अचंचल । मनहुँ सकुचि निमितजे दिगंचल ।। देखि सीय शोभा सुखपावा । हृदय सराहत बचन न आवा ।। दो०-श्रीजानकी स्वरूप लखि, नख शिख सुषमागार । निज सौन्दर्य गुमान तजि, रघुनन्दन बलिहार ।। करत प्रशंशा मनहिंमन, बढ़ेउ परम उद्दार । प्रगट रूप वर्णन लगे, पावत मोद अपार ।। सवैया--आनन इन्दुअनेकनकी छबि छीनि लई सुषमा बरजोरैं । देवन की नरदेवनकी, सियको मुखदेखि त्रियाँ तृण तोरैं ।। दीठिसों मैली न होय कहूँ, सकुचाय बधू सिगरी दृग मोरैं । प्रेम सखी चखचोरैं करैं पलकैं झुकि आनन्द मानि निहोरैं ।। दन्तनकी अवली सियकी वर कुन्दकी पाँखुरी के अनुहार हैं । कोरैं कहूँ मुसुक्यात कहैं मनि, हीरनके दबिजात गुमान हैं । चीकने चौगुने सौगुने श्वेत, विलोकि थके बुधसे बलवान हैं ।। 'प्रेमसखी' केहि भाँति कहैं, मतिमन्द महा सबभाँति अदान हैं ।।

कवित्त--जगत निकाई शुक नाशिका निकाई लिये, नाशिका निकाई पै सिमिटि सब आई है । मुक्ताकलित सोहैं ललित ललाम यामैं, लटकत लटकि अधरन छबिछाई है ।। हँसनि हिये में बाँकी बैठि गई प्रेमसखी, रतन अनेकहूँ से कढ़ब कठिनाई है । कैसे कोउगावै बुधि बानीमें न आवै छबि, देखे बनिआवै जिनपाई तिनपाई है ।। नैन अनियारे तारे पुण्डरीकबान सारे, सीय पुतरीनपै चीरेक महाकारे हैं । कछुक जरारे शीलसागर सुधारे प्यारे, बारुनी बिशालधारे-जोर ढोर बारे हैं ।। दीनपै सनेह धारे मेरे प्राणवारे होत, उपमा न पावत विरंचि रचिहारे हैं । मीन दृग खंजन बनाये विधि प्रेमसखी वारि बन व्योम बसैं लज्जित बिचारे हैं ।। कमल कपोल गोल सुषमा बखानै कौन, देखे बनिआवत तरौनन समेत हैं । ढके नीलसारीसो किनारी जरतारी कोर, अलकैं वलित जो अमित छबि देत हैं ।। तर्नि तनूजा विधि ख्याल लघु लागै मोहिं, उपमा न दीनी प्रेम सखी यहि हेत है । वेइ वड़भागी जिनहिं सिरछबि सुनीको लगी, परम अभागी जो अनत चितदेत हैं ।। मेचक सघन सुकुमार हैं सेवारहू से, सीयजू के शीश में विराजत विशालबार । मोरपंख वारे तनधारे मरकत न सम, पन्नगकुमार रचे कोटि कोटि कर्तार ।। उपमाके हेत प्रेमसखी बुधिवान सब, करत रहत नित नये नये उपचार । मोर पक्ष डारैं त्वचन पन्नग नवीन धारैं, मनमें न आवैं तो बनावैं विधि बारबार ।। ऐसा कहकर आश्चर्य चकित होते

हुये बोले। दो०-अरे भयो का मोहिं यह, रही न देह सँभार। और तनमन ह्वै गयो, काह करै कर्तार॥ पुनः लक्ष्मणजी को संकेत से बताया। चौ०-- तात जनकतनया यह सोई। धनुषयज्ञ जेहि कारन होई॥ पूजन गौरि सखी लै आईं। करत प्रकाश फिरत फुलवाईं॥ जासु विलोकि अलौकिक शोभा। सहज पुनीत मोर मन छोभा॥ सो सब कारन जान विधाता। फरकहिं सुभग अंग सुनु भ्राता॥ रघुवंशिन कर सहज सुभाऊ। मनकुपंथ पग धरत न काऊ॥ मोहिं अतिसय प्रतीति मनकेरी। जेहि सपनेहुँ पर नारि न हेरी॥ जिनके लहैं न रिपुरनपीठी। नहि पावैं परतिय मन डीठी॥ मंगन लहैं न जिनके नाहीं। ते नर वर थोरे जगमाहीं॥

पद--बशी हिय नवल सिया सुकुमारी। गजकी चलनि तकनि मुख बिहँसनि, सुषमानिधि पर वारी। अलिगन मध्य महाछवि सरसत, कोटिचन्द्र उजियारी। "मधुर अली" करि प्रीति लखनसों, बचन कहत धनुधारी॥ श्रीरामजी इस प्रकार लक्ष्मणजी से कह रहे थे; उधर सामने से आती हुई श्रीकिशोरी जू--चौ०-चितवत चकित चहूँदिशि सीता। कहँ गये नृपकिशोर मन चीता॥ लताओट तब सखिन लखाये। श्यामल गौर किशोर सोहाये॥ सखीने कुँजकी ओर अँगुली उठाकर श्रीकिशोरी जू से कहा--सवैया-प्यारी लखो सुषमा सरसात, चहूँदिशिते अलि गूँज मचाये। फूले सबै तरु मोद भरे, चहुँओर झुके मनो जाल बनाये॥ दोनेंलिये कर दोनों कुमार, लखातलली मनलेत लुभाये। लोनी लतान हैं मेघसमान गुमानभरी जनु भानु लुकाये॥ कवित्त-लाल लाल डोरे कल कंजदल दुतितोरलेत, जगचितचोरे मानो मैनहीके ऐन हैं। मीन छविछीन मृगशावक अधीन, खंजरीट बलहीन लखिहोत अतिचैन हैं। चकितचकोर मन भूमिनके भार भौंर, श्याम रंग हीसों यों "विहारी" सुख सैनहैं। काट दुख द्वन्द फन्द आनँदकेकन्द, बृन्द रसके प्रबन्ध रामचन्द्रजी के नैन हैं॥ रंगभरे रसभरे छविछहरेसे चारुकमल परेसे भरे ललित ललाम के। चीकने चपल कचचौंध चपला से चमक चुभेचित्त चाहि चटकीले चैन काम के॥ लेत मन मोल सो अतोल निज भक्तन के बरनै 'विहारी" धारी प्रभा अधिराम के। कुण्डल की डोलनि कपोलन अमोल लोल गोलगोल कोमल कपोल श्याम राम के॥ सखी के बचन सुनकर श्रीजानकीजी ने सामने लता कुँज की ओर देखा तो, चौ०-देखि रूप लोचन ललचाने। हरषे जनु निज निधि पहिचाने॥ थके नयन रघुपति छवि देखे। पलकनहू परिहरी निमेखे॥ लोचन मग रामहि उर आनी। दीने पलक कपाट सयानी॥ श्रीकिशोरीजू को ध्यानावस्थित देखकर सभी सखी सोच रही हैं कि माताजी के निकट जाने में बिलम्ब हो रहा है। तथापि संकोच वश कोई भी कुछ कह नहीं पाती हैं। अधिक विलम्ब होते हुये जानकर--चौ०- धरि धीरज एक अली सयानी। सीता सन बोली मृदुबानी॥ सखीने कहा, हे श्रीकिशोरीजू! आप श्रीगिरजाजीका ध्यान बादमें कर लीजियेगा, इस समय तो आँख खोलकर राजकमारों की शोभा देख लीजिये।

कवित्त—पीत बस्त्र धारे कर दोने गोरे साँवरे सलोने लाल, हंसनके छौने जिन चाल पै थाके हैं ॥ क्रीटमणि ताके नहिं काके मन मोहि जात, केशर तिलक भाल राजैं अति बाँके हैं। निकसे लता कुँज से कुमार दोउ निहारि लेहु पाछेफिर लली ध्यान धारो गिरिजाके हैं ॥ सखी की बात सुनकर-चौ०-सकुचि सीय तब नैन उघारे। सनमुख दोउ रघुसिंह निहारे॥ नखसिख देख रामकी शोभा। सुमिरि पितापन मन अतिछोभा॥ सखियों ने श्रीकिशोरीजी की प्रेमपरतन्त्र परिस्थिति देखी, तो परस्पर में सब कहने लगीं कि--आज हम लोगोंको बागमें बहुत बिलम्बहो गयाहै,अब शीघ्र चलना चाहिये। पश्चात् कोई सखी श्रीमैथिलीजू का हाथ पकड़कर संकेत से निवेदन पूर्वक बोलीं-- दो० चलहु भवन अब लाड़िली,आज भई अति देर। बाग लखन हित कालि पुनि, आवैंगी यहि बेर॥ पद--यहि बेरिया सबेरे बहुरि अइबै। पूजन हेत पुरारि प्रिया के, अम्बा से आयसु लइबै॥ बेगि चलिय अब देर करिय जनि, माता बूझब का कहिबै। भोर आइ पुनि पूजि भवानी, "मधुरअली" हम बलि जइबै॥ चौ०-गूढ़ गिरा सुनि सिय सकुचानी। भयेउ बिलम्ब मातु भय मानी॥ धरि बड़ि धीर राम उर आने। फिरीं अपनपौ पितुवश जानी॥ दो०-देखन मिस मृग बिहँग तरु, फिरइ बहोरि बहोरि। निरखि निरखि रघुबीर छवि, बाढ़इ प्रीति न थोर॥ पद--आली लखो बनमाली सलोना। जालिम जुलफ़ विपुल व्याली सम, मोहिं डसी किमि आऊँ री भौना॥ हरिलीनो हिय राजकुँवर यह, मंजुल हँसनि कुसुम करदोना। ठाढ़ो लताभवन के द्वारे, जिमि कन्दर कढ़ि केहरि छौना॥ नैन सैन हनि हरयो चैन सब, मैन हैं न सम कोउ अरुझोना। लागी लगन साँवरीसूरति, शपथमोरि अब कोउ बरजोना॥ 'श्रीरघुराज' राउ ढोटा पर, तनमनवारि भई सब मौना॥ लोकलाज कुलकानि बिगरिगो, आजुइ होनी होइ सो होना॥ दो०-जनकलली अनिमिष चितै, श्यामल राजकुमार। धरेउ ध्यान मीलित दृगनि, ठाढ़ो गहि तरुडार॥ प्रेमविवश भइ जानकी, मधुरअली जियजानि। पकरि पाणिपंकज बिहँसि, बोली मंजुल बानि॥ सवैया--देरभई गहिशाखतमालकी, ठाढ़ीअहै पगपीर न जोवै। ध्यान धरै गिरिजा बपुको मिथिलेशलली क्यों समय यों खोवै॥ पूजन कीजै बहोरि उतै चलि, मांगिये जो मनमें कछु होवै। देखिले साँवरो राजकुमार, खरो 'रघुराज' महामुद मोवै ॥ दो०-सखी बचन सुनि सकुचि सिय पुनि दृग पलक उघारि। सन्मुख ठाढ़े कुँवर लखि,गई मनहिं बलिहारि॥ सवैया--नखतेसिखलों लखि राजकिशोर, सिया चखमें न परैं पलकैं। मिलिहैं मोहिनाथ विशेषद्रुतै, हठिहोत विश्वास हिये भलकैं॥ 'रघुराज' न लाज तजे बनतो, नहिं जात बनै शरणै कलकैं। छविकी छलकैं अलकैं भलकैं, लखिकै हिय में हलकैं ललकैं॥ पितुके प्रण की सुधिकै पुनि सो, पछितात मनहि नहि धीर धरै। हरकोधनुहै अतिही कठिनै, मोह-पालन को नहिं टारो टरै॥ 'रघुराज' महासुकुमार कुमार, कहो किमि टोरिहैं मंजुकरै। विधिकैधौकरौं इनहीके गरे, ममहाथनसों जयमालपरै॥ चापमहेशको होय हरू, अवधेश

वादिन देवदिखाउ हमैं; जयमाल धरौं इनके गलठौरै ॥ को लाड़िलो पाणिसों टोरै । सॉंवरो होय हमारो पिया, औसर जो चितचोरै । "श्रीरघुराज" सदा निरखौं, हरषौं यहि अरु देवर होय ललालघु गोरै ॥ देखै बहोरि बहोरि कुरंगन, त्यों ही विहंगन भृंगन सीता। तामिसि राजकुमार विलोकति, होत अघाउ न चित्त पुनीता ॥ लालच लागी विलोकनकी इत, त्यों उत हैं जननीते सभीता। खेलत चित्त से चंगचली ज्यों, वँधी रघुराज के प्रेम पुनीता ॥ दूर सिधारत जानिके जानकी, पाटी तहाँ अपनो मन कीनी । प्रेमतरंगन रंग अनेकन, त्यों मति की लिखनी कर दीनी। नेहकी स्याही जलै अनुराग को, श्री 'रघुराज' पिया निज चीनी । श्रीरघुवीरकी यों तसवीर, बनाइसिया हिय में धरि लीनी ॥ जिस प्रकार श्रीमैथलीजू ने श्रीरामजीकी तसवीर अपने हृदय में बनाली, उसीप्रकार--दो०—जात जान श्रीमैथिली, रघुनन्दन हर्षाय सियकी मंजुल मूर्तिवर, निजहिय लीन बनाय ॥ तब श्री-किशोरीजू-- चौ०-गईं भवानीभवन बहोरी। बन्दि चरन बोलीं करजोरी। जय जय गिरिवर राजकिशोरी। जय महेश मुखचन्द्र चकोरी ॥ छन्द चौबोला— जय शंकरप्यारी शैलकुमारी, जय गणपतिकी माता। सेवक दुखहरनी वेदन वरनी, कीरत जग विख्याता ॥ शारदशत आवैं शेषगनावैं, तौ यश नहि कहिजाता। जय दुःख निवारन खल संहारन, है चारों फलदाता ॥ ध्यावत चित लाई जो तोहि माई, चरणन शीशनवाई। पद पद्म-परागा करि अनुरागा, मनभावन बर पाई ॥ मेरे चित जोहैं तोहि विदितहैं, नहि दुराव कछुमाई। तासे हिय राखौं नहि मुख भाखौं, कीजै बेगि सहाई ॥

कवित्त--भव भव विभव पराभव की खानि जैति, जैति भवरानी वेदवानी करजानी है। गावै मनबानी ताहि देत मन मानो जौन, जैति सुखदानी दास हाथन विकानी है ॥ दानीकौन दूसरो जो रावरीबराबरीको, छाइरही तीनलोक कीरति कहानी है। जैसे चहै पोसो मोहिं दोषो निर्दोषोपै, मोको तो भरोसो एक तेरो भवानी है ॥ दास ना निराश करै कबहूँ आवास आये, जयति जयति सब जग पोषन भरया है। देव औ अदेवमाहिं देव नरदेव जेते, पाये मोद भूरि पदसेवन करइया हैं ॥ "ललित" न दूजी आश मोहि गिरिराज सुता तोहि तजि और कौन औढर ढरइया है। मेरी मनकामना की पूरन करइया हिय, आनँद भरइया मइया तूही कामगइया है ॥ करुणा को कन्द भव फन्द हरनहार, मुखचन्द चाहि तन तपन बुझइया हो। श्यामरो सलोनो सुषमासों सनो शील, निधी ऐसो सिद्धो लैइके अति हिय हर्षइया हो ॥ सोचन सकोचन को मोचन कर सीय हीय, रोचन सो जगपाई कीरति बढ़इया हो । सुखद सोहाई हो सुमन यशछाई हो, हमरो बरदान मन भावत वरवैया हो॥ श्रीमैथिलीजू की इसप्रकार भावभरी प्रेमयुक्त प्रार्थना सुनकर, अपनेको बड़भागी समझकर श्रीगिरिजाजी बोलीं-- चौ०- सुनुसिय सत्य सत्य असीष हमारी । पूजहिं मन कामना तुम्हारी ॥ नारद बचन सदा सुचि साँचा। सो वरु मिलिजाहिं मनराँचा ॥ दो०-श्रीनारदजी ने कहा, सत्य जानिये सोइ। श्याम

सलोनो शीलनिधि, सो तुमरो पति होय ॥ करुणा कृपा निधान जो, सबविधि परम सुजान। सोई हौं तुव प्राणधन, यह हमरो वरदान ॥ जावहु सुखसों भवन अब, भ्रम सन्देह मिटाय। जामे तुमरो मन रमेउ सोइ निज प्रीतम पाय ॥ रहियो सदा प्रसन्न मन, आनँद सिन्धु समाय। श्रीमिथिला अरु अवधमें, परमानँद बरसाय ॥ चौ०-अस कहि गिरजा माल गिराई। सीय मुदितमन शीश चढ़ाई। पुनि पुनि गिरजहिं शीश झुकाई। चलीं मैथिली हिय हरषाई ॥ हृदय सराहत सीय लोनाई। गुरु समीप गवने दोउ भाई ॥ दो०-सादर चरणन शीशधरि, रघुवर कियो प्रणाम। पुनि प्रसून दोना दियो मनमोहन सुखधाम। हियमें सियमूरति वशी, निरखि निरखि हुलसात। प्रेमचिन्ह तन में प्रगट, लखि पूछत मुनि बात ॥

कवित्त --कम्पतनहोत स्वेदबुन्द तनरूह ठाढ़े, बोलत न बैन पुत्र काह करि आये हो। और सो वरननैननीर ऐसे नेह भरे, साँची हो बताओ कौन फन्द फँस आयेहो ॥ 'ललिते' सु ऐसे हंस वंश अवतंश तुम, ऐसी रीति गहि पंथ कैसे परिआये हो। कैसे हो बताओ लाल हाल अवलोको नेक, सुमन लै आये मन कहाँ धरि आये हो ॥ दो०-सुनि मुनिवर के बचन अस, रघुनन्दन सकुचाय। हाथ जोरि बोले बचन, अतिसय सरल सुभाय ॥ सवैया--मैं प्रभु आयसु को धरि शीश, गयो हितकै जबहीं फुलवारी। तोरतै फूल तहाँ ये दशा भई, ऐसी न जानि है देह सँभारी ॥ का कहिये प्रभुसों "ललिते" यह जैसी भई नई रीति हमारी। नेह भरी ठगिया में गयो, बगिया में लखी मिथिलेशदुलारी ॥ फूलनकाज गयो उतआज, जहाँनिमिराजकी है फुलवाई। "वन्दि" सहेलिन संगलिये, चलिआई तहाँ मिथिलेश की जाई ॥ दीठि दिखाइ परी जबते, तबते तनमें पुलकाई सी छाई। भाइ छली मनमें पुलकाइ, लगाइ गई यहमो कुलकाई ॥ दो०--जनकसुता की सुछवि लखि, ममम‍न भयो विभोर। तबते ऐसी गति भई, सत्य कहौं करजोर ॥ चौ०--राम कहा सब कौशिक पाहीं। सरल सुभाव छुआ छल नाहीं ॥ सुमन पाय मुनि पूजा कीनी। पुनि अशीष दोउ भाइन दीनी ॥ सुफल मनोरथ होहि तुम्हारे। रामलखन सुनि भये सुखारे ॥ श्री-विश्वामित्रजी ने कहा--दो० तुमरे मनमें जो वशी, मूरति सुषमागार। शिवप्रसाद सो पाइहो, आशिर्वाद हमार ॥ चौ०-विगत दिवस मुनि आयसु पाई। सन्ध्या करन चले दोउ भाई ॥ प्राचीदिशि शशि उयउ सोहावा। सियमुख सरिस देखि सुखपावा ॥

श्रीरामजी मन में सोचने लगे-सवैया--चन्दनहीं बिषकन्द है केशव, राहु यहै गुनि लीलि न लीनो। कुम्भज पावक जानि अपावन, धोखे पियो पचि जान न दीनो ॥ याको सुधाधर शेष विषाधर, नामधरो विधि है मतिहीनो। सूर सो भाई कहा कहिये, यह पाप लै आप बराबर कीनो ॥ लक्ष्मणजी ने कहा-- दो०-दिन दिन छीजत दीनअति, होत दिवस द्युतिमन्द। कैसे प्रभु करि सकै यह, सियमुख समताचन्द ॥ कवित्त -आनँद को कन्द मैथिलीने पायो मुखचन्द, लीला ही सों रावरे के मानस को चोरे हैं। वैसोही

विरंचि दूजो रचिबेको चाहत अजहूँ,शशिको बनावै नेक मनको न भोरेहैं ॥ फेरत हैं सान आसमान पर चढ़ायफेरि,पानिप बढ़ाइबेको बारिधि में बोरेहैं। जानकी के आनन समान ना बिलोकैं विधि, टूक टूक तोरे फिर टूक टूक जोरे हैं ॥ अस्तु यह चन्द्रमा किसी प्रकार भी श्रीजानकीजो के मुख की समानता नहीं कर सकता है ॥ तब श्रीरामजी ने कहा-सवैया-चन्द मलीन है कौन कुलीन, जो लेन चहै सिय की समताको। राहु अधीन नितै नित छीन लखे बिरहीन बढ़ै दुख ताको। सिन्धु ने दीन निकारि विषय सँग कीन बराबरि सिन्धु सुताको। है सकलंक कलंक लगै वहि देइ सियामुख जो उपमाको। चौ०-सिय मुखछबि विधु व्याज बखानी। गुरुपहिं चले निसा बड़ि जानी॥ करि मुनिचरन सरोज प्रनामा। आयसु पाय कीन विश्रामा॥ बिगत निसा रघुनायक जागे। बन्धु बिलोकि कहन अस लागे॥ उयेउ अरुन अवलोकहु ताता। पंकज कोक लोक सुखदाता॥ तब लक्ष्मणजी ने कहा--दो०-अरुणोदय सकुचे कुमुद उड़गन ज्योति मलीन। तिमि तुमार आगमन सुनि, भये नृपति बलहीन॥ क्योंकि सभी राजा ताराओं के समान टिमटिमाते हैं, वह शिव धनुष रूपी घोर अंधकार को दूर नहीं कर सकते हैं। अस्तु सूर्य ने अपने उदय होने के बहाने से आपका प्रताप सभी राजाओं को दिखाया है। और धनुष तोड़ने की तो आपके भुजाओं की परिपाटी उदयाचल की घाटी है। इस प्रकार वार्ता करके दोनों भाइयों ने स्नानादिक क्रिया करके मुनिको प्रणाम किया। उसी समय श्रीविदेहजी के भेजे हुये श्री-सतानन्दजी पधारे। और श्रीजनकजी की प्रार्थना सुनाये कि आप मुनि मंडली तथा दोनों राजकुमारों के साथ धनुषयज्ञ में पधारिये। विश्वामित्रजी ने कहा--चौ०-सीय स्वंवर देखिअ जाई। ईश काहि धौं देइ बड़ाई॥ तब लक्ष्मणजी ने कहा—हे नाथ जिस पर आपकी कृपा होगी, वही यश का पात्र बनेगा।

* धनुषयज्ञ *

चौ० -पुनि मुनि बृन्द समेत कृपाला। देखन चले धनुष मखसाला॥ रंगभूमि आये दोउ भाई। अस सुधि सब पुरबासिन पाई॥ चले सकल गृह काज बिसारी। बाल जवान जरठ नरनारी॥ श्रीजनकजी ने देखा कि बहुत बड़ी भीर हो गई है। तब अपने व्यवस्थापक सेवकों को आज्ञा दी कि शीघ्र ही सभी को यथोचित आसन पर बिठा दीजिये। दो०--कहि मृदु बचन विनीत तिन, बैठारे नर नारि। उत्तम मध्यम नीच लघु, निज निज थल अनुहारि॥ चौ०--राजकुँवर तेहि अवसर आये। मनहुँ मनोहरता तन छाये॥ जिनके रही भावना जैसी। प्रभुमूरति तिन देखी तैसी॥ दो०-- सब मंचन ते मंच एक, सुन्दर बिसद विशाल। मुनि समेत दोउ बन्धु तहँ बैठारे महिपाल॥ चौ०-प्रभुहिं देखि सब नृप हिय हारे। जनु राकेश उदय भय तारे॥ अस प्रतीति सबके मन माहीं। राम चाप तोरब सक नाहीं॥ बिन भंजेउ भव धनुष बिशाला। मेलिहि सीय राम उर माला॥ अस विचारि गवनहु घर भाई। जस प्रताप बल तेज गँवाई॥ यह

सुनकर अन्य राजाओं ने कहा-चौ०-तोरेहुँ धनुष ब्याह अवगाहा। बिन तोरे को कुँवरि बिवाहा॥ इन दुधमुँहे बच्चों की बात क्या-चौ०-एक बार कालहु किन होऊ। सिय हित समर जितब हम सोऊ॥ ऐसा सुनकर धर्मात्मा राजाओं ने कहा कि—सो०-सीय बिआहबि राम, गरब दूरि करि नृपन के। जीति को सक संग्राम, दशरथ के रन बाँकुरे॥ चौ०-व्यर्थ मरहु जनि गाल बजाई। मन मोदकनि की भूख बुताई॥ सिख हमारि सुनि परम पुनीता। जगदम्बा जानहु जिय सीता॥ जगतपिता रघुवरहिं विचारी। भरि लोचन छबि लेहु निहारी॥ दो०-जानि सुअवसर सीय तब, पठई जनक बुलाइ। चतुर सखीं सुन्दर सकल सादर चलीं लिवाइ॥ चौ०—चलीं संग लै सखी सयानी। गावत गीत मनोहर बानी॥ पद - सीतागवन उत कीजै-गवन उत कीजै, जहँ धनुमख साल। सीतागवन उत कीजै॥ सकुची घुँघट पट डालो, घुँघट पट डालो, बिलसत जयमाल॥ सीता०॥ बैठे विपुल गुरुजन हैं विपुल गुरुजन हैं। बड़े बड़े महिपाल॥ सीता०॥ गिरिजा चरण बसुनायक चरण बसुनायक। सुमिरहु यहि काल॥ सीता०॥ धीरे धीरे चलो सुकुमारि कुमारि सिया प्यारी। देश देशके भूपति आये, करकरके अपना सिंगार॥ तुम्हरो रूप शेषहू न वरनै, जाके हैं जिह्वा हजार॥ ऊँचे सिंहासन मुनि सँग बिराजे, जाकी है शोभा अपार॥ इस प्रकार मंगलगीत गाती हुई सखियाँ श्रीमैथिलीजू को धनुष के निकट ले गईं, पुनः गाने लगीं--पद--करलो सब ध्यान पूजा शिवा की प्यारी। गौरी गजानन माता, सबहिं सुखदाता, सुमिरो धरिध्यान, पूजा शिवा की प्यारी। लिखा कर्म बिधि दीन्हा, अचल करि दीन्हा, मिटै नहिं चीन्हा। रखिहैं विधि आन॥ पूजा०॥ "मधुरअली" सखि न्यारी, रामछवि प्यारी, सिया सुकुमारी। वर मिलैं भगवान॥पूजा० पिता प्रण कठिन सुनायो भूप सब आयो बैठि खिरनाओ, नहिं उठत पिनाक॥ पूजा०॥ धनुष का पूजन करवाकर श्रीकिशोरी जू को सखियों ने माताजी के निकट ले जाकर बिठाया। चौ०-तब बन्दीजन जनक बोलाये। विरदावली कहत चलि आये॥ कह नृप जाइ कहहु पन मोरा। चले भाट हिय हरष न थोरा॥ बन्दीजनों ने कहा कि सभी राजा महाराजा ध्यानदेकर सुनिये, हम श्रीजनकजी की प्रतिज्ञा को हाथ उठाकर कहते हैं—भगवान शंकरजी के धनुष की कठोरता और गरुता सभीको विदित ही है कि जो राजाओं के भुजबल रूपी चन्द्रमा को ग्रास करने के लिये राहू के समान है। रावण बाणासुर इत्यादि बड़े बड़े वीर भट जिसे देखकर उसे बिना उठाये ही चुपके से चले गये। श्रीशंकर जी के उसी धनुष को राजसमाज में जो कोई वीर तोड़ देगा, तो वह तीनों लोकों की जय समेत श्रीजानकीजी को प्राप्त करेगा। चौ०--सुनिपन सकल भूप अभिलाषे। भटमानी अतिसय मन माखे॥ परिकर बाँधि उठे अकुलाई। चले इष्टदेवन सिर नाई॥ तमकि ताकि तकि शिवधनु धरहीं। उठै न कोटि भाँति बल करहीं॥ जिन राजाओं के मनमें सद्विचार था, वह धनुष के समीप नहीं गये। किन्तु मूढ़ प्रकृति वाले राजा तमककर धनुषके निकट जाकर पकड़कर उठाते हैं, जब धनुष नहीं उठता है तब लाजके मारे नत

मस्तक होकर चल देते हैं। एक एक करके राजाओं से धनुष जब न उठा तब—
चौ०-भूप सहसदस एकहि बारा। लगे उठावन टरइ न टारा॥ डगइ न संभु सरसन कैसे। कामी बचन सती मन जैसे॥ सब नृप भये जोग उपहासी। जैसे बिन विराग संन्यासी॥ राजा अपनी कीर्ति विजय वीरता को धनुष के हाथ हारकर श्रीहत होकर अपने अपने समाज में जाकर बैठ गये। सभी राजाओं की ऐसा दुर्दशा देखकर श्रीजनकजी के मन में बहुत दुख हुआ; इसलिये अकुलाकर बोले॥ चौ० दीप दीपके भूपति नाना। आये सुनि हम जो पन ठाना॥ देव दनुज धरि मनुज शरीरा। विपुल वीर आये रनधीरा॥ दो०-कुँअरि मनोहर विजय बड़ि, कीरति अति कमनीय। पावनि-हार विरंचि जनु, रचेउ न धनु दमनीय॥ चौ०-कहहु काहि यह लाभ न भावा। काहु न संकर चाप चढ़ावा॥ रहौ चढ़ाउब तोरब भाई। तिलभरि भूमि न सके छुड़ाई॥ अब जनि कोउ माखै भट मानी। वीर बिहीन मही मैं जानी॥
इसलिए आप लोग--तजहु आस निज निज गृह जाहू। लिखा न विधि वैदेहि विवाहू॥ सुकृत जाइ जौं पन परिहरऊँ। कुआँरि कुआँरि रहै का करऊँ॥ पहिले यदि हम ऐसा जानते कि पृथ्वी वीरों से खाली है, तो ऐसी प्रतिज्ञा ही न करते, तब आज यह दिन हमें देखने को क्यों मिलता। श्रीजनकजी के ऐसे बचनों को सुनकर सभी स्त्री पुरुष श्री-जानकीजी को देखकर दुखी हुए और -चौ०--माखे लखन कुटिल भइँ भौंहैं। रदपट फरकत नयन रिसौंहैं॥ दो०-कहि न सकत रघुवीर डर, लगे बचन जनुबान। नाइ राम पद कमल सिर, बोले गिरा प्रमान॥ चौ० रघुबंसिन महँ जहँ कोउ होई। तेहि समाज अस कहै न कोई॥ कही जनक जस अनुचित बानी। विद्यमान रघुकुलमनि जानी॥ सुनहु भानु कुल पंकज भानू। कहउँ सुभाउ न कछु अभिमानू॥ जौं तुम्हार अनुसासन पावौं। कन्दुक इव ब्रह्माण्ड उठावौं॥ कवित्त—पाउँ जो शासन तो लोक कमलासन को, बालक तमाशनके कन्दुक बनाऊँ मैं। नाऊँ पगशीश ईश दीजिए रजाय मोहिं, धाऊँ शत योजन लै कौतुक दिखाऊँ मैं॥ खाऊँ शपथ तोर तोरि शिव शरासन को, बारिके बतासन सों फोरि गहि लाऊँ मैं। लाऊँ मैं न मान अभिमान वान नाथ हाथ, यह चाप को चढ़ाऊँ अनुशान जो पाऊँ मैं॥ अबतो न सहोजात पीर रघुवीर धीर, तीर से लगे हैं बैन आयसु जो पाऊँ मैं। "ललिते" मरोरि महि मण्डल में डारौं बोरि, तोरि दिग्दं-तनिके दंतन दिखाऊँ मैं॥ रावरे प्रताप बल साँची कहौं रघुवीर, मेरु लै उखारि छिति छोर लगि धाऊँ मैं। अटकि रहे हो कहा मुखते निकारिये तो, झटकि शरासन को चटकि चलाऊँ मैं॥ दो०-तोरौं छत्रक दण्ड जिमि, तव प्रताप बल नाथ। जौं न करौं प्रभुपद शपथ, पुनि न धरौं धनु हाथ॥ पुनि न धरौं धनु हाथ नाथ, येहीं प्रण रोपौं॥ उलटि देउँ ब्रह्माण्ड पलक में यदि मैं कोपौं॥ सब राजान ने हार मान इनका मुख मोड़ौं। चरणकमल उर धार नाथ पल में धनु तोड़ौं॥ दो०--सुनहु राम रघुवंशमणि, रघुनन्दन रघुवीर। इन अपमानों ने किया, मुझको आज अधीर॥ चौ०-लखन सकोप बचन जब बोले

डगमगानि महि दिग्गज डोले ॥ सकल लोग सब भूप डेराने। सिय हिय हरष जनक सकुचाने ॥ गुरु रघुपति सब मुनि मन माहीं । मुदित भये पुनि पुनि पुलकाहीं ॥ तब श्रीरामजी ने प्रेम पूर्वक समझाते हुए श्रीलक्ष्मण से कहा— कवित्त—मेरे वीर भैया मेरे मान को रखइया लाल, मेरो अपमान मिथिलेशजू न कीनो है। जातो यदि मैं भी धनुष तीर संग राजनके, तब तो अपमान और शान में कमीनो है॥ सुनिहैं कहूँ दाऊ क्रुद्ध होइहैं हम दोउन पै, नाहक अपमान कीनो, औरमन खीनो है। मिथिलाधिराज निमिराज हैं सयाने बन्धु अनुचितौ भाषैं तउ उचितहिं चीनो है॥ इस प्रकार समझाकर हाथ पकड़कर दुलारपूर्वक अपने निकट बिठा लिया । तब-चौ०-विश्वामित्र समय शुभ जानी। बोले अति सनेह मृदु बानी ॥ विश्वामित्रजी ने कहा--कवित्त--सुनिये रघुवंश के सितारे दुलारे लाल, तोरि शिवचाप दुख विदेह को मिटाइये। लीजिये जयमाल पहिरि मैथिली करकंजन सों, मिथिलानिवासिन सुखसिन्धु में डुबाइये॥ आज महि मण्डलीक मण्डल के मध्य माहिं, अचल अदाग अमल कीरति को पाइये । धनुष तोरिबे को रंच दोष न लगेगो तुम्हें याते "गुनशील" सिन्धु नाहीं सकुचाइये ॥ सुनि गुरु बचन चरन सिर नावा। हर्ष विषाद न उर कछु आवा॥ ठाढ़ भये उठि सहज सुभाये । ठवनि जुवा मृगराज लजाये ॥ गुरुपदवन्दि सहित अनुरागा। राम मुनिन सन आयसु माँगा॥

श्रीरामजी ने हाथ जोड़कर कहा कि- हे मुनिवृन्द! आप सब आज्ञा दें तो हम भगवान शंकरजी के धनुष को तोड़ें। एक तो यह हमारे ही पूर्वजों की अस्थि से निर्मित है, दूसरे शिवजी का आयुध है। अस्तु इसके खण्डन का हमें अपचार न लगे। तब ऋषियों ने कहा—दो०-मम आज्ञा से नृपति सुत, तोरहु शिवको चाप। जग कीरति विस्तार हो, लागै रच न पाप॥ तब श्रीरामजी धनुष के निकट गये। श्रीरामजी की मधुराति मधुर मूर्ति देखकर पुरवासी मनहीं मन प्रार्थना करते हैं- दो०—हे शिव, गौरि, गणेश, विधि, देव पितर समुदाइ। जो कुछ पुण्य प्रभाव मम, होइ जगत सुखदाइ॥ चौ०-तौ शिवधनु मृणाल की नाईं तोरहिं राम गनेश गुसाईं॥ उस समय माता श्री सुनयनाजी अपनी सखियों से कहने लगीं-- चौ०--सखि सब कौतुक देखन हारे। जेउ कहावत हितू हमारे॥ कोउ न बुझाइ कहै गुरु पाहीं। ये बालक अस हठ भल नाहीं॥ जिस धनुष को रावण बाणासुर जैसे वीर छू भी न सके, वही धनुष इस परम सुकुमार बालक को दे रहे हैं। क्या हंस का बच्चा मंदराचल उठा सकता है । चौ०--भूपसयानप सकल सिरानी। सखि विधिगति कछु जात न जानी॥ वह सखी परम चतुर थीं, अस्तु वह बोली कि-हे महारानीजी आप विचार करिये-चौ०--कहँ कुम्भज कहँ सिन्धु अपारा। सोखेउ सुयश सकल संसारा॥ देवि तजिय संसय अस जानी। भंजब धनुष राम सुनु रानी॥ सखी के इस प्रकार बचनों को सुनकर मन का संसय और विषाद दूर हो गया और श्रीरामजी में वात्सल्य प्रेम उमड़ने लगा॥ तब श्रीजानकीजी माधुर्य भाव विभोर होकर

उमड़ने लगा ।। तब श्रीजानकीजी माधुर्य भाव विभोर होकर अपने मनमें सभी देवताओं से प्रार्थना करती हैं कि— चौ०—गणनायक वरदायक देवा । आज लगे कीनी तव सेवा ।। बारबार विनती सुनि मोरी । करहु चाप गुरुता अतिथोरी । तन मन वचन मोरपन साँचा । रघुपति पद सरोजचित राँचा ।। तौ भगवानसकल उरवासी । करिहिं मोहिं रघुवर की दासी ।। जेहिके जेहिपर सत्य सनेहू । सो तेहि मिलै न कछु संदेहू ।। प्रभुतन चितय प्रेम पनठाना । कृपानिधान राम सबजाना ।। सियहिं विलोकि तकेउ धनु कैसे । चितव गरुड़ लघु ब्यालहिं जैसे ।। जब लक्ष्मणजी ने समझ लिया कि अब श्रीरामजी धनुष तोड़ना चाहते हैं, तब चरण से पृथ्वी को दबाकर बोले ।। चौ०—दिशि कुंजरहु कमठ अहिकोला । धरहु धरनि धरि धीर न डोला ।। राम चहैं शंकर धनु तोरा । होउ सजग सुनि आयसु मोरा ।। इतने में श्रीरामजी धीरे धीरे चलकर धनुषके निकट आकर परिक्रमा करके खड़े हुये, तब कुछ ग्रामवासिनी गाने लगीं, पद—

धनुष अति विकट, खड़ोहै ताके निकट, उठावो चाहैं चटक अवध वारो हो । अतिसुकुमार कुमार साँवरो कोटि मार मद गार, क्रीट केरी चटक, कोमल कर कटक, भृकुटि टेढ़ि मटक, सियाको प्यारो हो ।। भाल विशाल लाल उरमाला छयलछबीलो सुघर, कसेहैं कटि फेंटो, कौशिल्या जी को ढोटो, सियाको दुलहेटो, जनक दुख मेटो, जनकपुर हो । कुण्डल लोल अमोल कानमें सजत कपोलत आय, अलक केरीझलक, परत नहिं पलक, उछल छवि छलक, ललकि उरहो ।। चितवनि चारिउ ओर चाँदसी चोरतचख चित चोर, मन्द मृदु हँसत हियेमें हठि बसत न काके उर धसत गयन्दगामी हो । रघुकुल कमल पतंग बाँकुरो क्षत्री कुल शिरमौर न देखे धीर रहत, तोरन धनु चहत ललकि करगहत कहत रघुराज हमारो स्वामी हो ।।

श्रीजानकीजी को अत्यन्त ब्याकुल देखकर श्रीरामजी ने सोचा का बरषा सब कृषी सुखाने । समय चुके पुनि का पछिताने ।। ऐसा सोचकर— गुरुहिं प्रणाम मनहिंमन कीना । अति लाघव उठाय धनुलीना ।। श्रीरामजी को उठाते चढ़ाते और खैंचते हुये कोई भी नहीं देख पाया—क्योंकि ये तीनों काम करके उसी क्षण के मध्य में ही श्रीरामजी ने धनुष को तोड़ दिया । चौ० प्रभु दोउ चाप खण्ड महि डारे । देखि लोग सब भये सुखारे ।। देवता बृन्द आकाश से पुष्प वर्षाकर अनेक प्रकार सुन्दर बाजा बजाकर मंगलगीत गाने लगे । चौ०—बरषहिं सुमन रंग बहुमाला । गावहिं किन्नर गीत रसाला ।। रही भुवन भरि जय जय वानी । धनुष भंग

धुनि जात न जानी ॥ सखिन सहित हरषीं अति रानी । सूखत धान परा जनुपानी॥ जनक लहेउ सुख सोच बिहाई । पैरत थके थाह जनु पाई ॥ सीय सुखहिं बरनिय केहि भाँती । जनु चातकी पाय जल स्वाती ॥ सतानन्द तब आयसु दीना । सीता-गमन राम पहिं कीना ॥ साथ में सखियाँ मंगलगीत गाती हुई जा रही हैं ॥ पद-चलो डालो जयमाल गले रामके सुकुमारी सिया सुखधामके । नैना ये दौड़ दोऊ जा जा वहाँ लगें, डर लागता कहीं न राम पावँ में अड़े । देखि लाजैं करोड़ छटा काम के ॥ सुकुमारी० ॥ जोजो निहार पाये नीलम स्वरूप को, सो सों सभी सिहातेहैं मिथिलेश भूपको । बिके बैठे बेमोल बिना दामके ॥ सुकुमारी० ॥ कोई सखी श्री जानकीजी से कहती है—पद— सुनु सिय सुकुमारि माला श्रीराम गले डालो । तुमतो जनक जू कि बेटी, जनक जू कि बेटी । ये दशरथ लाल ॥ माला० ॥ तुमतो कठिन तप कीना कठिन तप कीना, वर पायो करतार ॥ माला० ॥ इसतरह मंगलमय मंजुल गीत गातेहुईं सखियाँ श्री किशोरी जू को श्रीरामजी के निकट लेगईं ॥ चौ०—जाइ समीप राम छबि देखी । रहि जनु कुँअरि चित्र अवरेखी ॥ तब—चतुर सखी लखि कहा बुझाई । पहिरावहु जयमाल सोहाई ॥ सुनत जुगुलकर माल उठाई । प्रेमविवश पहिराइ न जाई ॥ सोहत जनु जुग जलज सनाला । ससिहि सभीत देत जयमाला ॥ गावैं छवि अवलोकि सहेली । पद—झुकि जावो तनिक रघुवीर लली मेरी छोटीसी । आप हैं ऊँचे लली मेरी नीचे; पहुंच न पावै सीर ॥ कब की खड़ी बिचार करिय मन, दया करो वेपीर । परम सुजान शीलगुण सागर नागर परम सुधीर ॥ लली०॥ दो०—सुनि सखियन के वचन मृदु, मन्द मन्द मुसुकाय । कछु सकोच युत प्यारभरि दीनो शीश झुकाय ॥ पद तव निज हिय हरषाय किशोरी । कोमल कलित ललित करकंजन जयमाला पहिराय विभोरी ॥ निरखति नेह नमित दृगकोरन, गुरुजन लाज सकोच अथोरी । 'गुनशील' पिय सुछवि सुधारस, पियत भई अतिसय रस बोरी ॥ जयमाला पहिराने के बाद चौ०—सखी कहहिं प्रभु पदगहु सीता । करति न चरन परस अतिभीता ॥ दो०—गौतम तियगति सुरतिकरि नहिंपरसति पगपानि । मनविहँसे रघुवंश मनि, प्रीति अलौकिक जानि ॥ सखियों ने एक गीत गाया । पद—रामइसरूप में अब आपका दर्शन होवैं । आप दुलहावने श्रीजानकीजी दुलहिन होवैं॥ आपने तोड़ाहै धनुष जोड़ते हैं हमगाठैं । कर्मका होचुका अबधर्म का बन्धन होवै ॥ खींचकर जिसको चढ़ाया था चाप शंकर का । वही डोरी तुम्हें अब हाथका कंगन होवै ॥ पहिला पूरा

हुआ अब दूसरे आश्रम को चलो । पितृ ऋण जिससे चुके अब वही साधन होवै॥ देखलें भक्त भी सेहरे कि लड़ी राधेश्याम । लोभ नयनों का इसी लाभ से पूरण होवै ॥ चौ०—तेहि अवसर सुनि शिवधनु भंगा । आये भृगुकुल कमल पतंगा ॥ देखि महीप सकल सकुचाने । बाज झपट जनु लवा लुकाने ॥ दो०—सान्त बेष करनी कठिन बरनि न जाय स्वरूप । धरि मुनि तन जनु वीर रस, आयउ जहँ सबभूप ॥ परशुराम जी का बिकराल स्वरूप देखकर सभी राजा डरके मारे अकुलाकर उठकर अपने पितासमेत अपनानाम बताकर दण्ड प्रणाम करनेलगे ॥चौ०-जनक वहोरि आय सिर नावा । श्री जनक जी को प्रणाम करते देखकर परशुराम जी ने कहा—प्रतिपाल प्रजाको सदैव करो, पनधर्म विवेके वितान तनेरहो ॥ निज शत्रुन तालि धरातल पै, तिहुंलोक में कीरति पुंज घने रहो । सनमान सनेह सदा सबके, "कविधर्म" सनेह सुधा सों सने रहो । परमेश्वर प्रेम पयोनिधि में, चिरकाल विदेह विदेह वने रहो ॥ सीय बुलाय प्रणाम करावा ॥ श्री मैथिली जू को प्रणाम करते हुये देखकर परशुराम जी ने आशिर्वाद दिया कि-भवे समस्तं सफलं त्वदीयं, मनोरथं वै जनकात्मजे ही । पतिव्रतत्वे सुदृढ़ंमवाप्ये; यशस्विनी मोदन सर्व लोके ॥ कवित्त गंग औ जमुन जौलौं, सूर्य और चन्द्र जौलौं, क्षिति आकाश जौलौं, आनन्द बनो रहै । शेषशिर भारजौलौं, जगत पसार जौलौं नाम निरधार जौलौं सुयश बनोरहै ॥ तुलसी का पेड़ जौलौं, सालिग्राम मूर्ति जौलौं, वेद प्रणधाम जौलौं उदधि खनो रहै । तौलौं श्री जनकदुलारी जनकजू की, तुम्हारे सोहाग सिर सेंदुर वनो रहै ।

दो०—जियहु सुयश जग छाइके, अति सुषमा सरसात । पतिव्रत माहिं प्रवीण हो, रहै अचल अहिवात ॥ चौ०—विश्वामित्र मिले पुनि आई । पद सरोज मेले दोउ भाई ॥ श्री राम जी और श्री लक्ष्मण जी को प्रणाम करते देखकर परशुरामजी विश्वामित्र जी से पूछते हैं कि—सवैया—मारको कौन शुमार करै ये, अपार भरे सुषमान के भौन हैं । जानिपरै बलवान कछू धनुवाण लिये इतको कियो गौन हैं ॥ मोहू को मोहत है "ललिते" अति ही द्युतिसों यह साँवरो जौन है । अवनी में न ऐसो सुनो कबहूँ, कहाँ गाधितनय ये बालक कौन हैं ॥ कवित्त रूपको निधान सूर्य-चन्द्र सो उदोतमान, चंचल तिरीछेनैन भृकुटी चढ़ाये हैं । लागिहै समाधि आज ऐसो कछु लागै मोहिं, साँवरो सलोनो मुखमोर मुसुकावै है ॥ नाहीं अनुरागवश मनमोर थामे थमै, मरोचित योगते वियोग में लगावै है । ऐहो 'कविधर्म' धीर जन धारो जाय, कौन को कुमार वेगि कौशिक बतावै है ॥ तब विश्वामित्र जी ने कहा—चौ०—रामलखन दशरथ के ढोटा । दीनअशीष जानि भलजोटा ॥

परशुरामजीने कहा । कवित्त—गंग जमुनधार जौलौं, सृष्टि बिस्तार जौलौं शेषशिरभार जौलौं अम्बर तनोरहे । गौरि शम्भुप्रेम जौलौं; नेमिन में नेम जौलौं, प्रेमिन में प्रेम जौलौं सुखसों सनोरहे ॥ हनूमानगदा जौलौं, चन्द्रसूर्य प्रभा जौलौं, प्रेमरमानाथको रमामें बनोरहे । तौलौं दिगम्बर त्रिशूलधारि हाथ माहिं, रच्छा टंकोर धनु करतही बनोरहे ॥ दो० होउ निडर अरिते सदा समर न जीतै कोय । चिरंजीव युगयुग जियो, कीर्तिलताबर होय ॥ तदन्तर परशुरामजीने श्रीविदेहजीसे अनेकराजाओं के आनेका कारणपूछा, श्रीमिथिलेशजीने अपनी प्रतिज्ञा करना और धनुषका खण्डन होना बतलाया । जिसे सुनकर परशुरामजीने बहुत क्रोध किया । श्रीरामजीने अपनी सुधासानी मधुर प्रियबानी से परशुरामजी को प्रबोधकरादिया, तब परशुरामजीप्रार्थना करके तपस्या करने चलेगये । तत्पश्चात् विश्वामित्रजी की आज्ञासे श्रीजनकजी ने दूतों द्वारा समाचार पत्र भेजवाकर श्रीदशरथजी को बरात समेत श्रीजनकपुर में बुलवा लिया ॥

मंगल आजु जनकपुर मंगल मंगल हे । मंगल तनेउ वितान गान धुनि मंगल हे ॥ मंगल बाजन बाजहिं पुर नभ मंगल हे । मंगल बस्तु लए साजहिं मिलि सब मंगल हे ॥ मंगल मन्त्र उचारहिं महिसुर मंगल हे । मंगल तनु धरि धाय उमगि जनु मंगल हे ॥ मंगल दुलहिनि चारु दुलह चारों मंगल हे । मंगल व्याह उछाह मोद प्यारी मंगल हे ॥ मंगलगान ॥

आजु सियाजू के व्याह की लगनियाँ ए सखी घरघर मंगल, बाजन बाजै घनघोर ए० ॥ आय बरियात साजि विविध बाहनियाँ ए०, रघुकुल मनि सिरमौर ए० ॥ सुनि ना परत सखी बतियाँ अपनियाँ ए०, जुरे अगवनियाँ अथोर ए० ॥ लखि बरषावैं बहु सुरन सुमनियाँ ए०, जयति जयति करैं सोर ए० ॥ मोद उमगि गावैं प्रेम मगनियाँ ए०, छवि छकि छकि तृण तोर ॥ ए० ॥

आजु जनकपुर घर-घर मंगल आनन्द अधिक उछाह ए माई । सजि बरियात सुपुत्र बिआहन ऐला अवध के नाह ए माई ॥ हाट बाट महँ चहल पहल छाएल उमग सबहिं उर माह ए माई माउ । रानी सुनयना के जाई जुड़ाउनि कैलनि सुखी सब काहु ए माई ॥ चारिउ कुमरि जेहने छथि तेहने वर चारिहुं रूप धारि ए माई । जानि परइ जनु चतुर विधाता रचलनि सोचि विचारि ए माई ॥ हम सब प्रगट भाग्य बस भेलहुं मिथिला अम्बाक गोद ए माई । कोहवर बैसि सरस सुख लूटब प्रमुदित मोद विनोद ए माई ॥

देखो-देखो री सब चारों सुन्दर वर; राजा दशरथजी के लाल माई हे। चारों कुमार जोग आनि मिलौलनि, श्रीगौरी शंकर कृपाल माई हे ॥ सिर पै सुरंगी चीरा तुर्रा कलंगी हीरा, केशर खौर ऊँचे भाल माई हे। अजब अनोखी आँखि कजरा सुरेख रेखी, चितवत करत निहाल ॥ कुण्डल मनिन जर उलटे कपोल पर, बुलकनि करत कमाल माई हे। जियरा अरूझै लखि औरो न सूझै देखी, मुसुकत मुख दै रूमाल ॥ अँगुरिन छल्ला छाजै नख सिख रूप राजै, गरवा में गेरे मनि-माल ॥ सौंपि संपत्ति साज राखैं विदेहराज, मिथिले इनहिं सब काल माई हे। प्रेम बढ़ाय चाहे लोन पढ़ाय चाहे, लेबै बझाय मंत्रजाल माई हे। मोद न तो वियोग बौरी हो बिरह राग, लागत जीवन जवाल माई हे ॥

रघुवर धीरे धीरे चलिये लली की गलियाँ। लखु खिलि रही कामिनी कुमुद कलियाँ ॥ मुखचन्द को चकोरिका चखनि अलियाँ। छबि छाकने दे छीने क्यों छयल छलिया ॥ नोखे नयननि नुकीले सुधि बुधि दलिया। फल पाइहौ किये का लखि सिय ललिया ॥ मन्द मन्द हँसि हेरैं गुन भाव भलिया। मोद तन मन वारैं होय बलि बलिया ॥ पद ३४ ॥

मिथिला के नतवा से बढ़ि गैले शान रे। हमरा नै चाहिय पाहुन जोग जप ध्यान रे। मिथिला जनम मेल सुकृत महान् रे। लाड़िलो कृपा सँ पैलौं आहाँ सन मेहमान रे ॥ जिनकी कृपा से छुटै त्रिगुन महान रे। तिनका के कैलौं हम गाँठि से बंधान रे ॥ हमरा नै चाहिय पाहुन धनुष अरु बान रे। हमरा तो चाहिय पाहुन मन्द मुसकान रे ॥ विश्वम्भर छथि विदित जहान रे। लाड़िली के अँगना में कूटै छथि धान रे ॥ पद ४६ ॥

चारों दुलहा देहिं भामरिया ए। संग सोहति दुलही नागरिया ए ॥ श्याम गौर गौर श्याम चारों जोड़ा जोड़िया, हरेहरे होत चहुंओरिया ए। शिरनि पै सोहै मणिन मौर मौरिया, दामिनी की छवि छीनै छोरिया ए ॥ रतनारी कजरारी अजब अँखरिया, लखितहिं करे वेखबरिया ए ॥ अंचल चदरिया में परीहैं गठरिया, बाँधे हैं कि बूटी बस-करिया ए ॥ नवरंग मणिन की सुपली सोहरिया, लावा छिरियावैं भरि भरिया ए ॥ उमगि उमगि गावैं अलिगन गरिया सुख सरसत बेसुमरिया ए ॥ जयति जयति जय जय होत सोरिया, सुर करैं सुमनकी झरिया ए ॥ परै मनि खम्भन्हि में दम्पति छहरिया, जागै जोति जगर मगरिया ए ॥ मानो रतिपति जानि पितु महतरिया, प्रगटि दुरत बेरि वेरिया ए ॥ फूली न समाति लखि मोदिया किंकरिया लली लाल लखनि लजोरिया ए ॥ पद ५८ ॥

कौने नगर के सिन्दुरिया सिन्दूर बेच आयलहे। आगे माई कौने नगर के कुमारी धीया सिन्दूर वेसाहल हे॥ अवध नगर के सिन्दुरिया सिन्दुर बेचे आयल हे। मिथिला नगर के कुमारी धिया सिन्दुर वेसाहल हे॥ कौने रंग रसिया जे बरवा से सिन्दुर चढ़ावल हे। कौने धीया वारी सुकुमारी से सिन्दुर सँवारल हे॥ श्याम रंग रसिया जे बरवा से सिन्दुर चढ़ावल हे। सिया धीया वारी सुकुमारी से सिन्दुर सँवारल हे॥ जय जय होत चहुंओर सुमन बरसावल हे। कदमलता पद गावल सुनि सुख पावल हे॥

रतन जड़ित मण्डपतर राजत दुलहा श्याम सलोना री॥ सिर सुन्दर सोवरनि मनि सेहरा श्रवननि झलकतरौना री॥ श्याम वदन पर अलकें झलकत मानो नागिनि के छौना री। वामअंग सोभित सिय सुन्दरि अँग-अँग छवि मन हरना री॥ प्रियासखी ऐसी मृदुजोरी अनत नहीं कहीं होना री॥ पद ६७॥

राजति राम जानकी जोरी। स्याम सरोज जलद सुन्दर वर दुलहिनि तड़ित वरन तनु गोरी ब्याह समय सोहति वितान तर उपमा कहुं न लहति मति मोरी। मनहुं मदन मंजुल मंडप महँ छवि सिंगार सोभा इक ठोरी॥ मंगलमय दोउ अंग मनोहर ग्रथित चूनरी पीत पिछोरी। कनक कलस कहँ देत भाँवरी निरखि रूप सारद भइ भोरी॥ इत वशिष्ठ मुनि उतहिं सतानंद बंस बखान करैं दोउ ओरी। इत अवधेस उतहिं मिथिलापति भरत अंक सुखसिंधु हिलोरी॥ मुदित जनक रनिवास रहस वस चतुर नारि चितवहिं तृन तोरी। गान निसान वेद धुनि सुनि सुर वरसत सुमन हरष कहैं कोरी॥ नयनन को फल पाइ प्रेम वस सकल असीसत ईश निहोरी। तुलसी जेहि आनंद मगन मन क्यों रसना बरनै सुख सो री॥ पद ६८॥

दुलह दुलही की छवि बाँकी मुबारक हो मुबारक हो। अनूपम सखि जुगल झाँकी मुबारक हो मुबारक हो॥ लसै शिर मौर मौरी ब्याह भूषण औ वसन दोउ तन। न उपमा मिलि सकै जाकी मुबारक हो मुबारक हो॥ अमित रतिनाथ छै लज्जित निरखि सियवर सलोने की। त्यौं रति लखि छवि जनकजा की मुबारक हो मुबारक हो॥ जिन्हें लखि जोगिजन तरसैं विराजैं मध्य मण्डप पर। अहै बड़िभाग मिथिला की मुबारक हो मुबारक हो॥ मनोहर जुग्म शशि को त्यागि पल देखैं चकोरी सी। ये आँखैं नेहलतिका की मुबारक हो मुबारक हो॥ पद ७१॥

द्वार की छेकाई नेग लूँगी मन भाई हाँ तव जाने दूँगी, कोहवर सदन सुहाई॥ सकुच विहाय दीजै दीनी है जो माई हाँ तब जाने दूँगी, कोहवर०॥ चाहे

सोई मानिये जो कहूँ समुझाई हाँ तब जाने दूँगी, कोहवर० ॥ दीजै मेरे भैया से निज बहिनी की सगाई हाँ तब जाने दूँगी, कोहवर० ॥ मोद नहीं तो लीजै लिया शरणाई हाँ तब जाने दूँगी, कोहवर० ॥

विश्वामित्र मुनि ज्ञानी पिताजी से माँगि आनी, संगमें न हम कछु लायो हे सहेलिया । दिल एक साथ लायो प्यारी तूँ लियो चुराय, तिरछी नजर को चलाय हे सहेलिया ॥ देर होत जाने देहु बात मोरी मानि लेहु, खड़े खड़े चरण पिराय हे सहेलिया । मन मोरा मोहि लियो प्यारी सखी वर जोरी, श्री निधि लियो है लुभाय हे सहेलिया ॥

लखि कौतुक घर में नारि हँसि हँसि पूछति हैं रघुवर से । तुमहिं जगत को सार कहहिं मुनि कहि न सकति हम डर से ॥ तुम नहिं पुरुष न नारि कहहिं श्रुति खेलहु खेल मकर से । सो लखि परत मकर कुण्डल से और किशोर उमर से ॥ दशरथ गौर कौशल्या गोरी तुम श्यामल केहि घर से । दोऊ के हरि ध्यान प्रगट भये अस हमरे अटकर से । व्यङ्ग चतुरता गारी सुनि के देखा राम नजर से । भई कृतारथ देव मानवहिं जनि ए जाहिं नगर से ॥

प्रिय पाहुनि रुचि से जेमि लिय, छमि भूल चूक गुनि अबुधि तिय ।। आहाँक जोग किछु बनलो नैं व्यंजन से बिचारि सकुचाइ जिय । भावक सुखद स्वभाव अहाँक सुनि पुनि पुनि अति हुलसाइय हिय ।। जानव तखन कहब आहाँ जखनहिं अमुक वस्तु कने और दिय । किञ्चित वचन बजैत लजाइ छी परम कृपालु कहाइ छी किय ॥ जनि लजाउ निज कुलाचार पर संत सुखद अति अवध धिय । मोद मुदित मन विनती सुनावथि सिरकिन लखि लखि सीय पीय ।।

प्यारे रसिया राजकिशोर ऐ प्यारे रसिया । जेमिय व्यंजन रुचिर हमारे हेरि कृपा की कोर ।। है अनूप गुन रूप तिहारे अचरज भरे अथोर । हौ साँचे कि तो साँचो कहिये प्रश्न के उत्तर मोर ।। लोकपती तुमको बतलावैं चारिहुं श्रुति करि सोर । रावरो बहिनि अहै लोकहिं में तिन पति मैं क्या निहोर ।। जगत पिता तुमको जग जानत मानत में नहिं खोर । भै ताते निज पितहूँ को पितु चाल निराली तोर ।। सब जग सार तुमहिं बतलावैं सन्तन मतो बटोर ।। भरत लखन रिपुसूदनहूँ के सार में क्या तब जोर ॥ नाम पितामह को अज तेरो आपहुं अज यह घोर । मोदलता को बेगि बतइये सिय दूलह चितचोर ।।

जनि मनहिं लजाउ कनै और पाउ यो । बनल अनोन सनोन जे हे किछु जानि

गँवारि छमा छाउ यो । प्रेमीजन चितवन मुसुकन हित तरसैत छथि तकि मुसुकाउ यो ॥ मिलत दहेज चाहब जे जे से ताइला उदासी नै मन लाउ यो । मिलननि सीता दुहु कुल तारनि हिनक आदरभाव हिय लाउयो ॥ हँसमुख पानहु नीक बढ़ाइ छथि हँसैत मोद हिय बढ़ि जाउ यो ॥।

रघुवर जेंवत जानि एक सखी अंचल दै हँसि बोली जू । सुनहु लाल तुमका के जाये सत्य कहहु सब खोली जू ॥ सुनहु प्रिया हम नृप दशरथ के जासु सुयश श्रुति गावैं जू । भूपति गौर श्याम तुम लालन हम कैसे पतियावैं जू ॥ सुनहु चतुरि हम श्याम न होते को शृँगार रस गावैं जू । हमरे श्रीजनकलली रस के रस बिनु बोले पिय आयो जू ॥ कहहु कमल मकरन्द मधुर हित भँवरहिं कौन बुलावै जू । रामचरण सखि मरम वचन सुनि सब सखियाँ मुसुकावैं जू ॥ बोलवना भयो काहे कारे । भैया गोरी बापहुगोरे, गोरे रिपुहन लखन गना ॥ यहिको कारण कहि समुझावो, जस जस होवै बात छना । जानि परत कछु भेदभयो है. तेहिते शंकित जगत जना ॥ हमनहिं कहिहैं कतहुं जाय जग. केवल जानन चाहघना । अबतो हमरे भेलैसर्वस, सिय जू से करिके ब्याहपना ॥ रावर दोषहिं गुनिहैं भूषण, चन्द्र कालिमा यथा भना । "हर्षण" धीरे कहहु हमहिं ते, तुम सतवादी वंश घना ॥

छाड़ि सुसरारि ललन कहाँ जैहौ ॥ मिथिला से जो अवध को जैहौ साँची कहो कब ऐहौ । एक बेर आये सियाजू को पाये फिर ऐहौ कछु पैहो ॥ गारी देत सियाजू के नाते गारी के दुख जनि लैहौ । श्रीरघुराज नामर ननदोई सरहज के जनि भुलैहौ ॥ **पद ११७** ॥

ललन ससुरारि छाड़ि कहँ जैहो यह सुख कतहुं न पैहो । सासु ससुर सारी सरहज सब मिथिला बिरह सतैहौ ॥ मानि ननद नाते ननदोई फिरि विधु बदन देखैहौ । प्रमदाबन भूलेहु जनि रघुवर निज कर पाति पठैहो ॥ जो तुम साँच अवध नृपनन्दन साँचि कहो कब ऐहौ । ज्ञानाअलि तब सफल मनोरथ जब हँसि कंठ लगैहौ ॥ ११८॥

सोहत शिरमौर, बनरा बना क्या बाँका । दीन्हें नयन बिच कजरो बसन तन पियरो, लेत ठगि जियरो, केशर की खौर ॥ घूमें अली मिथिला की, प्रेम में छाकी, छवी पै लला की, सब ठौरहिं ठौर ॥ होवैं सियापति रामा; मोहनि सुख धामा, कहैं सब बामा, पूजैं गन गौर ॥ बनरा ...... ॥ पद २७ ॥

सेहरा छबिदार पाहुन बदन पर राजै । लोचन सरस अनियारे, अरुण कजरारे ललित मनहारे चितवनि सुखसार ॥ बोलनि मधुर मनहरनी, हृदय रस भरनी सखिन वश करनी, टोना जनु डार ॥ जामा जरकसी सोहै, सबनि मन मोहै, सकृत

जेहि जोहैं, तन मन दे वार ।। सीताशरण सुघराई– शेश श्रुति गाई, कहत सकुचाई, पावैं ननि पार ।। पाहुन······ ।।

नवल बनी नीकी राज किशोरी । पहिरे नील जरकसी सारी सोहत हैं तन गोरी ।। ब्याह विभूषण भूषित अंगन चितवन में चितचोरी । सुधा मुखी रघुराज बने को, सुधि बुधि सम्पति छोरी ।।

देखो देखो सुछबि दुलहिन की सहेलीगेरेसँगकी सजनसे आलाहै ।। शीशचन्द्रिका चन्द्र सिमिटछबि छाकत रतिहुं अनंग; कारेकच कुटिलाई कहरकर, लट भामिनी भुजंग श्रवणझलक झुमकनकी, हलकबुलकनकी, सजनसे आलाहै ।। विन्दुविचित्र माल भल चमकत, सरसत सरससोहाग, नीरजनैन सुसैन नवल उर उमगावत अनुराग । मधुराई मुसुकनकी, सुदुतिदशननकी, सजन० ।। कंठमाल-कंठा-कंठसर हियहार हमेल सुढंग बंद-बिजायट–कंकण करमणि, कर दामिनि दुतिदंग । रसिकजनन मनभावन, सुबस्त्र सोहावन, सजन० ।। नूपुर नगन नखन ज्योती गति, शरणागति दरशंत, अरुण वरण आकर मंगलपन, पगतल मंजु लसंत । मनमोहन मदगंजन "मोहन" मन रंजन सजन सेआलाहै ।।१।।

लामी लामी केशिया तोरि साँवली सुरतिया—हायरे दुलहा । दुलहा बोलल मीठेबोल हायरे दुलहा ।। मणिनमौरियामाथे जामाजरतरिया-हायरे दुलहा । अलक हलनियाँ अनमोल, हायरे० ।। नैनाकजरवा तोर छेदेला जिगरवा हायरे० । तिरछी तकनियाँ विषघोल, हायरे० ।। एकमनकरे तोरे संगसंग रहितौं हायरे० । एकजिया करे डामाडोल, हायरे० ।। 'मोहन" मनहरवा की बड़ी बड़ी अँखियाँ हायरे० । लखत-बिकानी बिनमोल हायरे० ।। २ ।। निरखु सजनी दुलहा बाँका सँवरिया ।। ललित विशालभाल पर राजित, मंगल मंजु मौरिया । अनियारी कजरारी अँखियन, चितवत कर चित चोरिया ।। पटुकापीत पीतरँग कटिपट, जामारंग केशरिया । "मोहन" ऐसे सुघर बनरे को, लखि सुखलहत नजरिया ।। निरखु० । ३ ।।

तनमद भेलै बेहाल-बेहाल छयलारसिया ।। दुलहिन सिय सुन्दरिया हे वलिहार–वलिहार छयला रसिया । दुलहा अवधसरकार सरकार छयला रसिया ।। दुलहा के सोहै मौरमाथे,वलिहार-वलिहार छयला रसिया । दुलहिनके सोहै चन्द्रहार चन्द्रहार छयला रसिया ।। पीतपट्टूका पिताम्बर हे वलिहार-वलिहार छयला रसिया ।। वन्नीतन सारी सोहार-सोहार छयला रसिया ।। कोटिकाम पिय उपमा हे वलिहार-वलिहार छयला रसिया । सिय छबि अनुपम अपार-अपार छयला रसिया ।। श्यामगौर दोऊ जोरिया हे वलिहार-वलिहार छयला रसिया । "मोहन" प्राण अधार अधार छयला रसिया ।। ४ ।।

रघुवर ! बड़े भाग्य से मिथिला में ससुरार पवलऽजी ॥ धनुष तूरि के पुरु-षारथ के गर्व न मन में करिह । एक एक गौरव मिथिला के चुनि चुनि हिये में धरिह ॥ इहँवे विश्व विजय कल कीरति के भण्डार पवलऽजी ॥ रघुवर० ॥ एकएक मिथिलापुर वासी सकल सुकृत के राशी । सकल सुकृत संकल्प कर दिये सकल जन-कपुर बासी । तव निज बँहियन अवधबिहारी बल बरियार पवलऽजी ॥ रघुवर० ॥ गुरुता और कठिनता धनुके लखि मन ही मन थाके । कृपा कटाक्ष प्राप्ति हित रघुवर हारि सिया दिशि ताके ॥ सिय के ताकत ही हारि ! ताकत अपरम्पार पवलऽजी ॥ ॥ रघुवर० ॥ आज्ञा दई सिया धनु को, कर अटकर इनके बल का । बिनु प्रयास जितना उठा सकें, हो जा उतना हलका । तव तू धीरे से धरि धीर, धनुष के पार पवलऽजी ॥ रघुवर० ॥ सिय संकेत समुझि शिवजी, निज धनु को यही सिखाये । जैहो टूटि राम कर परसत, गुरुतर हाथ पराये । एतना बड़े वड़ेन के एहिजे परम दुलार पवलऽजी ॥ रघुवर० ॥ कौशिक मुनि के जन्तर मन्तर, माँ गिरिजाके बानी । प्रेमीजन के मंजु मनोरथ, पुनि मिथिला के पानी । तब तू दूनो भैया भृगुपति के ललकार पवलऽजी ॥ रघुवर० ॥ पाँच वरस में सहज उठाई, बाँया कर वैदेही । पन्द्रह वर्ष किशोर उमर में धनुष उठाये तेही । फिर भी सिर नवाय सिय सन्मुख सिय कर हार पवलऽजी ॥ रघुवर० ॥

सकल जगत में दानि-शिरोमणि बिना विवाद कहइलऽ । जनकपुरी में जनक राय के दान ग्रहीता भइलऽ । गुरुजन सम्मुख सिय सी सुन्दरि हाथ पसार पवलऽजी ॥ रघुवर० ॥ मिथिलापति से ससुर सनेही सासु सुनैना माई । श्रुतिकीरति माण्डवी उर्मिला सारी परम सुहाई । सरहज सिधि प्यारी और लक्ष्मीनिधि से सार पवलऽजी ॥ रघुवर० ॥ सकल नगर नर नारि यहाँ के धर्मशील शुचि सन्त । पुर चहुं दिशि सर सुभग वाग वन, वारह मास बसन्त । दुर्लभ सकल लोक में अइसन यहाँ बहार पवलऽजी ॥ रघुवर० ॥

गारी प्यारी ससुरारी की अमृत हू से मीठी । नीक लगे तो औरी खातिर जल्दी लिखिहऽ चीठी । बूझिहऽ होली के त्यौहार पर उपहार पवलऽजी ॥ रघुवर०॥ 'नारायण' के व्यंग्य वचन सुनि तनिको बुरा न मनिहऽजी । सिया बहिन के नाते पाहुन ! सखा अपन करि जनिहऽजी ॥ ई तो गारी के मिस सार हृदय के प्यार पव-लऽजी ॥ रघुवर० ॥

—:※:—

ब्याह के पश्चात् बरात फाल्गुन तक श्री जनकपुर में ही रहगई, तब सारी सरहजों ने दूलह के आनन्द बर्धन के लिये होली का उत्सव मनाया। उसका संकेत मात्र यहाँ किया जाता है ॥

पद—सखि होरीमें आये ससुरारी किशोरी जू के साजन। सब सखियाँ मिलि पकरि के लायब, नरसे बनायब नारी ॥ नकवेशर झुमका पहिरायब, कसके पेन्हायब सारी। अँबिर गुलाल लगायब मुखमें, तकिमारब पिचकारी ॥ छोटका भैयासे साज वजवायब, तोहरो नचायब दै दै तारी। सियजू के पैयाअहाँलागू, नत कहिये हमहारी ॥१॥ बनिआये छैला होरीके बनिआये। चीराचारु शीशपरराजत, भालतिलक दिये रोरीके। फेंटगुलाल हार्थापचकारी, संगसखा लिये जोरीके ॥ होरी होरी करत हरत-मन, चीर भिगायो गोरीके। रामरसिक अबहोन चहतहै, हल्ला जनककिशोरीके॥२॥ होरी आई लला सब भाँतिभली होली आई ॥ खेलो दिल खोलो बेशकअब, सेनसजी मिथिलेशलली। जानपड़ेगी आजरँगीले, कठिनकला वर बामचली ॥ बहुवासर बीते बिलसोगे, फैलफन्द बिच छैल छली। उर उत्साह सजाय विलोकिय, सन्मुख युगल अनन्यअली ॥३॥ किसी सखी ने कहा—प्रीतम होरी मचाना होगा। ललित गुलाल सुभग गालनपर, मलना होगा मलाना होगा ॥ केशर रंग बसनसुठि अँग अँग रँगना होगा रँगाना होगा। भरि उमंग लै लै उमंग गति, नचना होगा नचाना होगा ॥ सरस फाग अनुराग रंग रस, गाना होगा गवाना होगा। हरिजन हरषि हरषि उर कण्ठन, लगना होगा लगाना होगा ॥४॥

मदछाकी छबीली गहि प्रीतमको रँग बोरें री। मन्दबिहँसि मुखमोरि फेरिदृग, झकझोरनि चितचोरे री ॥ छीनिलई करते पिचकारी, मुखमारत बरजोरे री ॥ रसिक अलीराघव कर जोरत, गहि रहि अंक न छोरे री ॥५॥ रँगकी तोहि लाजरँगीले रसिया ॥ रहियो देत दरश नयननको, भागि न जइयो परदेशिया। आश न जावै कबहूँ मिलनकी, गसीरहे ऐसी गसिया ॥ गहिके हाथ छोड़मत जइयो, नेह निबहियो मनवसिया। अब बलदेव बनायेरहियो, अपने चरणनकी दसिया ॥६॥ छके दोउ रंग रँगे नव गात। खेलिफाग अनुरागन भरिभरि, अंशगहे अलसात। अँबिरभरीं अलकैं ए कपोलन, अनुपम छबिछहरात। नीदभरे चितवन चितचोरत, मन्द मन्द मुसुकात। सियाअली यह फाग मुबारक यह रस रँग की रात ॥७॥ रँगभरी जोरी सदा चिरजीवो। सदाविहार करो रँगमन्दिर रंग किशोर किशोरी। सदासोहागिनि की अनुरागिनि रँगी रहो बड़भाग बढ़ोरी। पियके प्राणवशो सियसुन्दरि सियमन श्याम वशोरी ॥ पियकी चाह सुचाक गौ रहो, सियजू की मया स्वाति बरसोरी। सियमुखचन्द्र सुधारस द्रवौं-नित, पियके नयन चकोरी ॥ हमरे नैन प्राणके सर्वस, अधिक अधिक सुख रस सरसोरी। (श्री) कृपानिवास उपास महलकी टहल लगीसो लगोरी ॥सदा०॥ ८॥

श्रीसीताराम लीलामाधुरी सम्पूर्ण—

परात्पररूप-चारपादविभूति

[ब्रहद्ब्रह्मसंहिता प्रथम पाद अध्याय १३ श्लोक ८८ से आगे पृ० ४७ से ५० तक]

प्रकृतेः पुरुषस्यापि कार्यमात्रस्य सत्तमम् । आत्माधारस्य रूपं च बीज वृक्षस्य वै यथा ॥ ८८ ॥ यथः पिण्डे यथा वह्निरलक्ष्योऽपि पृथक्स्थितः । तापयन्स्वप्रकाशेन परमात्मा सनातनः ॥ धरित्री सर्वबीजानां प्रावृट्कालेन सर्वतः । धत्तेङ्कुराणि सर्वत्र ह्यसंपृक्तानि वै यथा ॥ ९० ॥ काल कर्मेच्छया विष्णोः स्वाश्रितान्यणुरूपतः । तथा भवन्ति विप्रेन्द्र व्यक्तानि स्थूलरूपतः ॥ ९१ ॥

अर्थ—प्रकृति और पुरुषरूप में परमात्मा का जितना भी कार्य है । उसके भीतर परमात्मा इस प्रकार आत्मा और धारक रूप में रहते हैं । जिस प्रकार वृक्ष में बीज रहता है ॥ ८८ ॥ और इस जड़चेतनात्मक जगत के भीतर वह सनातन पुरुष परमात्मा इस प्रकार से रहते हैं, कि जैसे अग्नि अलक्ष्य और पृथक होने पर भी लोहे के पिण्ड में अपने प्रकाश से लोहे तपाते हुये रहता है ॥८९॥ जैसे समस्त बीजों को अलग अलग रूपों में सर्वत्र धारण करनेवाली पृथ्वी वर्षाकाल में सभी जगह अंकुरों को धारण करती है ॥ ९० ॥ हे ब्राह्मण उसी प्रकार भगवान् की काल कर्मरूप इच्छा से, अपने आश्रित हुये अणुरूप आत्मा स्थूल रूप में प्रगट हो जाते हैं ॥ ९१ ॥

मुक्तयेनिर्विकारोऽसावात्मानं व्यतनोद्विभुः । न कर्मफल भोगार्थं गुणमय्या न मायया ॥९२॥ ज्ञानेनैवाहमेकोऽहं बहुस्यामि विर्निवृत्तये । मामाराध्य ममैवांशैरभिन्नैः प्राकृतात्मनाम ॥ ९३ ॥ शुद्ध सत्त्वेन द्रव्येण ह्यनावरणरूपिणा । आविर्बभूव भगवानंशेनाऽऽधाररूपतः ॥ ९४ ॥ अयमंशो भगवतो ह्यभिन्नोऽप्राकृतोमम । भगवानेव नो जीवो यो मया बध्यतेऽवशः ॥ ९५ ॥

अर्थ—वही अव्यक्त निर्विकार भगवान् इन अणु आत्माओं को मोक्ष देने के लिये अपने रूपों को प्रगट करते हैं । उनका वह रूप न तो त्रिगुणमयि माया के द्वारा बना है । और न कर्मफल भोगने के लिये ही है ॥ ९२ ॥ क्यों कि इन प्राकृत रूपधारी मेरे अभिन्न अंशों ने मेरा आराधन किया है । अतः इनके मोक्ष के लिये एकोऽहं बहुस्यामि इस श्रुति के अनुसार मैं अपने ज्ञान बल से रूप धारण करता हूँ ॥ ९३ ॥ प्रकृति के आवरणों से रहित आधार रूप अर्थात् सच्चिदानन्द ब्रह्मधाम

स्वरूप भगवान अपने शुद्धसत्त्व द्रव्यमय अंश से अनेक रूप धारण करते हैं ॥९४॥ भगवान से अभिन्न यह मेरा अप्राकृतिक अंश यद्यपि मेरे द्वारा परवश हो करके बाँधा जाता है । तो भी यह जीव भगवान् नहीं है ॥ ९५ ॥

न मुक्तो नापि नित्यस्तु जीवादन्यः परः पुमान् । द्विहस्तं ह्येकवक्त्रं च शुद्धस्फटिक संनिभम् ॥ ९६ ॥ सहस्र कोटि वह्नीन्दुलक्षकोट्यर्क संनिभम् । पीताम्बरधरं सौम्य रूपमाद्यमिदं हरे ॥ ९७ ॥ ध्यानैक साधनं ध्येयं योगिभिर्हृदयाम्बुजे । मरीचिमण्डले संस्थं चक्राद्यायुधलाञ्छितम् ॥ ९८ ॥ किरीट हार केयूर बनमाला विराजितम् । पश्यन्ति सूरयः शाश्वत्तद्विष्णोः परमं पदम् ॥९९॥ बासुदेवादि विख्यातं ततोऽन्यत्समपद्यत् । वासुदेवाभिधः सोऽपि ह्येकवक्त्र चतुर्भुजः ॥ १०० ॥

अर्थ—इस प्रकार यह क्षर, अक्षर, निरक्षर स्वरूप जड़चेतनात्मक ब्रह्मसृष्टि वर्णन किया है । प्रेरक इन तीनों से परे है । उस प्रेरक को न मुक्त कहा जा सकता है । न नित्य ही कहा जा सकता है । क्यों कि वह जीवात्मास्वरूप चैतन्यशक्ति से परे परपुरुष है । उस प्रेरक का रूप शुद्ध स्फटिक मणि के समान प्रकाशमान दो हाथ और एक मुख वाला है ॥ ९६ ॥ नोट—उपर्युक्त श्लोक ९६ में परात्पर रूप का वर्णन है । यहाँ पर "द्विहस्तंह्येक वक्त्रं" से दो हाथ एक मुख ही स्पष्ट है । तथापि ग्रन्थ प्रकाशक महोदय ने अप्रसंगित रूप से चक्रादिक आयुधों को धारण करना कहा है । मैं ही क्या कोई भी बुद्धिमान यह स्वीकार न करेगा कि दो हाथों में चार आयुध सुशोभित होंगे । अतः अधिक अंश में संभव है कि ग्रन्थ प्रकाशक श्रीमान चतुर्भुज रूप के उपासक होंगे । अस्तु अपनी भावना के बाहुल्य में आकर दो हाथों में चक्रादिक चार आयुधों का संकेत किया । दो हाथों में धनुर्वाण का होना ही संभव है ॥ उस परमात्मा का प्रकाश हजारों करोड़ अग्नि और चन्द्रमा तथा लाखों करोड़सूर्य अर्थात अनन्त अग्नि, चन्द्र एवं अनन्त सूर्य के समान है । वह महान् सुन्दर परम सुकुमार अत्यन्त मधुर रूप पीत बस्त्रों को धारण करनेवाले हैं । यहरूप भगवान् के समस्तरूपों में आदि है ॥ ९७ ॥ यही परात्पर रूप योगियों के द्वारा हृदय कमल में ध्यान करने योग्य है । क्यों कि इस रूप का एकमात्र ध्यान ही साधन है । यही भगवान् सूर्य मण्डल के मध्य में भी रहते हैं । चक्रादिक आयुधों से भूषित हैं ॥ ९८ ॥ नोट—इस श्लोक से स्पष्ट है कि सूर्यमण्डल के मध्य में जो रूप रहता है

वही परात्पर रूप है। ठीक यही बात सनत्कुमार संहिता अन्तर्गत श्री रामस्तवराज के ४६ वें श्लोक में लिखी है कि--सूर्यमण्डल मध्यस्थं रामं सीतासमन्वितम्। अर्थात् सूर्यमण्डल के मध्य श्री सीताराम जी विराजमान हैं। अब पाठकों को ६६ वें नं० के श्लोक का भाव समझ लेना चाहिये कि यह आदि रूप दो भुजाओं वाला ही है। और उन दोनों हाथों में धनुष बाण आयुध धारण करते हैं॥ पुनः आनन्द संहिता का एक श्लोक पं० श्री रामटहलदास जी द्वारा प्रकाशित श्री राम सार संग्रह उत्तर भाग के पृ० १६ में लिखा है कि—स्थूलमष्टभुजं प्रोक्तं सूक्ष्मं चैव चतुर्भुजम्। परं तुद्विभुजं रूपं तस्मादेतत्त्रयं भजेत्॥ अर्थात परंब्रह्म के मंगलमय विग्रह तीन प्रकार के हैं। स्थूल विग्रह अष्टभुज संयुक्त है और सूक्ष्म विग्रह चतुर्भुज युक्त है। और पर रूप द्विभुज है। इन तीनों विग्रहों की उपासना करनी चाहिये॥ अस्तु भगवान् का द्विभुज रूप ही पर रूप है॥ और मुकुट बिजायट वनमाला से भूषित हैं। जिनको नित्यपार्षद सर्वदा देखते रहते हैं। यह भगवान का परात्पर परमधाम है॥ ६६॥ जिसकी वासुदेव नाम से प्रसिद्धि है। इस परात्पर रूप के अतिरिक्त वासुदेव नाम से कहे जाते हैं। वह भी एक मुख चार भुजावाले हैं॥ १००॥

चक्राद्यायुध संयुक्तस्तस्य कृतं निशामय। स्थित्यै चक्रं सरसिजं दधानं सृष्टये पुनः॥ १०१॥ मुक्तये पाञ्चजन्यं च गदां संहृये तथा। मयूरवर्ण-च्छयामः पीतनैसर्गिकाम्बरः॥ १०२॥ स्फुरन्मुकुटकेयूर काञ्चीमञ्जीर मण्डितः। स वासुदेवो भगवान्सृष्टि स्थित्यन्तमुक्तिदः॥ १०३॥ केनापिहेतुने वभूद्वती-यश्च चतुर्मुखः। नारायणो वासुदेवस्ततीयोऽयं द्विधा भवेत्॥ १०४॥

अर्थ—और चक्रादिक आयुधों के सहित हैं। अब इनके कृत्य को भी कहते हैं। सो सुनिये धर्म की स्थिति (रक्षा) के लिये तो यह चक्र को धारण करते हैं। और सृष्टि के लिये कमल को धारण करते हैं॥ १०१॥ आत्माओं के मोक्ष केलिये पांचजन्यशंख को धारण करते हैं। संसार के संहार के लिये गदा को धारण करते हैं। और ये मयूर कण्ठवत श्यामवर्ण हैं। अत्यन्त पीले रंग का वस्त्र धारण करते हैं॥ १०२॥ प्रकाशमान मुकुट बिजायठ कमर में करधनी किंकिणियों से भूषित हैं। इस प्रकार इन वासुदेव भगवान् का काम सृष्टि स्थिति प्रलय और मोक्ष देने का है। ॥१०३॥ किसी कारण से अर्थात् परात्पर ब्रह्म की प्रेरणा से इन वासुदेव से दूसरे चार मुख वाले उत्पन्न हुये। फिर तीसरे नारायण हुये। फिर वही वासुदेव दो रूप

हो गये ॥ १०४ ॥

तयोरेको वासुदेवः शुद्धस्फटिक मणि संनिभः । नारायणेति यः प्रोक्तो नीलाम्बुद समप्रभः ॥ १०५ ॥ एतस्माद्वासुदेवात्तु व्युहोत्पत्ति निशामय । संकर्षणो वासुदेवातस्मात्प्रद्युम्न संभवः ॥ १०६ ॥ प्रद्युम्नादनिरुद्धोऽभूत्सर्व एव चतुर्मुखः । ज्ञानादि गुण सामान्यो वासुदेवः प्रकीर्तितः ॥ १०७ ॥ सत्त्वादि-गुणसामान्या प्राकृते प्रकृतिर्यथा । तथागुणां वैषम्ये वक्ष्यन्ते मूर्तयः क्रमात् ॥ १०८

अर्थ—उनमें से एक वासुदेव शुद्ध स्फटिक मणि के समान प्रकाशमान हैं। और जो नारायण कहे जाते हैं, वह नीलमणि के समान प्रकाशमान हैं ॥ १०५ ॥ इन वासुदेवों से व्युहों की उत्पत्ति हुई है। उस प्रसंग को आगे कहते हैं। वासुदेव से सर्वप्रथम सँकर्षण उत्पन्न हुये, उनसे प्रद्युम्न उत्पन्न हुये ॥ १०६ ॥ प्रद्युम्न से अनिरुद्ध उत्पन्न हुये, ये चारों चतुर्व्युह ही हैं। अब चारों के गुण भेद भी बताते हैं, वासुदेव तो ज्ञान, शक्ति, वल, ऐश्वर्य सभी गुण सम्पन्न कहे जाते हैं ॥ १०७ ॥ जैसे प्रकृति के अन्दर सत्त्वगुण की प्रधानता में रजोगुण तमोगुण भी और रजोगुण की प्रधानता में सतोगुण तमोगुण भी तथा तमोगुण की प्रधानता में सतोगुण रजोगुण भी अपने अंशों से सभी सब में रहते हैं। उसी प्रकार इन चतुर्व्युहों की मूर्तियों में भी इन ऐश्वर्यमय गुणों की विषमता क्रमशः कहते हैं ॥ १०८ ॥

गुणत्रयस्य वैषम्ये यथा स्युर्महदादयः । ज्ञानाधिकोऽभवद्ब्रह्मन्संकर्षण समाह्वयः ॥ १०९ ॥ वलाधिकः स्यात्प्रद्युम्न ऐश्वर्येचानिरुद्धकः । मूर्तिभ्यश्च चतुर्भ्यश्चतुर्विंशति मूर्तयः ॥ ११० ॥ जायन्ते क्रमशो ब्रह्मन्दीपाद्दीपान्तरं यथा । सर्वे चतुर्भुजाः पद्मशङ्खचक्रगदाधराः ॥ १११ ॥ रुद्रादिदेवतानी च व्युत्पत्तिस्तावदुच्यते । वासुदेवादादि देवात्प्रथमात्केशवस्तथ ॥ ११२ ॥

अर्थ—जैसे महातत्त्व में तीन प्रकार का अहंकार सात्त्विकी, राजसी, तामसी रहता है। सात्त्विकी अहंकार से देवता, राजसी अहंकार से इन्द्रियायें, तामसी अहंकार से पंचतन्मात्रा, और पंचतत्त्व उत्पन्न होते हैं। पंचतत्त्वों में भी एकतत्त्व की प्रधानता में अन्य सभी तत्त्व समान रूप्र से मिश्रित होते हैं। हे ब्रह्मा ! उसी प्रकार इन चतुर्व्युहों में भी संकर्षण नामक भगवान् में ज्ञान की अधिकता है ॥ १०९ ॥ और प्रद्युम्न भगवान् में वल की अधिकता हैं। अनिरुद्ध भगवान् में ऐश्वर्य की अधिकता है। इन्हीं वासुदेव संकर्षण प्रद्युम्न अनिरुद्ध चार मूर्तियों से चौबीस अवतार सम्पन्न होते हैं ॥ ११० ॥

हे ब्रह्मा ! ये चौबीसों रूप इन चार मूर्तियों से उसी प्रकार उत्पन्न हुये, जिस प्रकार एक दीपक से अन्य दीपक जलाये जाते हैं । ये चौबीसों मूर्तियाँ भी सभी चतुर्भुज हैं। सभी शंख चक्रागदादि धारण किये हैं ॥ १११ ॥ इन्हीं सब मूर्तियों से रुद्रादिक देवताओं की उत्पत्ति कही गई है । प्रथम देवता वासुदेव से केशव और ॥ ११२ ॥

नारायणो माधवश्च त्रयस्त्वेते बभूविरे। संकर्षणाश्च गोविन्दो विष्णुश्च मधुसूदनः ॥ ११३ ॥ त्रिविक्रमो वामनश्च प्रद्युम्नाच्छ्रीधरस्तथा । अनिरुद्धाद्धृषीकेशः पद्मनाभश्च सुव्रतः ॥ ११४ ॥ दामोदरश्च तैरित्थं द्वादशांशाः प्रजज्ञिरे । चतुर्व्यूहाच्चतुर्व्यूहस्त्वन्योऽपि समपद्यत ॥ ११५ ॥ तस्याख्यं शान्प्रव-क्ष्यामि चेतसा पुरुषर्षभ । वासुदेवाच्चतन्नामा तथा संकर्षणादपि ॥ ११६ ॥

अर्थ - नारायण तथा माधव ये तीन उत्पन्न हुये । संकर्षण भगवान् से गोविन्द विष्णु तथा मधुसूदन उत्पन्न हुये ॥ ११३ ॥ उसी प्रकार प्रद्युम्न भगवान् से त्रिवि-क्रम और वामन तथा श्रीधर ये तीनो उत्पन्न हुये । और अनिरुद्ध भगवान् से हृशीकेश पद्मनाभ ये सुन्दर व्रतवाले और ॥ ११४ ॥ दामोदर ये तीन उत्पन्न हुये । इसप्रकार पूर्वोक्त चार मूर्तियों के अंशों से बारह मूर्ति उत्पन्न हुये । फिर उन्हीं चारों से एक और भी चतुर्व्यूह उत्पन्न हुआ ॥ ११५ ॥ हे पुरुष श्रेष्ठ ! उन पूर्वोक्त चतुर्व्यूहों के अंशों से जो चतुर्व्यूह उत्पन्न हुआ उसको कहता हूँ सुनिये । वासुदेव से वासुदेव नाम का और संकर्षण से भी संकर्षण नाम का ॥ ११६ ॥

प्रद्युम्नादपि तन्नामा तन्नामैवानिरुद्धकात् । अभूवन्क्रमशस्तेभ्यश्चत्वारः पुरुषोत्तमः ॥ ११७ ॥अधोक्षजो नृसिंहश्च चतुर्थश्चाच्युतोमतः । एतस्मादपि संभूतः पुरुषोत्तमसंज्ञकात् ॥ ११८ ॥ व्युहादपि परो व्युहोजनार्दन मुखो महान् । जनार्दनस्तथोपेन्द्रो हरि कृष्णः समाख्यया ॥ ११९ ॥ एवं द्वादशधाभेदोद्वितीयः समपद्यत । चतुर्विंसति मूर्तीनां कीर्तनं पापनाशनम् ॥ १२० ॥ दर्शनं चोर्ध्वपु-ण्ड्रेषु वन्दनं च द्विजोत्तमाः । पश्यन्ति हन्ति शमलं किमितोद्वहतां तनौ॥१२१ ॥ नमतां सर्वलोकश्च नमन्ति ममशासनात् । श्राद्धे जपेतथाहोमे स्वाध्याये देवतार्चने ॥ १२२ ॥ दानेतीर्थावगाहे च कृतं भवति चाक्षयम् । धत्ते पुण्ड्राणि यो मर्त्यो लक्ष्मीरेखायुतानि च ॥ १२३ ॥आयुः श्रीश्चवलं ज्ञानं वैराग्यं तस्य वर्धते । केश-वादीनि नामानिलक्ष्मीकाणि बिभ्रताम् ॥ १२४ ॥

अर्थ—और प्रद्युम्न से भी प्रद्युम्न नाम का, उसी प्रकार अनिरुद्ध से भी अनिरुद्ध नाम का यह व्युह उत्पन्न हुआ। अब इन चारों से भी क्रमशः पुरुषोत्तम ॥ ११७ ॥ अधोक्षज तथा नृसिंह, अच्युत ये चारों पुरुषोत्तम नामक वासुदेव से उत्पन्न हुये। ॥ ११८ ॥ पुनः वासुदेवादिक चारों से जनार्दन नामक प्रमुख व्युह उत्पन्न हुआ। वह इस प्रकार है। जनार्दन, उपेन्द्र, हरि, कृष्ण इन चारनामों से उत्पन्न हुये ॥ ११९ ॥ इस प्रकार बारह मूर्तियों का यह दूसरा भेद वर्णन किया। इन चौवीस मूर्तियों के नाम का कीर्त्तन सब पापों का नाश करनेवाला है ॥ १२० ॥ हे ब्राह्मण श्रेष्ठ! इन पूर्वोक्त बारह मूर्तियों को ऊर्ध्वपुण्ड्रतिलक के रूप में धारण करने वाले वैष्णव का दर्शन और प्रणाम करनेवाले का सब पाप नष्ट हो जाता है। तब इन बारह तिलकों को शरीर में धारण करने वाले का महत्त्व क्या कहा जाये ॥ १२१॥ **इन बारहतिलकों को धारण करनेवाले भक्तों को जो नमस्कार करता है।** उसको सर्वलोक निवासी नमस्कार करते हैं। यह मेरा शासन है, और श्राद्धमें जपमें तथा हवन में और स्वाध्याय में देवताओं के पूजन में ॥ १२२ ॥ दान में तीर्थ स्नान में जो मानव श्री रेखा संयुक्त द्वादश ऊर्ध्वपुण्ड्रतिलक लगाने वाले श्री वैष्णवों का दर्शन प्रणामादि करता है, उसका पुरुषार्थ अक्षय हो जाता है ॥ १२३ ॥ और उसकी आयु, वल ज्ञान, वैराग्य ये सब बढ़ जाते हैं। और जो श्री संयुक्त केशवादि नामों के बारहों तिलकों को धारण करता है ॥ १२४ ॥

दुरितं यदिहोत्पन्नं तत्क्षणादपि नश्यन्ति। धृत्वा पुण्ड्राणि गात्रेषु ब्रह्मत्वं भावयेद्यदि ॥ १२५ ॥ ब्रह्मापरोक्षतामेति माया गच्छतिनाशनम्। अज्ञानाद-थवाज्ञानात्प्रेरणा लोभतोऽपिवा ॥ १२६ ॥ लक्ष्मीकाणिनामानि धृत्वा पापात्प्र-मुच्यते। प्रायश्चितत्तं तु पापानां मङ्गलानां च मङ्गलम ॥ १२७ ॥ विष्णुतीर्थ-मृदाऽङ्गेषु केशवादीनि करोतियत्। भुक्तिं मुक्तिमपीच्छूनां स लक्ष्मी काश्चदेवता ॥ १२८ ॥ उभयं तु प्रयच्छन्ति यद्यूर्ध्वतिलकंधृतम्। लक्ष्मीमृद्धि हरि ज्ञानं भोगं मोक्षं सदैव तु ॥ १२९ ॥ प्रयच्छन्ति महाभाग वैष्णवा ऊर्ध्वपुण्ड्रिणः। द्वादशापि च नामानि वासुदेवादिकानि च ॥१३० ॥ प्रपन्नेषु च देयानि पावनाय सुखाय च। यस्यनाम भवेद्विष्णोः सम्बन्धेन धरासुर ॥१३१ ॥ नामापि च स्पृशन्त्यस्य दूताः पितृपतेरपि। वासुदेवाद्देवदेवादपि केनापिहेतुना ॥ १३२॥

अर्थ—उसके शरीर से यदि कोई पाप उत्पन्न होता है, तो वह उसीच्चण नष्ट हो जाता है। और जो वैष्णव अपने अंगों में बारहों ऊर्ध्वपुण्ड्रों को नित्य धारण करते हैं, तथा अपने स्वरूप को परमात्मा के साथ भावना करते हैं, तो ॥ १२५ ॥ वे वैष्णव भक्त परमात्मा को प्राप्त हो जाते हैं, उनका मायाबन्धन नाश हो जाता है। और जो कोई अज्ञान अथवा ज्ञान से या किसी प्रकार की पराधीनता या लोभ से भी ॥ १२६ ॥ श्री संयुक्त केशवादि नामों वाले तिलकों को धारण करता है, वह सब पापों से मुक्त हो जाता है। यह तिलक समस्त पापों का प्रायश्चित और समस्त मंगलों का भी महामंगल करने वाला है ॥ १२७ ॥ जो भक्त भगवत् तीर्थों की मिट्टी से अपने देह में केशवादि नामों का तिलक करता है। और यदि भोग एवं मोक्ष की इच्छा वाला श्री संयुक्त तिलकों धारण करता है तो ॥ १२८ ॥ उस ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक धारण करने वाले को उन तिलकों के देवता भोग एवं मोच्च दोनों फल देते हैं। और ऐश्वर्य एवं ऋद्धि सिद्धि तथा भगवत् तत्वरूप का ज्ञान सर्वदा बना रहता है ॥ १२६ ॥ वे ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करनेवाले महाभाग्यशाली श्री वैष्णव सर्वदा दिया करते हैं। वासुदेव आदिक जो बारह नाम हैं; वे भी ॥ १३० ॥ भगवत् शरणागत होनेवाले चेतन के पवित्र होनेके लिये, और सुखके लिये दिये जाने चाहिये। हे ब्राह्मण देवता ! भगवान् के सम्बन्ध से जिसका नाम हो ॥ १३१ ॥ यमराज के दूत उसको बिलकुल स्पर्श नहीं कर सकते हैं। और किसी कारण अर्थात् परात्पर की प्रेरणा से जो आदि श्री वासुदेव हैं, उनसे भी ॥ १३२ ॥

च्चितेर्बीजाङ्कुरमिव मूर्त्यष्टकमजायत । ब्राह्मीचमूर्तिःप्रथमा प्रजापत्या-द्वितीयका ॥१३३॥ तृतीयावैष्णवोदिव्या चतुर्थीपुण्ड्ररूपिणी । पञ्चमीमानुषीज्ञेया सप्तमीचाऽऽसुरीमता ॥ १३४ ॥ पैशाची चरमाचैता मूर्तयो लोक विश्रुताः ॥ ॥ १३५ ॥ मीनाद्या जज्ञिरेविप्र चतुर्व्युहाद्यथाक्रमम् । मत्यस्यः कूर्मवागहश्च वासुदेवादिजायत ॥ १३६ ॥ नृसिंहोवामनोरामो जामदग्न्योऽप्यजायत । संकर्ष-णात्तथाज्ञये प्रद्युम्नाद्राघवोबली ॥ १३७ ॥ अनिरुद्धादभूतकृष्णः कल्कीतिदश-मूर्तयः । संकर्षणाश्चपुरुषःसत्यः प्रद्युम्नसंभवः ॥ १३८ ॥ जातोऽच्युतोऽनि रुद्धाच्चं बभ्रुस्त्रै लोक्यमोहनः । दाशार्हः शौरिन्नियांशा वासुदेवाच्च जज्ञिरे ॥ १३६ ॥ संकर्षणाद्धयग्रीवः शङ्खोदरनृपकेशरी । वैकुण्ठमूर्तिराधातुर्मुकुन्दाश्च वृषाकपिः ॥ १४० ॥

अर्थ—जैसे पृथ्वी में से बीजों का अंकुर उत्पन्न होता है। उसी प्रकार आठमूर्तियाँ उत्पन्न हुईं। प्रथम ब्राह्मीमूर्ति दूसरी प्रजापत्य ॥ १३३ ॥ तीसरी वैष्णवी दिव्यमूर्ति चौथी पुण्ड्ररूपिणी पाँचवीं मानुषी सातवीं आसुरीमूर्ति को जानना चाहिये ॥ १३४ ॥ आठवीं पैशाची इस प्रकार यह लोक प्रसिद्ध मूर्तियाँ मानी गई हैं ॥ १३५ ॥ हे ब्राह्मण देवता ! चतुर्व्यूहों से मीनादिक अवतार भी प्रगट हुये। उनको भी सुनिये। वासुदेव से मत्स, कूर्म, वाराह उत्पन्न हुये ॥ १३६ ॥ संकर्षण से नृसिंह, वामन, परशुराम उत्पन्न हुये। प्रद्युम्न से बलवान राघव प्रगट हुये ॥ १३७ ॥ अनिरुद्ध से कृष्ण (बुद्ध) कल्की उत्पन्न हुये इस प्रकार से दश मूर्तियाँ हुईं। फिर संकर्षण से पुरुष उत्पन्न हुआ। प्रद्युम्न से सत्य उत्पन्न हुआ ॥ १३८ ॥ अनिरुद्ध से तीनों लोकों को मोहन करने वाले अच्युत और बभ्रू उत्पन्न हुये। पुनः वासुदेव से यदुवंश में बलराम आदिक और अंश उत्पन्न हुये ॥ १३९ ॥ संकर्षण से हयग्रीव शंखोदर नरसिंह, वैंकुण्ठमूर्ति, ब्रह्मा, मुकुन्द और वृषाकपि (सूर्य) प्रगट हुये ॥ १४० ॥

तत्रैवाऽऽदिवराहश्च ततः संकर्षणादपि। अनन्तः पन्नगोजातः सहस्रफणवान्बली ॥ १४१ ॥ सुदर्शनाद्यायुधानि किरीटादिविभूषणम्। मूर्त्याविर्भावसमये सहै वैतानि जज्ञिरे ॥ १४२ ॥ देव्यश्च श्र्यादस्तत्तन्मूर्तिभेदं समाश्रिताः। श्रीवत्सा देवसकला जज्ञिरे दिव्यलाञ्छनात् ॥ १४३ ॥ गरुड़ः पक्षिणामिन्द्रो वाहको बलिनांवरः। वासुदेवादिमूर्तिभ्यश्छन्दो मूर्तिजायत ॥ १४४ ॥ कुमुदाद्यैश्च भूतेशाः सर्वैः पारिषदैः सह। पादतश्चानिरुद्धस्य समभूवन्सहस्रशः ॥ १४५॥ सहस्रशीर्षचरणहस्तनेत्राद्भुताकृतेः। अनिरुद्धाज्जगज्जज्ञे स्वाङ्गादेव यथाक्रमम् ॥ १४६ ॥ ईश्वरः पुरुषोऽव्यक्तोऽनिरुद्धाख्यो निजाङ्गतः। मुखान्द्रिं च वन्हि च छन्दांस्यङ्गनिपटत्तथा ॥ १४७ ॥ जनयामास संलीनांश्चतुर्थांशो हरेरयम्। पादोऽस्य विश्वाभूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥ १४८ ॥

अर्थ—वहीं पर संकर्षण से आदिवाराह तथा हजारफणवाले बलवान अनन्त श्री शेष जी उत्पन्न हुये ॥ १४१ ॥ यह भगवतमूर्ति जिस समय जो प्रगट हुईं उनके साथ ही सुदर्शन आदिक आयुध एवं किरीट कुण्डलादि आभूषण भी प्रगट हुये ॥ १४२ ॥ और भगवान् के दिव्य श्रीवत्स चिन्ह से प्रत्येक मूर्ति के साथ मूर्ति भेद के अनुसार

उनकी समाश्रिता श्रीआदिक (शक्तियाँ) देवियाँ भी प्रगट हुईं ॥१४३॥ चतुर्व्यूहोंके ज्ञान स्वरूप से वेदमूर्ति, सब पक्षियों के राजा वहन करनेवाले बलवानों में श्रेष्ट गरुड़जी उत्पन्न हुये ॥ १४४ ॥ और एकपाद विभूति स्वरूप अनिरुद्ध के अन्दर सभी भूतों के स्वामी त्रयदेव (ब्रह्मा विष्णु महेश) कुमुदआदिक अपने हजारों पार्षदों के साथ प्रगट हुये ॥ १४५ ॥ वही अनिरुद्ध अपने हजारों शिर, चरण, हाथ, नेत्र (आँख) अद्भुत आकार वाले विराट स्वरूप से अपने प्रत्येक अंगों द्वारा क्रमशः जगत को उत्पन्न किये ॥ १४६ ॥ इस प्रकार वही अनिरुद्ध अपने निज स्वरूप भूत एकपाद विभूति के अन्दर इस एकपाद विभूति के अधिष्ठात्री देवता पुरुषरूप अप्रत्यक्ष ईश्वर हो करके अपने निजी अंगों में मुख से इन्द्र और अग्नि को तथा छै अंगों समेत चारों वेदों को ॥ १४७ ॥ जो प्रथम स्वरूप में विलीन थे, प्रगट किया। यह अनिरुद्ध एकपाद विभूति का स्वरूप, चतुर्व्यूह रूप परमात्मा का चौथा अंश है। और तीन अंश अमृतमयि दिव्य त्रिपाद विभूति रूप से प्रकाशित हैं ॥ १४८ ॥

प्रद्युम्न संकर्षणकवासुदेव इतित्रयः। त्रिपादविभूतिराख्याता अमृत मुक्तिसेतवः॥१४९॥अतोदेवादिभिः पैत्रे ब्राह्मणा ब्रह्मकाङ्क्षिणः। त्रिपादंपुरुषं साक्षाद्यजन्ति मनसाधिया ॥ १५० ॥ आत्मानमनिरुद्धेन ह्यभिन्नं चिन्त्यचेतसा। प्रद्युम्नादि स्वरूपेण त्रिपादी पुरुषत्रयम् ॥ १५१ ॥ पैत्रंस्थानं वैष्णवानामिदमेव परंमतम्। मार्गोऽयमर्चिरादिः स्यात्सूर्यलोक मुखेन हि ॥ १५२ ॥ मार्गेणानेन गच्छन्ति वैष्णवाः परमात्मनि। नान्यलोके निवासाय श्रुतिरत्रसनातनी ॥१५३॥ कर्मणासूर्यपुत्रस्य लोकाद्वारेण वै गतिः। वसुरुद्रादिरुपेणपैत्रंस्थानमथापरम्। १५४। वैष्णवानामनन्यानां वासुदेवमुपेयुषाम्। यजनं शुद्धरूपाणां केशवादि स्वरूपिणाम् ॥ १५५ ॥ सर्वकर्मसुविप्रेन्द्र सर्वावस्थासु नित्यशः। वैष्णवोनयजेदन्यं चतुर्व्युहात्परमुने ॥ १५६ ॥

अर्थ—प्रद्युम्न, संकर्षण और वासुदेव उस चतुर्व्युहात्मक परमात्मा के ये तीन अंश त्रिपादविभूति नाम से कहे जाते हैं। और ये अमृत स्वरूप मोक्ष के मार्ग स्वरूप हैं ॥ १४९ ॥ इसलिये परमात्मा के प्राप्ति करने की इच्छावाले विद्वान ब्राह्मण (भगवत भक्त) अपने मन बुद्धि से देवतादिकों के आदि पितर इन त्रिपादविभूति स्वरूप पुरुषों को साक्षात् आराधन करते हैं ॥ १५० ॥ उनकी आराधना विधि इस प्रकार है। अपने चित्त से अपनी आत्मा को अनिरुद्ध के साथ एकपाद विभूति स्वरूप प्रद्युम्न आदि तीनों दिव्यपुरुषों को पूजते हैं ॥ १५१ ॥

[इन पूर्वोक्त चतुर्व्युहों को यहाँ पर भगवद्धाम स्वरूप और धाम के प्रकाशक देवता स्वरूप में बताया गया है । और इससे परे द्विभुज एकमुखवाले परात्पर परमात्मा को शेषी, भोक्ता, रक्षक रूपमें वर्णन किया गया है] निश्चित रूप से श्री वैष्णवों का परम उत्पत्ति स्थान यही माना गया है । और सूर्यलोकके ही द्वारा अर्चिरादिमार्ग कहा गया है ॥ १५२ ॥ इसी मार्ग से श्री वैष्णव अपनी आत्मा के शेषी, भोक्ता, रक्षक परात्पर ब्रह्म को प्राप्त होते हैं । श्री वैष्णवों के लिये अन्यमार्ग या अन्य किसी भी लोक में रहने का स्थान नहीं है । यह बात यहाँ पर सनातनी श्रुतियों के द्वारा बताई गई है ॥ १५३ ॥ नोट—श्री वैष्णवों की ऐसी महिमा हैं, इसलिये संयम नियम सदाचार की क्या आवश्यकता हैं, मनमाने ढंग से सुख भोगना चाहिये, मरने के बाद तो श्री वैष्णव होने के सम्बन्ध से भगवान् कृपा करके भगवद्धाम देंगे ही । ऐसी भूल करनेवाला वैष्णव वैष्णवता से च्युत हो जायेगा । महान विपत्ति भोगनी पड़ेगी बहुत ही पछताना पड़ेगा । अस्तु अर्थपंचक ज्ञान के अनुसार ही श्री वैष्णव की वैष्णवता सुरक्षित रहती है । अन्यथा बहुत चक्कर काटना पड़ता है ॥ कर्मकाण्डियों की गति यमलोक के द्वारा ही है । और उनका पैत्रिक स्थान भी प्राकृतिक देवताओं के स्थान में वसु, रुद्र, के रूप से ही है ॥ १५४ ॥ परात्पर पुरुष परमात्मा को उपाय मानने वाले अनन्य श्री वैष्णवों के आराध्यदेव शुद्धरूप वाले केशवादि स्वरूप ही हैं ॥१५५॥ हे ब्राह्मण देवता ! श्री वैष्णव भक्त सभी कर्मों एवं सभी अवस्थाओं में सर्वदा के लिये चतुर्व्युहों के अतिरिक्त अन्य देवताओं को कभी न पूजें ॥ १५६ ॥

केशवादिममूर्तीनां पूजनंमुक्तयेमतम् । स्वर्गादिदिव्यभोगानां भुक्तयेऽन्ये प्रकीर्तिताः ॥ १५७ ॥ यद्यप्यन्यन्नलोकेऽस्मिश्चतुर्व्युहान्मनागपि । तथाऽपि नियमस्तात्रन्ययतोमार्गद्वयेद्विज ॥ १५८ ॥ पादलीला विभूतीनां सेवनं पादमुक्तये । त्रिपादविभूति सेवा तु मुक्तये नात्रसंशयः ॥ १५९ ॥ त्रिपादविभूतिगादेवा । विविच्याऽऽत्मविभूतितः । महाभागवतैः पूज्याः शङ्खचक्रादि धारिणः ॥ १६०॥ अर्चिर्धूमविभागेनद्विधामार्गो निरूपतिः अर्चिभागवतानां हि धूमाख्यः कर्मिणामतः ॥१६१ ॥ धूममार्गेण द्विधागतिः प्रोक्तः मनीषिभिः । दैवीपैत्रीति विख्याता दैवीस्वर्गगतिः स्मृता ॥१६२ ॥ अग्निष्वात्तादयोयत्र दिव्याश्च पितरोमता । मोदन्ते विविधैर्दत्तैभोगैः पुत्रादि निर्मितैः ॥१६३ ॥ कर्मणापितृलोके हि

गतिः पैत्रीह्युदाहृता । ज्योतिष्टोमादिभिर्दैवी गतिरुक्ताद्विजोत्तम ।। १६४ ।।

अर्थ—हे मुने ! केशवादिक अव्यक्त मूर्तियों का पूजन तो मोक्ष के लिये माना जाता है । और स्वर्गादिक भोगस्थान के देवताओं का पूजन भोग के लिये अर्थात् स्वर्गतक स्थान की प्राप्ति के लिये ही कहा गया है ।। १५७ ।। हे ब्राह्मण देवता ! यद्यपि इन समस्त लोकों में चतुर्व्यूहों से अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है । तथापि (तोभी) भोग और मोक्षमार्ग के विधानानुसार ऐसा नियम बनाया गयाहै ।।१५८।। कि एकपाद लीलाविभूति के देवताओंका सेवन (पूजन) तो अज्ञान अन्धकार दुख निबृत्ति के ही लियेहै । और त्रिपादविभूति स्वरूप देवताओं का पूजन तो मोक्ष के लिये ही है, इसमें संशय नहीं है ।। १५६ ।। जो शंखचक्र आदिक आयुधों के संस्कारों से भूषित हैं । ऐसे महाभागवत वैष्णवों द्वारा त्रिपादविभूति स्वरूप देवताओं का अपनी आत्मा की विभूति के रूप में अन्वेषण करने के लिये पूज्य हैं ।। १६० ।। अर्चिरादि मार्ग और धूममार्ग का निरूपण इस प्रकार है कि—अर्चिरादिमार्ग भगवत् भक्तों के लिये और धूममार्ग कर्मकाण्डियों के लिये माना गया है ।। १६१ ।। मनीषी विद्वानों ने धूममार्ग की गति को दो प्रकार से कहा है, एक दैविक और एक पैत्रिकमार्ग के नाम से प्रसिद्ध है । इन दोनों में दैविक मार्ग को स्वर्गप्रद माना गया है ।। १६२ ।। जहाँ पर मरीचि के वंशज अग्निष्वात्तादि दिव्यदेवताओं को माना गया है । जहाँ पुत्रादिकों द्वारा विविध प्रकार के भोगों से पूजा दिये जाने पर वे पहुंचे हुये देवता आनन्दित होते हैं ।। १६३ ।। कर्मकाण्डियों के कर्मों की पितृलोक में ही पैत्रिकगति कही गई है । और हे ब्राह्मण श्रेष्ट ! स्वर्ग प्राप्ति का उपाय तो ज्योतिष्टोमादि यज्ञों को ही दैवीगति कहा गया है ।। १६४ ।।

"द्वावम् पुनरावृत्तियुतौमार्गौ सनातनौ । आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोयतः ।। १६५ । अर्चिरादिगतानां हि वैष्णवानां हरिः स्वयम् । गतिस्मृत्या विनिर्दिष्टा श्रुयाचापि द्विजोत्तम ।। १६६ ।। मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम् । नाऽऽप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमांगतिम् ।। १६७ ।। सूर्यमण्डल माविध्य भित्त्वाऽऽवरण संहितम् । आप्लुत्य विरजातोये नित्यान्मुक्तान्समेत्य च ।। १६८ ।। स्वधारं विरजंब्रह्म गुणातीतम–नामयम् । शुद्धं महाविभूतीशं वासुदेवाख्यमद्वयम् ।। १६९ ।। प्राप्नुवन्ति महात्मानो महाभागवताद्विजाः । नावर्तन्ते पुनस्तस्मात्पन्थानान्योऽनाय च ।। १७० ।। एवं कर्मणि मन्त्रेषु वेदेषु यजनेषु च । सर्वात्म केऽपि संप्राप्तो भेदः सर्वात्मनः द्विज । १७१ ।। प्राप्ये भोग्ये यतोभेदो नित्यानित्य विभेदतः । विवेकार्थं पुनस्तावदनिरुद्धो निरूप्यते ।। ।। १७२ ।।"

अर्थ—यह दोनों मार्ग सनातन से ही पुनराबृत्तिवाले कहे गये हैं। क्यों कि ब्रह्मलोक से लेकर समस्त लोक पुनराबृत्ति वाले ही हैं ॥ १६५ ॥ और वैष्णवों की तो अर्चिरादि मार्ग द्वारा स्वयं भगवान् ही गति माने गये हैं। हे ब्राह्मण श्रेष्ट ! ऐसा वेदों की श्रुतियों के द्वारा कहा गया है ॥ १६६ ॥ मुझको प्राप्त हुये भक्त इस दुख के समुद्र नाशवान संसार में फिर से जन्मधारण नहीं करते हैं। क्यों कि वे महात्मा सम्यक् प्रकार (भली भाँति) सिद्धि को प्राप्त करके महान परात्पर गति को प्राप्त हो जाते हैं ॥१३७॥ उनका मार्ग सूर्य मण्डल को भेदन करके ब्रह्माण्ड के सभी आवरणों को पार करके और विरजानदी में स्नान करके नित्य और मुक्त पार्षदों से मिलकर ॥ १६८ ॥ वासुदेव नामक अद्वितीय परात्पर महाविभूति के स्वामी शुद्ध स्वरूप स्वयं अपने ही आधार से रहनेवाले माया के प्रेरक गुणातीत ब्रह्मको ॥१६९॥ वे महाभाग्यशाली महात्मा ब्राह्मण (भगवत् भक्त) प्राप्त होते हैं फिर वहाँ से लौटकर संसार में जन्म नहीं लेते हैं। क्यों कि उन परमात्मा के अतिरिक्त मोक्ष के लिये और कोई दूसरा मार्ग नहीं है। १७० ॥ 'श्री ब्रह्मा जी ने ऋषियों से कहा कि—हे ब्राह्मण श्रेष्ठ ! यद्यपि मैं सबकी आत्मा हूँ। तथापि इस प्रकार का यह भेद कर्मों में मन्त्रों में वेदों में यज्ञों में मुझे प्राप्त हुआ है। १७१। जहाँ से नित्य और अनित्य का भेद अलग अलग किया जाता है। प्राप्यपरमात्मा और भोग्यआत्मा में भी भेद जहाँ से निरूपण किया जाता है। इस प्रकार के विवेक के लिये आत्माको अनिरुद्ध रूप में कहा जाता है ॥ १७२ ॥

*** श्रीबृहद्ब्रह्मसंहितापाद दो अध्याय चारमें श्रीअयोध्याजीका पृ०६६ में वर्णन ***

"तथैव सरयूपुण्या यत्र कुत्रावगाहिते। बिशेष ममक्षेत्रे त्वयोध्यायां मनीषिभिः ॥ ८८ ॥ क्षेत्राणि भारतेवर्षे पुर्यश्च वहुशोविधे। स्नानध्यान जपाभ्यासान्मत्प्राप्तिर्यत्र निश्चिता ।। ८९ ॥ पुनः—पाद तीन अध्याय एक के श्लोक सैंतीस पृ० ८४ ८५ में ब्रह्मात्मकमिदंसर्वं चिदचिन्मिश्रितंजगत्, विज्ञायाऽऽत्मनि मय्येवकृतभाव तु यः पुमान ॥ ३७ ॥ अविद्यातिमिरंतीर्त्वा मद्भावमुपलभ्यच। मामुपैतिमहाभाग मदेकशरणागतः॥३८॥ स एतां त्रिगुणां मायामर्चिरादिगतिंगतः। भित्त्वा स कार्यांमतिमान्याति सत्त्वगुणास्पदम् ॥ ३९ ॥ नित्यमप्राकृतंधाम स्वप्रकाशमनामयम्। भृत्यैकलभ्यममलं कालप्रलयवर्जितम् ॥ ४० ॥ नतद्भासयतेसूर्यो न शशाङ्को न पावतः। यद्गत्वाननिवर्तन्ते तद्धामपरमंमम ॥ ४१ । मायिकं यन्मयाप्रोक्तं निविडध्वान्तसंकुलम्। तस्योर्ध्वभागे विरजा निः सीमा विद्यते नदी । ४२ ॥

अर्थ—उसी प्रकार श्री सरयू जी में भी जहाँ कहीं भी स्नान करने से पुण्य-प्रद हैं। विशेष करके मेरे निजीक्षेत्र अयोध्याजी में अधिक फलदेतीहैं। यहवात मनीषी (आत्मतत्त्व विचारक) लोग जानते हैं ॥ ८८ ॥ हे ब्रह्मा! भारतवर्ष में पवित्रक्षेत्र और नगरियाँ बहुत सी हैं। जहाँ स्नानध्यान जपके अभ्यास से मेरी प्राप्ति निश्चित है ॥ ८९ ॥ यह सम्पूर्ण जगत जड़चेतन मिश्रित ब्रह्मात्मक है। जो पुरुष ऐसा जानता है, वह अपनी आत्मा के अन्दर मुझमें ही भाव रखता है ॥ ३७ ॥ अतः मेरे भावको प्राप्त करके वह भाग्यशाली अयन्य शरणागत हुआ अविद्या अन्धकार को पार करके मुझको प्राप्त करता है ॥३८॥ वह वैष्णव इस त्रिगुणमयी माया को अर्चि-रादि मार्गद्वारा पार करके शुद्धसच्चिदानन्द गुणधाम में वह बुद्धिमान अपने भावा-नुसार जाता है ॥ ३९ ॥ क्यों कि वहधाम अनामय, नित्य, अप्राकृत, स्वयंप्रकाशमान काल और प्रलयं आदिक प्राकृतिक दोषों से रहित निर्मल भाव एवं अनन्यभक्ति द्वारा ही प्राप्त होने योग्य है ॥ ४० ॥ जहाँ न सूर्य का प्रकाश होता है, न चन्द्रमा का और न अग्नि का, जहाँ जाने के बाद जीव लौटकर नहीं आता, वह मेरा परमधाम है ॥ ४१ ॥ मैंने जिस अज्ञान अन्धकार दुःख स्वरूप मायामयि सृष्टि का वर्णन किया है, उसके ऊपरीसीमा में अपार बिस्तार वाली एक विरजानामक नदीहै ॥४२॥

सा चाऽऽवरणभूताहि विश्वस्य पुरतो विधे। प्रधान परमव्योम्न्यान्तरे-विरजानदी ॥ ४३ ॥ वेदान्तस्वेदजनिततोयैः प्रस्राविता शुभा। तस्यास्तीरे परव्योम त्रिपाद्भूतंसनातनम् ॥ ४४ ॥ अमृतं शाश्वतं नित्यमनन्त परमंपदम्। शुद्धसत्त्वमयं दिव्यमनन्तं ब्रह्मणःपदम् ॥ ४५ ॥ अनेककोटिसूर्याग्नि तुल्यवर्च-स्कमव्ययम्। सर्ववेदमय शुद्धं सर्वप्रलयवर्जितम् ॥ ४६ ॥ असंख्यमजर नित्य जाग्रतस्वप्न विवर्जितम्। हिरण्मयं मोक्षपदं ब्रह्मानन्दसुखाह्वयम् ॥ ४७ ॥ समानाधिक्यरहितमाद्यन्तरहितं शुभम्। एवमादि गुणोपेतं तद्विष्णोः परमंपदम् ॥ ४८ ॥ व्युहलोकात्परतरो त्रिभवारव्यस्तु यः स्मृतः। वासुदेवो महाभाग तस्य लोकं वदामि ते ॥ ४९ ॥ अयोध्यारव्यापुरी चैका द्वितीयामथुरा स्मृतः। मत्स्यादीनां तथा पुर्यः परितः सम्प्रकीर्तिताः ॥ ५० ॥

अर्थ—हे ब्रह्मा! वह विरजानामक नदी इस विश्वरूप प्रधान प्रकृति के और

त्रिपादविभूति के बीचमें आवरणभूताहै । अर्थात् विश्व और त्रिपादविभूति की विभाजक है ॥ ४३ ॥ वह नदी वेदान्तस्वेद अर्थात् भगवान् के करुणामयि जल से भरी है । अतः वह कल्याणमयि है । उसी नदी के उसपार में तीनपाद बीभूति सनातन ब्रह्मधाम है ॥ ४४ ॥ वह धाम अमृतमय, एकरस, नित्य, अनन्त शुद्धसच्चिदानन्दमय ब्रह्मका नित्यधाम परमपद है ॥ ४५ ॥ जो करोड़ोंसूर्यों के समान प्रकाशमान करोड़ों अग्नियों के समान तेजमान सर्ववेदमय सर्वप्रलयरहित परमशुद्ध है ॥ ४६ ॥ प्रकृति के जाग्रत स्वप्नादि आवरणों से रहित अनन्त दिव्यधामयुक्त स्वर्णमयि ब्रह्मानन्द सुख नामक मोक्षधाम है ॥ ४७ ॥ जो आदि अन्त तथा समानता रहित कल्याणमय दिव्यगुण संयुक्त वह भगवान् का परात्परधाम है ॥ ४८ ॥ जो वासुदेवादिक चतुर्व्यूहों से अत्यन्त परे है । जिसका बल, पराक्रम, ऐश्वर्य; महिमा, उच्चता की सीमा, भोग की सीमा. काल की भी सीमा, मोक्षधाम कहा जाता है । हे महाभागशालिन् ब्रह्म ! जिसको वासुदेव भी कहा जाता है । उस लोक को मैं तुमसे कहता हूँ ॥ ४९ ॥ उस लोक में अयोध्या नामकी एक प्रधान नगरी है, और दूसरी को मथुरा नामसे स्मरण किया जाता है । इसप्रकार उसपुरी के चारों ओर मत्स आदिक भगवान् के अनन्त अवतारों की पुरियाँ हैं ऐसा कहा जाता है ॥ ५० ॥

तत्रायोध्यापुरीरम्या यत्रनारायणोहरिः । रामरूपेणरमते सीतयापरयासह ॥ ५१ ॥ मणिकाञ्चनचित्राढ्या प्रकारैस्तोरणैर्वृता । चतुर्द्वारसमायुक्ता तुङ्गगो-पुरसंयुता ॥ ५२ ॥ चण्डादिद्वारपालैस्तु कुमुदाद्यैः सुररक्षिता । नित्यमुक्तजनो-पेता नित्योत्सवमनोहरा ॥ ५३ ॥ चण्डाप्रचण्डौ प्राग्द्वारे याम्ये भद्रसुभद्रकौ । वारुण्यांजयविजयसौम्यौ धातृविधातृकौ ॥ ५४ ॥ कुमुदः कुमुदाक्षश्च पुण्डरीकोऽथ वामनः । शङ्कुकर्णः सर्वभद्रा सुमुखः सुप्रतिष्ठितः ॥ ५५ ॥ एतेदिक्पतयः प्रोक्तः पुर्या अस्याश्चतुर्मुख । कोटिवैश्वानरप्रख्यैर्गृहपंक्तिभिरावृताम ॥ ५६ ॥ आरूढ यौवनैर्नित्यैर्दिव्यनारीनरैर्युतम् । अन्तःपुरं तु देवस्यमध्येपुर्यामनोहरम् ॥ ५७॥ मणिप्राकारसंयुक्तं वरतोरणशोभितम । विमानैर्गृहमुख्यैश्च प्रासादैर्बहुभिर्वृ-तम ॥ ५८ ॥

अर्थ—उन सब पुरियों के मध्य में श्री अयोध्या जी नामक पुरी है; वह अत्यन्तरमणीय है । वहाँ उस पुरी में नारायण के परात्परूप श्री राम जी अपनी

अभिन्नात्मा आद्याशक्ति श्री सीता जी के साथ रमण करते हैं ॥ ५१ ॥ वह नगरी स्वर्ण (सोने) और मणियों से चित्र विचित्र बनी हुई है। उसनगरी के परकोटादि तोरणआदिक सजावटों से सजे हुये हैं। और उस नगरी में चारों दिशाओं में चार द्वार हैं। प्रत्येक द्वार ऊँचे गोपुरों से संयुक्तहै ॥ ५२ ॥ उस नगरीके चारोंदिशाओं के फाटकों पर चण्डादिक द्वारपाल पहरा करते हैं। और कुमुदादिक दिग्पाल चारों दिशाओं से रक्षा करते हैं। उस नगर में नित्य एवं मुक्तजन (भगवत् पार्षद) नित्य ही मनोहर उत्सव करते रहते हैं ॥ ५३ ॥ उस नगर के पूर्व द्वार में चण्ड और प्रचण्ड तथा दक्षिण द्वार में भद्र और सुभद्र तथा पश्चिम द्वार में जय और विजय और उत्तर द्वार में वातृ और विधातृ पहरा करते हैं ॥ ५४ ॥ कुमुद कुमुदाक्ष पुण्ड-रीक और वामन शंकुकर्ण और भद्र सुमुख और सु प्रतिष्ठित ॥ ५५ ॥ ये आठों उस अयोध्यापुरी के आठों दिग्पाल हैं। हे ब्रह्मा ! उस अयोध्यापुरी के भीतर करोड़ों अग्नियों के समान दिव्य प्रकाशमान महलों के कई आवरण हैं ॥ ५६ ॥ उसनगरी में नित्यकिशोर अवस्था के नरनारी निवास करते हैं। उस नगरी के मध्य में श्री सीताराम जी का अन्तःपुर अत्यन्त मनोहर है ॥ ५७ ॥ जो दिव्यमणियों के परको-टाओं से और सुन्दर ध्वजा पताका तोरणादिकों (बन्दनवारों) से अतिशोभित है। उस अन्तःपुर में अनन्तदिव्य महल और विमान तथा सभाभवन (घर) हैं ॥ ५८ ॥

दिव्याप्सरोगणैः स्त्रीभिः सर्वतःसमलंकृतम् । मध्येतुमण्पं दिव्यं राजस्थान-महोत्सवम् ॥ ५९ ॥ माणिक्यस्तम्भसाहस्त्रजुष्टं रत्नमयंशुभम् । धर्मादिदैवतैर्नि-त्यैर्वृतं वेदमयात्मकैः ॥ ६० ॥ अधर्माज्ञानावैराग्यानैश्वर्यैः पादविग्रहैः । ऋग्यजुः सामाथर्वाख्यरूपैर्वृतं क्रमात् ॥६१॥ शक्तिराधारशक्तिश्च चिच्छक्तिश्च सदाशिवा । धर्मादिदेवतानांच शक्तयःपरिकीर्तिताः ॥ ६२ ॥ वसन्ति मध्यगास्तत्र वन्हिसूर्यसुधांशवः । कूर्मश्चनागराजश्च वैनतेयस्त्रयीश्वरः ॥ ६३ ॥ छन्दांसि-सर्वमन्त्राश्च पीठरूपत्वमास्थिताः सर्वाक्षरमयंदिव्यं योगपीठमितिस्मृतम् ॥ ६४ ॥ तन्मध्येऽष्टदलंपद्मं मुदयार्कसमप्रभम् । तन्मध्येकर्णिकायांतु सावित्र्यांशुभदर्शनः ॥ ६५ ॥ ईश्वर्यासहदेवेशस्तत्राऽऽसीनः परः पुमान् । इन्दीवरदलश्यामः कोटिसूर्य-प्रकाशकः ॥ ६६ ॥

अर्थ—वह अन्तःपुर दिव्यलीलाविलासिनी अलौकिक शील गुण स्वभाव सौन्दर्य

सम्पन्ना स्त्रियों से सर्वत्र (चारों ओर) सम्यक् प्रकार अलंकृत [शोभित] रहता है। और उस नगर के मध्यमें सर्वेश्वर भगवान् श्रीरामजो की राजगद्दी [रत्नसिंहासन] दिव्यमण्डप महानउत्सवों से पूर्ण है ।। ५९ ।। उस राजमण्डप में रत्नों से जड़े हुये मणिमय हजारों स्तम्भ [खम्भा ।। सुशोभित हैं। और वेदमय आत्मावाले, धर्मादिक देवता उस सभा के सभासद हैं ।। ६० ।। जिस प्रकार उस सभा में धर्म, ज्ञान, ऐश्वर्य, वैराग्य देवता रूप में सभासद हैं। उसी प्रकार अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य (आशक्ति या प्रवृत्ति) अनैश्वर्य भी विग्रहवान देवता रूपसे सभासद हैं। और ऋगवेद, यजुर्वेद सामवेद अथर्ववेद भी क्रमशः सभा में रूपवान होकर बैठते हैं ।। ६१ ।। और आधारशक्ति चित्शक्ति कल्याणशक्ति आदिक शक्तियाँ भी धर्म आदिक देवताओं की शक्तियाँ कही गई हैं ।। ६२ ।। उस सभामण्डप के मध्य [बीच] में अग्नि सूर्य और चन्द्रमा यह त्रयमण्डल होकर कूर्म शेष और गरुड़रूप में ईश्वरों के भी परम ईश्वर श्री राम जी का सिंहासन हैं ।। ६३ ।। और उस सिंहासन में वेदके सभी मन्त्र छन्द अक्षरादि ही सिंहासन का रूप धारण किये हुये रहते हैं। इसलिये उस दिव्य सिंहासन को योगपीठ के नाम से स्मरण किया जाता है ।। ६४ ।। उस योगपीठ नामक सिंहासन के मध्य में उदयकालीन सूर्य के समान दिव्यप्रकाशमय अष्टदल का एक कमल है। उस कमल की मध्यकर्णिका के बीच में प्रकाशमान आसन में कल्याणमय शुभ दर्शन होता है ।। ६५ ।। आद्याशक्ति ईश्वरियों की भी परमईश्वरी श्री सीता जी के साथ समस्त देवों और ईश्वरोंके भी ईश्वर परात्पर पुरुष श्रीरामजी यहाँ पर विराजमान हैं। जो नीलकमलदल के समान श्यामवर्णवाले करोड़ों सूर्यों के प्रकाशक हैं ।। ६६ ।।

युवाकुमारः स्निग्धाङ्गकोमलावयवैर्वृतः । फुल्लरक्ताम्बुजनिभकोमलाङ्घ्रिसरोजवान् ।। ६७ ।। प्रबुद्ध पुण्डरीकाक्षः सुभ्रूवल्लियुगाङ्कितः । सुनासा सुकपोलाढ्यः सुशोभमुखपङ्कजः ।। ६८ ।। मुक्ताफलाभदन्ताढ्याः सुस्मिताधर विद्रुमः । परिपूर्णेन्दुसंकाश सुस्मिताननपङ्कजः ।। ६९ ।। तरुणादित्यवर्णाभ्यां कुण्डलाभ्यां विराजितः । सुस्निग्धनीलकुटिल कुन्तलैरूपशोभितः ।। ७० ।। मन्दार पारिजातादि कबरीकृतकेशवान् । प्रातरुद्यत्सहस्रांशुनिभ कौस्तुभशोभितः ।। ७१ ।।हारस्वर्णस्रगाशक्त कम्बुग्रीवाविराजितः । सिंहकन्धनिभैः प्रोच्चैः पीनैरांसैर्विराजितः।।७२

अर्थ--नित्यकिशोर अवस्था सम्पन्न सुन्दर सुकुमार कोमल अवयवों (अंगों) से युक्त खिले हुये लालकमल के समान कोमलचरणकमलवाले ॥ ६७ ॥ कमलदल लोचन युगल काम के धनुषाकार सुन्दर भृकुटि (भौंहं) वाले, सुन्दरनाशा एवं शोभायमान कपोल तथा मंजुल मुखकमल वाले ॥ ६८ ॥ मुक्ताओं (मोतियों) के समान प्रकाशमान दाँतों वाले मन्दमुसुकान युक्त लालमणि अरुणाधर वाले, शरदपूर्ण, चन्द्र के समान प्रसन्नमुख वाले, ॥ ६६ ॥ दोपहर के सूर्य के समान प्रकाशमान कानों के कुण्डलोंवाले अत्यन्त कोमल घुँघराले केशोंवाले, श्री सीताराम जी दिव्यसिंहासन पर विराजमान सुशोभित हैं ।७० ॥ केशों में मन्दार पारिजात आदिक फूल गूँथे गये हैं । कण्ठ में कौस्तुभमणि प्रातःकालीन उदय होते हुये सूर्य के समान अरुणाई लेते हुये प्रकाशयुक्त शोभित होती है ॥ ७१ ॥ शंख के समान ग्रीवा में स्वर्णमणि रत्नजटित हार एवं फूलों की मालायें धारण किये हैं । सिंह के समान हृष्ट पुष्ट ऊँचे कन्धा विशेष शोभित हैं ॥ ७२ ॥

अनन्त श्री युगलानन्यशरण जी महाराज कृत श्रीधाम कान्ति की भूमिका स्वरूप श्रीलक्ष्मण किलाधीश पं० श्रीसीतारामशरणजी महाराज का लेख—

※ अयोध्या के अतीत तथा वर्तमान स्वरूप ※

अर्थ—वेद में अयोध्या को देवताओं की पुरी कहा गया है-'अष्टचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या" आठचक्र नवद्वारोंवाली अयोध्या देवताओंकी पुरी है। वेदावतार श्रीवाल्मीकीय रामायण में यहाँ के निवासियों में अतुल ऐश्वर्य का वर्णन मिलता है।

कोशलो नाम मुदितः स्फीतो जनपदो महान । विनिविष्टः सरयूतीरे धनधान्यवान् ॥
अयोध्या नाम नगरी तत्रासील्लोकविश्रुता । मनुना मानवेन्द्रेण या पुरी निर्मितास्वयं ॥
आयता दश चद्वे च योजनानि महापुरी । श्रीमती त्रीणि विस्तीर्णा सुविभक्तकहान्था ॥
(वाल्मी० १। ।५-७)

अत्यन्त समृद्ध कोशल देश में लोक प्रसिद्ध श्री अयोध्यापुरी विद्यमान है। यहाँ के निवासी अत्यन्त सन्तुष्ट एवं धन धान्य से परिपूर्ण थे । आदिराजा श्रीमनु ने अपने संकल्प से इस पुरी का विस्तार किया था । तीन योजन (बरहकोश) चौड़ी तथा बारह योजन (अड़तालिश कोश) लम्बा अयोध्या का मूल नगर था। उप नगरों के साथ इस पुरी का विस्तार अनेकों योजन था। 'महापुरी मूल नगरम् उपनगर साहित्येत्वनेकयोजनास्तीति भावः—भूषणटीका ।

तभी तो प्रयाग से ही अयोध्या के शिखरों और पताकाओं के दर्शन होते रहते थे ।

कोशल देश का नाम है, जिसमें अयोध्यापुरी बिराजमान है । कोशल देश भी दो हैं—दक्षिण कोशल, दूसरा उत्तर कोशल, अयोध्या उत्तर कोशल देश में है। उत्तर कोशल में अयोध्या थी यह भागवत में सुस्पष्ट है—

"य उत्तराननयत कोशलान्दिवम" (भा० ५)

भागवतकार कहते हैं—देवता मनुष्य एवं पशु आदि को भी श्रीरामजी का ही भजन करना चाहिये, क्यों कि श्री राम जी सुकृतज्ञ हैं थोड़ा भजन को बहुत मानते हैं । तभी तो उत्तर कोशलवासी (अयोध्यावासी) समस्त पशु तृण आदि को अपने साथ दिव्यधाम ले गये । महर्षि बाल्मीकि ने लिखा है कि—

"तस्यां पुर्यामयोध्यायां वेदवित्सर्वसंग्रहः दीर्घदर्शी महातेजाः पौरजानपदप्रियः"
... ... यस्यां दशरथो राजा वसन्न जगदपालयत् (१। ।१-४)

अर्थात उस अयोध्यापुरी में राजा दशरथ जगत् का पालन करते थे । वे वेदों के ज्ञाता थे, महर्षि के तुल्य थे राजर्षि के रूप में तीनों लोकों में प्रसिद्ध । उस अयोध्या में कोई भी मनुष्य कामी, कायर क्रूर नहीं थे । मूर्ख तथा नास्तिक एक भी मनुष्य नहीं था । सभी स्त्री पुरुष धर्म शील एवं महर्षियों के समान निर्मल थे । माला कुण्डल मुकुट के बिना कोई भी मनुष्य नहीं था । सभी अयोध्या निवासी विशिष्ट भोगों से पूर्ण थे । इस प्रकार अयोध्यावासियों के आदर्श जीवन का विशद वर्णन महर्षिने बालकाण्ड के पाँच से छठेसर्ग तक अतिविस्तार से किया है । वाल्मीकि रामायण अयोध्या काण्ड के प्रारम्भ में अयोध्यावासियों के उत्कृष्ट प्रेम का सम्यक् दर्शन होता है । चक्रवर्ती श्रीदशरथजी ने एक महती सभा बुलाई और सभी से पूछा कि श्रीरामभद्र को युवराज बनाने की मेरी इच्छा है, आप सब विचार कर अपनी स्वीकृति दें ।

श्रीदशरथजी की बात सुनते ही सभी सभासद प्रसन्न होकर हर्षनाद करने लगे । उस हर्षनाद से सभामंडप गूँज उठा सभी ने एक स्वर से कहा—राजन् ! आप अब अत्यन्त वृद्ध हो गये हैं अतः श्रीरामजी को युवराज अवश्य बना दें । श्री दशरथ जी ने कहा—श्रीरामजी अत्यन्त सुकुमार हैं, वे इतना विशाल राज्यभार कैसे बहन कर सकेंगे ? इसका उत्तर देते हुए अयोध्यावासी कहते हैं । कि—

इच्छामो हि महाबाहुं रघुवीरं महाबलम । गजेन महता यान्तं छत्र वृताननम् ॥

(वाल्मी० २।२।२२) हे राजन् ! हम लोग राज्य की रक्षा के लिये श्री राघवेन्द्र को राजा नहीं बनाना चाहते हैं हम परम सुकुमार श्रीरामभद्र को राज्यभार बहन के लिए युवराज नहीं बनाना चाहते हैं हम तो सपरिवार उनके सौन्दर्य माधुर्य

का रसास्वादन करना चाहते हैं। हम सब यही चाहते हैं कि महावाहु श्रीरघुवीर युवराज वनकर विशाल हाथी पर सवार होकर हमारे महलों की गलियों से यात्रा करें। हाथी पर जव वे सवार होंगे तब शिर पर लगे हुए छत्र से उनकी शोभा और वढ़ जायगी। साथ ही दृष्टि दोष बचाने के लिये भी छत्र से उनका मुख आच्छादित करना चाहते हैं छत्र लगी मुक्ता की झालरों के वीच कभी कभी जव रुक रुक कर दर्शन होगा तब और भी दर्शन की लालसा बढ़ेगी ॥

अयोध्यावासियों ने कहा राजन् ! आपके पुत्र श्रीरामभद्र में इतने कल्याण गुण हैं कि हम सब उनके गुणों में अत्यन्त आशक्त हो गये।
"वहवो नृप कल्याणगुणाः पुत्रस्य सन्ति ते।" इक्ष्वाकुवंश में उपत्न्न सभी महापुरुषोंसे श्रीरामभद्र विलक्षण हैं। इनका स्वभाव अत्यन्त कोमल है॥ "व्यसनेषु मनुष्याणां भृशं भवति दुःखित : उत्सवेषु च सर्वेंषु पितेव परितुष्यति॥ अपने परिवार के नहीं किन्तु नीच से नीच, वाल युवा बृद्ध के दुख में श्रीरामभद्र अत्यन्त दुखी हो जाते हैं। "भृशं भवति दुःखितः" का तात्पर्य यह है कि आश्रितों के दुख से इतने अधिक दुखी हो जाते हैं कि आश्रितों के दुख का कारण अपनी असावधानी समझने लगते हैं। प्रभु सोचते हैं कि यदि मैंने ठीक से इनका पालन किया होता, तो यह क्यों दुखी होता। उत्सवों में सभी के गृहों में जाते हैं और पिता के समान सन्तुष्ट होते हैं॥

" स्मित पूर्वाभिभाषी च।" मन्दहास के साथ सर्व प्रथम दूसरों से स्वयकुशल प्रश्न पूछते हैं जिससे उनसे बाते करनेमैं किसी साधारण मनुष्य को संकोच नहीं हो। देवता, मनुष्य सभी श्रीरामजी के बल, वीर्य आयु की बृद्धि की कामना करते रहते हैं। "स्त्रियो ब्रद्धास्तरुण्यश्च सायं प्रातः समाहिता। सर्वान् देवान्नमश्यन्ति रामस्यार्थें मनिस्वनः॥ बृद्धा एवं तरुणी स्त्रियाँ सायं प्रातःकाल स्नान आदि से निबृत होकर सावधान होकर श्रीरामजी के मंगल के लिए सभी देवताओं को नमस्कार करती हैं। सभी देवताओं को नमस्कार इसलिए करती हैं कि कोई देवता नाराज न हो जाय। एक दो देवता शायद कल्याण करने में असमर्थ हों अतः सब मिलकर अवश्य कल्याण करेंगे। बृद्धा तथा तरुण ये दोनों स्त्रियाँ एक प्रकार से परवश हैं वृद्धा तो दूसरों के सहारे स्नान आदि कर देव मंदिरों में प्रार्थना करती हैं। तरुणी स्त्रियाँ अपने सौंदर्य के भार से ही तीनों काल स्नान कर देवालयों में जाने में असमर्थ रहती हैं। किन्तु श्रीरामजी के लिए सभी सदा सावधान होकर देवताओं से प्रार्थना करती रहती हैं। यद्यपि देवतागण श्रीरामजी से रक्षित हैं, श्रीरामजी की रक्षा करनेमें असमर्थ हैं, किन्तु प्रीति की रीति वड़ी विलक्षण होती है। प्रेमियों के समक्ष प्रभु का एश्वर्व सदा

तिरोहित [छिपा] रहता है, उनके समक्ष तो प्यारे के माधुर्य का सागर ही उमड़ता रहता है। अतः प्रीति की दृष्टि से यह प्रभु के लिए मंगलकामना अत्यन्त प्रसंशनीय है। श्रीमानस में भी अयोध्या वासियों ने चित्रकूट में श्रीराम जी के मंगल के लिए पंचदेवों की उपासना की है।

करि मज्जन पूजहिं नर नारी। गनप गौरि त्रिपुरारि तमारी॥
रमारमन पद बंदि बहोरी। बिनवहिं अंजुलि अञ्चल जोरी॥
राजा राम जानकी रानी। आनँद अवधि अवध रजधानी॥ अयो० कां २७३

इस प्रकार पंचदेवों की उपासना अपने लिए यदि करते तो परत्त्व की दृष्टि से अनुचित था। किन्तु प्रभु के मंगल के लिए उपासना माधुर्य दृष्टि से प्रशंशनीय है। वाल्मीकीय रामायण तो माधुर्य प्रधान ग्रन्थ है। अतः श्री किशोरी जी श्रील-क्ष्मणजी सभी ने प्रभु के लिये मंगलकामना की है॥ श्रीराघवेन्द्र के विरह में श्री अयोध्यापुरी के बृक्ष भी सूख गये।

विषय ते महाराजा रामव्यसन कर्शित अपिबृक्षा परिम्लानाः सपुष्पांकुरकोरकाः
उपतप्तोदका नद्यः पल्ववानि सरांसि च परि शुष्क पलाशानि वनान्युपवनानि च

श्री सुमन्त जी श्रीदशरथजी से कह रहे हैं कि महाराज ! आपके राज्य में श्रीरामभद्र के वियोग में पुष्प एवं कलिका के साथ वृक्ष भी शुष्क हो रहे हैं। नदियों के जल उष्ण हो गये हैं। बन उपवन सभी श्रीरामजी के बियोग में सूख रहे हैं। लौकिक वृक्ष जल से हरे भरे रहते हैं तथा जलाभाव में सूख जाते हैं, किन्तु श्री अयोध्यापुरी के वृक्ष श्रीरामभद्रजू के संयोग से हरे-भरे रहते हैं तथा श्रीराम वियोग में सब सूख जाते हैं। यह श्रीअवधधाम की महिमा है। इसकी चर्चा समस्त रहस्य ग्रन्थ में पायी जाती है। पञ्चस्तवीकार ने भी लिखा है। 'बृक्षाश्च तान्तिमलभन्त भवद्वियोगे" यद्यपि आपामर देवता पर्यन्त जीवों पर श्रीरामभद्र की कृपा समानरूप से रहती है, किन्तु अयोध्यावासियों पर विशेष अनुग्रह प्रसिद्ध है। उ० क० दो० ४ को पढ़िये कि--"अति प्रिय मोहि यहाँ के बासी। मम धामदा पुरी सुख रासी॥ पञ्चस्तवीकार भी कहते हैं—"ये धर्ममाचरितुमभ्यसितुं च योगं, बोद्धुं च किञ्चन न जात्वधिकार भाजः। तेऽपि त्वदाचरितभूतलबन्ध गन्धाद्, बन्धातिगाः परगतिं गमिता-स्तृणाद्याः॥" हे नाथ ! जो लोग धर्माचरण के योग्य नहीं थे, न तो योग एवं ज्ञान के अधिकारी ही थे वे पशु पक्षी तृण आदि भी आपकी लीलाभूमि के निवासी होने के कारण परमगति प्राप्तकर गये। इसी प्रकार श्रीवत्साङ्कमिश्र भी कुछप्रश्न करते हैं—

त्वमामनन्ति कवयः करुणामृताब्धे ज्ञान क्रियाभजनलभ्यमन्यैः।

एतेषु केन वरदोत्तर कोसलस्थाः । पूर्वं सदूर्वमभजन्त हि जन्तवस्त्वाम् ॥

हे नाथ ! वेद शास्त्र के ज्ञाता मुनिजन सदा से उपदेश देते आ रहे हैं, कि भगवान् की प्राप्ति कर्म, ज्ञान एवं भक्ति से ही होती है अन्य साधनों से नहीं। किन्तु अयोध्यावासी कीट, तृण आदि ने इनमें से कौन योग किये. जो उनको आप अपने साथ निजधाम ले गये ? स्पष्ट है कि अयोध्यावास के प्रताप से ही वे परमपद के अधिकारी हुये। तभी तो मानसकार कहते हैं। 'चारि खानि जगजीव अपारा ॥ अवध तजे तनु नहिं संसारा ॥ बा० कां० ३५ दो० ॥ श्रीमद्भागवतकार श्री राम जी की उपासना की महत्ता बतलाते हुये श्री अवध की महिमा स्वीकार करते हैं।

सुरोऽसुरोवाप्यथवानरोनरः, सर्वात्मना यः सुकृतज्ञमुत्तमम् । भजेत रामं मनुजाकृतिं हरिं. य उत्तराननन्यत्कोसलान दिवमिति ॥ (भा० ५।१९।८) श्रीहनुमानजी पंचम स्कन्ध में श्रीरामजी की उपासना की महत्ता बतलाते हुए कहते हैं कि-देवता हो या असुर नर हो या वानर सभी को श्रीरामचन्द्र जी की उपासना करनी चाहिए। क्यों कि थोड़े से उपकार में श्रीरामजी प्रसन्न हो जाते हैं। तभी तो उत्तर कोशलवासी समस्त जीवों को वे अपने साथ निजधाम ले गये। मानस में श्रीपार्वती जी ने इस चरित को आश्चर्य के साथ पूछा है—'बहुरि कहहु करुनायतन कीन्हं जो अचरज राम। प्रजासहित रघुवंशमनि किमि गवने निज धाम ॥ ११० दो० ॥ अर्थात् श्री राम जी अयोध्यावासी अपनी प्रजाओं के साथ अपने निजधाम [साकेत] गये, यह अत्यन्त आश्चर्य चरित किया है। आज तक किसी अवतार के चरित में ऐसी आश्चर्य लीला देखने सुनने में नहीं आई है। भागवतकार कहते हैं—'स यैः स्पृष्टोऽभिदृष्टो वा संविष्टोऽनुगतोऽपि वा । कोशलास्ते ययुं स्थानं यत्र गच्छन्ति योगिनः ॥ (भा० ६।११।२२) जिन्होंने भगवान् श्रीराघवेन्द्र सरकार का दर्शन किया स्पर्शकिया अथवा उनके साथ थोड़ी दूर भी अनुगमन किया। (पीछे पीछे चले) वे सभी तथा कोशल देश के निवासी भी उस दिव्यधाम में गये, जहाँ बड़े बड़े योगीजन साधना के द्वारा जाते हैं। यह अयोध्यावास का ही महत्व है कि योगी दुर्लभ श्रीरामधाम साधारणजन को भी प्राप्त हो जाता है ॥ महर्षि वाल्मीकि लिखते हैं कि—भगवान् श्रीराम के परमधाम यात्रा के समय स्थावर जंगम सभी जीव उनके साथ हो गए। ऐसा एक भी जीव नहीं बचा जो श्रीरामजी के साथ नहीं गया हो। तिर्यग्योनिगताश्चैव सर्वे राममनुव्रताः । जब भगवान् श्रीराम समस्त प्रजाओं के साथ अपने दिव्यधाम जाने लगे तब इस आश्चर्यमय दृश्य को देखने के लिए देवताओं के साथ ब्रह्मा जी वहाँ उपस्थित हो गये। आकाशमण्डल देवताओं के विमानों से खचाखच भर गया।

सभी देवता पुष्पों की वर्षा कर रहे थे। श्रीब्रह्माजी ने प्रभु से कहा—आगच्छविष्णो भद्रं ते दिष्ट्या प्राप्तोऽसि राघव, भ्रातृभिः सह देवाभैः प्रविशस्व स्विकां तनुम्। यामिच्छसि महाबाहो तां तनुं प्रविश स्विकाम्॥ वैष्णवीं तां महातेजो यद्वाकाशं सनातनम्। (वाल्मी० ७।११०।८-९) व्यापक स्वरूप श्रीराम! अपने भ्राताओं के साथ अपनी इच्छानुसार अपने स्वरूप में प्रविष्ट हों, अथवा दिव्यधाम साकेत में चलकर आप विराजें। तात्पर्य यह कि प्रभु अपनी इच्छा से लीला का संवरण करें। "त्वं हि लोकगतिर्देव! न त्वां केचित्प्रजानते। ऋते मायां विशालाक्षीं तव पूर्वपरिग्रहाम्॥ हे देव! आप समस्त जीवों के एकमात्र आश्रय हैं आपको कोई नहीं जानता है। जिनका सदा आपका संग रहता है ऐसी अनपायिनी श्री जानकी जी केवल आपको जानती हैं। ब्रह्माजी की प्रार्थना सुनकर श्रीरामभद्र अपने भ्राताओं के साथ अपने दिव्य श्रीविग्रह के साथ ही (छोड़कर नहीं) परधाम चले गए॥ "विवेश वैष्णवं तेजः सशरीरः सहानुजः। [वा० ७।११०।१२] प्रभुने अपनी प्रजाओं के लिए भी ब्रह्मा जीसे अनुमोदन चाहा, ब्रह्माजी ने कहा नाथ! आपकी कृपा से ये सभी आपकी प्रजा सान्तानिक (साकेत) लोक जायेंगे-"लोकान् सन्तानकान्नाम यास्यन्तीमे समागताः। [वा० ७।११०।१८] फिर क्या था सभी लोग गोप्रतारघाट श्रीसरयू में स्नान कर दिव्यरूप धारण कर विमान पर बैठकर प्रभु के साथ साकेत चले गये।

अयोध्या से ४ मील की दूरी पर गोप्रतारघाट है। आज कल लोग इसको गुप्तारघाट कहते हैं जहाँ श्रीरामजी गुप्त हुये थे, यह महान अनुचित है। गुप्तारघाट तथा इसका अर्थ दोनों भ्रमात्मक हैं। श्रीरामजी गुप्त नहीं हुयेथे, बल्कि ऊपरके लोक गए थे। अयोध्यावासी सभी प्रजा भी विमानपर बैठकर ऊपर सान्तानिक लोक गये हैं अतः घाट का शुद्धनाम गोप्रतार है। गोप्रतार का अर्थ है, जहाँ गायें पार होती हैं। थोड़ा जल होने के कारण वहाँ गायें पार जाकर घास चरती थीं, वाल्मीकि महर्षि लिखते हैं—

तथोक्तवति देवेश गोप्रतारमुपागताः। भेजिरे सरयूं सर्वे हर्षपूर्णाश्रु विक्लवाः॥ [वा० ७।११०।२८] अर्थात् ब्रह्माजी के वचन सुनकर सभी लोग आनन्दाश्रुपूर्ण नेत्र हर्षातिरेक से गोप्रतार पहुंच गए तथा जैसे-जैसे स्नान करते गए वैसे वैसे प्राकृत शरीर छोड़कर दिव्य शरीर से विमान पर बैठते गये।

मानुषं देहमुत्सृज्य विमानं सोऽध्यरोहत॥ पशु पक्षी कीट पतंग सभी सरयू जल के स्पर्श से दिव्य रूप धारण कर विमान पर बैठ गए। "ततः समागतान् सर्वान् स्थाप्य लोकगुरुर्दिवि। जगाम त्रिदशैः सार्धं सदा हृष्टैर्दिवं महत्॥ [वाल्मी०७।११०।२८]

अर्थात् सभी को दिव्यरूप में आये हुये देखकर श्रीरामभद्र ने विमानपर सभी को अपने साथ में बिठलाकर नित्यधाम को चले गये ॥ यहाँ 'सदा हृष्टैः त्रिदशैः' यह विशेषण नित्य सूरियोंकी ओर संकेत करताहै ऐसा भूषण टीकाकार कहते हैं [दिवम्] से वैकुण्ठ [साकेत] समझना चाहिये—'दिवम् परमाकाशं वैकुण्ठत त्रिदशै नित्य सूरिभिः, सदा हृष्टै रिति विशेषणात् ॥ इस प्रकार वेदावतार श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण में विस्तारपूर्वक चराचर प्रजाओं के साथ श्रीराघवेन्द्र की साकेत यात्रा का वर्णन है। चराचर प्रजाओं को नित्यधाम प्रदान कर श्रीराघवेन्द्रने असाधारण उदारता प्रगट की है, साथ ही अयोध्यावास मात्र से दिव्यधाम की प्राप्ति की सरलता का भी प्रकाशन किया है॥ प्रभु की इस अकारण करुणा की प्रशंसा से समस्त शास्त्र एवं दिव्य प्रबन्ध भरे पड़े हैं। श्रीअयोध्यावास का महत्व है साकेत की प्राप्तिः—"राम धामदा पुरी सुहावनि। लोक समस्त विदित जग पावनि ॥ बा० कां० ३५॥ अयोध्यापुरी श्रीरामधाम को देनेवाली है, समस्त लोकों में विदित है तथा जगत् को पवित्र करनेवाली है। श्रीअयोध्या के दो स्वरूप हैं एक माधुर्य तथा दूसरा ऐश्वर्य। माधुर्य अयोध्या तो चर्मचक्षुओं से भी देखी जाती है किन्तु ऐश्वर्य रूप का दर्शन तो दिव्यदृष्टि से ही सम्भव है। अवधप्रभाव जान तब प्रानी। जब उर बसहिं राम धनुपानी ॥ उ० कां० ९७॥ धनुष बाण धारण किये हुये जब श्रीरामजी हृदय में निवास करें तभी अयोध्या की महिमा जानी जा सकती है।

जब श्रीरामजी हृदय में बसेंगे तब काम क्रोध आदि विकार हृदय से भाग जाँयगे, फिर श्री अवध का महत्व ज्ञात होगा।

तब लगि हृदय बसत खल नाना। लोभ मोह मत्सर मद माना।
जब लगि उर न बसत रघुनाथा। धरे चाप सायक कटि भाथा॥

सु० कां० ४७॥ भगवत् कृपा से दिव्य दृष्टि प्राप्त होने पर इसी माधुर्यमयी अयोध्यापुरी में दिव्य अयोध्या का दर्शन होने लगता है। स्वामी श्री युगलानन्यशरण जी श्रीरसिकअलीजी प्रभृति सन्तों ने इसी अयोध्यापुरी को दिव्य रूप में देखा था। गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी ने इसी अयोध्यापुरी को दिव्य रूप में साक्षात्कार किया था तभी तो—बहुरि कहहु करुनायतन कीन्ह जो अचरज राम। प्रजा सहित रघुवंश-मणि-किमि गमने निज धाम ॥ श्री पार्वती जी के इस प्रश्न का सुस्पष्ट उत्तर श्रीशंकर जी से नहीं दिलवाया। 'गये जहाँ शीतल अँवराई' से भले ही इस प्रश्न का गुप्त समाधान कर दिया गया हो, किन्तु जिस प्रकार अन्य प्रश्नों के स्पष्ट एवं विस्तृत उत्तर दिये गये वैसा उत्तर नहीं दिया गया॥

श्रीअयोध्याजी को छोड़कर श्रीरामजी का अन्य निजधाम की कल्पना गोस्वामी जी की उपासना के अनुकूल नहीं हैं । वे कहते हैं :—"उमा अवध वासी नरनारि कृतार्थ रूप । ब्रह्म सच्चिदानन्दघन रघुनायक जहँ भूप ॥ उ० कां० ४७ ॥ अर्थात् साधारण राजा के राज्य में परिवर्तन होते हैं । किन्तु जहाँ सच्चिदानन्दघन श्रीरामजी राजा हों, तथा जहाँ के निवासी प्रजा कृतार्थ रूप हों, वहाँ परिवर्तन कैसे सम्भव हो सकता है ॥ श्रीरघुनाथजी ने निजमुख से श्रीअवध की महिमा गाई है,

सुनु कपीस अंगद लंकेशा । पावन पुरी रुचिर यह देशा ॥
यद्यपि सब बैकुण्ठ बखाना । वेद पुरान विदित जग जाना ॥
अवध सरिस प्रिय मोहिं न सोऊ । यह प्रसंग जानइ कोउ कोऊ ॥ उ०कां०४

मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामजी सत्यवादियों में शिरोमणि हैं । वाल्मीकीय रामायण में कैकेयी अम्बा से स्वयं श्रीरामजी ने कहाः—अनृतं नोक्त पूर्वं में न च वक्ष्ये कदाचन" मैंने आज से पूर्व कभी भी असत्य भाषण नहीं किया है, आगे भी असत्य भाषण नहीं करूँगा । श्रीरामजी सत्यवक्ता तथा दृढ़व्रती हैं ऐसा बाल्मीकि जी लिखते हैं :—"सत्य वाक्यो दृढ़ व्रतः ।" श्रीभागवतकार भी कहते हैं कि—ब्रह्माण्यः सत्यसंधश्च रामो दाशरथिर्यथा । परीक्षित् जी ब्राह्मण एवं सत्यप्रतिज्ञ दाशरथि राम के समान थे । अतः श्रीरामजी श्रीअवध को बैकुण्ठ से श्रेष्ठ कह रहे हैं, इससे अधिक प्रमाण और क्या हो सकता है ।

मंत्र भाग में भी देवानां पूरयोध्या, से अयोध्या की महिमा प्रसिद्ध है । सनत्कुमार संहितान्तर्गत श्रीरामस्वराज में श्रीयुधिष्ठिरजी ने श्रीनारदजी से तीन प्रश्न किये हैं 'किं तत्त्वं किं परंजाप्यं किं ध्यानं मुक्तिसाधनम् ।' पर तत्व क्या है, पर जाप्य क्या है, तथा मोक्षप्रद ध्यान क्याहै ? उत्तर में कहा गया है कि श्रीराम ही परतत्व हैं, श्रीराम मंत्र ही पर जाप्य हैं, तथा श्रीसीतारामजी का ध्यान ही मोक्षप्रद ध्यान है । ध्यान का वर्णन करते समय सर्व प्रथम अयोध्या का स्मरण किया गया है ।

अयोध्या नगरे रम्ये रत्नमण्डप मध्यगे । स्मरेत्कल्पतरोर्मूले रत्न सिंहासनं शुभम् ॥
तन्मध्येऽटदलं पद्मं नाना रत्नैश्च वेष्टितं स्मरेन्मध्ये दाशरथिं सहस्रादित्य तेजसम् !

(श्रीरामस्तवराज) सर्वप्रथम उपासक परम रमणीय अयोध्यापुरी का ध्यान करे, तत्पश्चात् रत्नमण्डप का ध्यान करे, तत्पश्चात् कल्पतरुका, तत्पश्चात् रत्नसिंहासनका, तत्पश्चात् अनेक रत्नों से सुसज्जित अष्टदल कमल का ध्यान करे, वहीं पर हजारों सूर्य के तेज के समान श्रीरामजी का ध्यान करे । यह ध्यान बालक रूप श्रीरामजी का हैं क्यों कि आगे पिता के अङ्क में विराजमान श्रीरामजी का ध्यान है ।

पितुरङ्कगतं राममिन्द्रनील मणि प्रभम् । इसी ग्रन्थ में दूसरा ध्यान श्रीविदेह-राजनन्दिनी जी के साथ करने को कहा गया है—श्रीवैदेही सहितं सुरद्रुमतले हैमे महा मण्डपे । इत्यादि । इस प्रकार बालक रूप का ,ध्यान हो अथवा युगलरूप का ध्यान हो, ध्यान करने से पूर्व श्रीअयोध्याका स्मरण परम आवश्यक है इसलिए भाष्यकार ने लिखा है । "आदौ रम्यं अयोध्या नगरं स्मरेत्" अर्थात् प्रथम रमणीक अयोध्या नगर का ध्यान करना चाहिए । ध्यानमंजरी में श्री अग्रस्वामी जी महाराज रसमालिका में श्रीकरुणासिन्धुजी महाराज, बृहत् ध्यानमंजरी में श्रीबालअलीजी महाराज, श्रीयुगल-विनोद बिलाश में स्वामी श्रीयुगलानन्यशरण महाराज प्रभृति आचार्यों ने इसी क्रम से विस्तारपूर्वक अपने ग्रन्थों में ध्यान का वर्णन किया है ।

इसप्रकार वेद से लेकर रामायण पर्यन्त श्रीअयोध्या की महिमा का वर्णन समानरूप में सर्वत्र मिलते हैं ।। श्रीगोस्वामीजी ने भी विश्ववन्द्य श्रीमानस की रचना इसी पुनीतपुरी में की थी ।। "नवमी भौमवार मधुमासा । अवधपुरी यह चरित प्रकाशा ।।बा० कां०३४।। श्रीरामचरित मानसके प्रथम टीकाकार आचार्यप्रवर अनन्त श्रीकरुणा-सिंधुजी महाराज ने अयोध्यामें ही टीका की । तव से लेकर आजतक अयोध्याजी में श्री मानस के अध्ययन—अध्यापन गायन एवं कथा की अक्षुण्ण परम्परा चली आरही है । यवनों के शासनकाल में अयोध्या को उचित सम्मान नहीं मिला । इसलिए गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी महाराज ने अयोध्या छोड़कर काशी निवास किया ।। विन्दु प्रवर्तक श्रीदीनवन्धु श्रीरामप्रसादाचार्यजी महाराज के समय से अयोध्या मैं सन्तों का समागम प्रचुर मात्रा में होने लगा । श्रीकरुणासिंधु श्रीरामचरणदासजी महाराज के काल में अयोध्या में सत्संग, कथा प्रवचन आदि बड़े समारोह के साथ होने लगे ।

१८५७ के युद्ध के पश्चात् स्वामी श्रीयुगलानन्यशरण जी महाराज का प्रभाव अंग्रेज अधिकारियों पर विशेषरूप से पड़ा । वावन वीघे की परिधि के साथ लक्ष्मण-किला का निर्माण हुआ । स्वामी श्रीयुगलानन्यशरणजी महाराज जैसे असाधारण भज-नानन्दी सिद्ध थे । वैसे ही हिन्दी संस्कृत उर्दू फारसी आदि भाषाओं के अप्रतिम विद्वान् भी थे । यही कारण था कि अंग्रेज मुसमलान आदि भी श्री स्वामी जी के भक्त थे ।

स्वामीजी के काल में श्रीअयोध्या में चार सिद्ध थे । स्वामी श्रीयुगलानन्य शरणजी महाराज, श्रीलक्ष्मणकिला, वावा श्री रघुनाथदास जी महाराज, वड़ीछावनी वावा श्री माधवदासजी उदासीन रानूपाली, पण्डितराज श्रीउमापति त्रिपाठीजीनयाघाट

स्वामी श्रीयुगलानन्यशरण जी महाराज के पट्ट शिष्य पण्डितराज स्वामी श्री जानकीवरशरण जी महाराज असाधारण सन्त हुए इनके काल में श्री अयोध्या का वैभव लोकोत्तर बढ़ा। उनके दर्शनार्थ स्वामी श्री विवेकानन्द जी पधारे। स्वामी जी के दर्शन से स्वामी श्री विवेकानन्द जी अत्यन्त प्रभावित हुये। उन्होंने लिखा है कि मैंने आज वास्तविक सन्त का दर्शन किया।

श्रीधाम कान्ति पद नं. ६

नाम रूप गुन गन सेवन मधि यतन सुमति अवधारी।
काहू मध्य एक रस दुर्लभ दृढ़ अनन्य मन भारी॥
सबसे सुलभ सहज मंगलमय धाम रहस्य विचारी।
श्रीयुगलानन्यशरन सेवन श्रीअवध स्वच्छ श्रमहारी॥ ६॥

अर्थ—श्रीसीतारामजी के नाम; रूप, गुण, लीला सभी नित्य हैं किन्तु इनकी उपासना के लिये यत्न एवं सुन्दर बुद्धि की आवश्यकता है। नाम का यत्न स्पष्ट ही है। नाम निरूपन नाम जतन ते। सोइ प्रगटत जिमि मोल रतन ते॥ नाम के अर्थों पर विचार करते हुये सावधान होकर नाम जप करने से नामकी उपासना होती है लीला में बिना बुद्धि के प्रवेश होता ही नहीं। स्थिर चित्त के बिना रूप का दर्शन भी दुर्लभ ही है। अतः अखण्ड एकरस अनन्यता के साथ इन सबों की उपासना दुर्लभ है। विचार करने पर सबसे सुलभ मंगलमय श्रीधाम का रहस्य प्रतीत होता है। अतः श्री महराज कहते हैं कि सदा सेवन के योग्य, श्रमहारक निर्मल श्रीधाम ही है। सोते-जागते, बैठते-उठते; पवित्र-अपवित्र रोग-शोक आदि सभी अवस्थाओं में श्रीधाम का सम्पर्क बना रहता है। श्रीधाम की सुखद गोद में जीव सदा बिना यत्न ही सुरक्षित रहता है॥ ६॥

अनुभव अमल अजूब अभय अनवद्य अखंड अनूपा।
अमर अजर कारन अनन्य श्रीअवध सरस रसरूपा॥
विरहव्यथा व्याकुल वनचर ध्वज व्याध विरोधविरूपा।
युगलानन्यशरन बिकार बहु हरन वकार निरूपा॥ ७॥

अर्थ—अब अवध का शब्दार्थ कहते हैं—निर्मल, निरूपम अभयप्रद, अखण्ड अनुभव देने वाले तथा अपने आश्रितों को अजर अमर करने वाले श्रीअवध हैं। यह अर्थ अकार से लभ्य (प्राप्त) है। श्रीमहाराजजी कहतेहैं कि-विरहका दुख व्याकुलता

आदि समस्त विरोधी बिकारों का हरण करने वाला वकार ही है ॥ ७ ॥

धर्म ध्यान धारना ध्येय धुर धाम धीरता धामी ।
धवल धुरीन पीन मत प्रीतम धनद धकार सदामी ॥
वरन तीन तर जीह जपत जन जागत रैन ललामी ।
युगलानन्यशरन सर्वस सुख धाम बसे आरामी ॥ ८ ॥

अर्थ—धर्म ध्यान धारणा ध्येय एवं धाम में धैर्य देने वाला धकार है । साथ ही प्रियतम रूपी निर्मल धन प्रद है । अवध ये तीन अक्षर जप करते ही मनुष्य निरन्तर सुखी रहता है । श्री महाराज जी कहते हैं कि परम सुखप्रद श्रीधाम बास करने से सभी सुख प्राप्त होते हैं ॥ ८ ॥

कीट पतंग तुरंग कुरंग विहंग सुरंग सँवारे ।
श्रीसाकेत सुरज पावन परसत श्रीधाम पधारें ॥
नींच ऊँच सम विसम भेद श्रीअवध न कबहुँ निहारें ।
युगलानन्यशरन संतत निज बाहु बलन सब तारें ॥ ९ ॥

अर्थ—कीट, पतंग, अश्व, मृग आदि श्री अवधधाम के पवित्र रज के स्पर्श करते ही श्रीअवध धाम के अधिकारी हो जाते हैं । नीच—ऊँच, सम विषम का भेद श्रीअवधधाम ने कभी भी नहीं विचार किया । श्रीमहाराज जी कहते हैं कि सबको अपने बाहुबल से सदा ही भवसागर पार उतारते हैं ॥ ९ ॥

धाम अधार रहत धामी निज नामी नैन निहारे ।
धाम समेत परत्व परम मुद मोद उमंग अपारे ॥
केवल इष्ट दरश कीन्हें पर तदपि न रहस बहारे ।
युगलानन्यशरण धामी सुख इतही सरस सँवारे ॥ ६५ ॥

धाम के आधार पर ही धामी रहता है जैसे नाम के आधार पर नामी । धाम के साथ ही धामी (श्रीरामजी) का परम तत्व एवं अपार रहस्य रहता है । यदि धाम के अतिरिक्त इष्टदेव का दर्शन हो भी जाय तो पर भी धाम के बिना रहस्य का आनन्द नहीं मिल सकता । श्रीमहाराज जी कहते हैं कि धामी श्रीरघुनन्दन का सरस विहार यहीं है ॥ ६५ ॥

श्रीमद्वाल्मीकीयरामायण एवं श्रीमद्भागवत तथा श्रीरामचरित मानस के द्वारा श्री अवधधाम का स्वरूप समझा गया। अब प्रिय पाठकगण वेदों में श्री अवधधाम का स्वरूप देखें॥ अथर्ववेद—१०।२।२८ से ३३ तक। यथा—

यो वै तां ब्रह्मणो वेदामृतेनावृतां परम्। तस्मै ब्रह्म च ब्राह्माश्च चक्षुः प्राणं प्रजांददुः॥ २९॥ न वै तं चक्षुर्जहाति न प्राणो जरसः पुरा। पुरं यो ब्रह्मणो वेद यस्याः पुरुष उच्यते॥ ३०॥ अष्टचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या। तस्यां हिरण्ययः कोशः स्वर्गो ज्योतिषाऽवृताः॥३१॥ तस्मिन्यन्हिरण्यये कोशे त्र्यरे त्रिप्रतिष्ठते। तस्मिन्यद्यक्षमात्मन्वत्तद्वै ब्रह्मविदो विदुः॥ ३२॥ प्रभ्राजमानां हरिणीं यशसा सम्परीवृताम्। पुरं हिरण्ययीं ब्रह्मा विवेशापराजिताम्॥ ३३॥

अर्थ—ब्रह्मणः पुरम्=ब्रह्म की अर्थात् परात्पर परमेश्वर परमात्मा जगदादि कारण अचिन्त्य वैभव श्री सीतानाथ भगवान् श्री राम जी की पुरी को—वेद=जानता है, उसे वह भगवान् तथा भगवान् के पार्षद सब ही लोग चक्षु (दिव्यआँख) प्राण और प्रजा देते हैं। अब प्रश्न यह है कि किस पुरी को जानने के लिये कहते हो। उसका समाधान करते हैं कि—यस्याः पुरुषः उच्यते=जिस पुरी का स्वामी पुरुष कहा जाता है। अर्थात् जिसका प्रतिदिन नाम स्मरण किया जाता है। उस पुरुष की पुरी को जानने के लिये श्रुति कह रही है। यः ब्राह्मणः=जो कोई अनन्त-शक्ति सम्पन्न सर्वव्यापक सर्वनियन्ता सर्वशेषी और सर्वाधार श्री राम जी की—अमृतेन आवृताम=अमृतिमयि अर्थात् मोक्षानन्द से परिपूर्ण-ताम् पुरम् वेद=उस श्री अयोध्यापुरी को जानता है-तस्मै, ब्रह्म, च ब्राह्मा-उसके लिये साक्षात् भगवान् और ब्रह्म सम्बन्धी अर्थात् भगवान् के श्री हनुमान जी सुग्रीव, अंगद, मयन्द, सुषेण, द्विविद दरीमुख कुमुद नील, नल, गवाक्ष, पनस, गन्धमादन, विभीषण, जाम्बवान् और दधिमुख इत्यादि प्रधान षोड़श पार्षद अथवा नित्य और मुक्त सब जीव मिल कर-चक्षुः प्राणं प्रजाम्=उत्तम दर्शनशक्ति उत्तम प्राणशक्ति अर्थात् आयुष्य और बल तथा सन्तान आदि—ददुः=देते हैं। "ददुः" इस भूतकालिक क्रिया को देखकर घबड़ाना नहीं चाहिये। वेदकी सभी बातें अलौकिक ही होती हैं॥ २९॥ यस्याः पुरुषः-जिस पुरी का (स्वामी) परम पुरुष-उच्यते-कहा जा रहा है। अर्थात् जिसका निरूपण सर्वत्र वेद शास्त्रों में किया जाता है। और यहाँ भी २८ वें मन्त्र के पूर्व के

मन्त्रों से जिस पुरुष का निरूपण किया गया है, उसे—ब्रह्मणः तां पुरम्- भगवान् श्री राम जी की अयोध्यापुरी को--यः वेदतम्—जो कोई जानता है, उस प्राणी को-चक्षुः—अलौकिक दर्शनशक्ति अर्थात् बाह्य और आभ्यान्तरिक नेत्र तथा—प्राणः जरसः शारीरिक और आत्मिकबल मृत्यु से-पुरा न जहाति-पूर्व निश्चय ही नहीं छोड़ते हैं। तात्पर्य यह है कि भगवान् श्री राम जी की इस मृत्युलोकस्थ श्री अयोध्यापुरी का दर्शन करनेवाला इस लोक में सब प्रकार सुखी एवं पवित्र जीवन व्यतीत करता है। शरीरान्त होने पर धाम के प्रभाव से श्री सीताराम जी को प्राप्त होता है। त्रिपाद्-विभूतिस्थ श्री अयोध्या जी को जानना कहा गया है, और इस लीलाअवध का दर्शन बताया गया है। क्यों कि त्रिपाद्विभूतिस्थ अवध का वेद शास्त्रों द्वारा जानना ही सर्वसाधारण के लिये सम्भव है, देखना नहीं। और इस लीला अवध को पुण्यात्मा तथा पापात्मा पण्डित मूर्ख द्विजोत्तम या न्युनवर्ग के सभी व्यक्ति सामान्यतया दर्शन करने में सक्षम हैं। क्यों कि लीला अवध स्थूलरूप में प्रगट है। अस्तु चर्म चक्षुओं का विषय सभी को समान है। और त्रिपाद्विभूतिस्थ श्री अवध तो श्री सद्गुरुकृपा से प्राप्त उपासना द्वारा ही दृष्टव्य है। चर्मचक्षुओं से नहीं। यद्यपि लीला अवध का भी वास्तविक स्वरूप तो श्री सद्गुरु कृपा के बिना दर्शन नहीं हो पाता, तथापि बाह्यरूप का दर्शन सभी करते हैं। इस स्थूल स्वरूप के दर्शन का भी फल निश्चित रूप से श्री सीताराम जी की प्राप्ति है। भेद केवल इतना ही है कि वास्तविक स्वरूप के दर्शन हो जाने पर जीव सर्वथा निर्विकार निर्वासित होकर श्री सीताराम जी का अनन्य अनुरागी बन जाता है। किन्तु बाह्यरूप के दर्शन से विकार और बासनायें तुरंतनष्ट न होकर कालान्तरमें नष्टहो जातीहैं। यद्यपि त्रिपाद्विभूतिस्थ श्रीअवध और इस लीला अवध का माहात्म्य समान है। दोनों में भेद केवल इतना ही है कि यह अवध माधुर्य प्रधान और त्रिपाद्विभूतिस्थ अवध भोगैश्वर प्रधान है। पुरुष प्रसिद्ध प्रकाशनिधि, प्रगट परावर नाथ। रघुकुल मणि मम स्वामि सोइ कहिशिव नायो माथ ॥ ३० ॥

भगवान् श्री राम जी की श्री अयोध्यापुरी के चारों ओर कनकप्राकार (सोने का कोट है) यह अष्टमचक्र है। इसी को अष्टमावरण कहते हैं। इस चक्र के पश्चात् सप्तमचक्र (सप्तमावरण) है। इसी में अनेक रत्नों से जटित घाटवाली श्री सरयू जी नित्य विहार करती हैं। इसके बाद षष्टचक्र (छटाआवरण) है। इसी आवरण में भगवान् श्री राम जी का परमप्रिय श्री प्रमोदवन है। प्रमोदबन की चारों दिशाओंमें चार पर्वत हैं। पूर्व दिशामें शृंगार पर्वत दक्षिण दिशामें मणिपर्वत

पश्चिम दिशामें लीलाचल पर्वत और उत्तर दिशामें मुक्ताचल पर्वत है। इसी प्रमोदबनमें श्रृंगारबन बिहारबन, तमालबन रसालबन, चम्पकबन चन्दनबन, पारिजातबन, अशोकबन, विचित्रबन, कदम्बबन, कामबन और नागेश्वरबन ये द्वादशवन हैं। और इसी बन में प्रतिक्षण सर्वऋतु सर्वरागिनियाँ निवास करती हैं। इसकेबाद पञ्चमचक्र अर्थात् पंचमावरण है। इसी आवरण में श्री मिथिलापुरी चित्रकूट, बृन्दाबन, महावैकुण्ठ वा मूलवैकुण्ठ इत्यादि विराजमान हैं। इसके पश्चात् चतुर्थचक्र (चौथा आवरण) है। इसी में महाविष्णुलोक, रमावैकुण्ठ, अष्टभुज भूमा पुरुषलोक, महाब्रह्मलोक और महाशम्भुलोक हैं। इसी के भीतर भगवान् भिन्न भिन्न अवतार लेकर लीलायें करते हैं। अतः सर्व लीलालोक इसी आवरण में विराजमान हैं। इसके पश्चात् तृतीयचक्र (तीसरा आवरण) है इसी आवरण में भगवान् का मानसिक ध्यान करने वाले योगी और ज्ञानीजन निवास करते हैं। इसके पश्चात् द्वितीयचक्र (दूसरा आवरण) है। इसमें वेद, उपवेद शास्त्र, पुराण, उपपुराण, ज्योतिष, रहस्य, तन्त्र, नाटक, काव्य, कोश, ज्ञान, कर्म, योग वैराग्य, यम नियम, इनके साधन, काल, कर्म, गुण इत्यादि सब देहधारी होकर निवास करते हैं। इसके पश्चात् प्रथमचक्र (प्रथमावरण) है। इस आवरण में महाशिव महाब्रह्मा, महेन्द्र महावरुण, कुबेर, धर्मराज, दिग्पाल, महासूर्य, महाचन्द्र, यक्ष, गन्धर्व, गुह्यक किन्नर, विद्याधर, सिद्ध, चारण और अणिमा, लघिमा. महिमा प्राप्ति, प्राकाम्य ईशिता, वशिता, अवस्यति अर्थात् यथेष्ट सुखप्राप्ति (मनमाना सुख देने वाली) ये आठ सिद्धियाँ अथवा अनूर्मित्व, दूरश्रवण, दूरदर्शन, मनोजव, कामरूप परकाय प्रवेश, स्वच्छंद, मृत्यु, देवसहक्रीड़ा, सङ्कल्पसिद्धि और आज्ञाऽप्रतिघात ये दश सिद्धियाँ अथवा त्रिकालज्ञता, परचित्ताभिज्ञता; अग्न्यर्काम्बुविषप्रतिष्टभ और पराजय करना ये पाँच सिद्धियाँ तथा पद्म, महापद्म, शङ्ख, मकर, कच्छप, मुकुन्द, कुन्द नील और खर्ब (या वर्ष) ये नव निद्धियाँ निवास करती हैं।

साम्प्रदायिक ग्रन्थों में श्री अयोध्या जी के सप्त आवरणों का ही उल्लेख है। उसमें और इसमें कुछ विरोध नहीं है। काञ्चन प्राकार (सोने का कोट) जो श्री अयोध्य जी के चारों ओर अव्यवहित रूप से विद्यमान है। उसे ले लेने से आठ आवरण होते हैं। उसको छोड़ देने से सात ही रहते हैं। छोड़ने में हेतु यह है कि उस आवरण में श्री अयोध्या जी के अतिरिक्त और कोई लोक नहीं है। अन्यआवरणों में अन्यलोक आदि बसे हैं। उस काञ्चन प्राकार को ग्रहण करने में हेतु यह है कि वह भी स्वरूपतः एक आवरण है। इसलिये कुछ भी बिरोध नहीं है। कहीं कहीं

भूमि, जल, अगिनि, वायु, आकाश त्रिप्रकारक अहंकार और महत्तत्व इनको ही सप्ता-वरण मानलिया है। यह श्री अयोध्या जी का संक्षेप में वर्णन किया गया है। इतने से प्रस्तुत मन्त्र का अर्थ सुगमता से अवगत हो जावेगा। ब्रह्म की उसपुरी का नाम और स्वरूप अवगत हो जावेगा॥ ३१॥

पू: अयोध्या=वह पुरी श्री अयोध्या जी है। तब यह जिज्ञासा हुई कि वह पुरी कैसी है। तब कहा गया कि—अष्टचक्र=आठचक्रों अर्थात आठ आवरणोंवाली है। और नवद्वारा=जिसमें प्रधान नवद्वार (नौ दरवाजे) हैं। तथा जो देवानाम्=दिव्यगुण विशिष्ट, भक्ति; प्रपत्ति, सम्पन्न, यमनियमादिमान परमभागवत चेतनों से "सेव्याइतिशेष."=सेवनीय है। तस्याम् स्वर्गः=उस श्री अयोध्यापुरी में बहुत ऊँचा अथवा बहुत सुन्दर—ज्योतिषाबृतः=प्रकाशपुंज से आच्छादित—हिरण्ययः कोशः=सोने का मण्डप है॥—ऐसा ही वर्णन भार्गवपुराण में आया है। यथा—त्रिपाद-विभूतिवैंकुण्ठे विरजायाः परेतटे। या देवानां पूरयोध्या ह्यमृतेनाबृता पुरी॥ अर्थ—त्रिपाद्विभूतिस्थ वैकुण्ठ में विरजानदी के उस किनारे पर दिव्यगुण विशिष्ठ भगव-त्पार्षदों से सेवित अमृतमयि सरयू जी की धारा से घिरी हुई श्री अयोध्या पुरी है। श्री तुलसीकृत रामायण की टीका में अनन्त श्री रामचरणदास जी ने समवेद की एक तैत्तिरीय श्रुति लिखी है, वह भी इस अथर्व वेद के मन्त्र के समान ही है। यथा—देवानां पूरयोध्या तस्यां हिरण्यमयः कोशः स्वर्गलोको ज्योतिषाबृतो यो वै तां ब्रह्मणो वेदामृतेनाबृतां पुरीं तस्मै ब्रह्म च ब्रह्मा च आयुः कीर्ति प्रजां ददुः॥ अर्थ—दिव्यगुण विशिष्ट भगवत्पार्षदों से भरीहुई श्रीअयोध्यापुरी के मध्यमें स्वर्ण (सोनेका) मण्डप है। वह परात्पर दिव्य साकेतलोक प्रकाशपुंज ब्रह्म ज्योति से घिरा हुआ है। अमृतमयि सरयू जी की धारा से घिरी हुई उस पुरी और उसके परमात्मा को जो निश्चय रूप से जानता है। उसे महान आयु कीर्ति सुपुत्र प्राप्त होता है, और शरी-रान्त होने पर भगवत्स्वरूप होकर उसे दिव्यधाम को प्राप्त होता है॥ तस्मिन् हिर-ण्ययेकोशे=उस विशाल स्वर्ण [सोने के] मण्डप में—तस्मिन्आत्मन्वत्=उस मण्डप की आत्मा के समान—यद् यक्षम्=जो पूजनीयदेव विराजमान है। तत् ब्रह्मविदः=उसी को ब्रह्मस्वरूप ज्ञानवान जन विदुः=जानते हैं। अथवा "ब्रह्मविदुः" में दो पद है 'ब्रह्म' और 'विदुः' तब अर्थ यह हुआ कि—विद तत्=विद्वान जन, उसी यक्ष को उसी परमोपस्यदेव को—ब्रह्म विदुः=परात्पर सनातन महापुरुष जानते हैं। जिसकोश में वह यक्ष विराजमान है वह कोश कैसा है। त्र्यरे=उसमें तीन अरे लगे हुये हैं अर्थात् वह मण्डप तीन अरों से बना हुआ है। यथा—त्रिप्रतिष्ठिते=तीनों लोकों में

वह प्रतिष्ठित है। इस मन्त्र में जो 'तस्मिन' पद आया है; वह षष्टीके अर्थ में है। इसलिये मैंने उसका अर्थ 'उस के' किया है ॥ ३२ ॥ इस मन्त्र में स्पष्ट कहा गया है कि श्री अयोध्या जी के मध्य में जो स्वर्णमय मण्डप है; उसमें जो देव विराजमान हैं, उन्हीं को विद्वान लोग ब्रह्म कहते हैं। श्री अयोध्या जी के स्वर्णमणि मण्डप में भगवान् श्री राम जी के अतिरिक्त अन्य कोई भी देव विराजमान नहीं है। अतः भगवान् श्री राम जी ही परब्रह्म हैं। इसी अर्थ को विशद करने के लिये मैं यहाँ एक और श्रुति उद्धृत करता हूँ। इसेभी पूज्य स्वामी श्री रामचरणदास जी ने अपनी रामायण की टीका में उद्धृत की है, वह यह है कि—

"याऽयोध्या पुरी सा सर्व वैकुण्ठानामेव मूलाधारा मूलप्रकृतेः परातत्सद्-ब्रह्ममयी विरजोत्तरा दिव्यरत्नकोशाढ्या तस्यां नित्यमेव सीतारामयोर्विहार स्थलमस्ति ॥

इसका भावार्थ यह है कि 'जो श्री अयोध्यापुरी है' वह सब वैकुंठों का मूल आधार है। साम्प्रदायिकों ने अनन्त वैकुंठों का वर्णन किया है। उसमें से पाँच को प्रधान माना है। वे पाँच ये हैं—वैकुण्ठं पंच विख्यातं क्षीराब्धिं च रमाह्वयम्। कारणं महावैकुण्ठं पंचमं विरजापरम् ॥ अर्थात् क्षीरसागर वैकुंठ, रमावैकुंठ, कारण-वैकुंठ, महावैकुंठ और विरजापार अर्थात् आदिवैकुंठ। इन पाँचों वैकुंठों का मूला-धार हैं। यदि आदि वैकुंठ भी साकेतलोक का ही नाम हो तो वह आदिवैकुंठ अर्थात् श्रीअयोध्या जी शेष चार प्रधान वैकुंठों तथा अन्य अनन्त वैकुंठों का आधारी भूता हैं। वह मूल प्रकृति से अखण्ड और अपरिवर्तनीय ब्रह्ममय है, विरजा के दूसरे पार में स्थित है। दिव्यरत्न जटित मण्डप वाली है। उसी श्री अयोध्या जी में श्री सीताराम जी की नित्यविहारभूमि है ॥

ब्रह्म=सर्वान्तर्यामी भगवान् श्री राम जी— पुरम्=उसी श्री अयोध्यापुरी में— अविवेश=प्रविष्ट हैं, अर्थात् विराजमान हैं। वह पुरी कैसी है—प्रभ्राजमानाम्= अत्यन्त प्रकाशमयी है। पुनः वह पुरी कैसी है—हरिणीम=मनको हरण करने वाली अथवा सर्वपापों का आत्यंतिक (अतिशय) नाश करने वाली है। पुनः वह पुरी कैसी है? यशसा सम्परीवृताम्=अनन्त कीर्ति से युक्त है। पुनः वह पुरी कैसी है। अपराजिताम्=सर्वपुरियों में श्रेष्ठ है। अर्थात् जिसकी तुलना कोई पुरी नहीं कर सकती है। अथर्व वेद का प्रथम अनुवाक् यहाँ ही पूर्ण हो जाता है। इस अनुवाक् के अन्त में इन साढ़े पाँच मन्त्रों में अत्यन्त स्पष्टरूप से जैसा श्री अयोध्या जी का

वर्णन किया गया है। कि इन मन्त्रों के शब्दों में व्याख्याताओं को अपनी ओर से कुछ मिलाने की आवश्यकता नहीं है। श्री अयोध्या जी के अतिरिक्त अन्य किसी भी पुरी का इतना स्पष्ट और सुन्दर साम्प्रदायिक वर्णन मन्त्र संहिताओं में नहीं है ॥ ६३ ॥ अब इन मन्त्रों का सूक्ष्मतया संक्षिप्त भावार्थ समझ लिया जाये। वह यह है कि—

अर्थ—त्रिपाद विभूति में परब्रह्म परमात्मा श्री राम जी का धाम साकेत या श्री अयोध्या जी है। जिसके स्वामी श्री राम जी हैं। जो प्रेमी अनन्य भक्त या ज्ञानी उस ब्रह्मपुर श्रीरामधाम तथा श्रीराम ब्रह्म को जान लेता है, वह श्रीराम भक्ति द्वारा श्रीराम कृपा से संयुक्त होकर स्थूल. सूक्ष्म, कारण तथा जाग्रत, स्वप्न सुषुप्ति तीनों अवस्थाओं से पार होकर, तुरीयावस्था—मुक्ति में पहुंचकर, सच्चित्-आनन्द-स्वरूप सालोक्य-सामीप्य-सारूप्य-सायुज्य मुक्तिका अधिकारी बन जाता है। वह दिव्य अप्राकृत-ब्रह्म शरीर में प्रविष्ट हो जाता है। तब वह श्रीराम कृपा से ही अमृत से आवृत मृत्यु रहित, कालातीत ब्रह्मपुर श्रीराम की पुरी श्री अयोध्या जी को प्राप्त होता है। तब ब्रह्म श्रीरामजी उसको अपने सदृश परम दिव्य ज्ञान, दिव्य चक्षु प्राण, ओज-कान्ति बल सब कुछ देते हैं। उस मुक्तात्मा भक्त को श्रीरामजी का दिया हुआ प्राण, चक्षु आदि कभी भी नहीं त्यागता, अर्थात् वह अमर हो जाता है। सदा के लिये वहाँ निवास करने लग जाता है। श्रीरामजी का वह धाम (साकेत) श्री अयोध्या जी जिसमें आठ आवरण तथा नौ द्वार हैं। इन द्वारों पर श्रीरामजी के दिव्य पार्षद द्वार पाल हैं। ऐसी दिव्यपुरी श्री अयोध्या जी श्रीरामजी के भक्तों का निवास स्थान है। इसमें सब दिव्य रत्न कोश प्रकाशमय स्वर्ग; परमानन्दमय धाम है। इस श्री अयोध्या जी के मध्य भाग में राजभवन है। यहाँ तीन आवरणों से परिवेष्टित हिरण्मय कोश में कमल के आकार वाले दिव्य सिंहासन पर परमात्मा श्रीरामजी विराजमान हैं। इन्हीं को ज्ञानी जन 'परब्रह्म कहते हैं। ये ही सबको प्रकाशित करनेवाले परम शुद्ध परात्पर ब्रह्म श्रीरामजी हैं। ये स्वयं ही प्रकाशमान, सबके क्लेशहर सर्वेश्वर हैं। परम यश से परिपूर्ण हिरण्मयी इनकी दिव्यपुरी अपराजिता अजेया योद्धुमशक्या श्रीअयोध्याजी है। इसी में परात्पर पुरुष श्रीराम जी विराजमान हैं इनकी अपार महिमा का वर्णन कौन जान सकता है।

उपर्युक्त वेद मन्त्रों का अर्थ रामायणी श्री रामकुमार दासजी महाराज मणिपर्वत वालों द्वारा वेदों में श्रीरामकथा नामक पुस्तक से लिया है ॥

अथ रुद्रयामले हरगौरी सम्वादे अयोध्याखण्डे पुरीवर्णनोनां त्रिशोऽध्याय: याऽयोध्या जगतीतले तु मनुना वैकुण्ठतो ह्यानिता । याचि वा निजसृष्टि पालन परं वैकुण्टनाथं प्रभुम ।। या वै भूमितले निधाय विमला चेक्ष्वाकवे चार्पिता । सा योध्या परमात्मनो विजयते धाम्नां परा मुक्तिदा ।। ४३ ।। या चक्रोपरि राजते च सततं वैकुण्ठनाथस्य वै । या वै मानवलोक मेत्य सकलान्दात्री सदा वाञ्छितान् ।। या तीर्थानि पुनाति सन्ततमहो वर्वर्ति तीर्थोपरि । साऽयोध्या परमात्मनोविजयते धाम्नां परा मुक्तिदा ।। ४४ ।। यस्यां वैष्णव सज्जना: सुरसिका: स्वाचारनिष्ठाः सदा । लीलाधाम सुनाम रूपदयिता: श्रीरामचन्द्रे रता: ।। यस्यां श्रीरघुवंशज: परिकरै: साद्धं सदा राजते । साऽयोध्या परमात्मनो विजयते धाम्नां परा मुक्तिदा ।। ४४ ।। यस्यां तीर्थ शतं सदा निबसति ह्यानन्ददं पावनम् । यस्या दर्शन लालसा मुनिवरा ध्यानेरता: सर्वदा ।। यस्या भूमि रजस्त्वजादि बिबुधा: वाञ्छन्ति स्वाभीष्टदम् । साऽयोध्या परमात्मनो विजयते धाम्नां परा मुक्तिदा ।। ४५ ।। यस्यां भाति प्रमोद काननवरं रामस्य लीलास्थलम । यत्र श्री सरिताम्वरा च सरयू रत्नाचल: शोभते ।। ध्येया ब्रह्म महेश विष्णु मुनिभि ह्यानन्ददा सर्वदा । साऽयोध्या परमात्मनो विजयते धाम्नां परामुक्तिदा ।।४६।।

अर्थ—जिस श्री अयोध्या जी को श्री मनु जी कठिनतपस्या द्वारा विश्वपालन कर्ता सर्वसमर्थ वैकुण्ठनाथ भगवान् विष्णु से प्रार्थना करके, माया से परे तुरीयातोत स्थान से मगवाये । जिस निर्मल दिव्य श्री अयोध्या जी को प्रजावर्ग को पालनार्थ भूमण्डल (पृथ्वीलोक) में स्थापित करके. सर्व प्रथम महाराजाधिराज श्रीइक्ष्वाकुजी को गद्दीपर बिठाया गया । परात्पर भगवान् श्रीराम जी की नगरी श्री अयोध्या जी सभी वैकुण्ठों की मूल आधार स्वरूप मोक्षदायिनी हैं । उन श्र अयोध्याजी की सर्वदा विजय हो ।। १ ।। जो भगवान् के वैष्णवतेज अनन्त सूर्य समान प्रकाशपुंज चक्र पर सर्वदा विराजती हैं । वही इस मानवलोक में आकर सबके मनोरथों को पूर्ण करने वाली, सर्वतीर्थ शिरोमणि एवं सभी तीर्थोंको पवित्र करनेवाली तथा मोक्षप्रदान करने वाली सभी पुरियों में सबसे श्रेष्ट श्री अयोध्या जी की सर्वदा विजय हो ।। २ ।। जिसमें सदाचार निष्ठ भगवान् के नाम रूप लीलाधाम अनुरागी श्रीरामभक्ति में आशक्त चित्त सुन्दर रसिक श्रीवैष्णव सज्जन सदा निवास करते हैं । और रघुकुल में प्रगट होने वाले भगवान श्री राम जी अपनो अभिन्नात्मा श्री सीता जी एवं उनके अंशभूता नित्य परिकरों (पार्षदों) समेत जिन श्री अयोध्या जी में नित्य निवास करते हैं । सर्व वैकुण्ठ शिरोमणि और मोक्ष देनेवाली, परात्पर ब्रह्म श्री राम जी की नगरी श्री अयोध्या जी की सदा विजय हो ।। ३ ।। जिन श्री अयोध्या जी में सैकड़ों

अति पवित्र तीर्थ सदा निवास करते हैं। परमानन्द प्रदायिनी जिन श्री अयोध्या जी के दर्शन के लिये उत्तम मुनिजन सर्वदा ध्यानमग्न रहते हैं। जहाँ की रजको अपने मनोरथ सिद्धि के लिये श्रीब्रह्मादिक सभी देवता चाहते रहते हैं। उन मोक्षप्रदायिनी, सर्ववैकुण्ठ शिरोमणि, परमपुरुष श्रीरामजी की प्रियनगरी श्रीअयोध्याजीकी सदा विजय हो॥ ४॥ जिन श्री अयोध्या जी में सभी बनों में श्रेष्ट, श्री सीताराम जी का नित्य विहारस्थल श्रीप्रमोदबन अपने दिव्य वैभव युक्त प्रकाशमान (शोभित) है। औरजहाँ पर सभी पावन सरिताओं (नदियों) में श्रेष्ट श्रीसरयूजी तथा रत्नाचल (मणिपर्वत) शोभायमान है। जिसको अपने आत्मस्वरूप से श्रीब्रह्मा विष्णु महेश आदि समस्त मुनिजन सर्वदाध्यान करते हैं। जिससे सर्वदा सबको दिव्य आनन्द प्राप्त होता है, वह सर्ववैकुण्ठ शिरोमणि, पूर्णतम ब्रह्म, परमात्मा श्री राम जी की प्रिय नगरी श्रीअयोध्या जी की सर्वदा जय जय हो॥ ५॥

अकारो ब्रह्म च प्रोक्तं य कारो विष्णुरुच्यते। धकारो रुद्र रूपश्च अयोध्यानाम राजते। सर्वोपपातकैर्युक्त ब्रह्महत्यादि पातकैः। नायोध्या शक्यते यस्मात्तामयोध्यां ततो विदुः॥ स्कन्द पु० बैष्णवखं० अयोध्या माहात्म्य अ० १ श्लोक ६०–६१॥ अर्थ— अकार को ब्रह्मा और य कार को विष्णु एवं ध कार को रुद्र (शंकर) रूप कहा जाता है, इसप्रकार, ब्रह्मा विष्णु महेश ये त्रयदेव श्री अयोध्या नाम में विराजते हैं॥ ॥ ६०॥ सभी उपपापों के युक्त ब्रह्महत्या इत्यादि महान पाप मिलकर भी अयोध्या जी की महिमा का सामना नहीं करते हैं। अर्थात् अयोध्यानाम स्मरणमात्र से सभी प्रकारु के छोटे बड़े पाप नष्ट हो जाते हैं। उन श्री अयोध्या जी की ऐसी अपार महिमा जानो॥ ६१॥

स्कन्दपुराण वैष्णवखण्ड अ० १० पृ० ७६४–६५ से उद्धृत विषय॥

मन्वन्तर सहस्रैस्तु काशीवासेषु यत्फलम्। तत्फलं समवाप्नोति सरयू दर्शनकृते॥ २७॥ गया श्राद्धञ्च ये कृत्वा पुरुषोत्तम दर्शनम्। कुर्वन्ति तत्फलं प्रोक्तं कलौ दाशरथीं पुरीम्॥ २८॥ मथुरायां कल्पमेकं वसते मानवो यदि। तत्फलं समवाप्नोति सरयू दर्शनकृते॥ २९॥ पुष्करेषु प्रयागेषु माघेवा कार्तिके तथा। तत्फलं समवाप्नोति सरयू दर्शनकृते॥ ३०॥ कल्पकोटि सहस्राणि ह्यवन्ती वसतोऽहियत। तत्फलं समवाप्नोति सरयू दर्शनकृते॥ ३१॥ षष्ठिबर्ष

सहस्राणि भागीरथ्थ्यावगाहजम् । तत्फलं निमिषार्द्धेन कलौ दाशरथी पुरीम् ॥ ३२ ॥ निमिषं निमिषार्द्धं वा प्राणिनां राम चिन्तनम् । संसार कारणा ज्ञान नाशकं जायते ध्रुवम् ॥ ३३ ॥ यत्र कुत्रस्थितो ह्यस्तु ह्योध्यां मनसा स्मरेत् । न तस्य पुनरावृत्तिः कल्पान्तर शतैरपि ॥ ३४ ॥ जलरूपेण ब्रह्मैव सरयू मोक्षदा सदा । नैवाऽत्र कर्मणो भोगो रामरूपो भवेन्नरः ॥ ३५ ॥ पशुपक्षि मृगाश्चैव येचान्ये पापयोनयः । तेऽपि मुक्ता दिवं यान्ति श्रीरामवचनं यथा ॥ ३६ ॥

अर्थ—हजारों मन्वन्तर तक सदाचारपूर्वक काशी में निवास करने का जो फल मिलेगा, वही फल श्री सरयू जी के दर्शन मात्र से प्राप्त होगा ॥ २७ ॥ गया में श्राद्ध करके तव पुरुषोत्तम श्री जगन्नाथ जी का दर्शन करने से जो फल प्राप्त होगा, वहफल कलियुग में दाशरथी श्री राम जी की श्री अयोध्यापुरी के दर्शन मात्र से प्राप्त होगा। ऐसा शास्त्र कहते हैं ॥ २८ ॥ यदि मनुष्य मथुरा में एक कल्प तक निवास करै, उससे जो फल होगा, वह फल श्री सरयू जी के दर्शन से प्राप्त होगा ॥ २९ ॥ पुष्कर के सभी स्थानों में प्रयाग के सभी स्थानों में, माघमास अथवा कार्तिक मास में पूर्ण विधि से वास करने पर जो फल प्राप्त होगा, वह फल श्री सरयू जी के दर्शन मात्रसे प्राप्त होगा ॥ ३० ॥ करोड़ों हज़ार कल्प उज्जैन में वास करने से जो फल होगा, वह फल श्री सरयू ज़ी के दर्शन से होगा ॥ ३१ ॥ शाठ हजार वर्ष श्री भागीरथी गंगा में स्नान करने का जो फल होगा, वह कलियुग में दाशरथी श्री राम जी की श्री अयोध्यापुरी के दर्शनमात्र से हो जायेगा ॥ प्राणियों को एक पल या आधा पल ही श्री राम जी का चिन्तवन जन्ममरण के कारण अविद्याजनित अज्ञान को निश्चय कर नाश करने वाला है ॥ ३३ ॥ कहीं भी रहता हुआ जो जीव मनसे श्री अयोध्या जी का स्मरण करता है, तो उसका पुनः संसारमें सैकड़ों कल्पान्तरों तक जन्म नहीं होता है, अर्थात् धाम महिमा के प्रभाव से मोक्ष रूप नित्य श्री अवध को प्राप्त हो जाता है ॥ ३४ ॥ श्री सरयू जी में जलरूप से साक्षात् ब्रह्मतत्त्व ही प्रवाहित होता है। जिसमें स्नान करने से प्राणीं सर्वदा मोक्ष पाता है। श्री सरयू जी में स्नान के बाद फिर कर्मों का भोग—वन्धन नहीं ररता है। मनुष्य श्रीरामरूप होकर भगवान् श्री राम जी के नित्य श्री साकेतधाम को प्राप्त होता है ॥ ३५ ॥ पशु, पक्षी, मृगाइत्यादि पापयोनियाँ वे भी श्रीअवधधाम एवं श्री सरयू जी के संस्पर्श से मोक्षधाम चलेजाते हैं।

जैसे श्रीराम बचन हैं कि—"अति प्रिय मोहिं इहाँ के वासी । मम धामदापुरी सुखरासी" ॥ और श्री सरयू जी की महिमा बताई है कि—"जा मज्जन ते बिनहिं प्रयासा । मम समीप नर पावहिं वासा ।। रा० च० मा० उ० कां० ४ दो० ॥ अर्थ—यह लीला अवध और इसमें निवास करने वाले मुझे अत्यन्त प्रिय हैं । यह माधुर्य रूप में ।श्री अवधधाम हमारे नित्य श्री अवधधाम को देनेवाला (प्राप्त करनेवाला) है। और इन श्री सरयू जी में स्नान करने से बिना प्रयास किये ही मनुष्य मेरे निकट निवास पाते हैं। अर्थात् सामीप्यमुक्ति पाते हैं ॥ श्रीसीताराम बचनामृत पृ० १२२ से १२४ तक श्रीअवध महिमा ॥

दो०-वैकुण्ठादिक लोकसब; यद्यपि परमपवित्र । तिन सबते सौगुन प्रिये; अवध सु भूमि विचित्र ॥ १ ॥ कोटिजन्म जप तप करे; लहे दर्श एकबार । किन्तुतासु महिमा अमित, वरणि को पावै पार ॥ २ ॥ कोटिजन्म जग में कदा, करै सु तप जब जीब । पावै अवध निवास तब; प्रिये कृपा की सींव ॥ ३ ॥ मैं चाहौं जाको प्रिये, अपनावन करि प्यार । वाको देउँ बसाय मैं, सन्तत अवध मझार ॥ ४ ॥ प्राणप्रिये बिन ममकृपा; करै प्रयत्न अपार । पावै नहीं निवास कोउ, कबहूँ अवध मझार ॥ ५ ॥ अवधनिवासी जीव जो, सब जानिय ममरूप। धाम उदार प्रभावते, पइहैं सहज स्वरूप ॥ ६ ॥ प्राणवल्लभे अवधकी; महिमा अकथ अनूप । याकी कृपाकटाक्ष जिव, पावत सहज स्वरूप ॥ ७ ॥ जहाँ सकृत ममपग परत, महिमातासु अपार । अवधमाहिं सन्तत बसौं; करौं विनोद विहार ॥ ८ ॥ महिमा वरणैं अवध की; ऐसो को मतिमान । तुम्हरी कृपाप्रसाद जिव, करै हृदय अनुमान ॥ ९ ॥ जाके हृदय निकुंज में; हम दोउ करैं विहार । तब प्रभाव श्रीअवध को, दरशै बुद्धिमझार ॥ १० ॥ पुनः—श्रीसरयू महिमा—छन्द— यह श्रीसरयूसरित परमपावन अघहारी । दरश परश जे करहिं होहिं ममपद अधि-कारी ॥ ३ ॥ कैसेउ पापी अधम तजै तन सरयू तीरा । अवसि जाय ममधाम सहै नहिं पुनि भवभीरा ॥ ४ ॥ जे सरयूजल पान करत तिनके अघसारे । नाशत सकल समूल कहत श्रुति सन्त पुकारे ॥ ५ ॥ जो बसि सरयू तीर सततसुमिरत ममनाम। । ते सबसे प्रियमोहिं विकौं तिनकर बिनदामा ॥ ६ ॥ यद्यपि तीरथ

अभिमत सकल श्रुति शास्त्रन गाये । पर श्रीसरयूसरिस अपर ममहृदय न भाये ॥ ७ ॥ मैं नित नवलविहारकरौं सरयूसरितीरा । इनकीमहिमा अतुल अकथ नाशत भवभीरा ॥ ८ ॥ जेहिजनको मैंचहौं याहि लेऊँ अपनाई । तेहको सरयू निकट वास मैं देउँ सदाई ॥ ९ ॥ बिन ममकृपाकटाक्ष करै किन कोटि प्रयासा । पर श्रीसरयू सुतट निकट कोउ लहै न बासा ॥ १० ॥

अयोध्या नगरी नित्या सच्चिदानन्द रूपिणी । यस्यांशेन हि वैकुण्ठा गोलोकादि प्रतिष्ठितम् ॥ पूर्णः पूर्णतमः श्रीमान् सच्चिदानन्द विग्रहः । अयोध्यां क्वापि सन्त्यज्य पादमेकं न गच्छति ॥ श्री साकेत महिमा नामक पुस्तक के पृ० ७ में वशिष्ट संहिता का प्रमाण है ॥ पुनः उसी पृ० में शुक संहिता का प्रमाण है कि—पुरातनमिदं स्थानमस्माकं तु तदेव हि । कोशलाख्यं पुरं दिव्यं प्रलयेऽनंक्ष्यति प्रभो । अविनश्वमैवैकमयोध्या पुरमद्भुतम् । तत्रैव रमते नाथ ! आनन्द रस प्लाविता ॥ अर्थात् श्री सीता जी श्री राम जी से कहती हैं कि—हे नाथ ! हम लोगों का यह पुरातननिवास स्थल है । यह कोशला नामक पुरी का प्रलय में भी नाश नहीं होता है, यह पुरी तो अविनाशी है । ऐसा अद्भुतपुर तो एकमात्र अयोध्या ही है; हे नाथ ! आप वहीं पर आनन्द रस मगन होकर सर्वदा रमण करते हैं । पुनः पृ० १० में श्रीवैष्णव मताब्ज भास्कर का प्रमाण है कि—

शीतान्त सिन्ध्वाप्लुत एव धन्यो गत्वा परब्रह्म सुविक्षितोऽथ ।
प्राप्यं महानन्द महाब्धिमग्नो नावर्तते जातु पुनः ततः सः ॥
परं पदं सैवमुपेत्य नित्यममानवो ब्रह्म पथेन तेन ।
सायुज्यमैव प्रतिलभ्य तत्र प्राप्यस्य सन्नन्दति तेन साकम् ॥

अर्थ—भगवद्धाम को प्राप्त जीव भगवान् श्री राम जी को प्राप्तकर संसारताप हारक अत्यन्त शीतल प्रभु के कृपामृत महासागर में अवगाहन कर आनन्द के अगाधनिधि में निमग्न हो जाता है । और सर्वदा प्रभु की सेवा के अवर्णनीय आनन्दरस का मधुर आस्वादन करता है । पुनः वह जीव उस श्री साकेत को छोड़कर कभी मर्त्यभूमि (मृत्युलोक) में नहीं आता है । सर्वदेवों से पूजित होकर वह दिव्यशरीर प्राप्त करके अर्चिरादिमार्ग से भगवान् के सनातन सर्वोत्कृष्ट साकेत लोक को प्राप्त करके भगवान् श्री सीताराम जी के साथ सदा ही नित्यलीला केलि का आनन्द अनुभव करता है । फिर उसको मृत्युलोक में आने का न तो मन ही होता है, न

आना ही पड़ता है । श्री श्रीसाकेत महिमा पुस्तक के लेखक व प्रकाशक—श्रीअवध-किशोरदास जी महाराज श्रीरामानन्द आश्रम श्रीजनकपुर धाम वाले हैं ।

अब श्री देवस्वामी अपर नाम काष्ठजिह्वास्वामी जी के एक पद का पाठक-वृन्द रसास्वादन करें—

अवध की महिमा अपरम्पार । गावत हैं श्रुतिचार ॥ निश्चित अचल समाधिन में जो, ध्याई बारम्बार । ताते नाम अयोध्या गायो, यह ऋग्वेद पुकार ॥ रजधानी परवल कंचनमय, आठचक्र नवद्वार । तातेनाम अयोध्या पावन; अस यजु करत बिचार ॥ अ कार म कार उ कार देव त्रय, ध्याई जो लखि सार । ताते नाम अयोध्या ऐसो; सामकरत निरधार । अग जग कोश जहाँ अपराजित, ब्रह्म 'देव' आगार तातेनाम अवध मनभावन, कहत अथर्व उदार ॥ १ ॥ अवध सरिस दूसर पुर नाहीं । सीताराम सदा विहरत जहँ; आगम निगम कहाहीं ॥ सब वैकुण्ठन केर मूल जो, रामभक्त जहँ जाहीं । सत्चित् आनँद धाम परम प्रिय; एकरस रहत सदाहीं । जाको ध्यान करत अघ नाशत, रामचरित दर्शाहीं । सीताशरण जाहि मुनिध्यावत, मेरे सदन महाँहीं ॥ २ ॥

योगेश्वर्ययश्च कैवल्यं जायते यत्प्रसादतः । तद्वैष्णवं योगतत्त्वं रामचन्द्रं पदं भजे ॥ योगतत्त्वोपनिषद् अ० १ मं० १ ॥ यन्यमहावाक्य सिद्धान्त महाविद्याकलेवरम् । विकलेवर कैवल्यं रामचन्द्र पदं भजे ॥ महावाक्योपनिषद् अ० मं० १ ॥ यद्दिव्यनाम स्मरतां संसारो गोष्पदायते । स्वानन्य भक्तिर्भवति तद्रामपदमाश्रये ॥ कलि-सन्तरणोपनिषद् अ०१ मं०१ ॥ जावाल्युपनिषद् वेद्य परतत्त्व स्वरूपकम् । पारमैश्वर्यं विभवं रामचन्द्र पदं भजें ॥ जावल्योपनिषद् अ०१ मं०१ ॥ ईशाद्यष्टोत्तरशत वेदान्त-पटशालयम् । मुक्तिकोपनिषद् वेद्यं रामचन्द्रपदं भजे ॥ उपर्युक्त सभी मन्त्र त्रिपाद—विभूति (दिव्य श्री साकेतधाम) नामक पुस्तक के पृ० ३-४ से उद्धृत किये गये हैं। यह पुस्तक पं० श्री अवधकिशोरदास जी महाराज श्री रामानन्द आश्रम श्री जनकपुर धाम वालों ने प्रकाशित करवाई है । वहाँ अभी प्राप्त होती है । इन सभी मन्त्रों का तात्पर्य यही है कि त्रिपाद्विभूति नायक परब्रह्म श्री रामचन्द्र जी की प्राप्ति ही

जीवन का सर्वोत्तम ध्येय है, सभी शास्त्रों का अन्तिमसार तत्त्व उन्हीं के दिव्यधाम का निवासी बनकर उनकी सेवा का चिन्मय रसपान करना ही निर्विबाद सिद्धान्त है। इन मन्त्रों का अर्थ श्री वैष्णव विद्वानों से समझ लेना चाहिये ॥ पुनः पृ० ६ में लिखा है कि—

तदेव त्रिपाद्विभूति वैकुण्ठस्थानम, तदेव परमसाकेत महाकैवल्यं । तदेवाबाधित परमतत्त्व विलास विशेषमण्डलम् ॥ त्रिपादविभूति महानारायणोपनिषद् उ० २ अ० ७ मं० ७ ॥ वही त्रिपाद्विभूति वैकुण्ठ स्थान है। वही परमधाम साकेत है। वही महाकैवल्य मुक्ति है, वही त्रिकालाबाधित परमतत्त्व है। वही रसनिष्ठ संतों के नित्य दिव्य चिद्विलास का विशेष मण्डल है। वेदों ने परब्रह्म के उसधाम को श्री अयोध्या जी के नाम से प्रतिपादन किया है। यथा—त्रिपाद्विभूति (अयोध्या) ही साकेतधाम है ॥ तद्विष्णोः परमपदं सदा पश्यन्ति सूरयः । दिवीव चक्षुराततम् ।। यजुर्वेद अ० ६ मं० ५ ॥ भगवान् विष्णु के उस परमपद को भगवद्रहस्य जानने वाले दिव्यसूरि सदा देखते हैं। वह परमपद महाआकाश में सूर्यमण्डल की भाँति महान् तेज का विस्तार करता हुआ नित्य स्थित है। इस मन्त्र में विष्णुशब्द का अर्थ त्रिदेवों में गिने जाने वाले चतुर्भुज रूप का बोधक नहीं है। यहाँ पर विष्णुशब्द सर्वव्यापकत्त्व का द्योतक परब्रह्म का वोधक है। परब्रह्म द्विभुज ही है, चतुर्भुज नहीं। देखिये यजुर्वेद अ० ५ मं० १६ —उभाहि हस्ता वसुना पृणस्वप्रयच्छ दक्षिणादोतसव्यात् ॥ और यजुर्वेद अ० २५ मं० १२—यस्येमा प्रदिशो यस्य बाहूकस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ अर्थ—हमारे दोनों हाथों को सम्पति से भरपूर करदो। आप अपने दहिने और बायें दोनों हाथों से हमारे कल्याण के लिये दान दो। इसके पूर्व मन्त्र में "विष्णोर्नुकं वीर्याणि" द्वारा जिस ब्रह्म का महत्व कहा गया है वह द्विभुज है, यह बात उसके दूसरे मन्त्र में स्पष्ट कर दी गयी है। "यस्य बाहू भुजौ जगद्रक्षणावितिशेषः" कहकर इसी बात का समर्थन किया है। वे द्विभुज परब्रह्म त्रिपाद्विभूति नायक अयोध्यापति श्री राम जी ही हैं। यह बात अथर्ववेद १० काण्ड १ अनु० २ सू० २६ म० में स्पष्ट कर दी गई है। यथा—योवैतां ब्रह्मणो वेदामृतेनामृतां पुरम्। तस्मै ब्रह्म च ब्राह्मश्च चक्षुः प्राणं प्रजां ददुः ॥ अर्थ पीछे देख लिया जाये ॥ पुनः—ॐ कारार्थं तयायातं तूर्योङ्कारार्थभासुरम्। तूर्यं तुर्यं त्रिपाद्धाम स्वमात्रं कलयेऽन्वहम् ॥ वेदशिखोपनिषद् अ० १ मं० १ ॥ अर्थ—जो ओंकार के अर्थ विचार से समझ में आते हैं। जो सबसे परे हैं, उन त्रिपाद्विभूति पति (स्वामी) श्री राम जी का मैं निरन्तर स्मरण करता हूँ। पृ० १३ में-बाह्यान्तस्तारकाकारं व्योमपञ्चक विग्रहम्।

राजयोगैक संसिद्धिं रामचन्द्रमुपास्महे ॥ शु०यजु० मण्डल ब्राह्मोपनिषद् अ०१ मं० १॥ पृ० ३६ में—अयोध्या नन्दनी सत्या धाम साकेत इत्यदपि । कोशला राजधानी च ब्रह्म पूरपराजिता ॥ अष्टचक्रा नवद्वारा विमला धर्मसम्पदा ॥ शिवसंहिता पटल ५ श्लो० २० ॥ उपर्युक्त सभी मन्त्र पृ० ४७९ तथा ८० में प्रकाशित त्रिपाद् महाविभूति (दिव्य साकेतधाम) नामक पुस्तक से लिये गये हैं ॥ अब पाठक भली भाँति समझ गये होंगे कि अनन्त वैकुण्ठों का मूलाधार नित्य अयोध्याहै । उसके निरङ्कुश एकामत्र पति (स्वामी) श्री राम जी हैं । वह अवध कभी भी तिरोहित नहीं होती है । उसके स्वामी श्रीराम अपनी परम अहलादिनी शक्ति श्री सीता जी के साथ नित्यपार्षदों से सर्वदा सेवित होते हैं । कुछ महानुभाव अनजान से ऐसा कहा करते हैं, कि सद्ग्रन्थों आर्षवचनों में साकेत शब्द नहीं आया है । वे सज्जन इस श्रीधाममाधुरी का आद्योपान्त विचार पूर्वक अध्यन करेंगे, तो कई बार साकेत शब्द दीख पड़ेगा । कुछ इंगलिशमैन जिनने आधुनिक इतिहास उपन्यास पेपर फिल्मों के गाने और पी० एच० डी० करके डाक्ट्रेट प्राप्त करताओं की लिखी थियेशिशें ही पढ़ी हैं । संस्कृत भाषा का अध्यन न होने के कारण वेद उपनिषद संहिता स्मृतियाँ पुराण और पूर्व इतिहासों का अध्यन नहीं किया है, वे यत्र तत्र ऐसा कहते हैं कि- श्री राम जी तो त्रेतायुग में श्री दशरथ जी के पुत्र हुये थे । वह अब नहीं हैं । त्रेतायुग के पूर्व भी नहीं थे । तब त्रिपादविभूति के नायक कब और कैसे होगये हैं । यदि हैं तो दिखाओं कहाँ हैं । यह कहना उन बेचारों की बुद्धि के अनुसार ठीक ही है । क्यों कि आत्मा परमात्मा एकपाद त्रिपाद्विभूति माया के कार्य ब्रह्म का स्वरूप पेपरों या फिल्मों के गानों में तो नहीं लिखा रहता तब वह वेचारे नासमझ वालक की भाँति मन में जो भी आता कहते रहतेहैं । अवोध होनेकेकारण प्रभुकी ओरसे दया क्षमाके पात्रहैं । गम्भीर विद्वान तो वेदशास्त्रों के द्वारा श्रीरामतत्त्व को समझें । किन्तु जिनको संस्कृत का साधारण बोध हो । वे महानुभाव प्रस्तुत ग्रन्थ श्रीसीताराम तत्त्वप्रकाश को समाहित चित से आदि से अन्त तक विचारपूर्वक पढ़लें । तो प्रभुकृपा से श्री सीताराम जी क्या हैं । इसका भलीभाँति पता लग जायेगा । त्रिपाद्विभूतिस्थ नित्य श्रीअवध और यह लीला अवध दोनों अभिन्न हैं । दोनों के नायक (स्वामी) श्री सीताराम जी हैं । गोस्वामी श्री तुलसीदास जी महाराज का डिर्माडम घोष है कि—

चो०— चारि खानि जग जीव अपारा । अवध तजे तन नहिं संसारा ॥

अण्डज पिण्डज स्वेतज उद्भिज इन चारिखानियों में जन्मधारण करनेवाला कोई भी जीव यदि श्रीअवध में शरीर त्यागता है, तो निश्चय ही वह संसारचक्र

(जन्ममृत्यु) के दुख से मुक्त होकर परब्रह्म श्रीसीताराम जी को प्राप्त होगा । कोई शंका करे कि यदि ऐसी बात है, तब बताइये कि उसके पापों का फल कौन भोगेगा। जो उसने जान जानकर किये हैं । उसका समाधान यह है कि पापी हो या पुण्यात्मा अपनी इच्छासे कोईभी देहधारी अपनीदेह अवधमें नहीं त्याग सकताहै करुणावरुणालय सर्वसमर्थ भगवान् श्री सीताराम जो जिस चेतन (जीव) को अपनाना चाहते हैं। वही जीव श्रीअवध में मरता (शरीर त्यागता) है । प्रभु किसको अपनाना चाहते हैं किसको नहीं, यह निर्णय शरीर त्यागने से ही हो जाता है। अनेकबार देखा गया है कि—प्रियतम जिसे अपनाना चाहते हैं, वह व्यक्ति सैकड़ोंमील दूरीपर बीमार था । किसी प्रकार भगवत्कृपा से श्री अवध आया और दो चार दिन में ही मर गया। और जो व्यक्ति अभी हृदयेश की कृपापात्र होने की स्थिति योग्य नहीं हैं, ऐसे कई व्यक्ति श्री अवध में शरीर त्यागने का संकल्प लेकर रहते हुये भी अन्तिम समय पर दो चार दिनको ही बाहर गये वहीं सीताराम हो गये । यदि कोई भी जीव स्वतन्त्रता पूर्वक श्रीअवध में मरे और प्रभुकृपा प्राप्ति नहीं हो, तब युक्त शंका की मान्यता हो सकती है ।

जब कोई भी जीव अपनी इच्छा से श्रीअवध में मर नहीं सकता, प्रभु के संकेत से सब होना है । तब उनसे बड़ा और कौन ईश्वर है जो उनसे जवाब मांगेगा कि इस पापी को आपने किस कानून (नियम) से तार दिया । सभी वेद शास्त्र पुराण इतिहास उपनिषद् संहिता स्मृतियाँ भगवान् को करुणासागर, पतितपावन, अधमउधारण, दीनबन्धु गरीबनिवाज, अघनाशक, अहेतु की कृपासागर बतलाते हैं ही, तब यह आवजक्शन (आन्दोलन) कैसा कि पापी को भगवान् तार देंगे, तो उसका पाप कौन भोगेगा। शास्त्रों में ऋषियों के बचन निसन्देह सत्य हैं । उन सभी आर्षग्रन्थों में भगवान् के नाम रूप लीलाधाम को पाप नाशक बताया है । तथापि हठ करना बालवत् चेष्टा के अतिरिक्त और कुछ नहीं है । अस्तु यह निर्विबाद सिद्ध है कि श्री अवधधाम में शरीर छूटने पर जीवात्मा निश्चय ही श्री सीताराम जी को प्राप्त हो जाता है । पाठकगण एक पद का रसास्वादन करें ।—

अवधपुर नित्य बसत सियराम । मंगलमयी पुरी अघनाशिनि; दायिनि मुद विश्राम ॥ सीताराम नित्यलीलाथल; परम सोहावन धाम । जहँ निजपरिकर संग विराजत; सन्तत श्यामाश्याम ॥ करतविनोद मोद मंजुलनित; रसमय आठोयाम । निरखत दिव्यचक्षु अधिकारी; लहत परम अभिराम ॥ जो जनध्या-

वत सतत अवध को, होवत पूरण काम । "गुनशीला" प्रीतम सु प्यार लहि, रटत निरन्तर नाम ॥

आज भी श्री अयोध्यापुरी में आध्यात्मिक वातावरण सदा विद्यमान रहता है। भागवत का यह श्लोक आज भी यहाँ चरितार्थ है।

न यत्र वैकुण्ठकथासुधापगा न साधवो भागवतास्तदाश्रयाः ।
न यत्र यज्ञेश मखा महोत्सवाः, सुरेश लोकोऽपि न वै स सेव्यताम् ॥

अर्थात् जहाँ भगवान् की कथा सुधा की नदियाँ नहीं बहती हों, जहाँ सन्त महात्माओं का समागम न हो, जहाँ भगवान् के विविध महोत्सव नहीं हों; चाहे वह स्वर्ग या ब्रह्मलोक क्यों न हो, वहाँ निवास नहीं करना चाहिए। ये तीनों देवदुर्लभ वस्तुयें श्री अवध में प्राप्त है॥ गीतावली में श्री गोस्वामी जी ने लिखा है—"राम लखन रिपुदमन भरत के चरित सरित अन्हवैया। तुलसी तब कैसे आजहुं जानिबो रघुबर नगर बसैया॥ जो प्रभु कथा सुधा में अवगाहन करते रहते हैं, वे आज भी श्री अयोध्यावासी वैसे ही हैं जैसे श्री राम जी के समय में थे। श्री स्वामी युगलानन्यशरण जी महाराज लिखते हैं—"श्री सरयूतट बीच वास सजिये तजिये जग, याही में कुशलात मोद मंगल अनुपम मग। श्रीसीतावर स्वच्छ सुयस गाइये एक रस, श्रीयुगलानन्य प्रयास बिना दम्पति कीजिए वस॥ श्री महाराज जी कहते हैं श्रीअवध वास कीजिए और जगत् का त्याग कीजिए, इसी में मंगल है। श्रीअवध में रहकर श्री सीताराम जी के पवित्र सुयश गाइये और बिना प्रयास दम्पति श्रीसीताराम जी को बश कर लिजिए। श्रीस्वामी युगलानन्यशरण जी महाराज ने लिखा है कि श्री अयोध्यावासी चार प्रकार के होते हैं, १—जिनका जन्म यहाँ हुआ है। २—जो बाहर से आकर यहाँ अखण्ड वास कर रहे हैं। ३—जो वर्ष में एकबार आते रहते हैं। ४—जो परिस्थिति वस अयोध्या नहीं आ रहे हैं. किन्तु मन सदा अवध के लिए छटपटाता रहता है। ये चारो प्रकार के अयोध्यावासी शरीर छूटने पर श्री सीताराम ज़ी को प्राप्त करेंगे। अवध तजे तनु नहिं संसारा। श्री गोस्वामी जी का का यह डिमडिम घोष है कि श्री अवध में शरीर छूटने से संसार नहीं होना है, अर्थात् श्री अवध में निधन होने से श्री सीताराम जी की प्राप्ति अवश्य होगी। श्री अवध में निवास करने से जीवन में अनायास श्री सीताराम नाम गुण लीला का श्रवण तथा मरणोपरान्त श्री सीताराम जी महाराज की प्राप्ति है यही श्रीअवध का वर्तमान एवं अतीत का मङ्गलमय स्वरूप है।

मिथिला-तैरभुक्तिश्च-विदेहनिमि काननम् । ज्ञानक्षेत्र कृपापीठं स्वर्णलाङ्गल पद्यतिः ॥ जानकी जन्मभूमिश्च-निरपेक्षा-विकल्मषा । रामानन्दकरी-विश्वभावनी— नित्यमङ्गला ॥ इति द्वादशनामानि यः पठेच्छृणुयादपि । स प्राप्नुयाद्रघुश्रेष्टं भुक्ति मुक्तिश्च विन्दति ॥ अ० २ श्लोक २२-२३-२४ ॥ बृहद्विष्णुपु० अन्तर्गत श्रीमिथिला माहात्म्य—तथा गोस्वामी श्री तुलसीदास जी महाराज कृत श्रीजानकी मंगल में-देश-सोहावन पावन वेदवखानिय । भूमितिलकसम तिरहुति त्रिभुवन जानिय ॥ ४ ॥ जहँ बस नगरजनकपुर परमउजागर । सीयलक्षि जहँप्रगटीं सबसुखसागर ॥ ५ ॥ और श्री रा० च० मा० बा० कां० के श्री मिथिलाप्रसंग में दो० २१२ में—पुररम्यता राम जब देखी । हरषे अनुज समेत विशेषी ॥ बापीं कूप सरितसरनाना । सलिल सुधासम मनिसोपाना ॥ गुंजत मंजु मत्तसरभृंगा । कूजतकल बहुबरन बिहंगा ॥ बरनबरन-विकशे बनजाता । त्रिविधसमीर सदा सुखदाता ॥ दो०—सुमनवाटिका बागबन, बिपु-लबिहंग निवास । फूलतफलत सुपल्लवत सोहतपुर चहुंपास ॥ २१२ ॥ बनइ न बरनत नगरनिकाई । जहाँजायमन तहाँ लोभाई ॥ चारुवजार विचित्रअँबारी । मनिमय विधि जनु स्वकर सँवारी ॥ धनिक बनिकवर धनद समाना । बैठे सकलबस्तु लै नाना ॥ चौहट सुन्दर गली सोहाईं । सन्तत रहहिं सुगन्ध सिचाईं ॥ मंगलमय मन्दिर सब-केरे । चित्रित जनु रतिनाथ चितेरे ॥ पुर नरनारि सुभग शुचि सन्ता । धर्मशील ग्यानी गुनवनता ॥ अतिअनूप जहँ जनक निवासू । विथकहिं बिबुध बिलोकिविलासू । होत चकितचित कोटविलोकी । सकल भुवन शोभा जनु रोकी ॥ दो०-धवलधाम मनि-पुरट पट, सुघटित नाना भाँति । सियानिवास सुन्दरसदन शोभा किमि कहिजाति ॥ २१३ ॥ सुभगद्वार सब कुलिशकपाटा । भूपभीर नट मागध भाटा । बनीविशाल बाजिगजशाला । हवगय रथ संकुल सबकाला ॥ सूर सचिब सेनप बहुतेरे । नृपगृह सरिस सदन सबकेरे ॥ २१४ ॥ इत्यादि—अखिलविश्व में एकमात्र श्री मिथिलानगर ही ऐसा है कि जिसमें नृपगृह सरिस सदन सबकेरे । अन्यत्र ठीक इसका विपर्यय (विलोम) रूप में व्यवहार रहता है । राजा के समान प्रजा के गृहों की कौन कहे मन्त्रियों के भी गृह नहीं होते हैं । किन्तु श्री मिथिला जी की यह उदारता है कि राजा प्रजा सभी के गृह एकसमान वैभव परिपूर्ण हैं । क्यों न हो जहाँ के—पुर नर नारि सुभग शुचि सन्ता । संतों के लिये भगवत्कृपासे सर्वत्र सम्यक् सुविधायें मिलती हैं । तभी तो श्री मिथिला जी की रम्यता को देखकर अखिलविश्व विहोहन भगवान् श्री राम जी अपने छोटे भाई श्री लक्ष्मणकुमार समेत परम प्रसन्न हुये । और नगर के बाहर कोट को ही देखकर चित चकित होने लगा । किसी के पास एक भी मणि

होती है, तो वह बहुत बड़ा सम्पत्तिवान समझा जाता है। किन्तु श्री मिथिला जी में तो सम्पूर्ण बाजार ही मणिमुक्ताओं से बना हुआ है। और उनमें रहने वाले भी सुभग एवं शुचि तथा सन्त स्वभाव के हैं। तभी तो श्रीराम जी का मनमधुप लुभा गया, श्री राम जी का मनमधुकर सन्त सरोजबन में ही मुग्ध होता है। अन्यत्र नहीं संतसमाज चाहे प्रवृत्तिमार्ग या निवृत्तिमार्ग का हो। पुनः आगे दो० २८६ में—वसइ नगर जेहि लच्छि करि कपट नारि वर वेष। तेहि पुरकी शोभा कहत सकुचैं शारद शेष॥ अन्यत्र नगरों में केवल सम्राट के महल में ही सोने के वर्तन रहते हैं। किन्तु श्री मिथिला जी में, हरितमणिन के पत्रफल, पदुमराग के फूल। इसीलिये तो—रचना देखि विचित्र अति मन विरंचि कर भूल॥ २८७॥ वेनु हरित मणिमय सबकीने। सरल सरब परहिं नहिं चीने॥ कनककलित अहिवेलि बनाई। लखि नहिं परइ सपन सोहाई॥ तेहिके रचि पचि बन्धबनाये। बिचबिच मुकुता दामसोहाये॥ मानिकमरकत कुलिश पिरोजा। चीरिकोरि पचि रचेसरोजा॥ किये भृंग बहुरंग विहंगा। गुंजहिं कूजहिं पवन प्रसंगा॥ सुरप्रतिमा खम्भन गढ़ि काढ़ीं। मंगलद्रव्य लिये सब ठाढ़ीं॥ चौके भाँति अनेक पुराई। सिन्धु रमणिमय सहज सोहाई॥ सौरभपल्लव सुभग सुठि, किये नीलमणि कोरि। हेमबौर मरकतघवरि, लसत पाटमय डोरि॥२८८ रचे रुचिरवर बन्दनवारे। मनहुं मनोभव फंद सँवारे॥ मंगल कलश अनेक वनाये। ध्वजपताक पट चमर सोहाये॥ दीप मनोहर मणिमय नाना। अतिआनन्द न जाय बखाना॥ एवं प्रकार से समग्र ब्याह मण्डप ही मणिमाणिक हीरामोतियों से निर्मित था। तभी तो महाकवि सम्राट ने लिखा है कि—जेहि मण्डप दुलहिन वैदेही। सो बरणै असिमति कविकेही॥ सबसे विचित्रता तो यह है कि—जनकभवन की शोभा जैसी। गृह गृह प्रतिपुर देखिय तैसी॥ महाकवि का संकेत है कि; श्री जानकी जी के प्राकट्य के दिन श्री मिथिला जी में श्रीकिशोरी जी के अंशभूता अनेकबालिकायें प्रगट हुई थीं। उन सबके भी ब्याह की तैयारी हो रही है। इसलिये जैसी मण्डप की शोभा सजावट श्री मिथिलेश जी के महल में है, वैसी ही शोभा प्रजावर्ग के घरों में भी है। आगे इसी बात का पुनः संकेत मिलेगा। यथा—नित नूतन मंगल पुर-माहीं। निमिष सरिस दिन जामिनि जाहीं। और-नित नव नगर अनन्द उछाहू। अर्थात् नित्य नवीन उत्सव का आनन्द मंगल श्री मिथिला जी भर में होता है। कहने का तात्पर्य यह है कि श्री राम जी के प्राकट्य वाले दिन श्री अवध में प्रजावर्ग के घरों में अनेक बालक अवतीर्ण हुये थे। और श्री जानकी जी के प्राकट्य समय श्री मिथिला जी में प्रजाओं के घरों में अनेक बालिकायें प्रगट हुई थीं। अस्तु

श्री सीताराम जी के ब्याह के पश्चात् बरात में आये हुये श्री अवध के सभी वरणों के अनेक बालकों का ब्याह श्री मिथिलावासी प्रजाओं में से अपने अपने कुल गोत्र परम्परानुकूल अनेक बालिकाओं के साथ होता रहा है। इसीलिये आचार्य चरण ने संकेत किया कि—नितनूतन मंगल पुर माहीं। अर्थात् आज इसके घरमें कल उसके घरमें नित्य ही कई कई घरों में ब्याह होते हैं। उन सभी प्रेममूर्तियों के विशेष आग्रह एवं प्रेमाकर्षण के कारण श्री चक्रवर्ति जी एवं भाइयों समेत श्री राम जी सखाओं के ब्याहोत्सव देखने को कई कई घरों में नित्य जाते हैं। इसीलिये उस आनन्दोत्सव में निमग्न घराती बराती सभी को—निमिष सरिस दिन जामिनि जाहीं॥ लिखा गया। बरात में श्री अवध आये हुये जो बालक ब्याह के योग्य थे उनमें से अधिकांश बालकों का ब्याह श्री मिथिला जी में समान कुलों में हो गया, इसीलिये कविसम्राट श्री गोस्वामी जी ने लिखा कि—दिन प्रति सहस भाँति पहुनाई। अर्थात् अनेक (कई) घरों में कई प्रकार का स्वागत सत्कार नित्य होता था। इस परमानन्द सागर में निमग्न होने के कारण—दशरथ गवन सोहाय न काहू। किसी भी श्री मिथिलावासी को चक्रवर्ति जी महाराज का श्री अवध के लिये जाना अच्छा नहीं लगता था। यद्यपि लीलारूप में भगवान् श्री राम जी चक्रवर्ति राजकुमार हैं, तथापि प्रत्येक श्री मिथिलावासी को परम सुलभ थे। यह सब श्री मिथिला धाम की ही उदारता है।

❋ श्री मिथिला-धाम वर्णन ❋

मेरो मिथिलापुर वैकुण्ठतिलक त्रिभुवन उजियारो है। त्रिभुवनउजियारो है प्राणधन जग से न्यारो है॥ जन्मभूमि ममपुरी सोहावनि, सुमिरत उरअनुरागबढ़ावनि, त्रिविधिताप भवदापनशावनि रसकीखानि रसिकजनजीवन। गायगाययश थकेउ शेषविधि लहेउ न पारो है। मेरो०। रसकीमूरि धूरियापुरकी, मेटति अखिलताप जनउरकी, सेव्या सकलमुनिनकी सुरकी, आदिश्रोत अनुराग सुधुरकी। तृणपादप अरुबिहँग बनिबसत सुरपरिवारो है। मेरो०। कीनो अमलबिमल जहँलीला, मङ्गलमयी मोदरसशीला, बहतत्रिविधि बरवायुरँगीला, ठौरठौर अतिरम्यरसीला। मरकतभवन सुवर्णविपिन जगमोहनिहारो है। मेरो०। प्रेमतरङ्गनि कमलाबिमला, उठतहिलोरें उज्वल अमला, महलेमहलमें लुटत शशिकला, भनैरुचिरता अहहकोभला। निरखिरुचिरता चकितभयो जहँ सिरजनहारो है। मेरो०। ज्ञानशिरोमणि दाऊमेरे, सिखतज्ञान मुनिजन तिननेरे, मिलत न तुल्य जगतमेंहेरे, सुकशनकादि शिष्यजिनकेरे। अलखअनादि ब्रह्महूँजाके पहुंचोद्वारो है। मेरो०। प्रेममूर्ति सबबन्धुहमारे, रूपशीलगुणके उजियारे,

तृणतृण मोहिं यहाँ के प्यारे, पशुपक्षीहूँ जगतेन्यारे । कणकणमें यहदिव्यपुरी से प्रेम-हमारो है । मेरो० । रसिकरायको नातबनायो, दिव्यप्रेमको पाठपढ़ायो, बारबार बहु-भाँति छकायो, रसियाजहँ नाच्यो अरु गायो । "दासकिशोर" त्रिशूलपाणिशिव पुररखवारो है ॥ मेरो० ॥

मेरीसुन्दर मिथिलापुरी सकललोकनते न्यारी है । लोकनते न्यारीहै प्राणधन जगउजियारी है ॥ मेरीजन्मभूमि सुखकारी, महिमावरणी वेदनभारी, अतिप्रियमोहिं नगरनरनारी, जिनकोवन्दत विधित्रिपुरारी । कणकणमें है दिव्यज्योति निरखत अधि-कारी हैं । मेरी० । कमलाविमला सरितसोहाई, अमितसरोवर छवि मनभाई, प्रफुलित कमल परागउड़ाई, जहँ बनउपबन अरु अँवराई । गुंजतखगगण रंगरंगके मुनिमन-हारीहै । मेरी० । मेरेपिता जनकयोगेश्वर, मुनिजन जिनहिं बनावत गुरुवर, माता रानिसुनयना सुखकर, प्रेममूर्ति ममभ्रातमनोहर । सुमिरत जिनकीप्रीति जाउँ मैं सुरति बिसारी है । मेरी० । मेरीसखी सहेलीप्यारी, जिनकीमहिमा जगउजियारी, पूजत जिनहिं सकलसुरनारी, मेरेसँगकी खेलनहारी । प्राणहुंते मोहिं परमपियारी सखहमारी हैं । मेरी० । जहँमैं शिशुविनोद बहुकीने फुलवारी के चरितनवीने, प्यारे जहँआये रसभीने, धनुषतोरि जयमालालीने । कोहवरमें जहँ सखिननचाये अवधविहारी हैं । मेरी० । मिथिलाकी महिमामुनिध्यावैं, वेदविचारे थाहलगावैं, नारदशारद पार न पावैं, कवि "जयरामदेव" गुणगावैं । मिथिलानामै लेइ जाउँतापर बलिहारीहै ॥ ॥ मेरी० ॥

* श्री अवधधामवर्णन *

मेरो अवधधाम ब्रह्माण्ड मुकुटमणि मङ्गलकारीहै । मङ्गलकारीहैं प्रियाजू मङ्गलकारीहै॥ ललितललित जहँ नितनइलीला मुनिजनमनन बिमोहनशीला, वरसेनित नवनेहरसीला, गावतशुकपिक गानरँगीला । कंचनभवन प्रमोदविपिनकी शोभान्यारी है । मेरो० । कुंजकुंज आनन्दअपारा, निर्मलजल सरयूकीधारा घरघर भक्तिभरे भण्डारा, कोउ न पूछै मुक्तिकाद्वारा । द्वारपाल हनुमन्तलाल सन्तनहितकारीहैं । मेरो० । केलिकलितलखि आनन्दमूला, बरसें सुरगण सुरतरुफूला, नित्यबसन्त पवनअनुकूला, जनकलली जहँ झूलैंझूला । कोटिजन्म तपकिये होयदर्शन अधिकारीहै । मेरो० । नितगलियनमें धूम मचाऊँ, होलीमाहिं रंगरसछाऊँ, श्रावणमें झूलनसुखपाऊँ, शरदसमय रसरासरचाऊँ । सखनसंग मृगयाबनखेलूँ बनूंशिकारी हैं । मेरो० । परमसनेही ममपितुमाता, लक्ष्मण भरतशत्रुहनभ्राता, केवटसरिस मित्रसुखदाता; मिथिलावासिनसों दृढ़नाता । कोउ न जानत सखिनसंग जो प्रीतिहमारी है ॥ मेरो० ॥

❀ श्रीसीतारामाभ्यां नमः ❀

❀ श्रीमते भगवते रामानन्दाचार्याय नमः ❀

अथ अनन्त श्रीस्वामी अग्रदासजी कृत

❀ ध्यानमञ्जरी प्रारम्भः । ❀

❀ छन्दरोला ❀

सुमिरौं श्रीरघुवीर धीर रघुवंश विभूषण । शरण गहे सुखराशि हरत अघसागरदूषण ॥१॥ सुन्दर राम उदार बाण कर शारँग धारी । हियधरि प्रभुको ध्यान विदुष जन आनँदकारी ॥२॥ अवधपुरी निजधाम परम अतिसुन्दर राजै । हाटक मणिमय सदन नगनकी कांति विराजै ॥३॥ पौंरि द्वार अतिचारु सुहावन चित्रित सोहैं । चंपतारमंदार कल्पतरु देखत मोहैं ॥४॥ भवनभवन चित्राम चित्रकी रंभा सोहैं । वनज सुतनकी पाँति कांति गोखन मग जोहैं ॥५॥ तोरण केतु पताक ध्वजा तहँ परम सोहाई । मनो रघुवर हितकरन आय त्रिभुवन छविछाई ॥६॥ वीथी वगर बजार रतनखँचि ज्योति उजासा । रहन न पावै तिमिर सह-जही होत प्रकासा ॥७॥ देखि पुरी छवि भरी मध्य के अटकत रथ रवि । हर्षहिं वर्षहिं सुमन विबुधजन निरखि पुरी छवि ॥८॥ श्रीरघुवर यश भरी पुरी वर वर को दायन । धर्मशील नरनारि सबै प्रभु सुयश परायन ॥९॥ गावत रघुवर चरित मिलत जिततित ते भामिनि । स्वरअस कोकिलनाद रूप जनु दमकति दामिन ॥१०॥ तिन युवतिनको भाग बरणि कापै कहि आवै । शचि शारद नग सुता देखिकै मन ललचावै ॥११ अवध पुरिनकी अवधि यही श्रुति संमृति वरणी । ध्यानधरे सुखकरनि नाम उचरत अघहरणी ॥१२॥ करिकरि बहुत कलेश कहत उपमा जो गुणिजन । अन्यउक्ति सब कल्प अवधसम अवध भले बन१२ वापी कूप तड़ाग रतन सोपान बनाये । रहे अमलजलपूरि विकसि कल्हार जु छाये ॥१४॥ शीतल तरुकी छाँह विहँग कूजत मनभाये । चहूँ ओर आराम

लगत उपवन जु सुहाये ॥१५॥ तिनपर केकि कपोत कीर कोकिल किलकारत। सुरधरि तिनकी देह मनो प्रभुसुयश उचारत।१६। भूमि रहे लगि डार भार फल फूलन भारी। पथिकजनन फलदेन मनहुँ तिन भुजा पसारी ॥१७॥ निकटहिँ सरयू सरितधरे अस उज्वल धारा। भवसागर को तरण विदित यह पोत उदारा ॥१८॥ हरण पाप त्रयताप जनन चिंतित फल देनी। सुकृतीजन आरोह सुदृढ़ वैकुण्ठ निसेनी ॥१९॥ तीर नरनकी भीर लगत अस परम सुहाये। मनहुँ व्योमको त्यागि अमरगण सेवन आये ॥२०॥ करैं जो मज्जन पान धन्य बड़भाग जननके। विविध भाँतिके घाट तहाँ मन थकित मुनिनके ॥२१॥ नीर परम गंभीर चलत गहिरे स्वर गाजैं। तहाँ तीर बहु सघन कमल अतिसुन्दर राजैं ॥२२॥ कमल कमल के मध्य यूथ मिलि भँवर गुँजारैं। मानहुँ मुनि-जन वृन्द वेदध्वनि शब्द उचारैँ ।२३। त्रिविध बयारि बहार बहत निशिदिन अघहारी। शीतल मंद सुगंध परम अति आनँदकारी।२४। बोलत चकवा कुण्ड तीर मन मोद बढ़ावैँ। मानहुँ परम सुदेश निकर मिलि गंध्रव गावैं।२५। कानन तहाँ अशोक शोक तेहि देखत भाजैं। विविध भाँति के वृक्ष सबै वृन्दा-रक राजैं।२६। शाखा पत्र अनूप कहा कहौं शोभा उनकी। फलकुसुमन के झुंड निरखि सुधि रहति न तन की।२७। कल्पवृक्षके निकट तहाँ यक धाम मणिनयुत। कंचनमय सब भूमि परम अति राजत अद्भुत।२८। स्वर्णवेदिका मध्य तहाँ यक रतन सिँहासन। सिंहासन के मध्य परम अति पदुम शुभासन।२९। ताके मध्य सुदेश कर्णिका सुन्दर राजै। अति अद्भुत तहँतेज वह्नि सम उपमाभ्राजै।३०। तामधि शोभित राम नीलइन्दीवर ओभा। अखिलरूपअंभोधि सजलघन तनकी शोभा।३१। शिरपर दिव्य किरीट जटित मञ्जुल मणिमोती। निरखि रुचिरता लजित निकर दिनकरकी ज्योती।३२। कुण्डल ललित कपोल युगल अति परमसुदेशा। तिनको निरखि प्रकाश लजित राकेशदिनेशा ॥३३ मेचक कुटिल सुकेश सरोरुह नयन सुहाये। मुख पङ्कजके निकट मनहुँ अलिछौना

आये ॥३४॥ भृकुटी त्रयपद दुगुन मनहुँ अलिअवलि विराजै । नासा परम सुदेश वदन लखि पंकज लाजै ॥३५॥ चितवनि चारु कृपाल रसिक जन मन आकर्षत । मन्द हास मृदुबयन जननको आनँदवर्षत ॥३६॥ दीरघ दीप्त ललाट ज्ञानमुद्रा दृढ़धारी । सुन्दर तिलक उदार अधिक छवि शोभित भारी ॥३७॥ परम ललित मणिमाल हार मुक्ता छवि राजै । उर श्रीवत्स सुचिन्ह कण्ठ कौस्तुभमणि भ्राजै ॥३८॥ यज्ञोपवीत सुदेश मध्यधारा जु विराजै । उभय भुजा आजानु नगन जटि कंकण राजै ॥३९॥ चूनी रतन जराय मुद्रिका अधिक सँवारी । शोभित अद्भुत रूप अरुणकी छवि अनुहारी ॥४०॥ भूषण विविध सुदेश पीत पट शोभित भारी । लसत कोर चहुँओर छोर कल कञ्चन धारी ॥४०॥ रोमावलि बनिआइ नाभि अस लगति सुहाई । त्रिवली तामधि ललित रेखत्रय अति छवि छाई ॥४२॥ कटिपरदेश सुढार अधिक छवि किंकिणि राजै । जानु पुष्ट वनि गूढ़गुल्फ अति ललित विराजै ॥४३॥ नूपुर पुरट सुचारु रचित मणि माणिक सोहैं । रव कल स्वरसंगीत सुनत परिजन मन मोहैं ॥४४॥ युगल अरुणपदपद्म चिन्ह कुलिशादिक मंडित । पद्मा नित्यनिकेत शरणागत भवभय खंडित ॥४५॥ दक्षिणभुज शर सुभग सुहावन सुन्दर राजै । दिव्यायुध सुविशाल वामकर धनुषविराजै ॥४६॥ षोडश वर्ष किशोर राम नित सुन्दर राजैं । रामरूपको निरखि विभाकर कोटिक लाजैं ॥४७॥ अस राजत रघवीर धीर आसन सुखकारी । रूप सच्चिदानन्द वामदिशि जनक कुमारी ॥४८॥ नगर जरे छविभरे विविध भूषण अस सोहैं । सुन्दर अङ्ग उदार विविध चामीकर कोहैं ।४९। अलक झलकता श्यामपीठ शोभित कलवेणी । सुन्दरता की सीवँ किधौं राजति अलिश्रेणी ।५०। रचित सुविविध प्रकार माँग जरतार सवाँरी । मनहुँ सुरसरी धार बनी शोभा अस भारी ।५१। पाटन की लर और बडे बड़े उज्वल मोती । सघन तिमिरके मध्य मनो उड़गणकी ज्योती ।५२। रतन रचित मणि जटित शीश पर बिन्दा छाजै । ललित कपोल सुयुगल कर्ण ताटङ्क बिराजै ।५३। उज्वल भाल

सुचारु अमित उपमा अस सोहै । राजत राम सोहाग भाग को भवन किधौं है ।५४। गोरोचन को तिलक ललित रेखा बनि आई । उन्नत नासा सुभग लसत बेसरि जु सुहाई ।।५५।। भृकुटीनयन विशाल सौम्य चितवनि जगपावन । मानहुँ विकसित कमल वदन अस लगत सुहावन ।।५६।। अरुण अधरतर दशनपाँति अग्र लगति सुहाई । चारुचिबुकबिच तनक बिन्दु मेचक छविछाई ।।५७।। कण्ठपोति मणि ज्योति सुछवि मुक्ता वरमाला । पदिकरचित कलधौत विराजत हृदय विशाला ।।५८।। हेमतन्तुकर रचित अरुण सारी रँग झीनो । कंचुकि चित्रित चतुर विविध शोभित रँग भीनी ।।५९।। वर अंगद छवि देति बाहु अस लगति सुहाई । करन चुरी रँग भरी ललित मुँदरी बनि आई ।।६०।। पद्मराग मणि नील जटित युगकंकण राजैं । मनहुँ वनजकेफूल द्विरेफनि पँक्ति बिराजैं ।।६१।। लहँगा कटिपरदेश भाँति अति शोभित गहरी । अरुण असित सित पीत मध्यनाना रँगलहरी ।।६२।। हरित नगनकर जरित युगल जेहरि अस राजैं । तिनतर घुँघुरू औरअग्र बिछिया छबिराजैं ।।६३।। तिनपर नग जु अमोल ललित चूनी गणलाये । चरण चारुतल अरुण सहजही लगत सुहाये ।।६४।। अतुलित युगलस्वरूप कवन अस उपमा जिनकी । जेतिक उपमा दीप्त शक्तिकरि भासित तिनकी ।।६५।। यहि बिधि राजत राम अवधपुर अवधविहारी । दम्पति परम उदार सुयश सेवक सुखकारी ।।६६ ।। दक्षिण भुज रिपुदलन गौर तन तेज उदारा । उभयहेतु अनुसार धरे व्रत खंडित भारा ।।६७।। शेष लये कर छत्र भरत लिये चवँर ढुरावैं । अनिल सुवन करजोरि सु प्रभुकी कीरति गावैं ।।६७।। अपनी अपनी ठौर नित्य परिकर बनि भारी । सुरति शक्ति विमलादि रहत नित आज्ञाकारी ।।६९।। जो जो जेहि अधिकार सचिव सेवा मन बासैं । बीनाधर सुरतान गान करि प्रभुहिं उपासें ।।७०।। यही ध्यान उरधरै स्वयतन सुफल करेवा । भव चतुरानन आदि चरन बन्दैं सब देवा ।।७१।। यह दम्पति वर-ध्यान रसिक जन नितप्रति ध्यावैं । रसिक बिना ध्यान और सपनेहुं नहिंपावैं ७२

अमल अमृतरससार रसिकजन यहि रस पागैं । तेहिको नीरस ज्ञान योग तप छोई लागैं ॥७३॥ परमसार यह चरित सुनत श्रवणन अघहारी । ध्यान परम कल्याण सन्तजन आनँदकारी ॥७४॥ तिन्हैं भूलि जनि कहौ कुटिलता पंक मलिनमन । यह उज्वल मणिमाल पहिरिहैं परम रसिकजन ॥७५॥ जगत ईश को रूप वरणि कहे कवन अधिकमति । कहाँ अल्प खद्योत भानुके निकट करै द्युति ॥७६॥ कहँ चातककी शक्ति अखिल जल चोंच समावै । कछुक बुन्द मुख परै ताहि लै आनँद पावै ॥७७॥ सुनि आगमविधि अर्थ कछुक जो मनहिं सुहायो । यह मंगलकर ध्यान यथामति वर्णि सुनायो ॥७८॥ श्रीगुरुसंत अनुग्रहते अस गोपुर वासी । रसिकजनन हितकरन रहसि यह ताहि प्रकासी ॥७६॥ ध्यान मञ्जरी नाम सुनत मन मोद बढ़ावै । श्रीरघुवरको दास मुदितमन अग्र सो गावै ॥८०॥

प्रभुका अवधपुरी निजधाम । यहाँ निवासी परमकृतारथ, सबविधि पूरण काम ॥ यद्यपि सब वैकुण्ठ वदतश्रुति, निरामयं सुखधाम । किन्तु न प्रिय श्री अवधसरिस है; रघुवर हियअभिराम ॥ सन्तत जहँ विहरत सियवल्लभ; लहत परमविश्राम । प्रभुकी लीलाथली भली शुचि; सन्तनसुखद ललाम ॥ अवध-माहिं तनतजत जीवजो; लहत नित्य हरिधाम । जहँ "गुणशील" स्वरूप उजागर, विहरत परमअकाम ॥१॥ वन्दौं अवधपुरी सुखरासी । पावन परम सोहावन भावन, मणिमय परमप्रकासी ॥ सत्‌चित् आनँदमयी राम प्रिय, मुक्ति फिरत वनिदासी । सब "गुणशील" सिन्धु सियपिय को; दायक परमहुलासी ॥ २ ॥

—श्रीसीतानमस्कारमाला

भूमिजायै नमस्तुभ्यं सीतादेव्यै नमोऽस्तु ते । रामप्रिये नमस्तुभ्यं नमस्ते रामवल्लभे ॥१॥
सर्वेश्वरि नमस्तुभ्यं नमस्ते करुणाब्धये । दुःखहन्त्रि नमस्तुभ्यं सुखदात्रि नमोऽस्तु ते ॥२॥
जगत्कर्त्रि नमस्तुभ्यं जगत्भित्र नमोऽस्तुते । जगद्हर्त्रि नमस्तुभ्यं मुक्तिदात्रि नमोऽस्तु ते॥३
वसुधात्मजे नमस्तुभ्यं वसुदायै नमोऽस्तु ते । नमः शरण्यवर्यायै नमो दारिद्रयनाशिनि ॥४॥
नमस्ते वेदवेद्यायै भक्तिलभ्ये नमोऽस्तु ते । नमस्ते वेदवन्द्यायै सर्वज्ञायै नमोऽस्तु ते ॥५॥
नमस्ते दिव्यदेहायै नमस्ते गुणवारिधे । नमस्ते दोषशून्यायै नमो लावण्यसिन्धवे ॥६॥
नमश्चामोघपूजायै ह्यमोघस्तुतये नमः । नमश्चामोघभक्तयै ते नमश्चामोघवन्दने ॥७॥
नमस्ते ज्ञेयवर्यायै ध्येयवर्ये नमोऽस्तु ते । नमो वदान्यवर्यायै रामपत्न्यै नमोऽस्तु ते ॥८॥
नमो निग्रहशून्यायै नमोऽनुग्रहशालिनि । नमोऽवगुणशून्यायै नमः सद्गुणशालिनि ॥९॥
नमस्ते साधुशीलायै नमस्ते कीर्त्तिशालिनि । नमस्ते मन्त्रदात्र्यै ते नमस्ते मारुतेर्गुरो ॥१०॥
नमस्ते विश्वमूलायै नमस्ते विश्वरूपिणि । नमो विश्वशरण्यायै नमस्ते विश्वरक्षिणि॥११॥
नमः प्रपदनीयायै भजनीये नमोऽस्तु ते । नमस्ते कीर्त्तनीयायै स्मरणीये नमोऽस्तु ते ॥१२॥
नमस्ते पूज्यवर्यायै स्तुत्यवर्ये नमोऽस्तु ते । नमस्ते वन्द्यवर्यायै नमस्तेऽमोघदर्शने ॥१३॥
नमोऽचिच्चिद्विशिष्टायै नमोऽचिच्चित्स्वरूपिणि।नमोऽचिच्चिभिन्नायैनमोऽचिच्चिच्छरीरिणि १४
नमः कारणरूपायै कार्यरूपिणि ते नमः । नमो जगज्जनन्यै ते जगद्रूपिणि ते नमः ॥१५॥
नमस्त्रिदेववन्द्यायै त्रिदेवीवन्दिते नमः । नमः परात्परायै ते नमः सर्वावतारिणि ॥१६॥
नमो विभवरूपायै व्यूहरूपिणि ते नमः । नमस्तेऽर्चास्वरूपिण्यै नमोऽन्तर्यामिरूपिणि॥१७॥
नमस्ते विभुदे देवि नमस्ते विभुरूपिणि । नमस्ते विभ्वभिन्नायै नमस्ते विभुवल्लभे॥१८॥
नमस्ते विभुलोकायै नमस्ते विभुबुद्धये । विभुशक्त्यै नमस्तेऽस्तु नमस्ते विभुकीर्त्तये ॥१९॥
नमो जनककन्यायै नमस्ते जनकात्मजे । नमस्ते जानकीदेव्यै नमो जनकनन्दिनि ॥२०॥
नमो मैथिलकन्ये ते नमोऽस्तु मैथिलात्मजे । नमो मैथिलिमातस्ते मिथिलेशसुते नमः॥२१॥
मात्रे नमोऽस्तु सीतायै नमो वात्सल्यवारिधे । नमस्ते श्रुतिगीतायै नमस्ते क्षितिनन्दिनि।।२२
नमस्ते मुक्तसेव्यायै नमस्ते मुक्तवन्दिते । नमस्ते विघ्नहन्त्र्यै च नमस्ते मङ्गलप्रदे ।२३॥
रामाभिन्ने नमस्तेऽस्तु श्रियः श्रियै नमोऽस्तु ते । नमस्ते दिव्यवस्त्रायै नमस्ते दिव्यभूषणे ॥२४
नमः स्वयम्प्रकाशायै नमो भास्करभासिनि । नमः प्रपत्तिशिक्षित्र्यै नमः प्रपन्नरक्षिणि ।२५॥
नमस्ते सत्यसङ्कल्पे नमस्ते सर्वशेषिणि । नमश्चावाप्तकामायै सर्वशक्त्यै नमोस्तु ते ॥२६॥
भगवत्यै नमस्तेऽस्तु मन्त्रराजप्रदे नमः । नमस्ते दिव्यलोकायै नमस्ते दिव्यपार्षदे ॥२७॥
वैष्णवभाष्यकारश्रीवैष्णवाचार्यनिर्मिता । स्तान्नमस्कारमालेयं श्रीसीताम्बाप्रसादिनी॥२८॥

श्रीरामनमस्कारमाला

श्रीरामाय नमस्तेऽस्तु नमस्ते विश्वहेतवे । नमो दुर्गुणशून्याय नमः सद्गुणसिन्धवे ॥१॥
विश्वकर्त्रे नमस्तेऽस्तु नमस्ते विश्वपालक । विश्वहर्त्रे नमस्तेऽस्तु नमस्ते विश्वतारक ॥२॥
नमस्ते व्यूहरूपाय परस्मै ब्रह्मणे नमः । नमो विभवरूपाय सर्वान्तर्यामिणे नमः ॥३॥
नमस्तेऽर्चावताराय सर्वावतारिणे नमः । नमस्ते चिदचिद्देह चिदचिच्छेषिणे नमः ॥४॥
नमस्ते दिव्यदेहाय दिव्यशस्त्राय ते नमः । नमस्ते दिव्यलोकाय योगिध्येयाय ते नमः ॥५॥
नमः शरण्यवर्याय भक्तिलभ्याय ते नमः । नमस्ते चाप्रमेयाय नमस्ते सुखकारिणे ॥६॥
नमो जगन्निमित्ताय सर्वेश्वर नमोऽस्तु ते । नमस्ते विश्वमूलाय सर्वज्ञाय नमोऽस्तु ते ॥७॥
नमश्चाधारशून्याय सर्वाधाराय ते नमः । नमस्ते सर्वपूज्याय सर्वप्रद नमोऽस्तु ते ॥८॥
नमस्ते ब्रह्मरूपाय विष्णुरूप नमोऽस्तु ते । नमः शङ्कररूपाय विश्वरूप नमोऽस्तु ते ॥९॥
नमस्ते वेदवन्द्याय वेदवेद्य नमोऽस्तु ते । वेदकर्त्रे नमस्तेऽस्तु नमस्ते वेदरक्षक ॥१०॥
नमस्तेऽणुस्वरूपाय महद्रूपाय ते नमः । नमोऽन्तर्व्याप्तरूपाय बाह्यव्याप्ताय ते नमः ॥११॥
नमश्चान्तःप्रविष्टाय सर्वशासक ते नमः । नमो नित्यस्वरूपाय विभुरूपाय ते नमः ॥१२॥
नमः स्वयंप्रकाशाय नमः सूर्यादिभासिने । नमः पूर्णावताराय नमश्चापेषुधारिणे ॥१३॥
नमस्ते श्रवणीयाय कीर्त्तनीयाय ते नमः । नमस्ते स्मरणीयाय सेव्यपादाय ते नमः ॥१४॥
नमस्ते चार्चनीयाय वन्दनीयाय ते नमः । नमस्ते सर्वमित्राय सर्वेषां स्वामिने नमः ॥१५॥
नमस्तेऽस्तु शरण्याय भजनीय नमोऽस्तु ते । भक्तिलभ्य नमस्तेऽस्तु नमस्तेऽमोघभक्तये ॥१६
नमो व्यापकरूपाय नमः साकेतवासिने । नमस्ते दुःखहर्त्रे च नमश्चानन्ददायिने ॥१७॥
नमः सत्यस्वरूपाय नमस्तेऽनन्तरूपिणे । नमः ज्ञानस्वरूपाय ब्रह्मणे च नमोऽस्तु ते ॥१८॥
उपेयाय नमस्तुभ्यं नमश्चोपायरूपिणे । प्रपद्याय नमस्तेऽस्तु भक्तिप्राप्याय ते नमः ॥१९॥
शक्तिदाय नमस्तेऽस्तु नमस्ते शक्तिवारिधे । भुक्तिदाय नमस्तुभ्यं मुक्तिदाय नमोऽस्तु ते ॥२०॥
नमो भक्तारिहन्त्रे ते नमस्ते भक्तरक्षक । नमो दुर्जनहन्त्रे च नमः सज्जनबन्धवे ॥२१॥
नमः साधुपरित्रात्रे नमस्ते दुष्टनाशक । नमः स्थापितधर्माय नमोऽवताररूपिणे ॥२२॥
नमो दाशरथे तुभ्य कौशल्येय नमोऽस्तुते । नमस्ते ताटकाहन्त्रे नमः सुबाहुनाशक ॥२३॥
नमस्ते प्राप्तविद्याय नमस्ते मुनिपूजित । नमो रक्षितयज्ञाय मुनिस्त्रीतारिणे नमः ॥२४॥
नमो भञ्जितचापाय श्रीसीतोद्वाहिने नमः । नमः सौमित्रिसेव्याय नमस्ते वनवासिने ॥२५॥
बालिहन्त्रे नमस्तुभ्यं नमस्ते सिन्धुसेतुकृत् । नमो रावणहन्त्रे च नमस्ते जानकीप्रिय ॥२६॥
नमस्ते पुष्पकारूढ नमो देवाभिवन्दित । नमोऽयोध्याऽधिराजाय नमस्ते भरतप्रिय ॥२७॥
वैष्णवभाष्यकार श्रीवैष्णवाचार्यनिर्मिता । स्तान्नमस्कारमालेयं श्रीमद्रामप्रसादिनी ॥२८॥

* श्रीहनुमन्नमस्कारमाला *

हनूमते नमस्तुभ्यं वायुपुत्र नमोऽस्तु ते । आञ्जनेय नमस्तुभ्यं नमस्ते वायुनन्दन ॥१॥
नमस्ते रामदासाय रामदूताय ते नमः । नमोऽञ्जनाकुमाराय प्राभञ्जनाय ते नमः ॥२॥
कपीन्द्राय नमस्तुभ्यं नमो राक्षसमर्दक । वज्राङ्गाय नमस्तुभ्यं नमो भक्तारिसूदन ॥३॥
वातात्मज नमस्तुभ्यं नमस्ते वायुवेगिने । गदाधारिन् नमस्तुभ्यं नमः पर्वतधारिणे ॥४॥
जितेन्द्रिय नमस्तुभ्यं नमो लङ्घितवारिधे । बुद्धिसिन्धो नमस्तुभ्यं नमो राक्षसमर्दिने॥५
नमः सीताशुची हर्त्रे नमः सीतासुखप्रद । अक्षघातिन् नमस्तुभ्यं नमो लङ्काविदाहक॥६
नमस्ते रामतत्त्वज्ञ नमो रावणतर्जक । रामश्रित नमस्तुभ्यं श्रीसीतान्वेषिणे नमः ॥७॥
रामभृत्य नमस्तुभ्यं नमस्ते रामकिङ्कर । नमो यशःसमुद्राय नमस्ते बलसिन्धवे ॥८॥
नमस्ते जितवज्राय नमः शक्रादिसंस्तुत । सीताशिष्य नमस्तुभ्यं ब्रह्मणो गुरवे नमः॥ ९॥
विपत्तिघ्न नमस्तुभ्यं नमः सम्पत्तिदायिने । दुःखहारिन् नमस्तुभ्यं नमस्ते सुखकारिणे१०
गदाधर नमस्तुभ्यं नमस्ते चाद्रिधारिणे । नमस्ते भयहीनाय नमस्ते भयहारिणे ॥११॥
सर्वाराध्य नमस्तुभ्यं नमः सर्वफलप्रद । नमस्ते भक्तितत्त्वज्ञ नमो वेदान्तवेदिने ॥१२॥
ज्ञानप्रद नमस्तुभ्यं भक्तिप्रद नमोऽस्तु ते । शक्तिप्रद नमस्तुभ्यं मुक्तिप्रद नमोस्तु ते॥१३॥
नमश्चारिविजेत्रे ते नमस्ते विजयप्रद । भयशून्य नमस्तुभ्यं नमस्तेऽरिभयङ्कर ॥१४॥
नमस्ते स्वर्णवर्णाय नमस्ते वज्रदेहिने । नमस्ते दिव्यदेहाय मनोज्ञाय नमोऽस्तु ते ॥१५॥
नमो महाशरीराय महाशूराय ते नमः । नमस्ते कर्मवीराय महाधीराय ते नमः ॥१६॥
महाज्ञानिन् नमस्तुभ्यं महाध्यानिन् नमोऽस्तु ते । रामार्चक नमस्तुभ्यं नमः कीर्त्तनकारक१७
दयासिन्धो नमस्तुभ्यं नमस्ते दीनबन्धवे । ज्ञानसिन्धो नमस्तुभ्यं नमः सज्जनबन्धवे॥१८।
नमः प्रपत्तितत्त्वज्ञ नमः प्रपत्तिशिक्षिणे । नमः प्रपन्नवर्याय नमः प्रपन्नरक्षिणे ॥१९॥
नमस्ते ब्रह्मतत्त्वज्ञ नमस्ते ब्रह्मचारिणे । ब्रह्मस्तुत नमस्तुभ्यं नमो ब्रह्मज्ञरक्षक । २०॥
नमः कुमन्त्रशक्तिघ्न नमस्ते राममन्त्रद । बाधाहर नमस्तुभ्यं नमो बाधकबाधक ॥२१॥
नमो जितखगेशाय नमो भूतादितर्जिने । रामस्तुत नमस्तुभ्यं नमस्ते रामगर्जिने ॥२२॥
नमस्ते वानरेन्द्राय देवस्तु नमोऽस्तु ते । नमस्ते वायुवेगाय वायुजाय नमोऽस्तु ते ॥२३
नमस्ते पूजनीयाय वन्दनीयाय ते नमः । नमस्ते कीर्त्तनीयाय स्तवनीयाय ते नमः। २४
आयुःप्रद नमस्तुभ्यं विद्याप्रद नमोऽस्तु ते । यशःप्रद नमस्तुभ्यं बलप्रद नमोऽस्तु ते ॥२५
नमस्तेऽभीष्टदात्रे च नमस्तेऽनिष्टहारिणे । नमोऽवगुणशून्याय गुणाम्भोधे नमोऽस्तु ते २६
वैष्णवभाष्यकारश्रीवैष्णवाचार्यनिर्मिता । स्तान्नमस्कारमालेयं श्रीहनूमत्प्रसादिनी ॥२७

❀ –श्रीरामानन्दाचार्यनमस्कारमाला ❀

रामानन्द नमस्तुभ्यं पुण्यसद्मज ते नमः । यतीन्द्राय नमस्तुभ्यं नमो वेदान्तबोधक ॥१॥
नमो ब्रह्मोपदेष्ट्रे ते सुशीलात्मज ते नमः । नमो रामावताराय नमस्तुभ्यं जगद्गुरो ॥२
देशिकेन्द्र नमस्तुभ्यं नमो धर्माब्जभास्कर । यतिराज नमस्तुभ्यं नमः सद्धर्मरक्षक ॥३॥
नमो वादीभसिंहाय नमो वादिभयङ्कर । नमोऽस्तु दिग्विजेत्रे ते नमस्ते वादिसंस्तुत ॥४॥
भाष्यकार नमस्तेऽस्तु नमस्ते भाष्यलेखक । भाष्यबोद्ध्रे नमस्तेऽस्तु नमस्ते भाष्यपाठक॥५
सदाचरिन् नमस्तेऽस्तु सदाचारविदे नमः । सुधीन्द्राय नमस्तेऽस्तु मुनीन्द्राय नमोऽस्तुते६
महाचार्य नमस्तुभ्यं महाज्ञानाब्धये नमः । नमोऽवगुणशून्याय सद्गुणाम्बुधये नमः॥७॥
महासिद्ध नमस्तुभ्यं नमः सिद्धेन्द्रपूजित । नमः सिद्धिनिधानाय नमः सिद्धिप्रदायते ॥८॥
नमः शिक्षाम्बुधे तुभ्यं शिक्षाप्रद नमोऽस्तु ते । नमो मङ्गलकर्त्रे ते मङ्गलाम्बुधये नमः॥६
ज्ञाननिधे नमस्तुभ्यं ज्ञानप्रद नमोऽस्तु ते । नमः साधितसिद्धान्त नमः सिद्धान्तरक्षक१०
भुक्तिप्रद नमस्तुभ्यं शक्तिप्रद नमोऽस्तु ते । भक्तिप्रद नमस्तुभ्यं मुक्तिप्रद नमोऽस्तु ते॥११
कर्मच्छिदे नमस्तुभ्यं नमः संशयनाशिने । तत्त्ववेत्रे नमस्तुभ्यं नमस्तत्त्वप्रबोधक ॥१२॥
नमो ब्रह्मविदे तुभ्यं ब्रह्मबोधक ते नमः । नमस्ते वेदमर्मज्ञ नमो वेदान्तवेदिने ॥१३॥
नमो रहस्यवेत्रे ते रहस्यप्रद ते नमः । नमस्ते भक्तितत्त्वज्ञ भक्तितत्त्वनिधे नमः ॥१४॥
नमस्तारकदात्रे ते लब्धतारक ते नमः । नमो रामप्रपत्तिज्ञ नमो रामप्रपन्न ते ॥१५॥
ज्ञानसिन्धो नमस्तुभ्यं भक्तिसिन्धो नमोऽस्तु ते । दीनबन्धो नमस्तुभ्य भक्तबन्धो नमोऽस्तुते१६
नमस्ते गुरुतत्त्वज्ञ गुरुनिष्ठाय ते नमः । नमो गुरुकृपापात्र नमस्ते गुरु सेविने ॥१७॥
नमो रामानुरक्ताय रामभक्ताय ते नमः । नमः पूजितरामाय स्तुतरामाय ते नमः॥१८
नमः कीर्तितरामाय श्रितरामाय ते नमः । नमो वन्दितरामाय रामासक्त नमोऽस्तुते॥१६
नमो वैष्णववर्याय वैष्णवाचार्य ते नमः । नमो वैष्णवतत्त्वज्ञ वैष्णवतोषिणे नमः॥२०
नमस्ते श्रवणीयाय कीर्तनीयाय ते नमः । नमस्ते स्मरणीयाय सेव्यपादाय ते नमः॥२१॥
नमस्ते चार्चनीयाय वन्दनीयाय ते नमः । नमस्ते सर्वमित्राय सर्वेषां स्वामिने नमः॥२२
नमस्तेऽस्तु शरण्याय भजनीय नमोऽस्तु ते । भक्तिकृते नमस्तेऽस्तु नमस्तेऽनन्तशक्तये ॥२३
दुःखहर्त्रे नमस्तुभ्यं सुखकर्त्रे नमोऽस्तु ते । नमो भक्तारिहन्त्रे ते नमस्ते भक्तरक्षक ॥२४॥
नमः सज्जनबन्धो ते नमः सज्जनरक्षक । नमो रक्षितधर्माय नाशिताधर्म ते नमः ॥२५
नमस्ते वेदरक्षित्रे नमस्ते वेदबोधक । नमस्ते दिव्यदेहाय दिव्यरूप नमोऽस्तु ते ॥२६॥
नमश्चाचार्यसम्राजे नमस्ते सर्ववेदिने । नमो धर्मस्वरूपाय रामरूप नमोऽस्तु ते॥२७॥
वैष्णवभाष्यकारश्रीवैष्णवाचार्यनिर्मिता । रामानन्दनमस्कारमाला स्तान्मलङ्गप्रदा ॥२८॥

※ श्री वैष्णवीय चार सम्प्रदाय की स्तुति ※

श्रीरामजी की प्रातःकाल की स्तुति

भए प्रकट कृपाला दीनदयाला कौसल्या हितकारी। हर्षित महतारी मुनिमन-हारी अद्भुत रूप निहारी ॥ लोचन अभिरामा तन घनश्यामा निज आयुध भुजधारी। भूषण बनमाला नयन विशाला शोभा सिन्धु खरारी ॥ १ ॥ कह दुइ कर जोरी अस्तुति तोरी केहि विधि करौं अनन्ता। माया गुण ज्ञाना तीत अमाना वेद पुराण भनन्ता ॥ करुणा सुख सागर सब गुण आगर जेहि गावहिं श्रुति सन्ता। सो मम हित लागी जन अनुरागी प्रकट भए श्रीकन्ता ॥ २ ॥ ब्रह्माण्ड निकाया निर्मित माया रोम रोम प्रति वेद कहै। मम उर सो वासी यह उपहासी सुनत धीर मति थिर न रहै। उपजा जब ज्ञाना प्रभु मुसुकाना चरित बहुतविधि कीन्ह चहै। कहिकथा सुनाई मातु बुझाई जेहि प्रकार सुत प्रेम लहै ॥ ३ ॥ माता पुनि बोली सो मति डोली तजहु तात यह रूपा। कीजै शिशुलीला अतिप्रिय शीला यह सुख परम अनूपा ॥ सुनि वचन सुजाना रोदन ठाना होइ बालक सुर भूपा। यह चरित जे गावहिं हरि-पद पावहिं ते न परहिं भव कूपा ॥ ४ ॥

दो०—विप्र धेनु सुर सन्त हित, लीन्ह मनुज अवतार।
निज इच्छा निर्मित तनु, माया गुण गोपार ॥

※ श्री जानकी जी की प्रातःकाल की स्तुति ※

भइं प्रकट कुमारी भूमि विदारी जन हितकारी भयहारी। अतुलित छविभारी मुनिमन हारी जनक दुलारी सुकुमारी ॥ सुन्दर सिंहासन तहिं पर आसन कोटि हुता-सन द्युतिकारी। शिर छत्र विराजै सखिगण भ्राजै निज निज साजहिं करधारी ॥ सुरसिद्ध सुजाना हनहिं निशाना चढ़े विमाना समुदाई। वर्षहिं बहु फूला मंगल मूला अनुकूला सियगुन गाई ॥ देखहिं सब ठाढ़े लोचन गाढ़े सुख बाढ़े उर अधिकाई। स्तुति मुनि करहीं आनन्द भरहीं पायन परहीं हर्षाई ॥ ऋषि नारद आये नाम सुनाए मुन सुख पाये नृप ज्ञानी। सीता अस नामा पूरणकामा सब सुख धामा गुणखानी ॥ सिय सन मुनिराई बिनय सुनाई समय सुहाई मृदु वानी। लालन तनु लिजै चरित सुकीजै यह सुख दीजै नृप रानी ॥ सुनि मुनि वर बानी सिय मुसकानी लीला ठानी सुखदाई। सोवत जनु जागी रोवन लागी नृप बड़भागी उर लाई ॥ दम्पति अनुरा-गेउ प्रेम सुपागेउ यह सुख लागेउ मनलाई। स्तुति सिय केरी प्रेम लथेरी वरनि कुचेरी सिर नाई ॥

दो०—निज इच्छा मख भूमि ते प्रकट भईं सिय आय ।
चरित किये पावन परम बरधन मोद निकाय ॥

जनकपुर जनकनन्दनीजू की जै अयोध्या रामलला की जय ।

❋ सायंकाल श्रीराम जी की स्तुति ❋

हे राम पुरुषोत्तम नरहरे नारायण केशव, गोविन्द गरुड़ध्वज गुणानिधे दामोदर माधव । हे कृष्णःकमलापते यदुपते सीतापते श्रीपते, हे वैकुण्ठपते चराचरपते लक्ष्मीपते पाहि माम् ॥ १ ॥ हे गोपालक हे कृपाजलनिधे हे सिन्धुकन्यापते, हे कंसान्तक हे गजेन्द्रकरुणापारीण हे माधव । हे रामानुज ❋ हे जगत् त्रय गुरो हे पुण्डरीकाक्ष मां, हे गोपीजन नाथ पालय परं जानामि न त्वां विना ॥ २ ॥ कस्तूरीतिलक ललाटपटले वक्षस्थले कौस्तुभं नासाग्रे वरमौक्तिकं करतले वेणुः करे कङ्कणम् । सर्वाङ्गे हरिचन्दनं सुललितं कण्ठे च मुक्तावलीम्, गोपस्त्रीपरिवेष्टितो विजयते गोपालचूड़ामणिः ॥ ३ ॥ आदौ राम तपो वनादि गमनं हत्वा मृगं काञ्चनं, वैदेहीहरणं जटायुमरणं सुग्रीवसम्भाषणम् । वालीनिर्दलनं समुद्रतरणं लङ्कापुरीदाहनं, पश्चाद् रावणकुम्भकर्णहननञ्चैतद्धि रामायणम् ॥ ४ ॥ आदौ देवकिदेवगर्भजननम् गोपीगृहे वर्द्धनं, मायापूतनजीवतापहरणं गोवर्द्धनोधारणम् । कंसच्छेदन कौरवादिहननं कुन्तीसुतान्पालनं एतद्भागवतं पुराणकथितं श्रीकृष्णलीलामृतम् ॥ ५ ॥ श्रीरङ्गङ्करिशैलमञ्जनगिरौ शेषाद्रिसिंहाचलम् श्रीकूर्मम्पुरुषोत्तमञ्च बदरिनारायणं नैमिषम् । श्रीमद् द्वारवतीप्रयागमथुराऽयोध्यागयापुष्करम्, शालग्रामनिवासिनो विजयते रामानन्दोऽयं मुनिः ॥६ विष्णोः पादमवन्तिकाँ गुणवतीं मध्ये च काञ्चीपुरीं, नाभौ द्वारवतीं तथा च हृदये मायापुरीं पुण्यदाम् । ग्रीवामूलमुदाहरन्ति मथुरां नासाग्रवाराणसीं एतद् ब्रह्मपदं वदन्ति मुनयो ऽयोध्यापुरी मस्तके । ॥ ७ ॥ तूणेनैकशरःकरेण दशधा सन्धानकाले शतम् चापेऽभूत् सहस्रलक्षगमने कोटिश्च कोटिर्वधे । अन्ते चार्वनिखर्ववाणनिकरैः सीतापते शोभितम्, एतद् बाणपराक्रमस्य महिमा शतपात्र दानंयथा ॥ ८ ॥ पार्थाय प्रतिबोधितां भगवता नारायणेन स्वयं, व्यासेन ग्रथितां पुराणमुनिना मध्ये महाभारतं अद्वैतामृतवर्षिणीम्भगवतीमष्टादशाध्यायिनी, मम्ब त्वामनुसंदधामि भगवद्गीते भव द्वेषणीम ॥ ६ ॥ ❋ नमोऽस्तु ते व्यासविशालबुद्धे फुल्लारविन्दायतपत्रनेत्र, येन त्वया भारततैलपूर्णः प्रज्वालितोज्ञानमयः प्रदीपः ॥ १० ॥ श्रीरामचन्द्रकृपालु भजुमन, हरण भव भय दारुणम् । नवकञ्ज लोचन कञ्जमुख, करकञ्ज पदकञ्जारुणम् ॥ कन्दर्प अगणित अमित छवि नव नील नीरद सुन्दरम् । पट पीत मानहु तडित रुचि शुचि नौमि

❋ सूचना—यहाँ रामानुज का अर्थ—वलराम के अनुज श्री कृष्ण जी है ।

जनक सुता वरम् ।। शिर मुकुट कुण्डल तिलक चारु उदार अङ्ग विभूषणम् । आजानु भुज शर चापधर संग्रामजित खरदूषणम् ।। भजु दीनबन्धु दिनेश दानव दलन दुष्ट निकन्दनम् । रघुनन्द आनन्द कन्द कोसलचन्द्र दशरथ नन्दनम् ।। इति बदति तुलसी दास शङ्कर शेष मुनिमन रञ्जनम् । मम हृदय कञ्ज निवास करु कामादि खल दल गञ्जनम् ।।

दो०—मों सम दीन न दीनहित, तुम समान रघुबीर ।
अस विचारि रघुवंशमनि, हरहु विषम भवभीर ।।

कामिहिं नारि पियारि जिमि, लोभिहिं प्रिय जिमि दाम । तिमि रघुनाथ निरन्तर प्रिय लागहु मोहिं राम ।। प्रणतपाल रघुवंशमणि, करुणा सिन्धु खरारि । गए शरण प्रभु राखिहैं, सब अपराध विसारि ।। श्रवण सुयश सुनि आएउँ, प्रभु भञ्जन भव भीर । त्राहि त्राहि आरतिहरण, शरणसुखद रघुवीर ।। अर्थ न धर्म न काम रुचि, गति न चहौं निर्वान । जन्म जन्म रति राम पद, यह वरदान, न आन ।। बार बार वर मागऊँ, हर्षि देहु श्री रङ्ग; पद सरोज अन पायनी, भक्ति सदा सत्संग।। एक मन्द मैं मोह वस, कुटिल हृदय अज्ञान । पुनि प्रभु मोहिं बिसारेउ, दीन बन्धु भगवान् ।। विनती करि मुनि नाय शिर, कह कर जोरि बहोरि । चरण सरोरुह नाथ जनि, कबहुं तजै मति मोरि ।। नहिं विद्या नहिं बाहु बल, नहिं खर्चन कछु दाम । मोसों पतित पतङ्ग की, तुम पति राखो राम ।। राम बाम दिशि जानकी, लखन दाहिनी ओर । ध्यान सकल कल्याणमय, सुरतरु तुलसी तोर ।। नील सरोरुह नील मणि, नील नीर धर श्याम । लाजहिं तनु शोभा निरखि, कोटि कोटि शतकाम ।। एक घड़ी आधी घड़ी, आधी में पुनि आध । तुलसी संगत साधु की, हरै कोटि अप-राध ।। सियावर रामचन्द्रजी की जय अयोध्या रामजीलला की जय वृन्दावन कृष्ण चन्द्र जी की जय इत्यादि ।।

* श्री जानकी जी की सायंकाल की स्तुति *

जय जनकनन्दनि जगत वन्दनि जन आनन्दनि जानकी । रघुवीर नयन चकोर चन्दनि वल्लभा प्रियप्राणकी ।। तव कञ्जपद मकरन्द स्वादित योगिजनमन अलिकिये । करि पान गिनत न आन हिय निर्वान शिख आनन्द हिये ।। सुख खानि मंगल दानि जन जिय जानि शरण जो जात हैं । तब नाथ सब सुख साथ करि तेहि हाथ रीभि बिकात हैं ।, ब्रह्मादि शिव सनकादि सुरपति आदि निज मुख भाषहीं ।। तव कृपा नयन कटाच्छ चितवनि दिवस निशि अभिलाषहीं । तनु पाइ तुमहिं विहाय जड़मति

आन मानत देवहीं । हतभाग सुरतरु त्याग करि अनुराग रेड़हिं सेवहीं ।। यह आश रघुवर दास की सुख राशि पूरण कीजिए । निज चरण कमल सनेह जनक विदेहजा वर दीजिये ।।

।। श्री सीताकृपाकटाक्ष स्तोत्र ।।

जै जै सीते स्वामिनी जै अवधेश किशोर । जै जै श्री सर्वेश्वरी चारुशिला रसबोर ।। सन्धिनि श्री गुरुदेव जी जीव ईश सम्बन्ध । सन्दीपनि उद्दीपकर चारुशिला रसबन्ध ।। अहलादिनि श्री स्वामिनी प्रीतम स्नेह बढ़ाय । भजन भाव परिपक्व हो इष्ट धाम को जाय ।। सन्धिनि सन्दीपनि उभय शक्ति स्वामिनी सीय । अहलादिनि अहलादकर प्रीतम से रस पीय ।। मंगलभाव विवर्द्धनी टीका कृपाकटाक्ष । सिय शौन्दर्य सुधाम में लीला लखै प्रतक्ष ।। जै जै श्री गुरुदेव जी सन्त शिरोमणि आप । श्री चरणहिं शौन्दर्य सो आशिर्वाद प्रताप ।।

पद—प्रीतम संगे सीते स्वामिनि रवि प्रकाश नहिं छूटै । अणु अणु प्रेरक प्रेर्यमहा तुम ब्रह्म नाम रस कूटै । अणु आतम ता भीतर रमते राम नाम जिय बूटै ।। दिव्यधाम साकेत महा सुख पर समाज जल जूटै । रसधारा हिय सन्त जनन को रूपसिन्धु में गूटै ।। शिव सुक सनक शेष श्रुति सम्मत हनूमान रस लूटै । जिन पायो शौन्दर्य मुनिन को सो सम्मुख बिन घूटै ।।१।। प्रीतम राज किशोर तुम्हारा नाम अमिय रस पाया । श्री गुरुदेव कृपा की मूरति आपहि रूप बनाया ।। हों परतन्त्र मिटी स्वतन्त्रता सन्धिनि शक्ति सिखया । चारुशिला सब यूथप स्वामिनि युगल भाव अटकाया । भाव देशनित चहूँ यही विधि सन्दीपनि अपनाया ।। नाम रटत हिय धाम रूप लखि लीला रंग रँगाया । राग रग बहु बढ़ो अह निशि सुख शौन्दर्य बढ़ाया ।।२।।

मुनीन्द्रवृन्द वन्दिते त्रिलोक शोकहारिणि प्रसन्नवक्त्र पङ्कजेनिकुञ्ज भू विलासिनि।।
वदेहभूपनिन्दिनि नृपेन्द्र सूनुसंगते।कदाकरिष्यसीह मां कृपाकटाक्ष भाजनम्।।१।।

अशोक वृक्ष वल्लरी वितान मण्डप स्थिते । प्रवाल जाल पल्लव प्रभारुणांघ्रि कोमले ॥ वराभय स्फुरत्करे प्रभूत सम्पदालये । कदाकरिष्यसीह मां कृपाकटाक्ष भाजनम् ॥२॥ तडित्सुवर्ण चम्पक प्रदीप्त गौरविग्रहे । मुख प्रभापरास्त कोटि शारदेन्दु मण्डले ॥ विचित्र चित्र संचरच्चकोर शाव लोचने । कदा करिष्यसीह मां कृपाकटाक्ष भाजनम् ॥३॥ अनंग रंग मंगल प्रसंगभंगुर भ्रुवां । सुविभ्रमं ससंभ्रमद् दृगन्त बाण पातनैः ॥ निरन्तरं वशीकृता वधेशभूपनन्दने । कदाकरिष्य-सीह मां कृपाकटाक्ष भाजनम् ॥४॥ मदोन्मदादियौवने प्रमोद मान मण्डिते । प्रियानुराग रञ्जिते कला विलास पण्डिते ॥ अनन्य धन्य कुञ्जराजि कामकेलि-कोविदे । कदा करिष्यसीह मां कृपाकटाक्ष भाजनम् ॥५॥ अशेष हावभाव धीर हीर हार भूषिते । प्रभूतशात कुम्भ कुम्भ कुम्भि कुम्भसुस्तति ॥ प्रसस्त मन्द हास्य चूर्ण पूर्ण सौख्य सागरे । कदा करिष्यसीह मां कृपाकटाक्ष भाजनम् ॥६॥ मृणाल वाल वल्लरी तरङ्ग रङ्ग दोलिते । लताग्र लास्य लोल नील लोचनावलो-कने ॥ ललल्लुलन्मिलन्मनोज मुग्धमोहमा श्रये । कदाकरिष्यसीह मां कृपाकटाक्ष भाजनम् ॥७॥ सुवर्ण मल्लिकाञ्चिते त्रिरेख कम्बु कण्ठगे । त्रिसूत्र मंगली गुणा-भिरत्न दूर दीप्यते ॥ सलोल नील कुन्तले प्रसून गुच्छ गुम्फते । कदा करिष्य-सीह मां कृपाकटाक्ष भाजनम् ॥८॥ नितम्ब बिम्ब लम्बमान पुष्पमेखला गुणे । प्रशस्त रत्न किंकणी कलाप मध्य मंजुले ॥ करीन्द्र शुण्ड दण्डिका वरोह सौभ-गोरुके । कदाकरिष्यसीह मां कृपाकटाक्ष भाजनम् ॥९॥ अनेक मन्त्र नाद मञ्जु नूपुरारवस्खलं । सुराज राज हंश वंश निक्वणाति गौरके ॥ विलोल हेम वल्लरी विडम्बि चारु चक्रमे । कदा करिष्यसीह मां कृपाकटाक्ष भाजनम् ॥१०॥ अनन्त कोटि विष्णुलोक नम्र पद्मजार्चिते । हिमाद्रिजा पुलोमजा विरञ्चिजा वरप्रदे । अपार सिद्धि वृद्धि दिग्ध सत्पदांगुली नखे । कदा करिष्यसीह मां कृपाकटाक्ष भाजनम् ॥११॥ मखेश्वरी क्रियेश्वरी सुधेश्वरी सुरेश्वरी । त्रिवेद भारतीश्वरी प्रणाम शासनेश्वरी ॥ रमेश्वरी क्षमेश्वरी बिनोद कामनेश्वरी । प्रमोदकाननेश्वरी विदेहजे

नमोस्तुते ॥१२॥ इतीद मद्भुतं स्तवं निशम्य भूमि नन्दिनी । करोति सन्ततं जनं कृपाकटाक्ष भाजनम् ॥ भवत्यनेक सञ्चित त्रिरूप कर्म नाशनम् । लभेत्तथा नृपेन्द्र सूनु मन्दिर प्रवेशनम् ॥१३॥ राकायां च नवम्यां च दशम्यां ज विशुद्धधीः ॥१४॥ यं यं कामयते कामं तं तं प्राप्नोति साधकः ॥ सीता कृपाकटाक्षेण भक्तिः स्यात्प्रेम लक्षणा ॥१५॥ उरूदघ्ने नाभिदघ्ने हृद्दघ्ने कण्ठ दघ्नके । सीता कुण्डजले स्थित्वा यः पठेत् साधकः शतम् ॥१६॥ तस्य सर्वार्थ सिद्धिः स्यात् वाक्य सामर्थ्य मेव च ॥ ऐश्वर्यञ्चभलेत्साक्षा दृशा पश्यति जानकीम् ॥१७ तेन सा तत् क्षणादेव तुष्टा दत्ते महावरम् ॥ येन पश्यति नेत्राभ्यां तत् प्रियं श्यामसुन्दरम् ॥१८॥ नित्यलीला प्रवेशं च ददाति श्री रघूत्तमः ॥२०॥ अतः परतरं प्रार्थ्यं वैष्णवानां न विद्यते ॥१९॥

हे मुनिश्रेष्ठ समूह से वन्दित चरणवाली ? हे तीनों लोकों के शोक को नाश करनेवाली ! हे प्रसन्न मुखकमले हे विलास वनों के विविध कुञ्जों में विहरनेवाली ! हे विदेहराजकन्ये ! हे श्रीचक्रवर्तिकुमार की संगिनी ! आप मेरे को कृपा कृपाकटाक्ष का पात्र कब बनाओगी ॥ १ ॥ हे अशोकवन के वृक्ष लताओं से बने वितान (चन्दोवा) तथा मण्डपों में बैठनेवाली हे मूगामणि समूह के समान अरुण लाल और नवीन पल्लवों के समान कोमल चरण तालू वाली तथा अभय वरदान देते हुये प्रकासमान करकमले हे महान् ऐश्वर्य भरे हुये श्री कनकभवन वाली मेरे को अपना कृपाकटाक्ष का पात्र कब बनाओगी ॥ २ ॥ हे बिजली सम चमक स्वर्ण सम स्थिर प्रकाश चम्पकपुष्प सम कोमल गौर रंग श्रीविग्रह वाली हे करोड़ों चन्द्रों की प्रभा को तिरस्कार करने वाले श्री मुखचन्द्रवती विचित्र चित्र सारियों में विचरण करते हुये अपने प्रीतम मुखचन्द्र की हे चकोर कुमारीवत नेत्रवाली श्रीसीता जी आप मुझे अपने कृपाकटाक्ष का पात्र इन विलास स्थानों में कब बनाओगी ॥३॥ प्रमोदवन के रंगविलास में मंगल प्रसंग की वृद्धि के लिये अपनी बक्र भृकुटी से सम्भ्रम सा पैदा करती हुई दृग कटाक्ष बाणों के प्रहार से श्री अवधेशनन्दन को सुन्दर भ्रमित करके निरन्तर के लिये अपने वश में करने वाली हे सीते आप मुझे अपना कृपाकटाक्ष का पात्र कब बनाओगी ॥ ४ ॥ श्री प्रीतम के अनुराग में रंगी हुई विलासको कलाओंमें पण्डिता प्रमदासमूह में मानिनी आदि युवावस्था उन्माद के मद से भूषिता स्वतन्त्र

कुञ्ज समूहों में अनन्त ऐश्वर्यमय मनमाना केलि कला मर्मज्ञा हे सीते इस स्थान में मुझे अपना कृपाकटाक्ष का पात्र कब बनाओगी ॥ ५ ॥ हे स्वर्णोत्पन्न सुष्ठु कलसवत मधुर वक्ष्यस्थले हे हीरादिमणि हारभूषिते पूर्ण आनन्द समुद्र में प्रीतम के अनपच निवृत्यर्थ प्रशंसनीय मन्दहास्य रूप चूर्ण देकर बड़ी धीरता पूर्वक कायिक मानसिक सम्पूर्ण चेष्टाओं से प्रसन्न रखनेवाली इस स्थान में मुझे अपना कृपाकटाक्ष का पात्र कब बनाओगी ॥ ६ ॥ मनोज मुग्ध लालजी मिलने को लालायित हैं हे सीते आप कोमल कमलनाल सदृश भुजलताओं से आनन्द समुद्र के रासरंग तरंग में झूलते हुये लताओं के अग्रभाग सदृश चंचल होकर नीलकमल सदृश अंजन अंजित नेत्रों से अवलोकन (इसारा) करके मोह में डाल रही हैं तौ भी आपही का आश्रय ले रहे हैं ऐसी हे स्वामिनीजू इस स्थान में मेरे को अपनी कृपाकटाक्ष का पात्र कब बनाओगी ॥ ७ ॥ शंख सदृश तीनरेखा युक्त कण्ठ में स्वर्णमाला तथा तिलरी और मंगलसूत्र (दो लर की नीलमणि की गलपोती) और भी रत्न हार जो दूर से ही चमक रहे हैं । इसी प्रकार पुष्प गुच्छ गुम्फित नील घुंघराले चंचल अलकावली से शोभिता हे सीते ! मुझे अपनी कृपाकटाक्ष का पात्र कब बनाओगी ॥ ८ ॥ कमर में फूलों की करधनी से फूलों के गुच्छे लम्बे झूल रहे है उसी में रत्नों के प्रशंसनीय किंकिणियां मनोहर शब्द कर रही हैं तथा गजराज के सूँड़ दण्ड की तरह से सुन्दर उतार चढ़ाववाले आपके ऊरू महासौभाग्य को सूचित कर रहे हैं हे सीते! मेरे को अपनी कृपाकटाक्ष का पात्र कब बनाओगी ॥ ९ ॥ हे स्वामिनीजी आपके सञ्चरण मे नूपरों की आवाज में अनेक दिव्यमन्त्रों का उच्चारण हो रहा है जिनका शब्द निष्क्राण को ध्यान लगाकर सूर्य वंशावतंश राजराजेश्वर श्री राम जी बड़े गौर से सुनते हैं और आपको देखकर सुन्दरता में विभोर होकर क्या यह स्वर्णलता है अथवा क्या है ऐसे चकाचौंधी में चंचल हो जाते हैं इस जगह आप मुझे अपनी कृपाकटाक्ष का पात्र कब बनाओगी ॥ १० ॥ अनन्त विष्णुलोकोंकी कमलायें बड़ी नम्रता पूर्वक आपके श्रीचरणों की पूजा करती हैं और पार्वती इन्द्राणी सरस्वती इन सबने आपकी सेवा में रहकर विविध वरदान पाये हैं आपके सुन्दर श्रीचरणकी अँगुली के प्रत्येक नखों में अपार सिद्धिया हैं जो कि सेवकों को देते २ भी बढ़ते जाते हैं अतः हे सीते इन चरणों में मुझे भी अपनी कृपाकटाक्ष का पात्र कब बनाओगी ॥ ११ ॥ हे श्री विदेहराज कन्यके आप सर्वयज्ञेश्वरी तथा सर्व क्रियाओं की ईश्वरी सर्वविधि

अमृतों की ईश्वरी हैं सर्वदेवों की ईश्वरी तीनों वेदों की ईश्वरी तथा सर्वविध वाँणियों की ईश्वरी प्रमाणिक शास्त्रों की ईश्वरी समस्त शासनों की ईश्वरी अनन्त-रमाओं की ईश्वरी महाक्षमा को ईश्वरी तथा प्रमोदवन अशोकवनादि की स्वामिनी हैं आपको मेरी प्रपत्ति स्वीकार हो ॥ १२ ॥ इस प्रकार श्री भूमि नन्दिनी श्रीसीताजी इस अद्भुत स्तव को सुनैंगी तो अपने आश्रित को सदा केलिये अपना कृपाकटाक्ष का पात्र बना लेवेंगी इस अवस्था में यह जीवात्मा अपने तन वचन मनसे किये सञ्चित क्रियमाण प्रारब्ध रूप कर्मों का नाश होकर फिर श्री चक्रवर्तीकुमार श्रीसीता-रामजीके श्रीमहलमें प्रवेश पा जाएगा ॥ १३ ॥ सुन्दर बुद्धि का साधक इस स्तव को पूर्णमासी नवमी दशमी एकादशी त्रयोदशी इन तिथियों में पवित्र विचार से यदि पढ़ेगा तो ॥ १४ ॥ साधक को जो जो मन में कामना होगी श्री सीता जी की कृपा दृष्टि से सब पूरी होगी तथा सुद्धानुरागमय भक्ति भी होगी ॥ १५ ॥ दध् धातु ग्रहण या अधिकार—अर्थ में होने से अर्थ होगा कि श्री सीताकुण्ड के जंघा भर जल में या नाभी भर या हृदय तक या कण्ठ भर जल में बूड़ कर जो साधक-इस स्तव का पाठ सौबार करेगा तो ॥ १६ ॥ उस साधक के सब मनोरथ सिद्ध हो जायेंगे तथा दिव्यवाणी खुल जायगी और सभी ऐश्वर्य प्राप्त कर लेगा नेत्रों से साक्षात् श्री जानकी जी का दर्शन मिल जायगा ॥ १७ ॥ पूर्वोक्त स्तुति द्वारा शीघ्र हो महाप्रसन्न होकर वरदान देती हैं जिससे उनके पतिदेव श्री रामचन्द्र जी के श्याम सुन्दर श्री विग्रह का प्रत्यक्ष दर्शन होगा ॥ १८ ॥ तथा श्री रघुत्तम जी अपने नित्य लीलास्थान श्री साकेत में प्रवेश करा लेवेंगे इससे अतिरिक्त श्रीवैष्णवों को कुछ नहीं माँगना चाहिये ॥ २० ॥

❀ श्री भरताग्रजाष्टकम् ❀

हे जानकीश वरसायकचापधारिन्; हे विश्वनाथ रघुनायक देव देव । हे राजराज जनपालक धर्मपाल. त्रायस्वनाथ भरताग्रज दीन बन्धो ॥१॥ हे सर्ववित् सकलशक्तिनिधे दयाब्धेहे; सर्वजित् हे परशुरामनुतप्रवीर । हे पूर्णचन्द्रविमलानन, वारिजाक्ष, त्रायस्वनाथ भरताग्रज दीन बन्धो ॥२॥ हे रामबद्ध वरुणालय हे खरारे; हे रावणान्तक विभीषणकल्प बृक्ष । हे पन्नजेन्द्र शिववन्दितपादपद्म, त्राय स्वनाथ भरताग्रज दीनबन्धो ।३। हे दोषशून्य सुगुणार्णव दिव्यदेहिन्; हे सर्वकृत्

सकलहार्चिदचिद्विशिष्ट । हे सर्वलोक परिपालक सर्वमूल; त्रायस्वनाथ भरताग्रज दीन बन्धो ४। हे सर्वसेव्य सकलाश्रय शीलसिन्धो, हे मुक्तिद प्रपदनाद् भजनात्तथा च । हे पापहृत पतितपावन राघवेन्द्र; त्रायस्वनाथ भरताग्रज दीनबन्धो ।५। हे भक्तवत्सल सुखप्रद शान्तमूर्ते, हं सर्वकर्मफलदायक सर्वपूज्य । हे न्युन कर्मपरिपूरक वेद वेद्य, त्रायस्वनाथ भरताग्रज दीन बन्धो ।६। हे जानकारमण हे सकलान्तरात्मन्, हे योगिवृन्दरमणास्पदपादपद्म । हे कुम्भजादिमुनिपूजित हे परेश; त्रायस्वनाथ भरताग्रज दीन बन्धो ।७। हे वायुपुत्र परितोपित तापहारिन्, हे भक्तिलभ्य वरदायक सत्यसन्ध । हे रामचन्द्र सनकादिमुनीन्द्रवन्द्य, त्रायस्वनाथ भरताग्रज दीनबन्धो ।८। श्रीमद्भरतदासेन मुनिराजेन निर्मितम् । अष्टकं भवतादेतत् पठतां श्रेयसे सताम् ।।९।।

अब पाठकगण जगत्गुरु श्रीस्वामी आदि श्री शंकराचार्य जी महाराजकृत चर्पट मंजरी द्वारा सदुपदेश ग्रहण करें ।।

चर्पटमञ्जरी

—: भाषाटीकया सहिता :—

भज गोविन्दं भज गोविन्दं गोविन्दं भज मूढमते ! प्राप्ते सन्निहिते मरणे नहि नहि रक्षति 'डुकृञ् करणे' ।१। दिनमपि रजनी सायं प्रातः शिशिरवसन्तौ पुनरायातः । कालः क्रीडति गच्छत्यायुस्तदपि न मुञ्चत्याशावायुः ।२। भज गोविन्द भज गोविन्दं गोविन्दं भज मूढमते ! बालस्तावत्क्रीडासक्तस्तरुणस्तावत्तरुणीरक्तः । वृद्धस्तावच्चिन्तामग्नः परे ब्रह्मणि कोऽपि न लग्नः ।३। भज गोविन्दं भज गोविन्दं गोविन्दं भज मूढमते ! अङ्गं गलितं पलितं मुण्डं दशनविहीनं जातं तुण्डम् । वृद्धो याति गृहीत्वा दण्डं तदपि न मुञ्चत्याशापिण्डम् ।४। भज गोविन्दं भज गोविन्दं गोविन्दं भज मूढमते । पुनरपि जननं पुनरपि मरणं पुनरपि जननीजठरे शयनम् । इह ससारे खलु दुस्तारे कृपयाऽपारे पाहि मुरारे ।५। भज गोविन्दं भज गोविन्दं गोविन्दं भज मूढमते ? पुनरपि रजनी

पुनरपि दिवसः पुनरपि पक्षः पुनरपि मासः । पुनरप्ययनं पुनरपि वर्षं, तदपि न मुञ्चत्याशामर्षम् ॥५क॥ भज गोविन्दं भज गोविन्दं गोविन्दं भज मूढमते ?
जटिलो मुण्डी लुञ्चितकेशः काषायाम्बरबहुकृतवेषः । पश्यन्नपि न च पश्यति मूढः उदरनिमित्तं बहुकृतवेषः ॥६॥ भज गोविन्दं भज गोविन्द गोविन्दं भज मूढमते
वयसि गते कः कामविकारः शुष्के नीरे कः कासारः । क्षीणे वित्ते कः परिवारः ज्ञाते तत्त्वे कः संसारः ॥७॥ भज गोविन्दं भज गोविन्दं गोविन्द भज मूढमते ?
अग्रे वह्निः पृष्ठे भानू रात्रौ चिबुकसमर्पितजानुः । करतलभिक्षा तरुतलवासस्तदपि न मुञ्चत्याशापाशः ॥८॥ भज गोविन्दं भज गोविन्द गोविन्द भज मूढमते !
यावद्वित्तोपार्जनशक्तस्तावन्निजपरिवारे रक्तः । पश्चाज्जर्जरभूते देहे वार्त्तां कोऽपि न पृच्छति गेहे ॥९॥ भज गोविन्द भज गोविन्दं गोविन्दं भज मूढमते !
रथ्याकर्पटविरचितकन्थः पुण्यापुण्यविवर्जितपन्थः । न त्वं न हं नायं लोकस्तदपि किमर्थं क्रियते शोकः ॥१०॥ भज गोविन्दं भज गोविन्द गोविन्दं भज मूढमते !
नारीस्तनभरनाभिनिवेशं मिथ्या मायामोहावेशम् । एतन्मांसवसादिविकारं मनसि विचारय वारंवारम् ॥११॥ भज गोविन्द भज गोविन्द गोविन्दं भज मूढमते !
गेयं गीतानामसहस्रं ध्येयं श्रीपतिरूपमजस्रम् । नेयं सज्जनसङ्गे चित्तं देयं दीन-जनाय च वित्तम् ॥१२॥ भज गोविन्दं भज गोविन्दं गोविन्दं भज मूढमते !
भगवद्गीता किञ्चिदधीता गङ्गाजललवकणिका पीता । येनाकारि मुरारेरर्चा तस्य यमः किं कुरुते चर्चाम् ।१३। भज गोविन्दं भज गोविन्द गोविन्दं भज मूढमते !
कोऽहं कस्त्वं कुत आयातः को मे जननी को मे तातः । इति परिभावय सर्वमसारं सर्वं त्यक्त्वा स्वप्नविचारम् ।१४। भज गोविन्दं भज गोविन्दं गोविन्द भज मूढ-मते ! का ते कान्ता कस्ते पुत्रः संसारोऽयमतीव विचित्रः । कस्य त्वं कः कुत आयातस्तत्त्वं चिन्तय मनसि भ्रातः ।१४। भज गोविन्दं भज गोविन्दं गोविन्दं भज मूढमते ! सुरतटिनीतरुमूलनिवासः शय्याभूतलमजिनं वासः । सर्वपरिग्रह-भोगत्यागः कस्य सुखं न करोति विरागः ।१६। भज गोविन्दं भज गोविन्दं

गोविन्दं भज मूढमते ! सुखतः क्रियते रामाभोगः पश्चाद्धन्त ! शरीरे रोगः । यद्यपि लोके मरणं शरणं तदपि न मुञ्चतिपापाचरणम् ।१७। भज गोविन्दं भज गोविन्द भज मूढमते ! कुरुते गंगा सागर गमनं व्रतपरिपालनमथवा दानम् । ज्ञानविहीने सर्वमतेन, मुक्तिर्न भवति जन्मशतेन ॥१८॥ भज गोविन्दं भज गोविन्द गोविन्दं भज मूढमते !

गुरुजन उपदेश करते हैं कि जड़मते ! इस मिथ्या आशा को छोड़कर गोविन्द का भजन कर । यदि तू गोविन्द का भजन नहीं करता है तो मृत्यु समीप आने पर 'डुकृञ् करणे' आदि वाक्य तेरी रक्षा न कर सकेंगे ॥ १ ॥ भगवती प्रकृतिदेवी की लीलाभूमि इस संसार में दिन होता है, रात्रि होती है, प्रातः और सायं समय भी होते हैं, शिशिर और वसन्त आदि ऋतुएँ भी आती रहती हैं इस प्रकार काल अपनी गति मे चलता हुआ खेल कर रहा है और साथ ही हमारी आयु भी घटती जा रही है तिस पर भी हम लोग आशारूपी वायु के चक्कर में पड़कर इधर-उधर भटकते फिरते हैं । वह आशारूपी वायु हमारा पीछा नहीं छोड़ती है अतः हे मूढ़ ! गोविन्द का भजन कर ॥ २ ॥ जब तक तू बालक था तब तक खेलने में ही लगा था । जब तक तू तरुण (जवान) था तब तक तो नवयुवतियों में ही मन लगाकर समय गँवाया । उसके बाद जब बुढ़ापा ने आ घेरा तो सदा चिन्ता में ही डूबा रहा । कभी एक क्षण भी परब्रह्म में चित्त नहीं लगाया । अतः हे अज्ञानी ! अब तो गोविन्द का भजन कर ॥ ३ ॥ शरीर के सब अङ्ग गल गये हैं; शिर के बाल केवल पके ही नहीं हैं. शिर गंजा हो गया है, शिर के बाल गिर गये हैं । मुख में एक भी दाँत नहीं है, बुढ़ापा आ गया है । छड़ी के सहारे चलता है । तिस पर भी यह वृद्ध आशा का पिण्ड नहीं छोड़ता है । अरे मूर्ख ! तू आशा को छोड़कर गोविन्द का भजन कर ॥ ४ ॥ बार-बार जन्म हुआ और बार-बार मरण हुआ, बार-बार माता के गर्भ में शयन करना पड़ा किन्तु इस दुस्तर (कठिनाई से पार किये जाने वाले) संसार में आकर कभी यह भी नहीं कहा कि 'हे मुरारे ! इस जन्म-मरण के दुःख से मेरी रक्षा करो ।' अतः हे मूढ़ ! अब गोविन्द का भजन कर ॥ ५ ॥ लगातार दिन, रात, पक्ष, मास, अयन और वर्ष व्यर्थ बीतते जा रहे हैं तथापि आशा और द्वेष नहीं छूटते हैं । हे मूर्ख ! इस माया-जाल को छोड़कर तू गोविन्द का भजन कर ॥ ५क ॥ शिर पर जटा बढ़ायी मूड़ मुड़ाया, बालों को नोच डाला गेरुआ

रंगका वस्त्र धारण किया, औरभी अनेक प्रकारकाभेष बनाया, देखताहुआ भी संसार कोनहीं देखताहै, केवल पेट भरनेके लिए बहुतरूप बनाया ।हेमूर्ख ! यहसब नहीं प्रपञ्च छोड़कर गोविन्द का भजन कर ॥ ६ ॥ अवस्था बीत जाने पर अर्थात् बृद्धावस्था आने पर काम-विकार ही क्या ? अर्थात् व्यर्थ ही है । पानी सूख जाने पर तालाब, पोखरा आदि का क्या महत्व ? कुछ भी नहीं । जब पास में धन नहीं है तो परिवार कौन ? कोई नहीं । पास में धन रहे तो सभी घेरे रहते हैं । इसी तरह तत्त्वज्ञान हो जाने पर संसार क्या ? कुछ भी नहीं । अज्ञान ही संसार की जड़ है । अतः हे मन्दमते ! ज्ञान प्राप्त करने के लिए तू गोविन्द का भजन कर ॥ ७ ॥ जाड़े के दिनों में प्रातःकाल ठंड दूर करने के लिए सामने आग रखी है और पीठ पर सूर्य की किरणें गर्मी पहुंचा रही हैं । रात्रि में जाड़े के मारे घुटनों के बीच में ठुडढी दबाकर बैठे हैं । हाथ पर भीख माँगकर खाते हैं, पास पात्र नहीं है, पेड़ के नीचे निवास करते हैं, घर नहीं है । ऐसी दशा होने पर भी आशारूपी पाश (बन्धन) को नहीं छोड़ते हैं । अतः हे अज्ञानी ! तू आशापाश को छोड़कर गोविन्द का भजन कर ॥ ८ ॥ जब तक धन कमाने की शक्ति रही तब तक परिवार के लोग भी बात पूछते हैं, धन कमानेवाला मनुष्य अपने परिवार में ही फँसा रहता है । वृद्धावस्था आने पर शरीर जर्जर (शिथिल और दुर्बल) हो जाने पर धन कमाने योग्य न रहने पर, घर में कोई बात भी नहीं पूछता है । अतः हे मूढ़ ! यह सब माया-प्रपञ्च छोड़कर गोविन्द का भजन कर ॥ ९ ॥ गली के चीथड़ों की कथरी बनी है, पुण्य और पाप के विचार से रहित मार्ग है, न मैं हूँ, न तुम हो और न यह संसार है, तो क्यों शोक करते हो, चिन्ता करते हो । शोक को छोड़कर तू गोविन्द का भजन कर ॥ १० । कामिनियों के उन्नत कुचों और नाभि को तथा मायामय वेश को देखकर लालची मत बनो किन्तु मन में बारंबार ऐसा विचार करो कि यह सब मांस और चर्बी का विकार हैं । यह सब भ्रम को छोड़कर तू गोविन्द का भजन कर ॥ ११ ॥ गीता और सहस्त्रनाम गाने योग्य हैं, पाठ करने योग्य हैं श्रीपति भगवान् विष्णु का रूप ही ध्यान करने योग्य है, सज्जन लोगों की सङ्गति में ही मन लगाना चाहिए और दीन (गरीब) लोगों को ही धन देना चाहिये । मूर्ख तू गोविन्द का भजन कर ॥ १२ ॥ जिस किसी ने थोड़ी-सी गीता पढ़ी हो, और गङ्गाजल का एक कण [बूँद] भी पिया हो और एक बार भी भगवान् की पूजा की हो तो यमराज उसकी चर्चा नहीं करते हैं । अतः हे मूर्ख ! तू गोविन्द का भजन कर ॥ १३ ॥ तुम कौन हो, मैं कौन हूँ, कहाँ से आया, कौन मेरी माता है और कौन पिता है ? इन सब झूठे विचारों को तथा संसार को

असार (व्यर्थ) और स्वप्न समझकर उसका त्याग करो, और गोविन्द का भजन करो, गोविन्द का भजन करो ॥ १४ ॥ तुम्हारी प्रिय पत्नी कौन है ? तुम्हारा पुत्र कौन है ? यह संसार बहुत ही विचित्र, विलक्षण है। किसका तू है ? कहाँ से आया है ? हे भाई ! मन में तो इन सब प्रश्नों का विचार कर तत्त्व का विचार कर। इन सब का उत्तर पाने के लिए तू गोविन्द का भजन कर ॥ १५ ॥ गङ्गाजी के तट पर वृक्षों के नीचे निवास, भूमि ही शय्या, मृगछाला ही वस्त्र, सब प्रकार के परिग्रह [संग्रह] और भोग-विलास का त्याग ऐसा वैराग्य किसको सुख नहीं देता अर्थात सबको सुख देता है। हे मूर्ख ! तू गोविन्द का भजन कर ॥ १६ ॥ सुख की इच्छा से स्त्री के साथ भोग किया जाता है किन्तु अन्त में शरीर रोगी हो जाता है। यह खेद है। लोग यह जानते हैं कि इस संसार में आकर मरना निश्चित है फिर भी पाप करना नहीं छोड़ते हैं ! अतः हे विषयी जीव तू पाप से मुख मोड़कर गोविन्द का भजन कर ॥ १७ ॥ चाहे गंगा; सागर आदि तीर्थों की यात्रा करो, अनेक व्रतों का पालन करो, अथवा दान करो किन्तु ज्ञान न होने से सौ जन्म में भी मुक्ति नहीं हो सकती। अतएव हे जड़मति ! तू माया के सब प्रपञ्चों को त्यागकर गोविन्द का भजन कर जिससे तुम्हारा कल्याण हो ॥ १८ ॥

ज० गु० स्वामी श्री शंकराचार्य रचित प्रश्नोत्तरी के प्रश्न और उत्तरों को पाठक समझने का प्रयास करेंगे, तो यह लघु पुस्तिका द्वारा ही मोह को त्यागकर भगवत्कृपा के अधिकारी बन सकते हैं ॥

❀ प्रश्नोत्तरी ❀

अपारसंसारसमुद्रमध्ये सम्मज्जतो मे शरणं किमस्ति । गुरो कृपालो कृपया वदैतद्विश्वेशपादाम्बुजदीर्घनौका ।१। बद्धो हि को यो विषयानुरागी का वा विमुक्तिर्विषये विरक्तिः । को वास्ति घोरो नरकः स्वदेहः तृष्णाक्षयः स्वर्गपदं किमस्ति ।२। संसार हृत्कः श्रुति जात्मबोधः को मोक्षहेतुः कथितः स एव । द्वारं किमेक नरकस्य नारी का स्वर्गदा प्राणभृतामहिंसा ।३। शेते सुखं कस्तु समाधिनिष्ठो जागर्ति को वा सदसद्विवेकी । के शत्रवः सन्ति जितेन्द्रियाणि तान्येव मित्राणि जितानि यानि ।४। को वा दरिद्रो हि विशालतृष्णः श्रीमांश्च को यस्य समस्ततोषः । जीवन्मृतः कस्तु निरुद्यमो यः किं वामृतं स्यात्सुखदा

निराशा ॥५॥ पाशो हि को यो ममताभिमानः सम्मोहयत्येव सुरेव का स्त्री । को वा महान्धो मदनातुरो यो मृत्युश्च को वापयशः स्वकीयम् ॥६॥ को वा गुरुर्यो हि हितोपदेष्टा शिष्यस्तु को यो गुरुभक्त एव । को दीर्घरोगो भव एव साधो किमौषधं तस्त विचार एव ॥७॥ किं भूषणाद्भूषणमस्ति शीलं तीर्थं परं किं स्वमनो विशुद्धम् । किमत्रहेयं कनकं च कान्ता श्राव्यं सदा किं गुरुवेदवाक्यम् ॥ ८ ॥

* प्रश्नोत्तरी *

शिष्य ने पूछा कि—हे दयामय श्री गुरुदेव जी ! आप हमें कृपा करके यह बतालाइये कि—अपार संसारसागर में मुझ डूबते हुये का आश्रय क्या है ? तब पूज्य स्वामी जी ने कहा कि—विश्वात्मा जगतपति भगवान् श्रीहरि के श्रीचरणकमल रूपी सुदृढ़ एवं विस्त्रित नौका (जहाज) का आश्रयण करता व्यक्ति सरलता पूर्वक संसारसागर से पार हो सकता है ॥ १ ॥ प्र०—वास्तव में बँधा कौन हैं । उ०—विषयों में आशक्त जीव । प्र०—विमुक्त क्या हैं । उ०—सभी विषयों पूर्णतया वैराग्य हो जाना । प्र०—घोर नरक क्या है । उ०—अपना शरीर । प्र०—स्वर्ग का पद क्या है । उ०—तृष्णा का नाश होना ॥ २ ॥ प्र०—संसार को हरनेवाला कौन है । उ०—वेद से उत्पन्न आत्म और परमात्मज्ञान । प्र०—मोक्षका कारण क्या कहा गया है । उ०—आत्मा तथा परमात्मा का दिव्य ज्ञान । प्र०—नरक का प्रधान द्वार क्या है । उ०—स्त्री में आशक्ति । प्र०—स्वर्ग को देनेवाली वृत्ति क्या है । उ०—जीवमात्र की अहिंसा ॥ ३ ॥ प्र०—सुख से कौन सोता है । उ०—जो भगवद्भजन परायण होकर भगवद्रूप में तन्मय रहता है । प्र—जागता कौन है । उ०—सत् रूप भगवान् श्री हरि को जानकर उनकी भक्ति परायण और असत् रूप मायाकृत अज्ञान भ्रम मोह एवं विषयों से वैराग्यवान । प्र०—शत्रु कौन है । उ०—विषयाशक्त अपनी इन्द्रियाँ किन्तु यदि संयम द्वारा उनको वश में करले तो वही परममित्र भी है ॥ ४ ॥ प्र०—दरिद्र कौन है । उ०—भारी तृष्णा । प्र०—धनवान् कौन है । उ०—जो सर्वदा सबप्रकार सन्तुष्ट रहता है । प्र०—जीते जी मरा कौन है । उ०—जो पुरुषार्थ हीन है । प्र०—अमृत क्या हो सकता है । उ०—संसार के सभी प्राणियों से निराश होकर भगवान् श्री हरि की आशा रखना ॥ ५ ॥ प्र०—फाँसी क्या है । उ०—मैं और मेरे पन की आशक्ति । प्र०—क्या बस्तु मदिरा की भाँति मोहित कर देती है । उ०—स्त्री का

सौन्दर्य और उसमें भोग्यत्व बुद्धिपूर्वक प्रियता । प्र०-सबसे बड़ा अन्धा कौन है । उ०-काम व्यथा व्यथित व्यक्ति । प्र०-मृत्यु क्या है । उ०-अपनी अपकीर्ति ॥ ६ ॥ प्र०-गुरु कौन है । उ०-जो परम हितकारी आत्मा और परमात्मा का दिव्य ज्ञान प्रदान करै । अपने सदुपदेश द्वारा शिष्य का मोह अज्ञान भ्रम दूर करके भगवत्पादारविन्दकीभक्ति करनेकी प्रेरणादे । प्र०शिष्यकौनहै उ०जो श्रद्धाभक्ति भावनापूर्वक गुरुके सदुपदेश का पालन करते हुये भगवत्भजन परायण होकर गुरु का सत्कार करे । प्र०-सबसे बड़ा रोग क्या है । उ०-बार बार जन्म लेना और मरना । प्र०-इस जन्म मृत्यु रूपी रोग से मुक्त होने की औषधि (दवा) क्या है । उ०-भगवत्तत्त्व का मनन करना ही ॥ ७ ॥ सब भूषणों में सबसे उत्तम भूषण क्या है । उ०-उत्तम चरित्रवान होना । प्र०-सबसे उत्तम तीर्थ क्या है । उ०-विशेष रूप से शुद्ध किया हुआ अपना मन जो भगवद्भजन प्रिय हो । प्र०-इस संसार में त्यागने योग्य क्या है । उ०-सम्पत्ति, लोकप्रतिष्ठा स्त्री में भोग्यत्व बुद्धि पूर्वक आशक्ति । प्र०-मन लगाकर ध्यान से सर्वदा सुनने योग्य क्या है । उ०-वेद शास्त्रादि एवं गुरुजनों के अमृतमय सदुपदेश ॥ ८ ॥

के हेतवो ब्रह्मगतेस्तु सन्ति सत्सङ्गतिर्दानविचारतोषाः । के सन्ति सन्तोऽखिल-वीतरागा अपास्तमोहाः शिवतत्त्वनिष्ठाः ॥९॥ को वा ज्वरःप्राणभृतां हि चिन्ता मूर्खोऽस्ति को यस्तु विवेकहीनः । कार्या प्रिया का शिवविष्णुभक्तिः किं जीवनं दोषविवर्जितं यत् ॥१०॥ विद्या हि का ब्रह्मगतिप्रदा या बोधो हि को यस्तु विमुक्तिहेतुः । को लाभ आत्मावगमो हि यो वै जितं जगत्केन मनो हि येन ॥११॥ शूरान्महाशूरतमोऽस्ति को वा मनोजबाणैर्व्यथितो न यस्तु । प्राज्ञोऽथ धीरश्च समस्त को वा प्राप्तो न मोहं ललनाकटाक्षैः ॥१२॥ विषाद्विषं किं विषयाः समस्ता दुःखी सदा को विषयानुरागी । धन्योऽस्ति को यस्तु परोपकारी कः पूजनीयः शिवतत्त्वनिष्ठः ॥१३॥ सर्वास्ववस्थास्वपि किन्न कार्यं किं वा विधेयं विदुषां प्रयत्नात् । स्नेहं च पापं पठनं च धर्मं संसारमूले हि किमस्ति चिन्ता ॥१४॥ विज्ञान्महाविज्ञतमोऽस्ति को वा नार्या पिशाच्या न च वञ्चितो यः । का शृङ्खला प्राणभृतां हि नारी दिव्यंव्रतं किं च समस्तदैन्यम्॥१५॥ज्ञातुं न सक्यं

च किमस्ति सर्वैर्योषिन्मनो यच्चरितं तदीयम् । का दुस्त्यजा सर्वजनैर्दुराशा विद्याविहीनः पशुरस्ति को वा ॥१६॥

प्र०-परमात्मा की प्राप्ति के क्या साधन हैं । उ०-सत्संग, सात्त्विकदान, सन्तोष एवं भगवत्तत्व का मनन करना । प्र०-महात्मा कौन है । उ०-समस्त संसार से जिनकी आशक्ति नष्ट हो गई है । और सततकाल भगवान् श्री हरि के नाम, रूप लीला धाम की उपासना में दत्तचित्त से लगे रहते हैं । एवं प्राणिमात्र के कल्याण की भावना करते हैं । जिनका अज्ञान नष्ट हो चुका है । और जो परम मंगलमय कल्याणस्वरूप भगवत्तत्व में स्थित (तन्मय) हैं ॥ ९ ॥ प्र०-प्राणियों केलिये वास्तव में ज्वर क्या है । उ०-चिन्तामग्न रहना । प्र०-मूर्ख कौन है । उ०-जो विचारहीन है चाहे अशिक्षित हो या शिक्षितहो । प्र०-करने योग्य प्रिय क्रिया क्या है ? उ० भक्त और भगवान् की भक्ति । प्र०-वास्तव में जीवन कौन सा है । उ० जो सर्वथा निर्दोष है ॥ १० ॥ प्र०-वास्तविक विद्या कौन सी है । उ०-जिसके द्वारा भगवत्प्राप्ति हो जाये । यदि कई विद्याओं का ज्ञाता भी भगवत्प्राप्ति के मार्ग पर अग्रसर नहीं हो रहा है । तो उसकी समस्त विद्यायें निरर्थक जैसी ही हैं । प्र०— वास्तविक ज्ञान क्या है । उ०-जो यथार्थ रूप से आत्मा परमात्मा को लक्ष्य कराकर मुक्ति स्वरूप भगवत्प्राप्ति करादे । प्र०-यथार्थ लाभ क्या है । उ -भगवत्प्राप्ति । प्र०-जगत को किसने जीता है ? उ०-जिसने अपने मन को जीत लिया ॥ ११ ॥ प्र०-शूरवीरों में सबसे अधिक शूर वीर कौन है ? उ०-जो परमसौन्दर्यवती नवयुवती को देखकर भी कामवाणों से पीड़ित नहीं होता है । प्र०-बुद्धिमान् समदर्शी और धीर पुरुष कौन है । उ०-जो प्रमदाओं के कटाक्षों के द्वारा मोहित न हो ॥ १२ ॥ विष से भी भारी विष क्या है । उ०-सभी विषय भोग । प्र०-सदा दुखी कौन है । जो अनित्य भोगों में आशक्त है । प्र०-धन्यवाद का पात्र कौन है । उ०-जो जीवमात्र का उपकार करता है । प्र०-पूज्यनीय कौन है । उ०-कल्याण स्वरूप भगवान् श्री हरि में तन्मयता प्राप्त महात्माजन ॥ १३ ॥ प्र०-सभी अवस्थाओं में विद्वानों को क्या नहीं करना चाहिये । उ० संसारी वस्तु व्यक्ति परिस्थिति में आशक्ति अन्याय एवं पाप । प्र०-करना क्या चाहिये । उ०-वेद शास्त्रादि श्रीरामायण गीता भागवत इत्यादि सद्ग्रन्थों का पठन पाठन तथा धर्म का पालन । प्र०-संसार का मूल क्या है । उ०-उसका बार बार चिन्तन करना ही ॥ १४ ॥ प्र०-ज्ञानियों में श्रेष्ठ ज्ञानी कौन है । उ०-जो स्त्री रूप पिशाचिनी से ठगा नहीं गयाहै । प्र०-प्राणियों के लिये साँकल क्या है । उ०-नारी ।

प्र०-श्रेष्ठ ब्रत क्या है । उ -विनम्रता पूर्वक दैन्यतानुसंधान करना ॥ १५ ॥ प्र०-क्या जानना सभी के लिये सम्भव नहीं है । उ०-स्त्री का मन और उसका चरित्र। प्र०-क्या त्यागना सभी के लिये अत्यन्त कठिन है । उ०-अनुचित बासनायें (विषय भोग और पाप की इच्छायें) प्र०-पशु कौन है । उ०-जो सद्विद्या से रहित [मूर्ख] है, यहाँ पर मूर्ख कहने का आसय है विचार विहीन पशुवत आचरण करनेवाला। कई विद्याओं को पढ़ने पर भी उचित अनुचित का बिना विचार किये कार्य करता भो पशु समान ही है ॥ १६ ॥

वासो न सङ्गः सह कैर्विधेयो मूर्खैश्च नीचैश्च खलैश्च पापैः । मुमुक्षुणा किं त्वरितं विधेयं सत्सङ्गतिर्निर्ममतेशभक्तिः ॥१७॥ लघुत्वमूलं च किमर्थितैव गुरुत्वमूलं यदयाचनं च । जातो हि को यस्य पुनर्न जन्म को वा मृतो यस्य पुनर्न मृत्युः ॥१८॥ मूकोऽस्ति को वा बधिरश्च को वा वक्तुं न युक्तं समये समर्थः । तथ्यं सुपथ्यं न श‍ृणोति वाक्यं विश्वासपात्रं न किमस्ति नारी ॥१९॥ तत्त्वं किमेकं शिवमद्वितीयं किमुत्तमं सच्चरितं यदस्ति । त्याज्यं सुखं किं स्त्रियमेव सम्यग्देयं परं किं त्वभयं सदैव ॥२०॥ शत्रोर्महाशत्रुतमोऽस्ति को वा कामः सकोपानृतलोभतृष्णः । न पूर्यते को विषयैः स एव किं दुःखमूलं ममताभिधानम् ॥२१॥ किं मण्डनं साक्षरता मुखस्य सत्यं च किं भूतहितं सदैव। किं कर्म कृत्वा न हि शोचनीयं कामारिकंसारिसमर्चनाख्यम् ॥२२॥ कस्यास्ति नाशे मनसो हि मोक्षः क्व सर्वथा नास्ति भयं विमुक्तौ । शल्यं परं किं निजमूर्खतैव के के ह्युपास्या गुरुदेववृद्धाः ॥२३॥ उपस्थिते प्राणहरे कृतान्ते किमाशु कार्यं सुधिया प्रयत्नात् । वाक्कायचित्तैः सुखदं यमघ्नं मुरारिपादाम्बुजचिन्तनं च ॥२४॥

प्र०-किन किन के साथ निवास और संग नहीं करना चाहिये । उ०-मूर्ख नीच, दुष्ट और पापियों का न तो विशेष संग करना चाहिये; न उनके साथ निवास करना चाहिये । अन्यथा उनके दोष दुर्गुण अपने में भी आजायेंगे । प्र०-मुक्ति चाहनेवालों को तुरन्त क्या करना चाहिये । उ०-सत्संग, ममता का त्याग और भगवद्भक्ति करनी चाहिये ॥ १७ ॥ प्र०-छोटेपन की जड़ क्या है । उ०-माँगना ही । प्र०-बड़े होने की जड़ क्या है । उ०-किसी से कुछ न माँगना । प्र०-किसका जन्म प्रसंशनीय । उ०-

जिसका पुनः जन्म न हो। प्र०-किसकी मृत्यु प्रसंशनीय है। उ०-जिसकी फिर कभी मृत्यु नहीं होती, अर्थात् जन्म मरण से मुक्त हो जाने वाले की। भगवद्भक्ति करने वाले का ही जन्म और मृत्यु दोनों ही प्रशंसनीय हैं भगवद्विमुखों का जन्म और मृत्यु दोनों ही निन्दनीय है ॥ १८ ॥ प्र०-गूँगा कौन है। उ०-जो समयपर उचित बात नहीं कह पाता है। प्र०-बहिरा कौन है। उ०-जो व्यक्ति यथार्थ और हितकर बचन नहीं सुनता है। प्र०-विश्वास के योग्य कौन नहीं है। उ०—नारी ॥ १९ ॥ प्र०-प्रधान तत्त्व क्या है। उ०-भगवान् श्री हरि ही परमतत्त्व हैं। जेहि समान अतिसय नहिं कोई। न तत्समश्चाभ्यधिकश्चदृश्यते। अर्थात् कोई जिसके समान या अधिक नहीं है। वह परमात्मा परमतत्त्व है। प्र०-सबसे उत्तम क्या है। उ०-उत्तम और पवित्र आचरण। प्र०-कौनसा सुख तज देना चाहिये। उ०-स्त्रीमें भोग्यत्वबुद्धि एवं उसका अंग संग। प्र०-देने योग्य उत्तम दान क्या है। उ०-सभी को सर्वदा अभय कर देना ॥ २० ॥ प्र०-शत्रुओं में बड़ा शत्रु कौन है। उ०-क्रोध झूठ, लोभ, और तृष्णा सहित काम। प्र०-विषयों से कौन तृप्त नहीं होता। उ० काम की वासना। प्र०-दुःख की जड़ क्या है। उ०-बस्तु व्यक्ति में आशक्ति होना ॥ २१ ॥ प्र०-मुख का भूषण क्या है। उ०-विद्वत्तापूर्ण प्रिय एवं हितकर बचन। प्र०-सच्चा कर्म क्या है। उ०-सर्वदा प्राणिमात्र का हित करना। प्र० कौन सा कर्म करके पछताना नहीं पड़ता। उ०-भक्त और भगवान् का पूजन अर्थात् भक्तवर श्री शंकर जी एवं भगवान् श्री कृष्ण जी का पूजन ॥ २२ ॥ प्र०-किसके नाश होने में मोक्ष होता है। उ०-मन की चंचलता के। प्र०-किसमें सर्वथा भय नहीं है। उ०-भगवत्प्राप्ति मोक्ष में। प्र०-सबसे अधिक चुभनेवाली बस्तु क्या है। उ०-अपनी ही मूर्खता। प्र०-उपासना के योग्य कौन हैं। उ०-वृद्ध, गुरु एव देवादिदेव भगवान् श्री हरि और भगवद्भक्ति ॥ २३ ॥ प्र०-प्राण हरनेवाले काल के आने पर सद्बुद्धिवालों को बड़े यत्न पूर्वक तुरन्त क्या करना उचित है। उ०-समस्त विश्व के प्राणिमात्र को सुख प्रदान करनेवाले, और मृत्यु का नाश करनेवाले मुरारि (भगवान् श्री हरि के चरण कमलों का एकाग्रचित्त से चिन्तनन ही करना चाहिये ॥ २४ ॥

के दस्यवः सन्ति कुवासनाख्याः कः शोभते यः सदसि प्रविद्यः। मातेव का या सुखदा सुविद्या किमेधते दानवशात्सुविद्या ॥२५॥ कुतो हि भीतिः सततं विधेया लोकापवादाद्भवकानाच। को वातिबन्धुः पितरश्च के वा विपत्सहायः परिपालका ये ॥२६॥ बुद्ध्वा न बोधय परिशिष्यते किं शिवप्रसादं सुखबोध-

रूपम् । ज्ञाते तु कस्मिन्विदितं जगत्स्यात्सर्वात्मके ब्रह्मणि पूर्णरूपे ॥ २७॥ किं दुर्लभं सद्गुरुरस्ति लोके सत्सङ्गतिर्ब्रह्मविचारणा च । त्यागो हि सर्वस्य शिवात्मबोधः को दुर्जयः सर्वजनैर्मनोजः ॥२८॥ पशोः पशुः को न करोति धर्मं प्राधीतशास्त्रोऽपि न चात्मबोधः । किन्तद्विषं भाति सुधोपमं स्त्री के शत्रवो मित्रवदात्मजाद्याः ॥२९॥ विद्युच्चलं किं धनयौवनायुर्दानं परं किञ्च सुपात्रदत्तम्। कण्ठङ्गतैरप्यसुभिर्न कार्यं किं किं विधेयं मलिनं शिवार्चा ॥३०॥ अहर्निशं कि परिचिन्तनीयं संसारमिथ्यात्वशिवात्मतत्त्वम् । किं कर्म यत्प्रीतिकरं मुरारेः कास्था न कार्या सततं भवाब्धौ ॥३१॥ कण्ठङ्गता वा श्रवणङ्गता वा प्रश्नोत्तराख्या मणिरत्नमाला । तनोतु मोदं विदुषां सुरम्यं रमेशगौरीशकथेव सद्यः ॥ ३२ ॥

प्र०-डाकू कौन है। उ०-अनुचित वासनायें । प्र०-सभा में शोभा कौन पाता है। उ०-जो विद्वत्तापूर्ण सत्य प्रिय मधुर बोलता है । प्र०-माता के समान सुख देनेवाली कौन है । उ०-विचारयुक्त सद्विद्या । प्र०-देने से क्या बस्तु उढ़ती है । उ०-विद्या ॥ २५ ॥ प्र०-निरन्तर किससे डरना चाहिये । उ०-लोक निन्दा तथा संसारी बस्तु व्यक्तियों की आशक्ति से । प्र०-अत्यन्त प्यारा बन्धु कौन है । उ०-जो विपत्ति में सहायता करे । प्र०-पिता कौन है । उ०-जो भलीभाँति पालन पोषण करे ॥ २६ ॥

प्र०-क्या समझने के वाद कुछ भी समझना शेष नहीं रह जाता है । उ०-शुद्ध सच्चिदानन्द घन कल्याण स्वरूप परात्पर परतत्त्व परमपुरुष परमात्मा को । प्र०-किसको जान लेने पर (वास्तव) में जगत् जाना जाता है । उ०-सर्वात्मरूप पूर्णब्रह्म के स्वरूप को ॥ २७॥ प्र०-संसार में दुर्लभ क्या है । उ०-सद्गुरु, सत्संग, ब्रह्मविचार, सर्वस्व का त्याग और कल्याणरूप परब्रह्म परमात्मा का ज्ञान । प्र०-क्या जीतना सबके लिये कठिन है । उ०-कामदेव को ॥ २८ ॥ प्र०-पशुओं से भी बढ़कर कौन है । उ०-जो वेद शास्त्रों का भलीभाँति स्वाध्याय करके धर्म का पालन नहीं करता और जिसे सभी शास्त्र पढ़कर भी आत्मज्ञान नहीं हुआ । प्र०-वह कौन सा विष है, जो अमृत से भी प्रिय जान पड़ता हो । उ०-नारी का सौन्दर्य । प्र०-शत्रु कौन है जो मित्र सा प्रिय लगता है । उ०-पुत्र इत्यादि ॥ २८ ॥ प्र०-विजली

की भाँति क्षणिक क्या है । उ०-धन, यौवन, और आयु । प्र० सर्वोत्तम दान कौनसा है । उ०-जो न्यायपूर्वक परिश्रम से अर्जन किया गया हों, और सुपात्र को दिया जाये । प्र०-कण्ठगत प्राण होनेपर क्याकरना चाहिये और क्या नहीं करना चाहिये? उ०-पापमय अनुचित भाव नहीं करना चाहिये, और परमकल्याणस्वरूप परब्रह्म परमात्मा भगवान् श्री हरि का मंगलमय नाम रूप लीला धाम का ध्यान स्मरण करना चाहिये ॥ ३० ॥ प्र०-रातदिन विशेषरूपसे क्या चिन्तन करना चाहिये । उ०-संसारी बस्तु व्यक्ति व्यवहारों का मिथ्यापन और परमकल्याण स्वरूप परमतत्त्व परब्रह्म परमात्मा को । प्र०-वास्तव में कर्म क्या है । उ०-जो भगवान् श्री हरि को प्रिय हो । प्र०-सर्वदा विश्वास किसमें नहीं रखना चाहिये । उ०—संसार—समुद्र में ॥ ३१ ॥ यह प्रश्नोत्तर नाम की मणिरत्नमाला कण्ठमें या कानों में जाते ही श्रीपति भगवान् श्री हरि और उमापति भगवान् श्री शंकर की कथा की भाँति विद्वानों को सुन्दर आनन्द बढ़ावें ॥ ३२ ॥

मानव-जीवन

सर्वजगत नियन्ता, चराचर व्यापक, भगवान् श्री सीताराम जी की, अहैतुकी अनुकम्पा से प्राप्त, यह मानवदेह प्रयत्न पूर्वक भगवत्भजन करके, आवागमन से मुक्त होने के लिये ही है । केवल भौतिक वस्तुओं का संग्रह करना, सुन्दर भवन निर्माण करवाना; परिवार के साथ जागतिक सम्बन्धों का व्यवहार करके ही अपने को तृप्त, सुखी एवं कृतार्थ मानना, और इन्द्रिय जन्य सुख स्वाद का अनुभव करना मात्र ही मानव का कर्त्तव्य नहीं है । मानवता के कर्त्तव्याकर्तव्यों का विचारपूर्वक बोध होना प्रत्येक मानव को अनिवार्य है । जिस मनुष्य को मानवता एवं मानव के कर्त्तव्यों का बोध नहीं है, वह मानव रूपमें पशु समान ही है ।

मानव जीवन क्या है :—मानवजीवन न तो केवल मनुष्य के शरीरका नाम है, और न केवल आत्मा का ही नाम है । अपितु आत्माका मनुष्य शरीरसे सम्बन्ध काल का ही व्यवहारिक शब्दों में मानवजीवन कहा जाता है । अब विचारना यह है कि मानवता की उपयोगिता और उसके कर्त्तव्य क्या हैं । अपने लिये, संसार केलिये और भगवान् श्री हरि के लिये उपयोगी हो जाना ही, मानवता की उपयोगिता है । तब यह प्रश्न होगा कि अपने लिये, संसार के लिये, एवं भगवान् श्री हरि के लिये उपयोगी कैसे बना जाये । समाधान यह है कि श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ अर्थात् वेद शास्त्रज्ञ

और भगवान् के परमभक्त, महाभागवत् सदाचार परायण, योग्य गुरुको प्राप्त करके, उनके द्वारा श्रीवैष्णवीय पंच संस्कारोंसे संस्कृत होकर श्रीगुरु सेवा करके अर्थपंचक तत्त्वत्रय, अकारत्रय, रहस्यत्रय, को प्राप्त करके, सदाचार पूर्वक भगवान् श्री हरि का भजन करने पर ही मानव अपने लिये, संसार के लिये, और भगवान् के लिये उपयोगी बन सकता है ।

प्रत्येक मानव का परम कर्त्तव्य है कि—जीवन को सदाचार सम्पन्न करके, शरीर सम्बन्धी जागतिक सभी सम्बन्धियों से यथोचित व्यवहार करते हुये, अपने मनमें सततकाल भगवत् भजन स्मरण करते हुये जीवनयापन करे । समय की उपयोगिता भगवत् भजन स्मरण में ही है, जगत व्यवहार कुशलता में नहीं । मनुष्य के अतिरिक्त अन्य कोई भी शरीर या योनि ऐसी नहीं है कि जिसे पाकर जीव भगवान् की भक्ति करके भवसागर से पार हो सके । अनन्तकाल से सभी जीवात्मायें चौरासी लाख योनियों में भटकती हुई महान् कष्ट का अनुभव कर रही हैं । और तब तक इसी प्रकार दुखानुभूति करेंगी कि—जब तक अनन्यभाव से भगवान् का भजन नहीं होगा । वात्सल्यसागर प्रभुकी कृपा से प्राप्त, यह मानवशरीर पाने का एकमात्र फल यही है कि-मन बचन कर्म से अपने को भगवान् का मानकर, अनन्य प्रयोजन होकर श्री हरि भजन करे ॥

व्यास स्मृति २९३ में अ० २ श्लोक-३६ से ४७ तक लिखा है कि- रजोदर्शनतो दोषात्सर्वमेव परित्यजेत् । सर्वैरलक्षिता शीघ्रं लज्जितान्तर्गृहे वसेत् ॥ ३७ ॥ एकांबरावृता दीना स्नानालंकारवर्जिता । मौनिन्यधोमुखी चक्षुः पाणिपद्भिरचंचला ॥ ३८ ॥ अश्नीयात्केवलं भक्तं नक्तं मृन्मयभाजने । स्वपेद्भूमावप्रमत्ता क्षपेदेवमहस्त्रयम् ॥ ३९ ॥ स्नायीत च त्रिरात्रान्ते सचैलमुदिते रवौ । विलोक्य भर्तुर्वदनं शुद्धा भवति धर्मतः ॥ ४० ॥ कृतशौचा पुनः कर्म पूर्ववच्च समाचरेत् । रजोदर्शनतो याः स्युरात्रयः षोड़शर्तवः ॥ ४१ ॥ ततः पुंबीजमक्लिष्टं शुद्धे क्षेत्रेप्ररोहति । चतस्रश्चादिमा रात्रीः पर्ववच्च बिवर्जयेत् ॥ ४२ ॥ गच्छेद्युग्मासु रात्रीषु पौषणपित्र्यर्क्षराक्षसान् । प्रच्छादितादित्यपथे पुमान्गच्छेत्स्वयोषितः ॥ ४३ ॥ क्षमालंकृदवाप्नोति पुत्रं पूजित लक्षणम् । ऋतुकालेऽभिगम्यैवं ब्रह्मचर्ये व्यवस्थितः ॥ ४४ ॥ गच्छन्नपि यथाकामं न दुष्टः स्यादनन्यकृत् । भ्रूणहत्यामवाप्नोति ऋतौभार्य्यापराङ्मुखः ॥ ४५ ॥ सात्ववाप्यान्यतो गर्भं त्याज्याभवति पापिनी । महापातकदुष्टा च पतिगर्भं विनाशिनी ॥ ४६ ॥ अर्थ-स्त्री ऋतुमती अर्थात् मासिक धर्म में प्राप्त होने पर दोष के भय से सबको त्याग दे । जहाँ कोई न देख सकें ऐसे एकान्त घर में लज्जावती होकर निवास करे ॥ ३७ ॥ केवल

एक ही बस्त्र को पहिन कर स्नान और आभूषणों को त्यागकर, दीन के समान मौन धारणकर नेत्र तथा हाथ पैर इनको न चलावै ॥ ३८ ॥ रात्रि के समय में अन्न का मिट्टी के पात्र में भोजन करै । प्रमाद रहित होकर पृथ्वी (भूमि) पर सोवै इस प्रकार तीन दिन बितावै ॥ ३६ ॥ तीन दिन के पश्चात् चौथे दिन सूर्योदय होने पर सबस्त्र स्नान करै, तदन्तर पति का दर्शन कर धर्म से शुद्ध होती ॥ ४० ॥ शौचजनक अर्थात् स्नानादिक क्रिया करके वह स्त्री पूर्ववत (प्रथम की भाँति) सभी कार्यो को करै । रजो दर्शन से सोलहरात्रियों तक ऋतुकाल रहताहै ॥ ४१ ॥ इन सोलहरात्रियों में पुरुष का बीज बिनाक्लेश अर्थात् बिना कठिनता या उपाय के शुद्धक्षेत्र में जमता है, अर्थात् स्त्री के गर्भाशय में गर्भधारण होता है । अस्तु इन सोलह रात्रियोंमें पुरुष को अपनी धर्मपत्नी के साथ गमन करना चाहिये । किन्तु यदि इन्हीं सोलहरात्रियों में पर्व का दिन आजाय तो पर्व के चारदिन तक गमन करना निषेध है । श्रीरामनवमी, श्री गुरुपूर्णिमा, रक्षाबन्धन, श्रीकृष्णजन्माष्टमी; श्रीराधाजन्माष्टमो, वावनद्वादशी, विजयदशहरा क्वाँरशुक्लदशमी गंगादशहरा जेष्ठशुक्लदशमी कार्तिक कृष्णचतुर्दशी श्रीहनुमान् जयन्ती दीपावली, अक्षयनवमी कार्तिक शुक्लनवमो, अगहनशुक्ल श्री सीताराम ब्याह पंचमी, मकरसंक्रान्ति, बसन्तपंचमी, शिवरात्रि सभी ग्रहण एवं सभी एकादशी ये सभी पर्व दिन हैं । धार्मिक स्त्री पुरुषों को इन दिनों में गमन (अंगसंग) नहीं करना चाहिये । पर्व दिनों और पुण्य क्षेत्रों अर्थात् पावन तीर्थों में जाकर स्त्री प्रसंग करना निषेध है ॥ ४२ ॥ युग्म (सम) रात्रियों में रेवती, मघा, अश्लेषा इन नक्षत्रों में गमन अपनी पत्नी के साथ ऐसे स्थान में करे, जिस स्थान में सूर्य की किरण न जाती हो ॥ ४३ ॥ तब वह पुरुष शुभलक्षणयुक्त प्रशंसा करने योग्य पुत्रको प्राप्त करताहै । पूर्वोक्त रीतिके अनुसार स्त्री [अपनी धर्मचारिणी पत्नी]केसाथ गमन करनेपर वह पुरुष ब्रह्मचारी ही रहता है ॥ ४४ ॥ पुरुष यदि शास्त्र वर्जित निन्दनीय कर्म न करके ऋतुकाल में ही अपनी पत्नी के साथ गमन करे तो कुछभी दोष नहीं होता । और यदि ऋतुकाल में पुरुष अपनी पत्नी के साथ गमन नहीं करता है, तो वह भ्रूणहत्या अर्थात् गर्भ के गिराने के पाप का भागी होता है ॥ ४५ ॥ और यदि ऋतुमती स्त्री पति के अतिरिक्त अन्य पुरुष से गर्भ धारण करले तो वह पापिनी त्यागने योग्य है ॥ ४६ ॥ और यदि पुरुष अपनी—

सद्वृत्तिचारिणीं पत्नीं त्यक्त्वा पतितधर्मतः । महापातक दुष्टोऽपि स प्रतीक्ष्यस्तया पतिः ॥ ४७ ॥ कोई पुरुष विना ही कारण किसीअन्य स्त्री पर आकर्षित होकर

उसके कहने पर सदाचारिणी उत्तम चरित्रवाली अपनी स्त्री का परित्याग करता है, तो उसे महापातक लगता है, वह धर्म से पतित हो जाता है । वह पुरुष जब तक प्रायश्चित करके उस महापातक से मुक्त न हो जाये, तब तक उस त्यागी हुई स्त्री को अपने पति की प्रतीक्षा करनी चाहिये ॥ ४७ ॥

नोट— विशेष ध्यान देने की बात है कि सृष्टि रचयिता प्रभुकी प्रेरणा से प्रेरित होकर ऋषियों ने जगत को मार्ग प्रदर्शन किया था । पूर्वकालिक ऋषि आज ऐसे लेखकों की भाँति कई ग्रन्थों को पढ़कर ग्रन्थ रचना नहीं करते थे । अपितु भगवत् भजन करते २ भगवान् की रुचि का पालनमात्र करते थे । पूर्वकालीन ऋषियों ने अपनी कल्पना से ग्रन्थ नहीं लिखे थे, उन्होंने तो विश्व सृष्टा विधायक की प्रेरणा से ही स्वानुभूति का उल्लेख किया था । उनके सिद्धान्तानुसार मार्ग पर चलना ही धर्म और न चलना ही अधर्म माना गया था । इस व्यास स्मृति के वचनानुसार सद्-गृहस्थ को रजोधर्म के समय स्त्री को छूना भी निषेध है । स्त्रीको एकवस्त्राहोकर सबसे अलग घरमें एकान्त मौन रहने का विधान है । उन तीनों दिनों तक न तो उस स्त्रीको कोई व्यक्ति छुये, और वह स्त्री भी किसी व्यक्ति या किसी खाद्यपदार्थ को न छुये । किन्तु वर्तमान समय में अपने को सभ्य माननेवाली पढ़ी लिखीं अधिकांश देवियाँ उन तीन दिनों में भी अपने शारीरिक एवं पारिवारिक सभी व्यवहारों को पूर्ववत् करती रहती हैं, सभी से हँसकर बोलती मिलती हैं, सिनेमा देखती हैं, पढ़ाने जाती हैं. मोटर ताँगा रिक्शा या अन्य सवारियों में बैठने पर सभी को छूती हैं । ऐसा करना उचित नहीं है । प्रथम बात तो यही कि महिलायें स्वयं ही मौन होकर तीन दिन तक एकान्त घर में निवास करना प्रिय नहीं मानती हैं । कुछ बालिकायें जिनका पालनपोषण पुरानी सभ्यता में हुआ है; वे शास्त्राज्ञानुसार यदि रहना भी चाहती हैं । तो उन बेचारियों पर उनके पतिदेवता जो नवीन सभ्यता में जीवन पा रहे हैं, वह आपत्त मचाते हैं । अपने को बुद्धिजीवी मानने वाले बुद्धि के दरिद्र व्यक्ति इस्टन्डर्डमैन कहलाने वाले अपनी धर्मपत्नियों से कहते हैं कि कहो इन तीन दिनों में तुम्हारा शरीर अशुद्ध क्यों हो जाता है । बाहर से कोई भी अशुद्ध पदार्थ तो तुम्हारे शरीर में लगा नहीं, केवल तुम्हारे शरीर का अशुद्ध पदार्थ बाहर निकलता है, इसमें अशुद्धी की क्या बात है । यथा सभी लोग मलमूत्र का त्याग करते हैं, उसीप्रकार यह रजोदर्शन भी है । यह सब तो पाखण्ड है कि तीन दिन तक कुछ भी करना न पड़ेगा । कोई २ तो ऐसे धर्मवीर हैं कि अपनी स्त्री को डाँट फटकार लगाकर हठात् भोजन बनाने को कहते हैं । यदि वह सुशील

महिला कहे आप हमसे दूररहिये हमें छूइयेमत, हमारा शरीर किसीवस्तु या व्यक्ति के छूने योग्य नहीं है । तब वह श्रीमान कहदेते हैं कि तुम पाखण्ड छोड़कर उठो, चलो भोजन बनाओ, हम देखेंगे कि पाप कैसाहै जो कि विना किये लगजायेगा। और यदि लगेगा भी पाप तो हमी को लगेगा, तुमको तो नहीं लगेगा । सभीमनीषी (विचारक) विचारकरें कि ऐसे अधर्मपरायण पापमूर्ति जो कि पत्नीके परमेश्वर कहलाते हैं, वह महिला पतिआज्ञा माने या माने । इस अवसरपर पतिआज्ञा न माने तो पतिविमुखता का महान्पाप और यदि पतिआज्ञा मानकर भोजन बनाकर खिलावै तो शास्त्राज्ञारूपी सेतु समाप्त होता है, जिसके आधारपर पति पत्नी का परमेश्वर माना जाताहै । विशेष ध्यानदेकर विचारिये कि पति पत्नीका सम्बन्ध पशुओंकी भाँति पेट भरने या विषय व्यवहार केलिये ही नहींहै । यह सम्बन्ध तो सुखपूर्वक जीवनबिताते हुये शुभ धर्म कर्म करके संसार चक्रसे मुक्त होने केलिये है । पतिकहलाने का अधिकार उसी पुरुष को है, जो शास्त्राज्ञानुसार स्वयं भी सन्मार्ग में चलकर भगवत्भजन करके अपना कल्याण करे । और अपनी पत्नीको भी शुभ कर्म धर्म की शिक्षा देकर श्री हरिभजन में लगाकर उसका भी कल्याण करदे । तबतो पति परमेश्वर है यह कहना यथार्थ है, अन्यथा पशुवत जीवन बितानेवाले पति स्वयं ही घोर नरक में पड़ेंगे । तव वह बेचारे अपनी पत्नीका कल्याण क्या सकेंगे । जो व्यक्ति अपना कल्याण करने में दक्ष (कुशल) नहीं है । वह दूसरे का कल्याण कर देगा वही लोग मानेगे । जिनने बुद्धि को बेचकर चाय पीली होगी, अथवा चाट खा ली होगी । कोई भी बुद्धिमान व्यक्ति यह बात नहीं मानेगा । अस्तु मासिकधर्म के समय सभी महिलाओं को तीन दिनतक घर के एकान्त में शान्तचित्त से भगवत्नाम स्मरण करते हुये विताना चाहिये । और पढ़े लिखे शिक्षित पुरुषों को भी उन तीनदिनों में स्त्री से स्पर्श नहीं करना चाहिये । शास्त्राज्ञा मानना ही मानवता है । अन्यथा जंगली पशु और मानव में कोई अन्तर नहीं है, दोनों समान हैं । गृहस्थाश्रम एक तपोवन है इस तपोवन में रहकर आवश्यक होनेपर उचित रूपसे विषयानुभूति करते हुये भगवान् का भजन करते हुये जीवनयापन करना तो ठीक है । किन्तु इन्द्रियों के गुलाम बनना उचित नहींहै । सर्वदा सत्यका पालन करना चाहिये, शास्त्रीय सिद्धान्त है कि—सत्यमेव जयते । मानव के पास सन्तोष ही महान् सम्पत्ति होनी चाहिये । परिश्रम करने पर भी अभीष्ट पूर्ति न होनेपर भगवान् की प्रार्थना दीन होकर करो । भगवत् प्रार्थना में असीमबल है । प्रार्थी की प्रार्थना शुद्धभाव से होने पर अवश्यमेव

भगवत् कृपा दृष्टि की वृष्टि होती है। मानवमात्र का परम कर्तव्य है कि प्रातःकाल ब्रह्ममुहूर्त में उठकर भगवत् चिन्तवन करे । अपने से बड़े श्रेष्ठ पूज्यों का समादर करे। सामाजिक या धार्मिक कार्यों में हानि होनेवाले कार्य किसी को भी नहीं करना चाहिये। सद्ग्रन्थों का स्वाध्य एवं अध्ययनशील होना चाहिये । पापी से घृणा न करके पापकर्मों से सदा बचना चाहिये। कभी भी अनुचित बातोंका प्रचार नहींकरना चाहिये। समाजसे अच्छी बातें तो सीखले, किन्तु समाजमें फैली [प्रचलित] कुरीतियों को ग्रहण नहीं करना चाहिये। अपने धर्ममें दृढ़श्रद्धा विश्वास प्रेम रखना तो सर्वथा उचित है, किन्तु दूसरे धर्मकी निन्दाकरना आवश्यक या अनिवार्य नहीं है। सर्वदा सत्य तथा ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिये।

भगवत्कृपा से प्राप्त पदार्थों को अपने प्रियजन सम्बन्धी अतिथि असहायों को बाँटकर खाना चाहिये। हमें संसारमें रहने से हमारी कुछ भी हानि नहीं है किन्तु संसार हमारे अन्दर न रहे। आशक्तिपूर्वक भोग्यपदार्थों का उपभोग करना बन्धन कर प्रधान कारण और राग रहित भोग्य पदार्थों का सेवन मुक्ति का साधक होता है। विषयों के सेवन करने की अपेक्षा विषय न करते हुये भी विषयों का चिन्तवन करना अधिक हानिकर है । संसार की भीड़ से निकलकर भागना आवश्यक या अनिवार्य नहीं है। अपितु अपने अन्दर से संसारको निकालदेना अत्यधिक आवश्यक अनिवार्य है। अभीष्ट की पूर्ति में मन बुद्धि चित की एकाग्रता और संलग्नता की परमावश्यकता होती है। भक्त ने क्या दिया, भगवान् यह न देखकर उसके भावको ही देखते हैं। अस्तु भावना पूर्वक भगवत् भजन करना ही मानवमात्र का परम पुरुषार्थ है। वशिष्ट स्मृति अ० २ श्लोक १-२

चत्वारो वर्णा ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्रा । त्रयो वर्णा द्विजातयो ब्राह्मणक्षत्रिय वैश्याः ॥ १ ॥ तेषां मातुरग्रेधिजननं द्वितीयं मौञ्जी बन्धनम् । तत्रास्य माता सावित्री पिता त्वाचार्य उच्चयते ॥ २ ॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र यह चार वर्ण हैं। इनमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य यह तीन द्विजाति हैं। इन तीनों का जन्म प्रथम माता से और और दूसरा जन्म यज्ञोपवीत से होता है। दूसरे जन्म में गायत्री माता और आचार्य पिता कहा गया है। आचार्य वेदको पढ़ाता है, इसलिये आचार्य को पिता कहागया है ॥ यथा—वेद प्रदानात्पितेत्याचार्यमाचक्षते ॥ पुनः व्यासस्मृति अ० १ श्लोक २१-२२ में भी कहा है कि—द्वे जन्मनी द्विजातीनां स्वात्प्रथमं तयोः। द्वितीयंछन्दसां मातुर्ग्रहणाद्विधिवद्गुरोः ॥ २१ ॥ एवं द्विजातिमापन्नो विमुक्तो वान्य दोषतः। श्रुति

स्मृतिपुराणानां भवेदध्ययनक्षमः ।। २२ ।। ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य इन तीनों जातियों के दो जन्म होते हैं । प्रथम माताके गर्भसे, दूसरा गुरुके निकट विधिसहित वेद माता (गायत्री) को ग्रहण करने से ।। २१ ।। इसप्रकार से यह अन्य दोषोंसे रहित होकर द्विजत्वको प्राप्तहोकर श्रुति स्मृति और पुराण इनके पढ़नेयोग्य होता है ।। २२ ।।

अब पाठक ध्यानदें । मनुष्यको उचित है कि अपनी पाणिग्रहीता पत्नीसे ऋतु काल (मासिकधर्म से मुक्त होने पर) में पर्वदिन बचाकर अंगसंग । विषयानुभूति] करे । जिस दिनसे पत्नीको गर्भाधान होजाये, उसदिन से जबतक सन्तानका जन्म न हो जाये तबतक पत्नीसे अंगसंग [विषयभोग] न करे । गर्भाधानसे सन्तान उत्पन्न होने के बीचके समयमें अपनी पत्नीको भगवान् और भक्तोंकी उत्तम कथायें श्रवण करानी चाहिये । भगवान् के सुन्दर चित्र दिखाना चाहिये, और भगवन्नाम गुण यश का कीर्तन सुनाना चाहिये । जिसके फलस्वरूप सन्तान भी भगवत् भागवतों में श्रद्धा प्रेम करेगी । गर्भाधान होने के बाद गर्भवतीमहिला को शुद्धसात्विक पदार्थ सेवन करना चाहिये । मांस, मदिरा, अंडा, लहसुन, प्याज, बासा जल हुआ, अधपका भोजन न पाकर, घी दूध मक्खन अन्न साग फल इत्यादि सात्त्विक पदार्थोंको शुद्धता पवित्रतापूर्वक सिद्ध [बना] करके भगवान् को अर्पण करके भगवत्प्रसाद पतिको पवाने के पश्चात् पाना चाहिये । सन्तान उत्पन्न होनेपर पति पत्नी को आवश्यकपूर्ण सुविधाओं की व्यवस्था करे । उस देवीका कर्तव्य है कि अपनी सन्तान बालक या बालिका जो भी हो । शैशवास्था [बालकपन] से ही उसको गन्दो बातें न सिखावें, न गन्दी आदतें डालें, बालकों को भगवान् के नामका कोर्तन सुनावें । उनसेभी कीर्तन करवावें । भगवान् की कथायें, भक्तोंके चरित्र सुनावें । भगवान् की प्रार्थना स्तुतियाँ याद करावें । फिल्मों के गाने उपन्यास पेपर इत्यादि न सुनावें ।

भगवान् का नाम जपना, पूजाकरना, श्रीरामायणजी, गीता भागवत् इत्यादि सद्ग्रन्थोंका पाठ करना सिखावें । सभी बच्चोंकी श्रीहनुमान् चालीसा अवश्यरटादें । श्रीहनुमानजी की दयासे बालक सद्गुणसम्पन्न बुद्धिमान धर्मात्मा और सदाचारी होंगे । बालकों को धर्ममयी वार्तायें धर्मात्मा पुरुषों की कहानियाँ सुनावें, उचित समय पर बालक बालिकाओं को विद्यालय [स्कूल] में विद्याध्यन करने को भेजदें । बच्चों के मनोरंजनार्थ अनेक प्रकारके खेल सिखावें । परिश्रम होनेवाले खेल खेलने से बालकों का स्वास्थ ठीक रहता है । सिनेमा नाटक ड्रामा इत्यादि देखने का व्यसन न लगने दें । बालक भी जब कुछ पढ़ने लगें, कुछ समझदार हो जायें, तो उनका कर्तव्य है कि

प्रातःकाल उठकर माता पिताको चरणस्पर्श करके प्रणाम करें। माताओं को उचितहै कि बालकों को सिखावें कि अपने से बड़ोंका सम्मान करो । छोटे बच्चोंको प्यार दुलार करो, मन लगाकर खूब ध्यानपूर्वक पढ़ो । वालक बालिकायें व्याह होनेके पूर्व ब्रह्मचर्य का पालन करें । ब्रह्मचर्य ही अमृतजीवन है । जिस बालक का ब्रह्मचर्य छोटी अवस्थामें पतन होता है, वह बालक वालिकायें, अधिकांश दुर्बल एवं रोगी हो जाते हैं। माता पिताका कर्तव्य है कि बालक वालिकाओं का उचित समयपर व्याह अवश्य ही करदें । वर्तमान में नवीन पद्धति प्रचार होरही है कि वालिकायें जब बी० ए० एम० ए० न करलें तबतक ब्याह न किया जाये । इसीका यह भयंकर परिणामहै कि अधिकांश बालिकाओं के जीवन में चारित्रिक दोष उत्पन्न हो जाता है । इससे बचाने का एकमात्र उपाय है कि १२ वर्ष के बाद १८ वर्ष के अन्दर बालिकाओं का ब्याह अवश्यही कर देना चाहिये । ध्यान रहे कि १२ वर्ष के पूर्व ब्याह करना भी हानिकर ही होगा बालिकाओं को खूब पढ़ाया जाये, किन्तु उनके चरित्रपर सर्वदा विचार पूर्वक ध्यानदेनाचाहिये । उचित समयपर ब्याह न करनेपर बालकबालिकाओं में चारित्रिक दोष उत्पन्न होने में उनके माता पिता का ही दोष है । क्योंकि सभीलोग आवश्यकता की पूर्ति अनुचित या उचित रूपमें करते ही हैं। तब अवस्था सम्पन्न वालकायें भी अपनी आवश्यकता की पूर्ति भी उचित या अनुचित रूपमें करेंगी ही; अस्तु समयपर अनिवार्य रूपसे ब्याह करदेना चाहिये ।

ब्राह्मणों के वालकों का ५ वर्ष से १२ वर्ष में क्षत्रियकुमार आठ वर्षसे १६ वर्ष तक वैश्योंके बालकोंका १२ से १८ वर्षकी अवस्था के अन्दर यज्ञोपवीत अनिवार्य रूपसे हो जाना चाहिये । द्विजाति कहलानेवाले त्रयवर्णों को ब्रह्मगायत्री का जप निरन्तर अनिवार्य रूपसे करना चाहिये । द्विजातियों को नित्य वैदिक संध्या करनी चाहिये । सभी मनुष्यों को सदाचार पूर्वक चरित्रवान होकर भगवद्भजन करना चाहिये ॥

वालक वालिकाओं के चरित्र निर्माण का उत्तरदायित्व माता पिता पर है, ध्यान रहे, माता बालकों को जो बतादेती है, वालक जीवनभर उसी बातको सत्य मानते हैं । वालक नहीं जानते हैं कि हमारा पिता पितामहँ चाचा ताऊ मामा नाना भाई बहिन कौन है । माता ही बतलाती है कि—ये आपके पिता हैं, ये चाचा हैं, ये ताऊ हैं, ये वावा हैं, ये नाना हैं, ये बहिन ये भाई ये मामा नाना हैं । बालक उन सम्बन्धियों को जीवनभर माताके बतलाने के ही अनुसार मानता और व्यवहार

करता है। माता ही मानवकी जननी है। अतः माताओं के ही अनुसार बालकोंका जीवन निर्माण होता है। क्योंकि साँचा जैसा होगा, उसमें ढलनेवाली बस्तु भी तद्-नुसार ही आकार प्रकार धारण करेगी। माता मानव का साँचा है; अतः अपनी सन्तान के कल्याण के लिये माताको सदाचार एवं सद्गुण सम्पन्न होना चाहिये। मातापिता जैसे बोलेंगे, जैसे व्यवहार करेंगे, बालकबालिकायें भी वैसे ही सीखेंगे। बच्चों के बनने बिगड़ने का उत्तरदायित्व माता पिता पर ही है। यदि आप बालकों को झूठ बोलना, चोरीकरना, मारना पीटना गालीदेना, सीखायेंगे तो सोचलेना कि भविष्यमें आपको माथापोट पीटकर रोना पड़ेगा, तब बालकों को दोष न देना। ध्यान रहे कि पाँच वर्ष तक बालकों का दुलार तो करना चाहिये, किन्तु उनके जीवन में अवगुण अनाचारों का जन्म नहीं होना चाहिये। पाँच वर्ष से १६ वर्ष तक भोजन बस्त्र की सुविधा देकर हृदय में दुलार और बाहर से कड़ी दृष्टि रखनी चाहिये, जिससे उनमें अनुचित अभ्यास न बनने पाये, यदि आप इस समय भी उनके मोहमें फसकर उन्हें मनमाना रहने देंगे तो वो निश्चय ही विगड़ जायेंगे, तब आप कहियेगा कि हमारा बालक बहुत ही नालायक है किसी की बात नहीं मानता है। बालकोंपर कड़ी दृष्टि रखने का उनको गाली देना या मारना पीटना नहीं है। गालीदेने या मारने से बालकों कासुधार न होकर वे और भी पतित, भयभीत, तथा कुमार्गगामी हो जाते हैं। केवल उनके दोषों को देखते रहें, वे कोई अनुचित कर्म न करने पावें, कोई भूल हो जानेपर गम्भीरतापूर्वक प्रियता के साथ कोमलता से समझाबुझाकर उचित मार्गपर लाना चाहिये आवश्यकतानुसार डाँटा जाये, किन्तु अपशब्दोंका प्रयोग न किया जाये। कितने लोग बालकों से डाँटकर कहते हैं कि हरामी, सुअर या गधे इन शब्दों का बहुत ही गलत प्रभाव पड़ता है। जब आप बालकोंको गधा सुअर हरामी कहोगे, तो वे भी उन्हीं शब्दों को सीखलेंगे, फिर अपने बालकों को भी वैसे ही डाँटेंगे, और स्वयं भी गधा एवं सुअरवत् आचरण अपनायेंगे। ध्यानरहे प्रथम मातापिता अपना सुधार करें, तभी बालकों का सुधार कर सकेंगे, यदि आप अपने किशोर या युवावस्था सम्पन्न बालकों के समक्ष भी विषय लोलुभ बने हैं, ब्रह्मचर्य का पालन नहीं करते हैं तब सोचिये कि आपके बालकोंपर कैसा प्रभाव पड़ेगा।

यदि आप बीड़ी सिग्रेट पान तम्बाकू गाँजा भाँग मदिरा मांस आदि सेवन करते हैं तो आपके बच्चे भी इन दुर्व्यसनों की शिकार होंगे ही आपके कोटि प्रयत्न करने पर भी वे आपकी बात कदापि न मानेंगे। यदि आप ईर्ष्या, क्रोध, काम, मद, मत्सर, छल, कपट, असत्यभाषण, हिंसा, चोरी, व्यभिचार, अशौचपन, मलीनता नहीं

छोड़ते हैं, तव सोचिये कि आपकी सन्तान इन कुकृत्यों से कैसे वच पायेगी । क्या आप यह नहीं जानते हैं कि आपके बालकबालिकाओं के शिक्षापाने के लिये आपका घर ही प्रधान पाठशालाहै । अथवा यों कहो कि बालक जैसे वातावरण में पालेपोषे जातेहैं, उनका भविष्य जीवन तदनुसार ही निर्माण होना स्वाभाविक है। ध्यानरहे ! आपका नित्य ही नृत्य, नाटक, सिनेमा देखनेमें और कल्बमें नम्बर सबसे आगे रहता है, ताश, जुआ, चौसर में तो आप सभी काम भूले रहते हैं; किन्तु शोक है कि फिर भी आप अपनी सन्तान को चरित्रवान, देशभक्त, कर्तव्य परायण और यशस्वीबनाने का स्वप्न देखते हैं । यद्यपि आपके घरमें सुन्दर सुशील पतिव्रत तत्पराधर्म पत्नी है, तथापि आप किसी भी नवयुवती सौन्दर्यवती महिलाको देखकर आपे से बाहर होकर उसे सुनाकर सिनेमा के गाने गाते हैं कि- जिसे सुनकर वह समझ जाये कि आप शिक्षित पशु हैं । समय मिलने पर यदि आपका वश चले तो उस सुशीलमहिला के साथ अवैधानिक ढंगसे विषय विलाश करके ही अपने को कृत्कृत्य एवं सभ्य व्यक्ति और नैतिक मानते हैं, तथापि ऐसा स्वप्न देखते हैं कि हमारे बालक श्री राम जी के सदृश्य एकपत्नीव्रतधारी और हमारी बालिकायें श्री जानकी जी के समान पतिव्रता हों । क्या त्रिकाल में कभी यह सम्भव है, कि आपकी सन्तान का सुधार होगा, आपके बालक धर्मात्मा भगवत्भक्त होंगे । आपके प्रतिबिम्ब बालक जव स्वेच्छाचारी बनेंगे तव आप कहेंगे कि क्या करें, हमारे लड़के तो कलियुगी निकलगये । किन्तु आप सोचिये कि क्या आप कलियुगी के बाप नहीं हैं । अस्तु बालकों का सुधार करने के पूर्व आपको श्रीदशरथ जी एव श्री जनक जी के समान धर्माचरण, देवाराधन, भगवत् उपासना, करनी होगी, और आपकी पत्नी को श्री कौशल्या जी एवं श्री सुनैना जी के समान आपका अनुगमन करना होगा तभी आपको श्री राम जी एवं श्री सीता जी के सदृश्य मातृभक्त पितृभक्त देशभक्त गुरुभक्त चरित्रवान एवं यशस्वी बालक और बालिकायें मिल सकते हैं । किन्तु आप चाहते हैं कि हम सातवजे सोकर जगें, तुरन्त चाय तैयार मिले, उसे पीकर रेडियो के गाने सुने, आठवजे कुछ जलपान करके पेपर पढ़लें, दशवजे पशुओं की भाँति भक्षा-भक्ष्य विचार रहित मनमाना खाना खालें, दो चार घंटे दोस्तों के साथ दुनियाँ भर की झूठी गप्पें सुनें और कहैं । सायंकाल सिनेमा और कलवोंमें वनमानुषों की भाँति निर्लज्ज होकर व्यवहार करें, रात में घर आकर सो जायें । सोचिये तो सही कि— क्या मानव की मानवता का यही फल है ।

ध्यान रहे ! कि अपनी धर्मपत्नी के अतिरिक्त सभी छोटी या बड़ी तथा

समान अवस्थावाली देवियों में पुत्री, बहिन, एवं माता का ही भाव रखना चाहिये। इसी प्रकार महिलाओं को उचित है कि—अपने से छोटे बालकों को अपने पुत्रवत् भाव से देखें, समान या कुछ छोटे एवं बड़े बालकों को भाई तथा वृद्धजनोंको पिता समान मानें। वेश्यागमन या स्वेच्छाचरण करनेवाले सोचें तो सही कि उन्हें अपनी पत्नी केसाथ विषयमें जो रस मिलताहै, अन्यत्र भी वही रस मिलताहै या कुछ विशेषता है। तब वह स्वयं ही अनुचित से बचेंगे। ध्यानरहे ! आपके कपड़े गन्दे रहते हैं, दाँत मैले रहते हैं बड़े बड़े नख और आपके घर द्वारमें कूड़ा रहताहै तो सोचिये कि उस वातावरण में पलनेवाले बच्चों का जीवन कैसा होगा। अस्तु शरीर, वस्त्र तथा घर द्वार स्वच्छ रखना चाहिये। स्वच्छता से स्वाभाविक ही नीरोगता एवं प्रसन्नता होती है॥

विचार कीजिये कि यदि आप किसीको धोखा देकर उसकी कोई वस्तु ले लेते हैं, वेईमानी करके या रिश्वत लेकर धन जमा करते हैं, गरीबों के साथ अन्याय करते हैं, किसी की चोरी करलेते हैं, अथवा चुरवा देते हैं परस्त्री गमन करते हैं, धार्मिक व्यक्ति को पाखण्डी कहते हैं, भगवत् भक्तोंका तिरस्कार करते हैं, स्वयं भगवान् की उपासना न करनेपर भी उपासकों की समालोचना करतेहैं। तो आपसाक्षात हिरण्याक्ष रावण या कंश की ही मंजुल मूर्ति हैं। तथापि आप अपने को ही सर्वश्रेष्ट विद्वान्, नीतिज्ञ धर्मात्मा मानते हैं, तो मानिये, किन्तु इसका परिणाम अन्तमें समझोगे। यदि बालक बालिकायें अपने पिता माता का शासन नहीं मानते, मनमाने चलते हैं, तो वे भूलरहे हैं। सन्तान का परम कर्तव्य है कि मातापिता की सतशिक्षा माने, उनकी सेवा करें, बड़ों का सम्मान करें, सदाचारी, सत्यवादी, निरछल, चरित्रवान एवं अहिंसक बनें। यदि आप मातापिता की सेवा न करके उनको अपशब्द कहतेहैं, उनकी झूठी निन्दाकरके तिरस्कार करते हैं, तो भलीभाँति सोचलेना कि आपकेबालक भी आपके साथ यही व्यवहार करेंगे। तब आपको कैसा लगेगा, किन्तु महान् शोक की बात है कि आपतो अपने मातापिता का तिरस्कार करते हो, और अपने बालकोंसे आशा करते हो कि यह मेरी आज्ञा माने, सर्वदा हाथ जोड़े खड़ा रहे, भगवान् के समान हमारी सेवा करे। यह भारी भूलहै। यदि आप अपनी सन्तानसे सुख चाहते हैं, तो अपने माता पिता को सुख देना आपका परम कर्तव्य है। बालक यदि आपको पिता की सेवा करते देखेगा तो विना कहे आपकी सेवा करेगा, आप यदि मातापिता को फटकारते या मारते हैं, तो आपका पुत्र भी उसी परम्परा का भक्त होगा, अस्तु

माता पिता की सेवा करना प्रत्येक मानव का परम कर्तव्य है ॥

ध्यान दीजियेगा ! आपके छोटे भाई, बहिन इत्यादि से कुछ भूल हो गई है, तो उनको प्रेम पूर्वक समझा दीजिये, मारिये पीटिये नहीं, मारने से उनके हृदय में आपके प्रति स्नेह का अभाव और वैमनस्ता का जन्म होगा, जो भविष्य में कलहका घर होजायेगा। आपके बड़ेभाई आपसे अप्रसन्न रहतेहैं, इसमें आप उनका दोष और अपनेको निर्दोष मानते होंगे, यह आपकी भूलहै विना अपराधके कोई भी किसी से व्यर्थ में वैर नहीं बढ़ाता, आपयदि सर्वथा निर्दोषहैं, तो शान्त रहिये, भाईसाहब आपके अनुकूल होजायेंगे, आप उनकी निन्दा न कीजिये, बड़े भाई को उचित है कि छोटे भाई को पुत्रवत् दुलारपूर्वक सारी सुविधाओं का विधान बनावे, छोटे भाई का कर्तव्य है कि बड़े भाई का पिता के समान सम्मान करे, उसका शासन माने। यदि आप अपनी धर्मपत्नी को कष्ट देतेहैं, उसे गाली देते या मारते पीटते हैं, अपनी स्त्री के रहते हुये भी परस्त्री गमन करते हैं, अपनी स्त्रीके सुखदुखमें उसकी सहायता नहीं करतेहै, उसे सद्शिक्षा नहींदेते हैं, बैल घोड़ा गधे कीभाँति पेटभर भोजन करके विषय सेवनमात्र के लिये सम्बन्ध रखतेहैं तो आप बहुत ही भूल रहेहैं। विचार करिये कि आपको तो पतिव्रता स्त्री होनी चाहिये, किन्तु आप एकपत्नीव्रती न होकर कुत्ते की भाँति अनेकघरों की जूठी पत्तल चाटते हैं, यह महानभूल है। यदि आप श्रीरामजी केसमान एकपत्नीव्रती बनेंगे तो विधायकके विधानसे आपको सुशील स्त्री प्राप्त होगी, आप रावण बनकर तो मन्दोदरी के समान स्त्री कोही प्राप्त कर सकते हैं, पतिव्रता देवियों की स्वप्न में प्राप्ति न होगी। पत्नी रजस्वला होनेकेबाद महीना में एक दो बार से अधिक विषय सेवनकरना अपने जीवन के साथ शत्रुता करनाहै। ध्यानरहे कि पत्नी की आवयश्कता की पूर्ति करना ही आपका कर्तव्यहै। उसकी प्रत्येक बातको मन्त्रवत सुनकर परिवार के पूज्य लोगों से नाराज होना या उनका तिरस्कार करना उचित नहीं है। भोजन बनाने में पत्नी से देर होगई या नमक अधिक या कम होगया तो उसको समझा दीजिये, मारिये पीटिये नहीं। पत्नी यदि रोगी, बन्ध्या अथवा कमजोर हो गई है, तो उसका अपमान नहीं कीजिये; किसी प्रकार उसका निर्वाह कीजिये। दो विवाहनहीं करना चाहिये, यदि भूलसे करहींलिये,तो दोनोंके साथ समान व्यवहार करिए, अन्यथा दोष के भागी बनना होगा॥

यदि आप पत्नी हैं, तो पतिको भगवत् भाव से सेवा करते हुये पतिव्रत का पालन करिये। सासु, श्वसुर जेठ देवर, ननद इत्यादि सभीके साथ उचित व्यवहार

करिये । सासु श्वसुर को अपने माता पिता के समान पूज्य मानकर सद्भावसे आवश्यक सेवा करिये । ननद यदि बड़ी है तो बहिन समान छोटीहै तो पुत्रिवत् प्यार करिये । देवरको पुत्रके समान वात्सल्यपूर्वक शुद्धभाव से दुलार कीजिये । पारिवारिक अन्य सम्बन्धियों या ग्रामवासिनी माताओं के साथ उत्तमव्यवहार करिये । आप नैहर (मइके) में मातापिता की दुलारी बेटी होनेके कारण बहुतही शौकीनीहैं, बहुत खर्चीलीहैं, तो अपने घरकी व्यवस्था देखकर अपना व्यवहार सुधारिये, आपके सासु ससुर एवं पति यथाशक्ति आवश्यक बस्त्र भूषणोंकी व्यवस्था करेंगे ही आप भूषणों के लिये उनके ऊपर नाराज न हो जाइये । नई फइशन की चप्पलें, सारियों, पावडर क्रीम के लिये घरमें कलह न करिये, पतिव्रत धर्मका पालन और पूज्योंका सम्मान करते हुये भगवत् भजनमें जीवन बिताना ही आपका परमकर्तव्य है । यदि आप सासु या ससुर हैं, तो अपनी पुत्रवधूको अपनी प्रिय पुत्रीके समान दुलारपूर्वक लालन पालन करिये । अपने लड़केको उल्टीसीधी बातें पढ़ाकर बहू को डाँट फटकार न लगवाइये, उसके ऊपर अविश्वास न करिये,उसकी आवश्यकताओंपर ध्यानदेकर उसके बिनाकहे ही पूर्ति कीजिये, उसे फटकारिये नहीं, पुत्र बधू यदि अबोधहैं, उससे बारबार भूल होतीहै, तो आप उसे प्रेमसे समझाइये, सत्शिक्षा दीजिये, किन्तु भूलकरभी उसेगाली न दीजिये, मारिये नहीं, अन्यथा कुछही दिनमें आप का घर पानीपथ का संग्रामस्थल बनजायेगा । किसीदिन आपभी बहूथीं, उसदिन कीयाद कीजिये, आप अपनी बेटो और बहू दोनोंको समानदृष्टि से देखिये तो वहू भी आपको माता मानेगी, अन्यथा कुछही दिनोंमें वह पतिको आपसे विमुख बनाकर आपसे बात भी न बूझेगी । आप अपनी पुत्र वधूसे झगड़ा नहीं कीजिये । कहा गयाहै—झगड़ा नित्य बराइये, झगड़ा बुरी वलाय । दुख उपजै चिन्ता दहैं, झगड़ा में घर जाय ॥ अस्तु सुखसे रहने केलिये बहूको परेशान न करिये । यह तो आप भलीभाँति जानती ही हैं कि एकदिन बहू ही घरकी मलिकिनि बनेगी, तब आपकी क्या दशा होगी ॥ यदि आप छात्र या छात्रा हैं । तो आपको खूब मनलगाकर पढ़ना चाहिये । सिनेमा देखने या क्लब में न जाकर घरेलू कार्यों को करने के वाद निश्चित रूपसे कुछ समय भगवान् का भजन कीर्त्तन सद्ग्रन्थोंका पठनपाठन करना चाहिये । सारादिन पावडर लनाने, बालसँभालने बाजार में घूमने होटल में न विताइये । कम से कम पैसोंमें अपना खर्च चलाइये, आपको मालूम होना चाहिये कि आपके माता पिता कितना कष्ट सहकर अपना पेट काटकर आपको पैसा देते हैं । आप तितले और तितलियों की भाँति कई प्रकार की फैशन बदलने में समय नष्ट न करके समय का सद्व्यय कीजिये । आपलोग ही देशके कर्णधार बनेंगे ।

अध्ययनकाल में विशेष सुख नहीं खोजना चाहिये । शास्त्रीय सिद्धान्तहै कि-सुखार्थिना कुतो विद्या, विद्यार्थिना कुतो सुखम् । सुखार्थिना त्यजेत विद्यां, विद्यार्थिना त्यजेत सुखम् ॥ विद्या वहीहै जिसे पढ़कर मानव बनजाये, किन्तु जिसे पढ़कर मानवसे दानव बनजाये वह विद्या नहीं अविद्या है । आप अपने पिता माता एवं गुरुजनोंका सम्मान करिये, उनका शासनमानिये, ब्रह्मचर्यका पालन करिये, ब्याहके पूर्व विषयकी चर्चासे भी दूर रहिये ॥

यदि आप अध्यापक प्रोफेसर या प्रिंसपलहैं । तो आपको चाहिये कि आप अपनाजीवन सादा और व्यवहारसरल एवं विचारउत्तम तथा भावनायें शुद्धरखिये । आपके जीवनमें बीड़ी सिग्रेट पान तम्बाकू भंग शराब, जुआइत्यादि दुर्व्यसन नहींहोने चाहिये । आपका जीवन विलासी नहींहोना चाहिये । क्योंकि सहस्रों बालकबालिकायें आपकी नकल करके रसातलको चलेजायेंगे । उनके जीवनका उत्तरदायित्व आपपरहै । आप छात्र एवं छात्राओंको अपने लड़के लड़की समझकर शुद्धभावसे व्यवहार कीजिये यदि आप किसी छात्राके साथ अनुचित भाव लातेहैं तो, आपको महानपाप लगेगा, जिसके फलस्वरूप नरककी शैर करनी पड़ेगी । अस्तु आप बालक और बालिकाओं का जीवन निर्दोष एवं उत्तम बनाइये ॥ यदि आप कोई पदाधिकारी हैं, तो आपको उचितहै कि अपने नीचे रहनेवाले व्यक्तिसे सरलता एवं उदारताका व्यवहार करिये । जनताके साथ अन्याय नहीं करिये, यदिआप सिपाही, थानेदार, तहसीलदार, कलक्टर कमिश्नर, गर्वनर, राष्ट्रपति या प्रधानमन्त्री हैं । तो उचित न्याय कीजिये, गरीबोंको नहीं सताइये, नौकरोंको आवश्यकतानुसार उचितवेतन दीजिये । चोरी, डकैती, कतल करनेवालों को उचित दण्ड देना चाहिये । किसी की सिफारिस मानकर या घूस लेकर अपराधी को छोड़ना अन्यायको बढ़ानाहै ।

यदि आप ग्रामपंचायत के सदस्य, प्रधान, सरपंच तथा एम०एल०ए० मिनिस्टर अथवा किसी राजनैतिक पार्टीके नेताहैं, तो आपको उचितहै कि पदलोलुपता की ओर ध्यान न देकर कर्तव्यपालन में अधिक उत्साह रखिये । जनताजनार्दन की सेवा का नारा लगाकर उनका गला नहीं घोटिये । चुनाव के समय आप प्रत्येक व्यक्तिके चरण चूमनेको उद्यत होतेहैं । बादमें आप हरेक को पहचानते भी नहीं, यह आपकी भूलहै, इसका सुधारकर आप उचित न्याय कीजिये । किसी व्यक्ति को नौकरी दिलाने या किसी कचहरी से कोई काम करवाने में गरीबों से पैसा नहीं लीजिये । आप किसी के अधिकार को न छीनिये, न किसी का अहित कीजिये । समाजको सेवा करना ही

आपका परमलक्ष्य होना चाहिये ॥ यदि आप व्यापारी हैं, तो भावमें कमी बढ़ी लैकर लीजिये, परन्तु तौल में कम न दीजिये । और दूसरे की बस्तु अधिक नहीं तौल लीजिये । डाँड़ी पसँगा मारना या घी में डालडा या तेल न मिलाइये । जो बस्तु वेचिये उसे शुद्ध दीजिये । आप यह नहीं सोचनाकि अभी खूब पैसा किसीभी प्रकार कमालें बादमें दान करके पापसे मुक्त हो जायेंगे । अन्यायोपार्जित द्रव्यके दानसे लाभ कम होता है । न्यायपूर्वक धन का संग्रह करके धार्मिक कार्यों, परोपकार तथा दीन दुखियों की सेवामें व्यय करिये । मधुमक्खी की भाँति जीवनभर धन जोड़ते जोड़तेही न मरजाइये । सद्कार्यों में व्यय करते रहिये । तुम अन्याय से कमाकर मर जाओगे और लोग मौज उड़ायेंगे । किन्तु नरक तुमको भोगना पड़ेगा । इसलिये न्यायसे धनकमाकर परमार्थ में लगाओ ।

यदि आप राजा महाराजा हैं, तो गरीबोंको मत सताइये । उनकी बहूबेटियों पर कुदृष्टि न डालिये । किसीकी सम्पत्ति पर अनुचित रूपसे अधिकार नहीं जमाइये आप मांस मछली अण्डा नहीं खाइये, और शराब पीकर अपना जीवन नष्ट न कीजिये । यदि आप श्रेष्ठ ब्राह्मणहैं तो आपको नित्य सन्ध्या करनी और ब्रह्मगायत्री का जप अवश्य ही करना चाहिये । बीड़ी तम्बाकू सिगरेट गाँजा भाँग नहीं खानापीना चाहिये । आप शुद्ध सात्विक भोजन भगवान् को अर्पण करके प्रसाद पाइये । मांस मछली अण्डा कभी भी आपको नहीं खाना चाहिये । आप भगवन भक्त और सन्तों को नमस्कार करिये, अपने श्रेष्टता के अभिमान में आकर सन्तों का अपमान नहीं करिये । श्री गोस्वामी जी ने लिखा है कि—नीच नीच सब तरगये, सन्तचरण लव-लीन । जातिहिं के अभिमान ते डूबे बहुत कुलीन ॥ तुलसी भगत स्वपच भलो भजै रैन दिनराम । ऊँचोकुल केहि कामको जहाँ न हरिको नाम ॥

यदि आपका जन्म शूद्र परिवारमें हुआहै तो आप अपने को यह न समझिये कि हम भगवत् प्राप्ति नहीं कर सकते । भगवान् आपसे घृणा नहीं मानते हैं । आप अभक्ष पदार्थ मांस मछली अंडा नहीं खाइये । प्रभुतो आपके हृदयमें शुद्ध भावको समझते हैं । आप यह चेष्टा न कीजिये कि सभी लोग हमारा छुआ अन्न जल खायें पियें । यदि कोई खाना ही चाहता है तो खिलाइये, यदि सभी लोग आपका छुआ हुआ अन्न पानी खाने पीने लगें तो भी आपको क्या मिला; न खाने पर भी आपकी कुछ हानि नहीं है । ब्राह्मणों का छुआ सभी खाते हैं, क्या ब्राह्मण आकाश में उड़ते हैं । पृथ्वी पर ही रहते हैं । ध्यान रहे मानवमात्र की उन्नति विनम्रता, भगवद्भक्ति,

सत्संग, चरित्रवान, सत्यभाषण, परोपकार एवं सद्गुणों से होती है खाने पीने से नहीं। अस्तु आप अपने को नीच न मानकर सत्संग भगवद्भक्ति तथा समाजकी सेवा करिये। भगवान् आपपर कृपाकरेंगे। यदिआप स्वामीहैं तो अपने नौकरोंको व्यर्थमें डाँट फटकार न लगाइये, समयपर उनका वेतन दे दीजिये। उनको नीची दृष्टि से नहीं देखिये। आप यथायोग्य सभीका आदर करिये किसी से भूल होजाने पर उसको दण्ड न देकर उसका सुधार कर दीजिये, आपसे भी तो कभी गल्ती होती ही होगी। तब आप क्या करते हैं। उसीप्रकार आप अन्य लोगों को भी क्षमा करें। यदि आप नौकर हैं तो समय पर मालिक की सेवा करते रहिये, उसका काम विगड़ने नहीं पाये, उसकी सम्पत्ति को अपनी मानकर रक्षा करिये॥

यदि आप वकील हैं, तो किसी से पैसा नहीं ठगिये। जिसका पैसा लेते हैं उसका काम भी करिये। ध्यान रखना यदिआप अनुचित रूपसे विषय विलास करेंगे तो भगवान् के सामने आपकी कानूनी डायरी काम न आयेगी, वहाँतो सत्यता सच-रित्रता, परोपकार, उदारता और भगवत् भजन ही काम आयेगा। यदि आप डाक्टर हैं दवाई में पानी न मिलाइये, रोगी के रोगको नहीं बढ़ाइये, आपका कर्तव्य समाज की सेवा करना है। खटमल की भाँति जनता का खून चूसना नहीं। दवाई का उचित दाम लीजिये। गरीबों को यथाशक्ति निःशुल्क सेवा करिये। कुमारी बालि-कायें या विधवाओं कें गर्भ गिराकर अन्याय अत्याचार को मत बढ़ाइये, अनपढ़ जनता दवाई का दाम नहीं जानती है, आप उसे ठगिये नहीं। यदि आप विद्वानहैं, तो जो भाषा आपको प्रिय या जिसका आपको ज्ञान है, उसके अतिरिक्त भाषाओंकी अवहेलना नहीं करिये। सभी भाषाओं में भगवान् की भक्ति की महिमा है। ध्यान रहे कि सभी विद्याओं का फल ,नम्रता, सत्यवादिता, उदारता, परोपकारिता और भगवत्भक्ति करनाही है। यदि यह न ही पाया तो विद्वान होनेका अभिमान व्यर्थहै। प्राचीय नीतिकार अप्पयदीक्षित कहते हैं कि—नीतिज्ञा नियतिज्ञा वेदज्ञा अपिभवन्ति शास्त्राज्ञाः। ब्रह्माज्ञा अपिलभ्याः स्वाज्ञानज्ञानिनो विरलाः॥ महाभारत में युधिष्ठर जी कहते हैं कि—पाठकः पाठकाश्चैव च ान्ये शास्त्र विचिन्तकाः सर्वेव्यसनी मूर्खायः क्रियावान् स पण्डिताः॥ पढ़नेवाले पढ़ानेवाले, शास्त्रों का चिन्तन करनेवाले सब व्यसनी और मूर्ख हैं। पंडित तो वह है जो क्रियावान है। सदाचरण और भगवत् भक्ति सम्पन्न है।

यदि आप किसी के मित्र हैं, तो आपको उचित है कि अपने मित्रके गुणों

को समाज में प्रकाशित करिये और उसके अवगुणों को छिपाइये। उसे अधर्म अन्याय अत्याचार चोरी हिंसा असत्यभाषण से बचाइये। और सत्प्रेरणा देकर धर्मार्थ कार्यों दीनदुखियों की सहायता करने, भगवद्भक्ति करने में प्रवर्त कीजिये। भूल होजाने पर क्षमा करिये, विपत्तिकाल में तन मन धनसे सहायता करिये ॥ ध्यान रहे कि चोर अन्यायी व्यभिचारी मद्यपीनेवले मांस मछली खानेवाले धोकेबाज व्यक्ति को मित्र न बनाइये। अन्यथा यह सभी दोष आप में आ जायेंगे ॥ यदि आप भगवद्भक्त हैं, तो आपको माया मोहमें लिप्त नहीं होना चाहिये। नित्यहीं सच्चे संतों का संग सद्-ग्रन्थों का स्वाध्याय और भगवद्भजन पूजनही आपका जीवन होना चाहिये। भगवान् को ही अपना रक्षक पालक एवं परमप्रेमास्पद मानना चाहिये। आप संतो को भग-वद्रूप मानकर निष्कपट भावसे सेवा करिये। सत्यका ग्रहण और असत्य का त्याग करना चाहिये ॥ यदि आप ब्रह्मचारी हैं तो आपको अपने शरीर का शृंगार करना बहुत सुन्दर पदारथ सेवन करना, सिनेमा देखना, नाच या नाटक देखना, बाजारों में टहलना, रेडियो सुनना अखबार पढ़ना, उपन्यास यां संगीत की पुस्तकें पढ़ना, देवियों से सम्पर्क रखना उचित नहीं है। आपको जनसमुदाय से दूर निर्जन स्थानमें नदी के तट पर शान्त होकर भगवत भजन करना चाहिये। विषयों की चर्चा करना या सुनना उचित या लाभकर नहींहै। लहसुन प्याज खटाई मिर्चा, तेल, गुण इत्यादि का सेवन करना हानिकर है। स्त्रियोंका संग आपके पतनका कारण होगा। आपको शुद्ध सादा सात्विक भोजन करके सद्विचार, सत्संग, सन्तसेवा, और भगवदाराधन में ही तत्पर रहना चाहिये ॥

यदि आप साधकहैं. तो आप शरीर निर्वाह के अतिरिक्त कुछ भी सामान या द्रव्य का संचय न करके प्रपंच को वार्ता से दूर रहकर निरंतर अपनी साधना में लगे रहिये। जमीन, पाठशाला, धर्मशाला, बहुत शिष्य बनाना, सुन्दर भोजन का स्वाद लेना आपको उचित नहीं है आप मौन रहते हैं, पैसा नहीं छूते नंगे रहते हैं। तथापि अभिमान से भरे रहते हैं अन्य संत, विद्वान्, भगवद्भक्तों को कुछ नहीं मानते, स्वयं को ही सबसे अच्छा साधक मानते हैं, तो आप अवश्य ही भूल रहे हैं ॥ यदि आप साधु हैं. तो आपको महिलाओं से राग, और ऐकान्तिक सम्पर्क, परनिन्दा, भाँग गाँजा खाना पीना तम्बाकू बीड़ी सिग्रेट का सेवन, पानखाना, वेश-कीमत चमकदार सुन्दर वस्त्र भूषण धारण करना; भूतप्रेतों की सेवा करना, झाड़ना फूँकना, किसीको पुत्र किसीको धन देने का पाखण्ड करना उचित नहीं है। आपतो

भगवत्कृपा का अवलम्ब लेकर अहर्निशि भगवान् का भजन करिये । संसारके उद्धार का ठेका आपको नहीं दिया गया है । यह बात अलग है कि प्रभुकृपा से आपके द्वारा जगतको लाभ होजाये, किन्तुआप इस चक्करमें न रहकर केवल अपने कल्याण करने की साधनामें लगे रहिये । आपको यदि भगवान् दर्शन देदें, तो बिना ही प्रयास आपके दर्शन से संसार को लाभ होगा, आप भजन छोड़कर उद्धार करने के फेर में पड़ेंगे तो आपही फसंजायें जगत का उद्धार क्या होगा, अस्तु शुद्ध भावसे भगवान् का भजन करिये ।

यदि आप सन्तहैं, तो समस्त संसार में धर्म प्रचार की तृष्णा से व्यस्त न रहिये । आप जहाँ भगवान् का भजन करते हैं वहाँ जो व्यक्ति आपके सम्पर्क में आवे, उसे उचित शिक्षा देना तो आपका स्वभाव ही होना चाहिये । किन्तु आप इस भूल में न पड़िये कि सभी लोग हमारे ही सेवक या शिष्य बन जायें । ध्यान रहे आप ऐसा न सोचिये कि अभी यह कार्य करलें, भविष्यमें स्वरूप स्थित होकर भजन करेंगे । यदि आप मनको भटकायेंगे, तो फिर कभीभी आपकी बात न मानेगा । आप सम्पर्कीय व्यक्ति और वस्तुओंसे आवश्यकतानुसार ही व्यवहार कीजिये, उनमें राग या आशक्त होना ही आपका पतन है । कामक्रोध लोभमोह मदमात्सर्य से अलग रहकर अनन्यप्रयोजन होकर भगवद्भक्ति करना ही आपको उचित है । यदि आप महान्त है तो आपको उचित है कि अपने स्थान की सम्पत्तिको भगवान् की वस्तु समझकर उसकी रक्षा करते हुये संत और भगवान् तथा अतिथि अभ्यागतों की सेवामें निसंकोच व्यय करें । यदि आप भगवान् का सुन्दर भोग लगाकर स्वयं प्रसाद पा लेते हैं, अतिथि अभ्यागतों की सेवा नहीं करते तो आप भूल रहे हैं । जिसके पास सेवा करने का साधन नहीं है । वह जैसे भी रहे, परन्तु स्थान में सम्पत्ति रहने पर भी संतों की सेवा से जी चुराना अन्याय एवं पाप है । स्थानमें आनेवाले संतोंको भगवत् स्वरूप मानकर उनका समादर सत्कार करना ही आपका गौरव है । आप स्थानमें आनेवाले संतों की सेवा करने के लिये महान्त बनाये गये हैं । आप संतोंके सेवकहैं, स्वामी नहीं, तथापि यदि आप सन्तों को अपना सेवक समझते है, उनको उचित सत्कार नहीं करते हैं, उन्हें आयोग्य आलसी समझतेहैं; तो आप निश्चय ही पतन की ओर जा रहे हैं । महान्त शब्द का अर्थ ही है कि माया को हनन करनेवाला अर्थात् मायाके विकार काम क्रोध लोभ मोह मद मत्सर ईर्ष्या दोष को त्यागकर भगवत्पादारविन्द मकरन्द का रसास्वादन करना । आप यदि भगवान् की पूजा,

रसोई बनाना, मन्दिर की स्वच्छता स्वयं करनेमें अपमान समझतेहैं तो आप भूल रहे हैं। ध्यान रहे कि आपको इसीलिये महान्त नहीं बनाया गयाहै कि देरतक सोते रहें, जगनेपर चार सेवक आपकी सेवा करें, मनमाने ढंगसे रहकर प्राइवेट भोजन बनवा-कर पायें, शरीर को राजकुमार सदृश्य सजाये रहें। सभी पर शासन करते हुये आप ऐश आराम में ही अपना जीवन सफल माने ॥

यदि आप सद्गुरु हैं, तो आपको उचितहै कि अपने शिष्य को उचित शिक्षा देनेमें संकोच न करें स्पष्ट रूपसे कड़ाशासन करने से ये नाराज हो जायेगा । तो हमारी सेवा नहीं करेगा । इस भयसे आप उसके हितकी बात न कहिये, तो आपकी भारी भूलहै । आप शिष्योंसे रुपया पैसा ठगने (पुजाने) के चक्करमें न पड़िये । यदि सारा संसार आपका शिष्य होजाये, तो आपको क्यादेसकताहै । आपको केवल दो एक बस्त्र पहरकर दो रोटीही खानीहैं । अस्तु आप शिष्य बनानेके फेरमें न पड़िये, यदि कोई विशेष जिज्ञासा करे, तो उदारतापूर्वक लोभ लालच रहित उसके कल्याणार्थ ही दीक्षा दीजिये । ध्यानरहे कि शिष्य और शिष्यायें आपके पुत्र एवं पुत्रीहैं, वात्सल्य पूर्वक दुलारसमेत सत्शिक्षादेना तो आपकास्वरूपहीहै । किन्तु यदिआप उनकेप्रति अनु-चित भाव करतेहैं, तो श्री राम जी का बाण बालि की भाँति आपका स्वागत करे तो क्या नई या आश्चर्य की बातहै । आप अपने शिष्योंको अपशब्द नहीं कहिये, उनपर व्यर्थका शासन नहींकरिये यदिशिष्य आज्ञा न माने तो क्रोध न करके उसकेकल्याण की मंगलकामना प्रभुसे कीजिये । और स्वयं रातदिन भगवत् भजन में लगे रहिये ।

यदिआप शिष्यहैं, तो आप अपने सद्गुरु को भगवत्स्वरूप मानकर मनवचन कर्मसे उनकी सेवाकीजिये, आज्ञाओंका पालन करिये । गुरुके उपदेशानुसार ही भगव-द्भजन उपासना करिये । आप यह न सोचिये कि सबलोग हमे सिद्धमहात्मा माने । हमारी पूजाकरें । गुरुके कड़े से कड़े शासनको अपने ऊपर उनकी कृपामाने । आप सद्गुरु की शरीरसे सेवा करिये, मनसे श्रद्धारखिये, बचनसे मधुर प्रियभाषण करिये । गुरुके शरीर की सम्यकप्रकार रक्षाकरना आपका धर्महै । यदि आप कुछ पढ़े लिखे व्यक्तिहैं । इसलिये गुरुकी आज्ञा नहीं मानते, उनसे असत्य ब्यवहार करतेहैं । गुरुकी सेवा करनेमें आप अपने व्यक्तित्त्व में हानि समझतेहैं, अपने शिष्य सेवकों के बीचमें आपकी गुरुकी पूजा प्रतिष्ठा प्रशंसा करनेमें लाज लगती है । तो चाहे आप लोक में भले ही पागलों के समाजमें समादर पालें, किन्तु भगवान् आपकी सब चालबाजियाँ जानते हैं । वहाँ पर आपकी चारसौ बीसी नहीं चलेगी । अस्तु गुरुआज्ञा मानतेहुये

कामक्रोधादिक विकारोंसे अलग रहकर शुद्ध भावसे प्रेमपूर्वक भगवान् का भजनकरिये। ध्यानरहे गुरुके समान अहेतुकी कृपा करनेवाले भगवान् भी नहींहैं तब अन्य लोगोंकी क्या चर्चा। आप गुरुके दोषोंपर विचार न करें। उनको निन्दा न करें न सुनें। गुरुनिष्ठ भक्तपर भगवान् शीघ्र ही कृपा करते हैं।

यदिआप अधिकारी, पुजारी, कोठारी या रसोइया हैं, तो आपको उचित है कि अपना अपना कार्य ठीक समयपर बिना कहे ही कर लेवें। अन्य अभ्यागतोंपर आप शासन नहीं जमाइये। यदि किसी सन्तसे कुछ भगवत् कैंकर्य कराना है. तो समझाकर प्रेमसे ले जाइये। यदि कोई सत स्थानीय नियमावली के प्रतिकूल चलते हों, तो उनसे प्रार्थना करिये, न माने तो हाथ जोड़ लीजिये कि भगवन् हमपर कृपा करिये किन्तु आप किसी सन्तको अपशब्द न कहिये, न मारिये। यदि आप अपने अधिकार के अभिमान में आकर सन्तोंको गाली देते मारते डाँटते हैं तो अनेक जन्मोंमें भी भगवान् के प्रिय नहीं हो सकते हैं। अस्तु आप उचित व्यवहार करके भगवान्के भजनपूजनमें ही अपना कल्याण मानिये॥

यदिआप अभ्यागत सन्तहैं, तो आप जिस स्थानमें रहें उसको अपना स्थान माने। भगवान् की सेवारूप कैंकर्य को उत्साहपूर्वक प्रेमसे करिये। स्थानके श्रीमहान्त अधिकारी पुजारी कोठारी रसोइसा इन सबकी आज्ञाको मानिये, स्थानका कैंकर्य इसलिये मत कीजिये कि काम न करेंगे, तो महान्तजी आसन उठादेंगे। अपितु उसे अपना सर्वस्व धन समझिये, समय से उठकर भगवान् का भजन करिये। स्थानीय महान्त अधिकारी पुजारी कोठारी की निन्दा दूसरे सन्तोंसे मतकीजिये। इससेआपको लाभ नहीं हानि होगी। यदि आप किसी महान्त जी या किसी राजकीय पदाधिकारीकी सेवामें नियुक्तहैं, तो आपको चाहिये, कि उनके निकट आनेवालों के साथ साथ सुहृदता का व्यवहार करिये, कोई अपराधी आता है, तो उसको क्षमा करवा दीजिये। उसकी परिस्थिति से स्वामी को अवगत कराइये।

यदिआप कवि, लेखक एवं प्रवचनकर्ता हैं, तो आपको उचित है कि जिस प्रकार आप समस्त संसारकी अलोचना करते हैं, उसीप्रकार आप अपनी आलोचनाभी करते; आप और सबको तो कर्तव्यकी शिक्षा देतेहैं, परन्तु स्वयं अपने कर्तव्य का ध्याननहीं देते, यह आपकी महान भूल है। ध्यान हे कि यदि आपके कथनीरूपी पौधे इतने बढ़ गये कि जिनमें करनीरूपी फल लग ही नहीं पा रहे हैं, अर्थात् आपको उपदेश देने से अवकाश ही नहीं है तब आप अपना कर्तव्य कब पालन करेंगे। आपकी

कवितामें अपार शिक्षा भरी रहतीहै, किन्तु आप अपनी इन्द्रियोंके दास वने रहतेहैं, तो आप अवश्यही भूल रहेहैं। यदि आप अपने मनमें ऐसा सोचतेहैं कि मैं ही सर्वश्रेष्ठ लेखक, कवि, प्रवक्ता, विद्वान् हूँ। और सब अवोधहैं, तो आप भूल रहेहैं। विशेष ध्यान दीजिये, यदि आप अपने दोषोंको छिपानेमें परमदक्षहैं, अनेक युक्तियोंसे अपने दोषोंको छिपाये रहतेहैं, और दूसरे लोगोंको नित्यशिक्षा उपदेश देते रहतेहैं। आपके विगड़नेका (पतन होने का) सबसे प्रधान कारण यहीहै। मानिये कि मैं विरक्तीका डंकापीटता हूँ। और स्वयं अवैधानिक रूपसे छिप छिपकर किसीकी बहू बेटियोंके साथ स्वच्छन्द विहार करताहूँ, तव कहिये कि मेरे समान बुद्धिका दरिद्र संसारमें कौन होगा। अस्तु कवि, लेखक. प्रवक्ता रामायणी, व्यास प्रथम अपने सुधारपर ध्यानदें, तभी जगतका सुधार हो सकताहै अन्यथा नहीं। ध्यान रहे कि पुस्तकोंको पढ़कर उनमेंसे संग्रह करके कोई पुस्तक लिखदेना या प्रवचन करदेना ही जीव का परमलक्ष नहींहै। न इससे भगवान् ही मिलते हैं न संसारसे मुक्ति ही हो पातीहै। केवल कुछ समय के लिये लोकमें प्रशंसा प्राप्त होती है। भगवत् प्राप्ति या संसारसे मुक्तितो श्रीसद्गुरु प्रदत्तज्ञानके अनुसार अनन्य प्रयोजन होकर अनन्य भावसे भगवद्भजन उपासना करनेपर ही हो पायेगी अन्यथा नहीं॥

यदि आप प्रेसमालिक हैं, तो आप ग्राहकों का कार्य ठीक समयसे कर दीजिये तो उसका काम हो जायेगा। आपको तुरंत पैसा मिल जायेंगे। यदि आप ऐसा सोचकर कि कहीं दूसरे प्रेस में न चला जाये, उसको फसा लेतेहैं, काम कभी किया कभी नहीं किया इससे ग्राहकको असुविधा और दुख होताहै। आप अपने कर्मचारियों को वेतन कम देतेहैं, अथवा देरसे देतेहैं, तब वह काममें शिथिलता कर देतेहैं. जिससे मालिक तथा ग्राहकसभी को हानि होती है समय व्यर्थ हो जाताहै, अस्तु समयपर वेतन देना चाहिये। यदि आप कम्पोजीटर या मशीनमैंन हैं, तो आप विशेष सावधानी से कार्य करिये, आपके एक क्षण का प्रमाद हजारों लाखों व्यक्तियों को दुखद होगा। जिसका परिणाम तदनुसारही भयंकर होगा। पाठकगण कहेंगे कि पुस्तक छपानेवाला, छापनेवाला, संशोधक सभी अन्धेथे क्या? अस्तु पुस्तकों में सावधानी से कार्य करना अनिवार्य परमावश्यक है॥

यदि आप प्राचीन संस्कृति (वेष भूषा) एवं रूढ़ीके समर्थक हैं, तो आपको रुचि है इसलिये ठीक है। परन्तु नवीन संस्कृति के माननेवालों से घृणा या दोष मत मानिये। कारण यह है कि किसी भी समाज में सभी अच्छे हों अथवा सभी खराब हों ऐसा नहीं होता। सभी समाजोंमें कुछ व्यक्ति उत्तम विचारवान और कुछ निकिष्ट विचार के होते हैं। धर्म किसी भी प्रकार के वेष में आवद्ध न होकर सर्व व्यापक रहता है। नवीन वेष सर्ट पैन्ट टाई लगानेवालों में भी लाखों व्यक्ति धर्म परायण

भगवत् भक्तहैं । उसीप्रकार प्राचीन वेष धोती कुर्त्ता या कमीज पहिरनेवालों में लाखों व्यक्ति धर्मकी बधाई देकर अधर्म अन्याय और पापाचार व्यभिचार परायण हैं । अस्तु व्यक्तिको बिना समझे वेषमात्र देखकर किसीको नास्तिक समझना भारी भूलहैं। यदि आप नवीन सभ्यताके प्रचारकहैं, तो आप भी प्राचीन वेष धोती कमीज पहरने वालों को पिछड़ाहुआ ढोंगी, पाखण्डी, न कहने लगिये । आप चोटी यज्ञोपवीत इत्यादि प्राचीन चिन्ह धारण करनेवालों को और सद्ग्रन्थोंका पाठ पूजन करनेवालों को बुद्धू या ठग नहीं मानिये । आप जानते होहैं कि बर्तमान समयमें दूसरेकी निन्दा करके अपनेको श्रेष्ठ वतानेवाले न जाने कितने व्यक्ति धर्मके गीत गा गाकर समाजसे अपना पेट भरतेहैं । खोजने से पता लगेगा कि न जाने कितने नवीन सभ्य गरीब परिवानमें जन्म लेकर धर्मके ठेकेदार बनकर जनता की आँखमें धूलझोंककर बडीबड़ी कोठियाँ वनाकर मौज उड़ा रहेहैं । धर्म प्राचीन या नवीन किसी भी बैषमें नहीं हैं । धर्म तो सत्यतापूर्वक सदाचार करतेहुये अहिंसा क्षमा, दया, विचार, धैर्य, सत्संग, शरीरकी पवित्रता और मनको एकाग्र करके आत्मा परमात्मा का यथार्थ बोधपूर्वक भगवद्भजन उपासना करना है । इन सब सद्वृत्तियों को धारण करनेवाला व्यक्ति प्राचीन सभ्यताके अनुसार धोती कमीज इत्यादि पहरे अथवा पैन्ट सर्ट टाई धारण करे । वे दोनों ही धार्मिक है । इसके विपरीत असत्यवादी, भ्रष्टाचार, व्यभिचार, हिंसा, क्रोध, क्रूरता, अविचारिता, कुसंग, अपवित्रा, चंचलमन, आत्मापरमात्मा ज्ञान रहित भगवद्विमुख व्यक्ति चाहे प्राचीन सभ्यता के गीत गाये, अथवा नवीन सभ्यता का झण्डा उठाये, वे दोनोंव्यक्ति अपने अपने समाजगत भले ही धर्मात्मा माने जायें, वास्तव में दोनों अधर्मी हैं ।

यदि आप अपने को हिन्दू या गोंभक्त मानतेहैं, तो आप अपने बूढ़े वैल, भैंसा, बूढ़ी गायें भैंसे, मत बेचिये, जीवनपर्यंत उनकी सेवा कीजिये । सबसे बड़ेकसाई तो वे लोगहैं जो जान बूझकर अपने पशु कसाई या कसाई के एजेन्टों के हाथ बेचते हैं । यह कौन नहीं जानता है कि कसाई खानेमें पशुओंको मारदिया जाता है । क्या कसाई किसीके पशुओंको उसके खूँटेपर से वलात्कार ले जाकर काट देतेहैं । कसाइयोंका निन्दा करनेवाले धर्मके ठेकेदार कहानेवाले लोग जबतक बैल भैंसे जवानरहते हैं, उनको हलमें जोततेहैं बैलगाड़ी चलातेहैं, गौयें और भैंसियोंका दूध खाते हैं । बूढ़े होनेपर कसाइयोंके हाथ थोड़ेसे पैसोंके लोभमें वेचतेहैं । अपनेको धर्मात्मा या हिन्दू मानेवाले को उचित है कि बूढ़े पशुओंको न बेचें, उनकी सेवा करें ॥

यदि आप साम्प्रदायिक, पन्थी समाजीहैं, तो आपको उचितहै कि आप अपने पंथके प्रचार करनेवाले या प्रवर्तकोंको श्रेष्ठ पूज्यमाने, उनके ग्रन्थोंको आदरसे पढ़ें; उनकी आज्ञानुसार अपनाजीवन निर्माण करें। किन्तु अन्य पंथों समाजों या सम्प्रदायों के प्रवर्तकों एवं प्रचारकोंको सर्वथा अज्ञानी एवं उनके ग्रन्थों को बिलकुल व्यर्थ न कहिये। अपनाधर्म पालनकरना जितना हितकर है। दूसरेकी निन्दा करना उतना ही अहितकर है। किसी भी धर्मावलम्बी को किसीभी धर्मको गलत कहने का कुछभी अधिकार नहींहै। आपकी दृष्टिमें जो धर्महै किसीकी दृष्टिमें वही अधर्म भी होगा। आप जिसे अधर्म कार्य कहतेहैं, उसी को कोई धर्म मानताहै। अस्तु आप अपनी मान्यताके ही आधारपर धर्म अधर्म मानिये। परन्तु दूसरे व्यक्तिके मार्गमें कन्टक न बनिये। समस्त विश्वके मानव आपकी मान्यतानुसार ही धर्म अधर्ममाने, यह आवश्यक या अनिवार्य नहींहै। यदि साराजगत आपकी मान्यानुसार ही धर्माधर्म मानले, और आपको ही धर्मकी व्यवस्था सौंपदी जाये तो आप सुचारुरूपसे सारे संसारकी व्यवस्था करनेमें समर्थ भी नहीं होसकतेहैं, इसलिये आप अपने धर्मको मानिये परन्तु दूसरे धर्मकी निन्दा न कीजिये।

यदि आप मानवहैं, तो आप सभी जीवोंपर दया करिये। शुद्धसात्त्विक आहार पाइये, सभीसे सत्यतापूर्वक स्वार्थरहित उचित व्यवहार कीजिये। यदि आप अपनी कोईभी बस्तु किसीको देना आवश्यक या उचित नहीं समझतेहैं, तो दूसरेकिसी की बस्तुको किसी भी प्रकार लेना अनावश्यक या अनुचित मानिये। आप परिश्रम करके धन उपार्जनकरके सुखानुभव करिये, चोरी करना अनुचित अन्याय, अनैतिकता एवं महान पापहै। यदि आप अपनेको शिक्षित एवं बुद्धिमान मानतेहैं, तो परायीस्त्री (अथवा पर-पुरुष) को काम भावसे नहीं देखिये। अपनी समझभर छोटेबड़े किसी भी जीवकी हत्या न करिये। यदि अपने को सर्वश्रेष्ट और बुद्धिजीवी मानतेहैं, तो किसीके साथ अन्याय अनुचित छल कपट नहीं करिये। न किसीको गाली दीजिये न किसीको मारिये पीटिये। यदि आप किसीकी बस्तुको चारसौबीस पढ़ कर ले लेने में, चोरी करनेमें, रिश्वत लेनेमें, किसीकी बहूबेटियों को फसानेमें ही स्वयंको बुद्धिजीवी समझतेहैं, तो आप बुद्धिके परमदरिद्रहैं। बुद्धिजीवी कहाने का वही व्यक्ति अधिकारी है, जो जनसमाज के कल्याण एवं सुख सुविधा की नवीन खोज करे। परोपकार ही जिसका प्रधान लक्षहो। और सदाचारपूर्वक ईश्वराधना करे॥ ध्यान रहे कि संस्कृत हिन्दी अंग्रेजी आदि कई भाषाओं का विद्वान् हो जाने से, वेशकीमती बस्त्र पहनलेने

से, डिप्टीकलक्टर मिनिस्टर गवर्नर या राष्टपति हो जानेसे, कवि, प्रवक्ता लेखक, विज्ञानी, यशस्वी हो जानेसे, शरीर बलवान या कुशाग्र बुद्धि हो जाने से ही व्यक्ति सच्चा मानव नहीं हो जाताहै । इसकेलिये शुभाचरण, सद्गुण, परोपकार, सभी जीवोंके प्रतिदया प्रेम तथा धर्म एवं भगवद्भक्ति को ही जीवनमें अनिवार्य रूपसे धारण करना होगा । यदि आप अपनेको मनीषी (विचार) मानतेहैं, तो आपको मांस मदिरा अंडा लहसुन प्याज भाँग अफीम नहीं सेवन करना चाहिये । क्योंकि ये सभी अभक्ष एवं शास्त्रनिषिद्ध पदार्थहैं । बीड़ी सिगरेट तम्बाकू का सेवन करना आपको उचित नहींहै । समझदार व्यक्तिको पशुओंकी भाँति खड़े होकर निर्लज्ज भावसे पेशाब नहीं करना चाहिये ॥ ठीकहै यदि पैन्ट पहनकर आपको बैठकर पेशाब करते नहीं बनता हैं, तो मर्यादापूर्वक लज्जाके साथ व्यवहार कीजिये ।

प्र०—जीवन किसलिये है ? उ०– पशुपक्षी कृमि कीटादिके जीवन तो अपने पूर्व-जन्मोंके मानवशरीर में किये गये शुभाशुभ कर्मोंको भोगरूप दुखसुख भोगने केलियेही हैं । परन्तु मानवजीवन पूर्वकृत कर्मोंका भोग भोगतेहुये भी नवीन कर्मोंको करने का कर्मक्षेत्रहै । मानवशरीरमें भगवानने सत्यासत्य एवं कर्माकर्म का विवेक दियाहै, इस-लिये मानवकोबुद्धिकेद्वारा विचारकरके वेदशास्त्रविहितकर्तव्यक ग्रहणऔरअकर्तव्यत्कायाग औरअसत्यरूप जगत व्यापारसे चित्तहटाकर सत्यरूप परमात्मतत्त्व भगवद्भक्ति परायण होकर अपना कल्याण करनेके लिये ॥ प्र०—मानवका चरमलक्ष क्याहै । उ०–दुखरूप संसारके सभी वस्तु व्यक्तियोंकी ममताका सर्वथा अभाव और परमानन्दस्वरूप मुक्ति (भगवत्प्राप्ति) होना । प्र०—मानवकी माग क्याहै । उ०—जीवनमें सरसता, स्वत-न्त्रता, अमरता, किन्तु ये सभी बातें भगवत्कृपा से प्राप्त होना सम्भव है । अन्यथा नहीं ॥ प्र०—जीवनके उद्देश्य प्राप्त कैसे हों ? उ०—सुखोंकी लालसा छोड़कर लगन पूर्वक सतत प्रयत्नशील रहनेपर ॥ प्र०—जीवनका पतन क्याहै ? उ०-आचरण और विचारों को गिराना ॥ प्र०—उद्देश्यपूर्ति में बाधा क्याहै । उ०– अविवेक और कार्य शिथिलता ॥ प्र०—उन बाधाओंको दूर कैसे किया जाये । उ०– विवेकी और कार्यदक्ष कर्तव्य परायण महापुरुषों का सत्संग करनेसे ॥ प्र०-जीवन की वास्तविक उन्नति क्या है । उ०—इन्द्रियों और मनका विषयोंमें न जाकर अन्तरमुखी होकर आत्मापरमात्मा का चिन्तवन करना ॥ प्र०-जीवनको आदर्श कैसे बनावैं । उ० सिद्धान्तोंकी स्थिरता, विचारोंकी दृढ़ता, आत्मा परमात्मा का ज्ञान, आत्म विश्वास, कर्तव्य कर्मोंमें एकरस लगन शीलता, परिश्रम से न डरना ॥ प्र०—जीवनके दोष क्या हैं ॥ उ०—अखाद्य

भोजन सेवन करना, झूठ बोलना, चोरी, हिंसा, व्यभिचार करना किसी की निन्दा करना ॥ प्र०—जीवनको निर्दोष कैसे बनाया जाये ॥ उ०—जिन प्राणी, पदार्थों या समाजोंके संपर्क से दोष उत्पन्न होनेकी संभावना को उनका त्याग करने से ॥ प्र०—कौन कौन प्राणी पदारथोंसे दोष उत्पन्न होते हैं ॥ उ०—अखाद्य-मांस, मछली, अंडे, लहसुन प्याज, इत्यादि खाने और गाँजा, भाँग, बीड़ी तम्बाकू, सिगरेट, ताड़ी, शराब के सेवन से, पाखण्डी, व्यभिचारी, लोभी क्रोधी, परनिन्दक, चोर, हिंसक, जुहारी व्यक्ति या समाजके सम्पर्क से ॥ प्र०—जीवनमें सबसे हानि क्या है । उ०—मन और इन्द्रियोंको विषय बासनाओं में लगाये रहना, एवं चित को चंचल करके राग दोष में फसाये रखना । और भगवान् को भूलजाना ॥ प्र०—जीवन में सबसे बड़ा लाभ क्या है । उ०—मन और इन्द्रियों का बसमें होकर भगवत् भजन स्मरण होने लगना ॥ प्र०—जीवन के सच्चे हितैषी कौन हैं । उ०—जिसके सम्पर्कसे अज्ञान रूपी अन्धकार दूर होकर हृदय में दिव्यज्ञान का प्रकाश हो जाये । दुराचार दुर्गुणों का विनाश होकर जीवन में सदाचार सद्गुणोंका आविर्भाव हो जावे ॥ और जीवन कुपंथ से मुड़कर सुपंथ पर अग्रसर हो जावे । ऐसे महापुरुष ही जीवन के सच्चे हितैषी हैं ॥ प्र०—जीवन में धर्म का क्या स्थान है ॥ उ०—जो स्थान शरीर में आत्मा का है, वही स्थान जीवन में धर्म का है । जैसे विना आत्माा शरीर मुर्दा कहा जाता है, उसी प्रकार धर्म रहित मानव जीवन भी निरर्थक ही नहीं, महान् अनरर्थक है ॥ प्र०—कौन धर्म सबसे बड़ाहै । उ०—जो व्यक्ति जिस धर्ममें मान्यता रखताहै, उसके लिये वही धर्म बड़ाहै । प्र०—अधर्म का स्वरूप क्याहै । उ०—जिन क्रिया कलापोंसे किसी भी प्राणीको कष्ट पहुंचता हो, जैसे किसीकी बस्तु चुरालेना, या छीन लेना, किसीको गालीदेना, झूठबोलना धोखादेना, किसी की बहू बेटीपर कुदृष्टि करना, निन्दाकरना, इत्यादि कर्म अधर्म हैं ॥ प्र०—धर्मका स्वरूप क्याहै । उ०—जिस क्रियासे प्राणियोंको सुखसुविधा मिले, जैसे असहायों की सहायता करना, दीन दुखियोंपर दया करना, परोपकार करना, सदाचारपूर्व जीवन बिताना; विचार पूर्वक भगवत् भजन करना । प्र०—जीवन पराधीन होजाने काक्या कारण है ? उ०—अपने सुखको दूसरेमें समझने के कारण । स्त्री समझतीहै कि पुरुषमें सुखहै, इसलिये वह पुरुषके हाथ विकजातीहै, पुरुष समझताहै कि स्त्रीमें सुखहै, इसलियेपुरुष दासवत् बने रहते हैं । इन्द्रिय और मनकी पराधीनता ही प्रधान कारणहै । मानब यदि अपने मन और इन्द्रियों पर पूर्ण अधिकार करले तो किसी के हाथ बिकने की आवश्यकता

ही क्याहै ॥ प्र०-जीवन स्वाधीन कैसे बनावें ? उ० अपनेमन और इन्द्रियोंपर अधिकार प्राप्त होनेपर ॥ जीवका सहजस्वरूप ज्ञान, प्रकाश, एवं सुखमय है, जिसका प्रधानकेन्द्र परमात्माहै। अस्तु अपनेमन और इन्द्रियोंको शब्द, स्पर्शरूप, रस, गन्ध इनपंच विषयों से हटाकर सतचिद् आनंदघन परमात्मामें लगानेसे बस्तु व्यक्तिसे सुखकी आशारूपी पाश टूटतेही जीवन स्वाधीन हो जायेगा ॥ प्र०-जीवनमें सदाचार का क्या महत्त्व है ॥ उ०— सदाचार का जीवनमें सबसे ऊँचा स्थानहै। सदाचार जीवनका भी जीवनहै। सदाचार हीन मानव, मानव नहीं दानवहै। चोरी हिंसा व्यभिचार असत्यभाषण गाली परनिन्दा अभक्ष्य भोजन दुर्व्यसन आदिका त्याग करके ब्रह्मचर्य अहिंसा अस्तेय सत्यभाषण अन्तर बाहर की पवित्रता आदि धारण करना सदाचारहै। इनके साथ दया, क्षमा, शील, धैर्य, विचार, समता, मैत्री, भावना आदि सद्गुण स्वयं ही आ जातेहैं ॥

प्र०-जीवनमें साहित्य का क्या स्थानहै। उ०—जीवनके उत्थान और पतन का मूल कारण सत और असत साहित्य ही है। विषय उत्तेजक उपन्यास जासूसी इत्यादि पुस्तकोंको पढ़नेसे मानवका सर्वतोमुखी (भली भाँति) पतन हो जाताहै। प्र० जीवनमें आहार का क्या स्थानहै। उ०-जीवनमें आहारका सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण स्थान है। कहावत है, जैसा खाये अन्न, वैसा बने मन्न, मांस मछली अंडा लहसुन प्याज खाने और शराब, ताड़ी, गाँजा भाँग तम्बाकू और तम्बाकू से बनी हुई बीड़ी सिगरेट पीनेवालों का अन्तःकरण तामसी प्रकृतिका बन जाताहै। उसका शुद्ध होना कठिन ही नहीं असंभव है ॥ छान्दोग्य उपनिषद में कहाहै- आहारशुद्धौ सत्वशुद्धिः सत्वशुद्धौ ध्रुवास्मृतिः। स्मृतिलम्भे सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्षः ॥ अर्थ—आहार शुद्ध ग्रहण करनेसे अन्तःकरण शुद्ध होताहै, अन्तःकरण शुद्ध होनेसे स्मृति स्थिर होतीहै। और भगवत्स्मृति स्थिर होनेसे अज्ञान की ग्रन्थियाँ खुलकर जीवनका कल्याण हो जाताहै। उपर्युक्त श्लोक में आहार शब्द व्यापकार्थमें कहा गयाहै। जिसका भाव यहहै कि सभी इन्द्रियोंका आहार शुद्धहोना चाहिये। जैसे-शास्त्र निषेध पदारथोंको न खाना, खाद्यपदारथोंको ही खाना, आँखसे कुभावपूर्वक कुदृष्टिसे किसीको न देखना, किसीकी निन्दा या बिषय चर्चा न सुनना अपवित्र दुर्गन्ध को नहीं सूँघना, मनसे अनुचित न सोचना, अर्थात् उचित पदार्थ खाना, उचित भावसे देखना, उचित वार्ता सुनना, उचित सूँघना, उचितभाव से स्पर्श करना मनसे उचित सोचना आहार शुद्धोहै ॥ प्र०-जीवनमें भक्तिकी क्या आवश्यकता है, और भक्ति किसे कहतेहैं। उ०-माता पिता बड़े बूढ़े तथा गुरुजनों एवं भगवान् श्रीहरि के प्रति श्रद्धा, सेवा तथा आज्ञाकारिता का भाव होना ही भक्ति

है । भक्ति शास्त्रों में भक्ति के महर्षियों ने अनेक भेद बतायेहैं । उनमें से स्थूल रूपमें नवधा भक्ति एवं प्रेमापरा की विशेष चर्चाहै । भक्तिसे ही मानवका हृदय पवित्र होता है । तभी भगवत् प्राप्ति होतीहै । भक्तिरहित व्यक्ति ज्ञान वैराग्य या भगवत्प्राप्ति का कभी भी अधिकारी नहीं हो सकता ॥ प्र०-ज्ञान की जीवनमें क्या आवश्यतका है । उ०-अज्ञान अन्धकार स्वरूप दुखदाईहै । और ज्ञान प्रकाशस्वरूप सुखदाईहै, सुख प्रकाश और ज्ञानकी सभीको परमावश्यकताहै, ज्ञानके विना व्यवहारमें भी काम नहीं चलता, तब सोचिये कि संसारसे मुक्ति या भगवत्प्राप्ति विना ज्ञानके कैसे हो सकती है । ज्ञानके ही अभावमें जीव अपनेको स्वतन्त्र और भोक्ता मानताहै, ज्ञान होनेपर समझमें आताहै कि—जीव सर्वदा ब्रह्मके परतन्त्र और उसका भोग्यहै, स्वयं न तो स्वतन्त्र ही है न भोक्ता ही है ॥ अस्तु ज्ञानरहित मानव दानव या पशुवत है ॥

प्र०-जीवनमें शिक्षाका क्या महत्त्वहै । उ०-जो महत्त्व घरमें प्रकाश का है, वही महत्त्व जीवनमें शिक्षाका है । जिसप्रकार विना प्रकाशका घर सुन्दर होनेपर भी भयानक स्मशान सदृश्य लगताहै । उसीप्रकार अशिक्षित जीवन पशुवतहै । शिक्षा का अर्थहै आवश्यक उचित व्यवहारों का बोध होना । कई भाषायें पढ़नेपर भी यदि उचित अनुचित, आवश्यकता अनावश्यकता का बोध न होपाये, तो वह शिक्षितव्यक्ति भी अशिक्षित पशुवत् ही है ॥ प्र० जीवन में श्रमका क्या स्थान है । उ०-श्रम रहित जीवन रुके हये थोड़ेसे पानीके समान दोषपूर्ण हो जाताहै । परिश्रमी व्यक्ति नीरोग एवं स्वस्थ रहताहै । परिश्रम रहित जीवन आलसी और रोगी हो जाता है । अस्तु स्वस्थ और नीरोग रहनेके लिये मानव मात्रको परिश्रम करना चाहिये ॥ प्र०-जीवन में व्यवहारका क्या स्थानहै । उ०-मानव जीवनमें व्यवहारके बोधकी अत्यधिक आवश्यकताहै । जोव्यक्ति व्यवहारकुशल नहींहै, वह पग पगपर ठोकर खाताहै । ध्यानरहे कि व्यवहार की पवित्रता के विना लोक एवं परलोक कहीं भी सुख और शान्ति नहीं मिलती, प्रभु कृपासे प्राप्त प्राणी पदार्थों और परिस्थितियों में व्यवहार का पवित्र बनाये रहना चाहिये । जो व्यक्ति अपने व्यवहार को मधुर बनाये रहनेमें कुशल है, वह सभी स्थलों में सर्वदा सुखी रहताहै॥ प्र०-जीवनमें शोक मुक्त कैसेहों । उ०-प्राणी पदार्थ अवस्था, परिस्थिति शरीर आदि को अपना मानकर ममता नहीं करके केवल समयानुसार उचित व्यवहार करनेसे मानव इस जीवनमें ही शोशमुक्त हो सकताहै । ध्यानरहे कि सतत परिवर्तनशील जगतमें कोईभी वस्तु, व्यक्ति अवस्था, परिस्थिति एकरस नहीं रह सकतीहै । तब भगवत् कृपासे प्राप्त सामयिक वस्तु व्यक्ति; अवस्था.

परिस्थिति का सदुपयोग करनाही मानवकी मानवता एवं बुद्धिमानी है। प्र०-धर्म किसे कहतेहैं। उ०-सभी पदार्थों के धर्म भिन्नभिन्न होतेहैं। यथा—जलका धर्म शीतलत्व, अग्नि का धर्म ऊष्णत्व, पृथ्वी का धर्म गन्ध, इसीप्रकार जीवात्मा का धर्म ज्ञानहै। अर्थात् ज्ञानपूर्वक उचित अनुचित, आवश्यकता अनावश्यकता या कर्तव्याकर्तव्य का विचारकरके, अनावश्यक अकर्तव्य अनुचितका त्यागकरके, आवश्यक उचित, कर्तव्य कार्यको करनाही धर्म है॥

❋ सत्संग-सुधा ❋

बिचार करके देखने पर ज्ञात होताहै, कि संसार में प्रधानतया दो ही तत्त्व हैं। एक सत्य तथा दूसरा असत्य। प्र० सत्य किसे कहतेहैं॥ उ०-जो सर्वदा एकरस बना रहे। जिसका परिवर्तन एवं परिबर्धन न हो। प्र०-असत्य किसे कहते हैं। उ०-जो सर्वदा परिवर्तनशील हो। प्र०-सर्वदा एकरस रहने वाला तत्त्व कौन है। उ०-ब्रह्म ही सर्वदा एकरस रहनेवाला है। प्र०-असत्य तत्त्व कौनहै। उ०-माया एवं मायाकृत वस्तु, व्यक्ति, देश; काल, अवस्था। प्र०-ब्रह्म किसे कहतेहै। उ०-जो सर्वदा सभी समयमें सर्वत्र समानरूपसे एकरस व्यापक हो। और जो स्वाभाविक आनन्द-ज्ञान एवं प्रकाशका एकमात्र केन्द्र हो॥ शास्त्रोंमें ब्रह्मको निर्गुण निराकार एवं सगुण साकार दो रूपोंमें बताया है। प्र०-निराकार तथा साकार दोनों में अधिक उपादेय कौन स्वरूप है। उ०-ज्ञान विशिष्ट कैवल्य मुक्ति के चाहनेवालों को निराकर और भक्ति विशिष्ट भगवत्कृपासे नित्य कैङ्कर्य चाहनेवालों को साकार परमश्रेयकरहै। प्र०-इन दोनों रूपोंमें प्रधान कौन है। उ०-ब्रह्म के ही दोनों स्वरूप होने के कारण दोनों ही समानहैं। प्रधान तथा गौणकी कल्पना नहीं है। प्र०-मैं किस स्वरूप की उपासना करूँ। उ०-आप जानिये। अपने हृदय से पूछिये कि किस स्वरूप को अपना अधिक हितकर समझता है। जो स्वरूप आपको प्रिय हो, सावधानचित से एकाग्रता पूर्वक उसीमें लगजाइये।

प्र०-सरलतापूर्वक किस स्वरूप की उपासना हो सकती है। उ०-जो साधक जिस स्वरूप की उपासना करनेमें कुशल है, उसके लिये वही स्वरूप की उपासना अधिक सरल पड़ेगी। फिरभी विचार करने से निश्चित होता है कि-निराकार स्वरूप की उपासना की अपेक्षा साकार स्वरूप की उपासना करने में अधिक सुबिधा है। क्योंकि निराकार उपासना में सर्व प्रथम तो अधिकारी पात्र होना अनिवार्य है। जो

अन्तःकरण विनाशुद्ध हुये और साधन चतुष्टय सम्पन्न हुये विना असम्भव है। दूसरी बात यह भी है कि—निराकार उपासना में साधकको अपने मन, चित को लगाने का कुछभी अवलंबनहीं मिलता। इसलिये इस उपासनामें साधकका मनऊब जाताहै। क्योंकि मन स्वाभाविक ही रूपप्रिय है। अनादिकाल से अद्यावधि पर्यंत रूपाशक्त होने के कारण अरूप की उपासना करना महान कठिन लगतीहै। तीसरी बात यह है कि—साधनकालमें दिव्य रसानुभावके अभावमें विषय रसको त्यागना सर्वथा दुर्धर्षहो जाताहै। और सगुण साकारकी उपासनामें भगवान् की मंगलमय मंजुल मधुराति मधुर झाँकी तथा प्रभुके मंगलमय दिव्य गुण गण, सच्चिदानंदमय लीला तथा परम प्रेमरस सागर मोद निधान परम मंगलमय नाम कीर्त्तन स्मरण इत्यादि अनेक अबलम्ब हैं।

निराकार साकार दोनों स्वरूप ब्रह्मके ही हैं। तथापि विचारने पर पता लगता है कि—निराकार उपासनाकी अपेक्षा साकार स्वरूप की उपासनामें आनन्द, रस का अनुभव अधिक होताहै। इतिहास पुराण साक्षीहैं कि—सृष्टिकाल से अद्यावधि पर्यन्त भगवान् की भक्ति भावना युक्त रूपाशक्त कोईभी भक्त निराकार की ओर आकर्षित नहीं हुआ है। किन्तु ज्ञाननिष्ठ, निराकार उपासना परायण, अनेक परमहंस सगुणविग्रह को देखकर अतिशय आकर्षित होते देखे गयेहैं। यथा—सनकादिन, शुक, जनकादि प्रमाणहैं। देखिये श्रीरामचरित मानस में—पूज्य चरण गोस्वामी श्री तुलसीदासजी ने लिखाहै। मुनि रघुपति छवि अतुल विलोकी। भये मगन मन सके न रोकी ॥ एकटक रहे निमेष न लावहिं। दो० ३३ उत्तरकाण्ड—में प्रभु श्री राम जी को देखकर अति आशक्त चित्त से प्रार्थना करके भक्ति का बरदान माँगकर ब्रह्मलोक गये। वालकाण्ड में—मूरति मधुर मनोहर देखी। भये विदेह विदेह विशेषी ॥ पुनः श्री विश्वामित्रजी से कहा कि—इनहिं विलोकत अतिअनुरागा। बरबस ब्रह्म सुखहिं मन त्यागा ॥ यदि अद्वैत सिद्धान्तानुसार ब्रह्म चिन्तवन ही प्रधान होता, तो फिर श्री जनक जी की यह विपरीत अवस्था प्राप्त नहीं होती। और जगत वन्द्य भूतमनभावन भगवान् श्री भोलेनाथ जी भो। शंकर रामरूप अनुरागे। नयन पंचदश अतिप्रिय लागे ॥ पुनः लंकाकाण्ड में आकर श्री राम जी की स्तुति किये। बाद में जव श्री राम जी सिंहासनारूढ़ हुये तो भी आकर स्तुतिकर भक्ति का वर माँगकर गये। यथा—

उत्तरकाण्ड दोहा १३—वैनतेय सुनु शम्भुतब, आये जहँ रघुवीर। विनयकरत गद्‌गद् गिरा, पूरित पुलक शरीर ॥ स्तुतिके बाद—बार बार वर मागौं हरषि देहु श्री रंग। पद सरोज अनपायिनी भक्ति सदा सतसंग ॥ १४ ॥ अस्तु यह निर्बिबाद सिद्ध निर्भ्रान्ति सिद्धान्त है कि निराकार उपासना की अपेक्षा साकार की उपासना अधिक

सरस प्रिय और सुगमहै । प्र०-ब्रह्मानन्द एवं परमानन्दमें क्या अन्तरहै । उ०-यद्यपि दोनोंही आनन्द एकही तत्त्वसे प्राप्त होनेके कारण पर्यायवाचीहै, तथापि रसानुभूतिकी दृष्टिकोणसे ब्रह्मानन्दकी अपेक्षा परमानन्द अधिक आकर्षकहैं । जब किसी जीवपर प्रभुकी अहैतुकी कृपा होतीहै, तब उस साधकका मन जगतके सभी नाम, रूप, क्रीड़ात्मक विषय जन्यसुखोंसे उपराम होकर ब्रह्ममें तदाकारता को प्राप्त होताहै । ब्रह्मकेपरम प्रकाशमय निगुर्णनिराकार स्वरूपका अनुभव करताहै । इसीलिये जागतिक(सांसारिक) सभी सुखोंसे ब्रह्मानन्द अधिक उत्कृष्ट है । किन्तु परमानन्द के दर्शन मात्रसे ब्रह्मानन्द अत्यन्त फीका लगने लगताहै । जिसप्रकार परमानन्द स्वरूप मंगलमय सच्चिदानन्दमय विग्रह श्री राम जी का दर्शन करके जीवन मुक्त सर्वदा ब्रह्मानन्दमय लीन रहनेवाले सनकादिक और श्री जनक जी न्यौछावर होगये । जिन श्री विदेह जी के यहाँ श्री शुकदेव जी जैसे महान् विरक्त परमहंस शिरोमणि भी ज्ञानदीक्षाके लिये आते थे । अस्तु ब्रह्मानन्दसे परमानन्द परमोत्कृष्टहै ॥

प्रथम बाततो यहीहै कि—नाम, रूप, लीला, रहित केवल वक्तव्य मात्र निराकार ब्रह्मका समझना ही कठिनहै । यदि समझ भी ले तो अवलम्ब रहित साधनकरना सर्वथा असंभव सा है । इतनेपर भी पगपग पर विघ्न बाधायें आतीहैं, उनका भय। प्रभु कृपासे निर्विघ्न साधना होजानेपर भी अपना अस्तित्व मिटजाने के कारण परमानन्द रसानुभवसे सर्वदा अलग ही रहताहै । और साकर ब्रह्मकी उपासनामें दिव्य नाम, रूप, लीला- धाम, गुणोंके अनुभव होते रहनेके कारण साधक का मन सर्वदा प्रसन्न रहताहै । अस्तु इस सुविधाकी दृष्टिसे भी निराकारकी अपेक्षा साकार ब्रह्मकी उपासना ही श्रेयकर है ॥ दूसरी बात यह भी है कि वर्तमानकाल में खाद्यपदार्थोंके उत्पादन की क्रिया विविध प्रकारके तामसी पदार्थोंसे निर्मित खादों द्वारा होनेके कारण खाद्यपदार्थ ही शुद्ध सात्विक नहीं हैं । तब इन पदार्थों को खानेसे साधक को शुद्ध सात्विक ज्ञानहोना कठिनहै । यहाँतक कि अन्यपदार्थों को भी शुद्ध करनेवाला घी को भी तामसी (चर्बी आदि) अशुद्ध बस्तुओंको मिलाकर महान् तामसी बनादिया जाता है । जिसका सेवन करनेपर सर्वप्रथम तो स्वास्थही अनुकूल नहीं रहता । यदि स्वास्थ ठीक रहा भी तो मन, चित, वुधि स्वाभाविक रूप से ब्रह्मज्ञान की ओर जाना प्रिय नहीं मानते । तब सोचिये कि, निराकार उपासना में वर्तमान युग में कितनी कठिनाई है । यदि दैवयोग से निर्वाह भी हो जाये, तो भगवान् कहतेहैं कि—भक्ति हीन प्रिय मोहिं न सोऊ । अस्तु इस समयमें सगुण साकार की उपासना करनी ही सुगम तथा सुलभ हो सकती है ।

❀ अहिंसा निरूपण ❀

प्र०-अहिंसा किसे कहतेहैं । उ०—मनसे किसीका अनिष्ट करने की भावना, करना, वाणीसे किसीको कठोर शब्द कहकर पीड़ित करना, और शरीर से किसीको मारना पोटना या हत्य करना, ये तीनप्रकार की अहिंसा शास्त्रोंमें मानी गई है ॥ प्र०—मानव जीवनमें अहिंसा की क्या आवश्यकता है ? उ०- हिंसा रहित अहिंसक जीवन ही वास्तवमें मानव जीवनहै । हिंसायुक्त जीवन, दानव या पशुवत् जीवनहै । क्योंकि मानवको ही सद्बुद्धि और विचार करनेकी शक्ति भगवान् से प्राप्तहुई है । पशुओं में बिचार करने की बुद्धि विधायक की ओर से दी ही नहीं गई है । किन्तु दानवोंमें बुद्धितो होतीहै, तथापि आसुरी प्रकृतिवश बुद्धिसे उचित कार्य न करके ऐसे ही कार्य करतेहैं, जिससे प्रत्यक्ष और भविष्यमें अपनेको तथा अन्य लोगोंको दुखी होना पड़े । मानव की यही विशेषताहै कि-वह सर्वदा ऐसे ही कार्य करताहै; जिससे स्वयं तथा अन्य सभीको वर्तमान एवं भविष्यमें सुख शान्ति प्राप्ति हो । अहिंसा परमोधमः महाभारत अनुशासन पर्व अ० ११६ का श्लो० २८ और पद्म० पु० स्वर्ग खं० अ०३१ श्लोक २७ ॥ अत्र पाठकगण वेदोंमें अहिंसाका निरूपण देखें ॥

❀ वेदमें अहिंसा ❀

वेदमें केवल गायकी ही अहिंसा नहीं लिखी है, परन्तु सर्वसाधारण द्विपाद-चतुष्पादोंकी भी अहिंसा लिखी है । सव भूतोंको मित्रदृष्टिसे देखनेका वेदका महा-सिद्धांत है । उसके साथ निम्नलिखित प्रमाणोंका विचार कीजिये—

यजमानस्य पशून् पाहि ॥ यजुर्वेद १.१ ॥ मा हिंसीस्तन्वा प्रजाः ॥ यजुर्वेद १२.३२ ॥ अश्वं···मा हिंसीः··॥ यजुर्वेद १२.४२ ॥ अविं ··मा हिंसीः ···॥ यजुर्वेद १२.४४ ॥ इमं मा हिंसीर्द्विपदं पशुम् ॥ यजुर्वेद १२.४७ ॥ इमं मा हिंसीः···वाजिनम् ॥ यजुर्वेद ॥ १२.४८ ॥ इममूर्णायुं·· मा हिंसीः ॥ यजुर्वेद १३.५० ॥ मा हिंसीः पुरुषम् ·॥ यजुर्वेद १६.३ ॥ मा··हिंसिष्टं द्विपदो मा चतुष्पदः ॥ अथर्ववेद १२.२.१ ॥

घोड़ा, बकरा, द्विपाद-चतुष्पाद पशु, ऊन देनेवाला तथा पुरुष-अपने प्रजावर्ग में से किसीकी भी हिंसा न कर । ये मन्त्र, मित्रदृष्टिवाले मन्त्रोंके साथ पढ़नेसे, वेदका अहिंसापूर्ण उपदेश स्पष्ट सामने आ जायगा । सर्वसाधारण प्राणियोंको मित्रदृष्टिसे

देखो और इन प्राणियोंकी हिंसा तो कभी भी न करो, यह वेदका उपदेश मनुष्यों के लिये है। इतना होते हुयेभी कई यूरोपियन समझतेहैं कि वेदमें अहिंसाका तत्त्व वैसा उत्कट नहीं है जैसा आगे बढ़ गया है।

पण्डित धर्मदेव विद्यावाचस्पतिने अपनी पुस्तक 'वेदोंका यथार्थ स्वरूप' (प्रकाशक—गुरुकुल कांगड़ी. हरिद्वार) में वेदोंमें अहिंसा के सम्बन्धमें पृष्ठ ४६८ ४६६पर सुन्दर विवेचन किया है, जिसका कुछ अंश यहाँ उद्धृत किया जाताहै—

बृहद्भिर्भानुभिर्भासन् मा हिंसीस्तन्वा प्रजाः ॥ (यजुर्वेद १२-३२)

अर्थात्—(बृहद्भिः भानुभिः) तू महान् ज्ञान किरणोंसे प्रकाशित हो और (तन्वा) अपने शरीरसे (प्रजाः मा हिंसीः) प्राणियोंकी हिंसा मत कर।

ये रात्रिमनुतिष्ठन्ति ये च भूतेषु जाग्रति। पशून् ये सर्वान् रक्षन्ति ते न आत्मसु जाग्रति ते नः पशुषु जाग्रति ॥ (अथर्ववेद १६.४८.५)

अर्थात्-जो धर्मात्मा रात्रिमें ध्यानादियोगाभ्यास करते हैं, सब प्राणियों के विषयमें जो सदा सावधान रहतेहैं, जो सब पशुओंकी रक्षा करतेहैं. वे हमारी आत्माओंकी उन्नति के विषयमें भी जागरूक रहते हैं। वे इस बातका सदा ध्यान रखतेहैं, कि किसी पशुको हमारे व्यवहारसे कष्ट न पहुंचे। प्रियः पशूनां भूयासम्। (अथर्ववेद १७.४) अर्थात्-मैं पशुओंका प्यारा बनूँ। जो पशुओंकी रक्षा करता है और उन्हें प्रेमदृष्टिसे देखता है वही उनका प्रिय बन सकता है, न कि उन्हें मारनेवाला यह बात स्पष्ट है।

यह माना जा सकता है कि जैन-बौद्धोंने जिसप्रकार आत्यन्तिक और एकान्तिक अहिंसा प्रचलित की वैसी वेदमें नहीं थी, लेकिन अहिंसाका सिद्धान्त ही वेदमें नहीं था—यह कहना अयुक्त है। वेद सर्वसाधारण आचरण के लिये अहिंसाका ही उपदेश दे रहा है, परन्तु प्रसंगविशेष में युद्धादि प्रसंगोंमें वध करनेसे पीछे रहने की आज्ञा भी नहीं देता, अर्थात् वेदमें इसी प्रकारकी अहिंसा है जो मानते हुए राष्ट्रीय महायुद्धमें आवश्यक वधकी भी उसमें सम्भावना है। परन्तु कोई कहे कि अपने पेट के लिये दूसरों का वध किया जाय तो वैसी हिंसा करनेकी आज्ञा वेद नहीं देताहै। यह भेद पाठकोंको अवश्य ध्यानमें धारण करना चाहिये। वास्तवमें देखा जाय तो वेदमें ही अहिंसाका सच्चा सिद्धान्त है। तभी तो वेदोंको माननेवाले आर्य रास्ते चलते कीड़े-मकोड़ोंको भी बचानेकी चेष्टा करते हैं और यदि कोई भूलसे दबभी जाय तो वे काँप उठते हैं और 'राम राम' करते हुए पीछे हटते हैं, अपने घरमें अण्डा देने वाली चिड़ियाँ-कबूतरोंकी भी रक्षा करते हैं।

नवीन सभ्यतामें पलनेवाले कुछ महाशय कहा करते हैं कि जीव हिंसा करना पाप है, किन्तु अण्डा तो निर्जीव है, उसे खाने में कोई दोष नहीं है। परन्तु बुद्धिजीवी होने का दावा करनेवाले उन बुद्धिके शत्रुओं से यदि पूछा जाये, कि अंडा किस पेड़ का फलहै, अथवा किस सरोवर में सिंघाड़े की भाँति फरता है, अथवा किस खेतमें धान या गेहूँ की भाँति बोया जाता है। तब कहना ही होगा कि अंडा मुर्गी के बच्चे का कारणहै। प्र०-अंडा किस पदार्थ से बनता है। उ०-मुर्गे का वीर्य और मुर्गी की रज से ॥ प्र०-अंडा खाद्यपदार्थ है या नहीं। उ०-मानवों का खाद्यपदार्थ अंडा नहीं है। क्यों कि अंडा में मुर्गी और मुर्गे के रजवीर्य के अतिरिक्त है ही क्या। अंडा खानेवाले बिचार करेंकि सब योनियोंमें सर्वश्रेष्ठ मानवशरीर हीहै। तथापि यदि किसी मनुष्यके बस्त्र में वीर्य का दाग लगा हो, तो सभी देखनेवालों को घृणा लगती है। कोई भी सभ्य व्यक्ति उससे स्पर्श करने की भी रुचि नहीं रखते हैं। तब सोचिये कि मुर्गी एवं मुर्गे के रज वीर्यको खाने वाले व्यक्ति कितने अधिक बिचारवान हैं। प्र०-मांस मछली मनुष्यको खाना चाहिये या नहीं। उ०-मांसमछली खाना और शराब पीना मनुष्य को निषेध है, यह तो यक्ष राक्षस तथा पिशाचों का भोजन है। यथा- १—यक्ष रक्षः पिशाचान्नं मद्यं मांसं सुरासवम्। तद्ब्राह्मणेन नात्तव्यं देवानामश्नता हविः ॥ ९६ मनु स्मृति अ० ११ ॥ २—यतस्तं मांसमुद्धृत्य तिलमात्र प्रमाणतः। खादितुं दीयते तेषां भित्वा चैव तु शोणितम् ॥ शिव पु० उमा संहिता अ० १० श्लो० ५० ॥ ३—भक्ष्या भक्ष्य समश्नंति मत्स्य मांसादिकं नराः। वने द्विजातयाश्चान्ये भुंजते च पापकम् ॥ ५१ प० पु० सृष्टि खं० अ० ७६ ॥ मांस का न खानाही धर्महै, यथा-मांसस्याऽभक्षणेधर्मो विशिष्ट इति नः श्रुतिः। ४३ म० भा० अनु० पर्व अ० ११५ ॥ मधु मांसं च ये नित्यं वर्जयन्तीह धार्मिकाः ॥ ७८ ॥ अनु० पर्व अ० ११५ ॥ पुत्रमांसोपमंजानन् खादते यो विचक्षणः। मांसमोह समायुक्तः पुरुषः सोऽधमः स्मृतः ॥ ११ अनु० पर्व अ० ११४ ॥ प्र०—मांस खाना पाप क्यों है। उ०-इसलिये कि मांस सूखी घास, लकड़ी या पत्थर से पैदा नहीं होता है; न अन्न जैसे बोया जाता है। किसी जीवधारी को मारकर उसके शरीरको काटकर निकाला जाता है। मांस खाने वालों के काँटा लगता है, तो भी कष्ट का अनुभव करने लगते हैं। किन्तु अपने आप किसी के शरीर को काटकर खाने पर भी अपने को बुद्धिमान एवं धार्मिक मानते हैं, यह भारी भूल है। अस्तु मांस मनुष्यों का खाद्यपदार्थ नहीं है, इसलिये मानव मात्रको मांस नहीं खाना चाहिये ॥

सन्त=समाज

प्र०-सन्त किसे कहतेहैं ? उ०-जो सदाचार सद्गुण सद्भावना युक्त सद्विचारपूर्वक इन्द्रियोंका दमन करके आत्मा और परमात्माका चिन्तवन करतेहुये; प्राणि मात्र के उपकारमें रत रहताहै ॥ प्र०-सन्तोंका वेष कैसा होताहै ? उ०-सन्त अनेक वेषमें रहतेहैं । प्र०-क्या संतोंका स्वरूप कुछ निश्चयहै या नहीं ? उ०-यद्यपि सद्ग्रन्थोंमें सन्तोंके स्वरूप की चर्चाहै, किन्तु सर्वथा यह निर्णय नहीं है कि इसके भिन्न स्वरूपवाले संत नहीं माने जायें । इसलिये सन्तों के स्वरूपका सर्वथा निश्चय करना किसीके भी वशकी बात नहींहै । प्र०-संतोंका सांकेतिक स्वरूप तो कहा जाय ? उ०-अनेक प्रकारके स्वरूपोंमें से कुछ ये हैं, यथा—श्रीवैष्णव, शैव्य, शाक्त, इत्यादि, इनमें कुछ सन्त तो अपना घरद्वार त्यागकर विविक्त प्रदेशमें रहकर अपने इष्टरूपकी साधना करतेहैं । कुछसन्त गावों नगरों में मठ मन्दिर बनाकर रहते हुये, परोपकार परायण होकर अपनी साधनामें संलग्न रहतेहैं । और कुछ सन्त अपने घर पर परिवारके साथ रहकर ही साधना करतेहैं ॥ प्र०-सम्प्रदायें कितनी और कौन कौनहै ? उ०-श्रीवैष्णव सम्प्रदाय, श्रीशैव्यसम्प्रदाय, शाक्त, स्मार्त, गाणपत्य सौर्य, इत्यादि कई सम्प्रदायें हैं । इनकी भी कई कई शाखायेंहैं । प्र०-सर्वश्रेष्ट सम्प्रदाय कौनहै ? उ०-जो व्यक्ति जिस सम्प्रदायमें श्रद्धा विश्वासपूर्वक अपनी मान्यता दृढ़कर चुकाहै, उसके लिये वही सम्प्रदाय सर्वश्रेष्टहै । प्र०-सन्तोंको गाँवमें रहना चाहिये या नहीं ।

उ०-प्रवृत्ति और निवृत्ति इन दो मार्गोंमें से प्रवृत्ति मार्गवाले सन्त तो नगरों में रहते ही हैं । किन्तु निवृत्तिमार्गवाले सन्तोंका निवास उनकी रुचिपर निर्भर है, अपनी इच्छासे गाँवों नगरोंमें रहें या निर्जनवनमें रहें । प्र०-अधिक उत्तम निवास कहाँ का माना गयाहै । उ०-बड़े बड़े गावों एवं नगरोंका निवास तामसी, साधारण ग्रामों का निवास राजसी, बनका निवास सात्त्विकी और भगवान्के मन्दिरका निवास गुणातीत है । किन्तु यदि मर्यादा का पालन किया जाय तो । अन्यथा मन्दिरमें भ्रष्टचार करनेपर महान् अनर्थकारीहै । भगवान् का मन्दिर जहाँ भी हो वहाँ का निवास सर्वोत्तमहै ॥ प्र०-सन्तोंको गाँव नगरमें जाना चाहिये या नहीं ? उ०-जिन सन्तोंका मन सांसारिक सभी व्यवहारों से ऊँचा उठगया है, वह चाहे जहाँ भी रहें कुछ भी हानि लाभ नहींहै । किन्तु जो साधकहै, उसे अनिवार्य रूपसे एकान्त प्रदेश में ही रहकर साधना करना लाभकर और जन समाजमें रहना हानिकर होगा । प्र०-सन्तों

को रुपया पैसा छूना चाहिये या नहीं ? उ०-जिसके जीवनमें रुपया पैसा से बिकने वाली किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं है, वह रुपया पैसा क्यों छुयेगा, यदि छूता भी है तो भूल है, अनावश्यक बस्तुको संग्रहकरना कौन बुद्धिमानी है । किन्तु ध्यान रहे ! जिसके जीवनमें रुपयेसे मिलनेवाले सभी पदार्थोंकी आवश्यकता होते हुयेभी यदि रुपना न छूने की नाटक मात्र करताहै, तो अवश्यही पाखण्डहै ।

प्र०—कुछ लोग तो रुपया पैसा नहीं छूतेहैं, परन्तु रुपये से मिलने वाले सभो पदार्थों को उपभोग करतेहैं. ऐसा क्यों ? उ०—किसी का दोष नहींहै, यह सब कलिकाल का प्रभावहै । आजका चतुर व्यक्ति सोचताहै कि हम सब सुखोंका भोग करते हुये वीतराग महाविरक्त परमहंस भी कहलायें और सबसे अच्छे सन्तभी माने जायें, तब उसको ही पैसा न छूनेका नाटक करना अनिवार्य परमावश्यक हो जाताहै। ताकि हमें सबलोग तपोनिष्ठ वीतराग और परम विरक्त भी मानेंगे, साथही साथ हम सम्यक प्रकार सुख स्वाद भी भोगते रहेंगे । रुपये पैसे में कौन सो अग्नि या विष मिलाहै कि जिसे छूनेसे व्यक्ति जलजायेगा या मर जायेगा । रुपया पैसा में न तो अग्नि ही है, न विष ही । जो भी अवगुणहै, वह रुपये पैसे से मिलनेवाले पदार्थों में है । अस्तु पैसा छूना या न छूना कुछभी महत्त्व नहीं रखता है । मेरी समझमें तो सबसे वीतराग वह सन्तहै, जो सरल स्वभावसे रहकर अहर्निशि भगवद्भजन करताहै, क्षुधा निवृत्ति केलिये प्रभु कृपासे प्राप्त साधारणतथा अन्न, साग, फल इत्यादि से काम चला लेताहै, वह पैसा छुये या न छुये । किन्तु यह तो भारी पाखण्डहै कि पैसा न छूनेको नाटक दिखलाकर अनेक प्रकारके पकवान मेवा, दूध, घी, मक्खन, मलाई, खीर पूड़ी, हलुवा चटकर जाना, तथा प्राइवेट मोटरों या रिजर्वेशन ट्रेन या वायुयान में बैठकर व्योम वीनिकाओं की शैर करना । ऐसा पैसा त्याग करना जनता को धोखा देना तथा अपने को रसातल भेजना है ॥ प्र०—रुपया पैसा न छूने से क्या लाभहै ? उ०—कुछ नहीं, केवल अभिमान बढ़ानाहै कि मैं महाविरक्त हूँ । लाभतो तब है कि पैसा का व्यवहार न करे । जो पैसा त्यागीहै, उसे पैसा से मिलनेवाली किसी भी वस्तु से कुछभी सम्बन्ध न रखकर— निर्जन वनमें फूस या पत्तेकी कुटी स्वय बनाकर रहना तथा जंगली पत्ती कन्द मूल फल या फूलों से जीवन निर्वाह करना चाहिये । किन्तु पैसा त्यागियों को पंचायती मोटर गाड़ियोंमें चढ़ने पर कष्ट होता है, जहाँ पधारें वहाँ दो चार सेवक हों जो सब व्यवस्था करें । कीमती बस्त्र घड़ी जूता. छड़ी टार्च का प्रयोंग करें, अनेक प्रकार का भोजन पायें सबसे श्रेष्ठ सन्त माने जायें, ये क्या कम है, और क्या लाभ चाहिये ।

❋ लीलाकाल में भगवान् के श्रीमुख वचन ❋

बँधगया मुझसे जाती न छोरी । ऐसी अद्भुत है ये प्रेमडोरी ॥ भक्तिबिन मैं न भोगों के वश हूँ; प्रेमके फूल फल जल से खुश हूँ । भावशून्यों कि दुनियाँ है कोरी ॥ ऐ० अ० ॥ मोहिं वेदों ने स्मृत बताया, शेष शारद नहीं पार पाया । किन्तु सुर मुनि करत प्रेम बोरी ॥ ऐ० अ० ॥ मोहिं शंकर समाधी लगावैं, बर्षों ढूँढ़े पै ब्रह्मा न पावैं । किन्तु प्रेमिन सों चलती न चोरी ॥ ऐ० अ० ॥ मिथिलाबासिन से नाता लगाया, ब्याह श्री मैथिली सँग रचाया । भय सकल नारि नर रस विभोरी ॥ ऐ० अ० ॥ मैने केवट को हिय से लगाया; अरु जटायू से नाता निभाया । करिक्रिया पितु सरिस प्रेम बोरी ॥ ऐ० अ० ॥ मुझको महलों के व्यंजन न भाये; वेर शबरी के मुख सों सराहे । प्रेम सों लाई जो भरि के झोरी है, गरीबों की यह प्रेम डोरी ॥ ऐ० अ० ॥ भाव भरि मुझको जो कोई पुकारे; उसकी नैया लगादूँ किनारे । भव भँवर से वह निकलेगी कोरी ॥ जिसने छोड़ी न ये प्रेम डोरी ॥ ऐ० अ० ॥ भक्त नैया है तो मैं खिवैया, भक्त बछड़ा है तो मैं हूँ गैया । भक्त की भक्ति मोहिं वश कियो री ॥ ऐ० अ० ॥ सब जगतका मैं शासक कहाता, कोटि ब्रह्माण्ड क्षणमें बनाता । भावुकों के भाव वश भयो री ॥ ऐ० अ० ॥ मोरि आज्ञा सबनि शीशधारी, काल, मृत्यु, पवन, जम; तमारी । डरि के स्तुति करैं हाथ जोरी ॥ ऐ० अ० ॥ ब्रह्म व्यापक मुझे वेद गाते; अज अगोचर अकथ सब बताते । प्रेमियों सँग प्रगटि रस पियोरी ॥ ऐ० अ० ॥ मैं जिसे चाहूँ जो कुछ बनादूँ । सारी सृष्टी पलक में मिटादूँ । किन्तु प्रेमिन सों वश ना चल्यो री ॥ ऐ० अ० ॥ हैं चराचर सभी अंश मेरे; कहते श्रुति शास्त्र शुचि संत टेरे । प्रेमियो ने प्रगट मोहि कियो री ॥ ऐ० अ० ॥

प्राणधन श्रीअवधनृप दुलारे । कौशिलामाँके नयननके तारे ॥ भावग्राहक कृपानिधि कहाते, विरद आगम निगम संतगाते । प्रेमियोंके जिवन प्राणप्यारे ॥ कौ० माँ० ॥ भक्तिवश भावग्राहक निरन्तर, भावुकोंका हृदय मानि निज घर । बासकरते सदाबनि सुखारे ॥ कौ० माँ० ॥ हे सलोने सुभग प्राणजीवन; हे रसिकमणि रँगीले सरसमन । हे रसिकजन जिवनके सहारे ॥ कौ० माँ० ॥ हे मनोहर मधुर मंजुमूरति, हर्मबिके मोलबिन देखिसूरति । ना बिके अस कवन धीरधारे ॥ कौ० माँ० ॥ मुखप्रभा कोटिशशिको लजावन, हास्यमृदु प्रिय सुधासम सोहावन । नैनकीशैन तनसुधि बिसारे ॥ कौ० माँ० ॥ वैनकी माधुरी हिय लुभावन मीनसम प्रेमिजन मन फसावन । संत सुखप्रद सदा रूपधारे ॥ कौ० माँ० ॥ केशकुंचित बदनपर सोहावत, कंजपर मानो मधुकर लुभावत । दन्त दामिनिप्रभा छवि पसारे ॥कौ०माँ०॥ अवयही सचिनती हमारी, चरण पूजनकरौं नित सुखारी । मन बचन कर्म तन प्राण वारे ॥ कौ० माँ ॥ अव न प्रभुको कभीमैं भुलाऊँ हियकमलमें सदा ही बसाऊँ । भावना ही में आरति उतारे ॥ कौ० माँ० ॥ देखि सीताशरण रूपसागर, खोगये होगये मानोबावर । अब न तजना कभी प्राणप्यारे॥ कौ० माँ० ॥ श्रीमुख बचन—

भावका भूखा हूँ मैं तो भावही बस सार है । भावसे मुझको भजै तो, भवसे बेड़ा पारहै ॥ भावबिन सूनीपुकारैं, मैं कभी सुनतानहीं । भावपूरितटेरही करती मुझे लाचारहै ॥ भावबिन सबकुछ देडाले, मैं कभी लेतानहीं । भावसे एकफूल भी दे तो मुझे स्वीकारहै ।। अन्नधन अरु बस्त्रभूषण, कुछ न मुझको चाहिये । आपही होजाय मेरा, पूर्ण यह सतकारहै ॥ जो हमीमें भावरखकर, लेतेहैं मेरीशरण । उनके अरु मेरेहृदयका, एकरहतातारहै ॥ भाव जिसजनमें नहीं, उसकी न कुछ चिन्ता मुझे । भाववाले भक्तका, भरपूर मुझपर भारहै ॥ बाँधलेते हैं मुझे, प्रियभक्त दृढ़जंजीर में । इसलिये इसभूमि पर, होता मेरा अवतार है ॥

* इति श्रीसीताराम तत्त्वप्रकाश ग्रन्थ सम्पूर्णम् *

श्रीब्रह्मदेव प्रिंटिंग प्रेस, श्री अयोध्या जी